हुकमचन्द
अभिनन्दन
ग्रंथ

णमो अरिहंताणम्
णमो सिद्धाणम्
णमो आइरियाणम्
णमो उवज्झायाणम्
णमो लोए सव्वसाहूणम्

दानवीर, तीर्थभक्तशिरोमणि, जैनधर्मभूषण, जैनदिवाकर,
जैनसम्राट, रायबहादुर, राज्यभूषण, रावराजा,
श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्दजी के० टी० आई०

अभिनन्दन ग्रन्थ

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा
द्वारा
सादर समर्पित

वीर सम्बत् २४७७
वैशाख सुदी सप्तमी
विक्रम सम्वत् २००८
ईस्वी सन् १९५१
रविवार १३ मई

——०——

प्रकाशक
जैनजातिभूषण
लाला परसादीलालजी पाटनी
महामन्त्री अ० भा० दिगम्बर जैन महासभा
नई सड़क, देहली.

मुद्रक—
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्सरोड, दिल्ली।

सम्पादक समिति की ओर से

अपने बडो का सम्मान वंश-परम्परा का आवश्यक अंग बन गया है। कुल, परिवार, जाति तथा समाज मे यह बड़प्पन प्राय जन्म की परम्परा से ही प्राप्त होता है, किन्तु समाजव्यापी, देशव्यापी और राष्ट्रव्यापी सम्मान तो अपने त्याग, तपस्या, सेवा तथा परिश्रम से ही उपार्जित किया जाता है। अनेक पदविभूषित सेठ साहब ने यह व्यापक सम्मान अपनी उस सेवा, त्याग तथा बलिदान से उपार्जित किया है, जो आपके जीवन की छाया बन गये हैं। यही कारण है कि आपको राज्य और समाज दोनों ही से भरपूर मान्यता एवं सम्मान मिला है और आज जीवन की चतुर्थ अवस्था मे प्राय सर्वस्व का परित्याग कर आपने जिस साधनामय विरक्त भावना को अंगीकार किया है, उससे उस मान्यता व सम्मान को श्रद्धा का रूप मिल गया है।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा पर आपकी जो कृपा रही है, उससे उऋण हो सकना सम्भव नही है। उस कृपा के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने का प्रयत्न महासभा यदा कदा अवश्य करती रही है। बहुत पहले महासभा ने मथुरा मे आपको 'दानवीर' की उपाधि से सम्मानित किया था। फिर, १९३५ मे इन्दौर मे आपका हीरक-जयन्ती महोत्सव होने पर महासभा का भी वहां वार्षिक अधिवेशन हुआ। तब आपको मान-पत्र भेंट करने के साथ साथ "जैन दिवाकर" की पदवी से विभूषित किया गया था। उसी परम्परा के अनुसार यह 'अभिनन्दन ग्रन्थ' भी कृतज्ञताभरी श्रद्धांजलि के रूप मे समर्पित है।

हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि यह जैसा चाहिये, वैसा बन नही सका। इसमे जो अनेक त्रुटिया रह गई हैं, उनसे हम पूरी तरह अवगत है। इसका छोटा आकार-प्रकार सेठ साहब के महान व्यक्तित्व के अनुकूल नही है। परन्तु जिस सम्मान, आदर, श्रद्धा तथा कृतज्ञता का यह प्रतीक है, वह न छोटी है और न उसमे कुछ कमी है। अपनी समस्त श्रद्धा, आदर तथा सम्मान एवं कृतज्ञता को साकार करके ही इस ग्रन्थ का संकलन एवं सम्पादन किया गया है। जितने कम समय मे यह ग्रन्थ तैयार किया गया है, उतने में इससे पहिले शायद ही ऐसा कोई ग्रन्थ तय्यार किया गया होगा। मार्च के मध्य में उसकी तय्यारी शुरू की गई। १५ मार्च १९५१ को अजमेर मे महासभा की प्रबन्धकारिणी में सम्पादक समिति का गठन किया गया। केवल दो ही बैठके उसकी इस बीच हो सकी। सम्पादक समिति के सब सदस्य सम्मिलित होकर पूरी तरह विचार-विनिमय भी कर नही सके। फिर भी जितना कुछ किया जा सका, उसमे कुछ भी कोर-कसर नही रखी गई। इतने कम समय में जिन महानुभावो ने अपनी श्रद्धांजलि, संस्मरण तथा लेख भेजने की अनुकम्पा की है, उन सबके हम हृदय से आभारी हैं। उनके इस कृपापूर्ण सहयोग के बिना इस महान श्रमसाध्य कार्य मे ऐसी सफलता प्राप्त होनी सम्भव न थी। महासभा के सुयोग्य प्रधान सर सेठ भागचन्दजी सोनी ने प्रायः प्रति दिन ही फोन से सन्देश आदेश देते रहकर जो प्रेरणा प्रदान की और दिल्ली भी पधारे, उसके लिये उनके प्रति कृतज्ञता प्रगट करनी आवश्यक है। महासभा के अथक महामन्त्री जैनजातिभूषण लाला परसादीलालजी पाटनी ने तो दो माह न स्वयं आराम किया और न किसी साथी को ही आराम लेने दिया। उनकी इस लगन और परिश्रम का यह ग्रंथ सत्परिणाम है। सामग्री

जुटाने और दौडधूप करने मे "जैन गजट" के प्रकाशक पण्डित बाबूलालजी शास्त्री का सहयोग अत्यन्त सराहनीय रहा।

अधिकतर सामग्री का संकलन तो इन्दौर से ही हुआ है। उसको जुटाने मे भैयासाहब श्री राजकुमारसिंहजी, सेठ हीरालालजी साहब, स्वर्ण जयन्ती समारोह के स्वागताध्यक्ष सेठ भंवरलालजी सेठी, संस्थाओ के मन्त्री लाला हजारीलालजी, सेक्रेटरी बाबू बसन्तीलालजी कोरिया, श्री हुकुमचन्दजी पाटनी, श्री रतनलालजी सोनी और वयोवृद्ध वैद्यवर पण्डित ख्यालीरामजी द्विवेदी के नामो का उल्लेख कृतज्ञता के साथ किया जाना चाहिये। पूज्य गांधीजी और महामना मालवीयजी के साथ के पुराने चित्र द्विवेदीजी से ही प्रप्त हुये हैं। आप भी इन्दौर के सार्वजनिक धार्मिक जीवन के प्राण हैं। इन्दौर के श्री हरेन्द्रनाथ शर्मा और ग्वालियर के श्री ओमप्रकाश शास्त्री की सहायता का उल्लेख करना आवश्यक है। जिन चित्रो से इस ग्रंथ में जीवन डल सका है, उनको नया रूप देकर ग्रंथ के योग्य बनाने का श्रेय है इन्दौर के स्टडी स्टुडियो के मालिक श्री पाण्ड्या की मेहनत को। उनके हम हृदय से आभारी हैं। इन चित्रो मे सेठ साहब के व्यापक जीवन की छाया देने का और संस्मरणो तथा श्रद्धांजलियो मे आपके चरित्र को अंकित करने का जो प्रयत्न किया गया है, वह इस ग्रंथ की अपनी ही विशेषता है। अन्य ऐसे ग्रंथो मे ऐसा नहीं किया गया है।

दिल्ली मे ब्लाक बनाने मे पंजाबी प्रेस, टाइम्स आफ इण्डिया प्रेस और सबसे बढकर दिगम्बर आर्ट काटेज का सराहनीय सहयोग रहा। मुद्रण मे हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस जयन्ती प्रेस और न्यू इण्डिया प्रेस का सहयोग प्राप्त हुआ। इन सबका भी आभार मानना आवश्यक है। जिल्द बंधाई का श्रेय श्री सुरेश एण्ड कम्पनी को है, जिन्होने सप्ताह से भी कम समय मे जिल्द बंधाई करके चमत्कार कर दिखाया है। प्रूफ पढने मे दी गई सहायता के लिये हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस के श्री राममूर्ति अग्रवाल और न्यू इण्डिया प्रेस के पण्डित शान्तिस्वरूप वेदालंकार के भी हम आभारी हैं।

क्षमायाचना उन महानुभावो से है, जिनकी सामग्री का उपयोग हम कर नही सके। कुछ लेख तो अत्यधिक लम्बे, अस्पष्ट, पेन्सिल से लिखे होने के कारण काम मे नहीं आ सके। समय की कमी के कारण पृष्ठ-संख्या बढाकर भी बची हुई सामग्री का उपयोग कर सकना संभव नहीं हुआ। कुछ सामग्री तो ५-६ मई तक प्राप्त हुई है। ऐसे सब महानुभावो से एक बार फिर विनीत भाव से क्षमा-याचना है।

—सम्पादक समिति।

महासभा कार्यालय,
नई सडक, दिल्ली
मंगलवार ८ मई १९५१

प्रकाशक की ओर से

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का गत पचास वर्ष का इतिहास अनेक पदविभूषित महा-सम्मानित सर सेठ हुकमचंदजी साहब की महान् जातीय सेवाओ के साथ ऐसा जुड गया है कि दोनो मे अन्तर कर सकना संभव नही रहा है। सेठ साहब ने जाति, समाज, धर्म और तीर्थों की सेवा का छोटा-बडा जो भी कार्य किया, वह इतने नि.स्वार्थभाव से किया कि उसका सारा श्रेय आप सदा एकमात्र महासभा को ही देते रहे हैं। अपने व्यापक सार्वजनिक जीवन के कारण स्वयमे एक सार्वजनिक संस्था होते हुए भी आप अपनी जातीय संस्था महासभा को सुदृढ, सुसंगठित, प्रभावशाली और व्यापक बनाने मे ही निरन्तर लगे रहे हैं। अपने पन्द्रह वर्षों के महामन्त्री काल मे मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि आपकी महासभा के प्रति कैसी भावना लगन और धुन है। मैं वर्षो मे धर्म समाज की जो कुछ भी सेवा कर सका हूं, वह सब आपकी ही प्रेरणा और प्रोत्साहन का परिणाम है। इसलिए महासभा भी आपके प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिये समय-समय पर आपका सम्मान करती रही है। आपके हीरक जयन्ति महोत्सव पर महासभा ने आपको "जैनदिवाकर" की पदवी से सम्मानित कर अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया था। यह आवश्यक था कि इस अवसर पर भी, जब कि महासभा का इन्दौर मे ही सुवर्ण-जयंति-महोत्सव हो रहा है सर सेठ साहब की विनीत सेवा मे उसकी ओर से श्रद्धा तथा सम्मान की एक और अजंलि अर्पित की जाती।

प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ तय्यार करने के लिये समय बहुत ही थोडा था। परन्तु महासभा के सुवर्ण-जयति-महोत्सव से अधिक उपयुक्त अवसर दूसरा हो नही सकता था। समाज के विशिष्ट नेताओ और महा-सभा की प्रबन्धकारिणी के अधिकाश सदस्यो का भी यही मत था। कम समय, अपर्याप्त साधन और सारी सामग्री जुटा सकना सभव न होते हुये भी डेढ मास मे जो कुछ भी किया जा सकता था, किया गया। १४ मार्च को तो अजमेर में प्रबन्धकारिणी की बैठक मे सम्पादक समिति गठित की गई। अर्थ समिति का गठन भी बहुत जल्दी से ही किया गया। सम्पादक समिति की केवल दो बैठके हुईं। सम्पादक-समिति के सारे सदस्य उनमे पधार भी न सके। फिर भी हिंदी के यशस्वी लेखक और सुप्रसिद्ध पत्रकार 'अमर भारत' सम्पादक श्री सत्यदेवजी विद्यालंकार ने ग्रन्थ को तय्यार करने व सर्वांग सुन्दर बनाने मे जो परिश्रम किया है, उसकी जितनी सराहना की जाय, कम है। आपने गत डेढ मास मे कई दिनो तक अठारह-बीस घण्टे काम किया है। आपके श्रम का ही यह परिणाम है कि इतने कम समय मे इतना बडा काम सम्भव हो सका है। इसी प्रकार 'श्रीयुत प० सुमेरचन्दजी दिवाकर न्यायतीर्थ बी० ए० एल० एल० बी० ने सिवनो बैठे हुए भी चारो ओर से सामग्री जुटाने का विशेष श्रम किया है। स्याद्वादवारिधि विद्यावाचस्पति पण्डित खूबचन्द्रजी शास्त्री और पण्डित नाथूलालजो न्यायतीर्थ ने इन्दौर से, पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री ने बनारस से और 'जैन गजट' के सम्पादक पं० इन्द्रलालजी शास्त्री ने जयपुर से पधार कर अपने समय, परामर्श और श्रम से विशेष लाभ पहुंचाया। दिल्ली के प० अजितकुमारजी शास्त्री भी समय-समय पर उचित सहयोग और परामर्श बराबर देते रहे है।

मै आप सभी के सहयोग के लिये आभारी हूं। अर्थ समिति के सदस्यो और अन्य सामग्री भेजने वालो का भी कृतज्ञ हू। महासभा के आदरणीय सभापति महोदय सर सेठ भागचन्दजी सोनी निरन्तर अपने परामर्श से प्रोत्साहन देते रहे है और आपने दिल्ली पधारने का भी कष्ट उठाया। आपका भी मै अत्यन्त आभारी हूं।

महासभा की यह विनीत भेट सर सेठ साहब को स्वीकार हो। साथ ही श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि आपका संरक्षण उसको चिरकाल तक इसी प्रकार प्राप्त रहे।

—परसादीलाल पाटनी, महामन्त्री-महासभा

विषय-क्रम

चित्र सूची

परम पूज्य जगद्वंद्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांतिसागरजी महाराज का शुभाशीर्वाद

हमें मालूम हुआ कि अखिल भारतवर्षीय दिगंबर जैन महासभा अपने स्वर्ण जयन्ति महोत्सव समारम्भ पर श्रेष्ठिवर्य हुकमचन्द का विशेष सम्मान कर उन्हें अभिनंदन ग्रन्थ भेंट कर रही है, श्रेष्ठिवर्य हुकमचन्द ने जैन धर्म प्रभावना के लिये चातुर्थिक दान, मुनिसेवा और सद्धर्मबन्धु सेवा यथाविधि पूर्वक की है। ऐसे प्रभावना करने वाले सेठ सरीखे श्रीमान् क्वचित् ही मिलते है अतः उन्हे शुभाशीर्वाद देकर भावना करते हैं कि श्रेष्ठिवर्य हुकमचन्द की आत्मास्वसंवेद्य गोचर पूर्ण होकर पुनीत होवे।

श्री १०८ नमिसागर जी महाराज और श्री १०८ धर्मसागर जी महाराज के शुभाशीर्वाद

परमपूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागरजी महाराज का आशीर्वाद

समाज की सबसे प्राचीन और प्रख्यात संस्था अपनी 'स्वर्णजयन्ति' के अवसर पर आपको अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण कर रही है, यह जानकर सन्तोष हुआ। आपने अब तक अनेक प्रकार से धर्म की सेवा की है। धर्मात्मा प्राणियों का गौरव बढ़े। यह बात स्वाभाविक है। 'न धर्मो धार्मिकैः बिना' अर्थात् धर्मात्माओं के बिना धर्म नहीं रह सकता। इसलिये धार्मिक सज्जनों के गौरव से ही धर्म का भी गौरव बढ़ता है। आप भी धर्मपालन से अपनी आत्मा को निरन्तर उन्नत बनाते जाओ, यही सब कर्तव्य का सार है। धर्म कार्य करने वाले धर्मात्माओं के लिये हमारा आशीर्वाद सदैव है।

परमपूज्य आचार्य श्री १०८ नमिसागरजी महाराज का आशीर्वाद

"सांसारिक भोग-सामग्री जीव ने पुण्य से प्राप्त की है। परन्तु भोग ने उसको भोग किया यह भोग को भोग सका नहीं।" वैसे अनेक सांसारिक पदवी से जीवों ने आपको विभूषित किया है। परन्तु वह सब आत्म कल्याण रूप नहीं है। मैं तो आपको अक्षयरूप भाव-मुनि बन कर अजर-अमर पदवी प्राप्त करके सादि-अनत काल तक अबाधित सुख भोगो—ऐसा आशीर्वाद भेजता हूँ।"

सन् १९२५ में श्रवणबेलगोला में महामस्तकाभिषेक के अवसर पर दर्शन करते हुए श्रीमंत मैसूर नरेश, युवराज और सर सेठ भागचंद जी सोनी के साथ श्रीमंत सर सेठ साहब।

सन् १९४० में श्रवणबेलगोला में महामस्तकाभिषेक के शुभ अवसर पर सेठ साहब और भैया साहब राजकुमारसिंहजी के साथ श्रीमंत मैसूर नरेश।
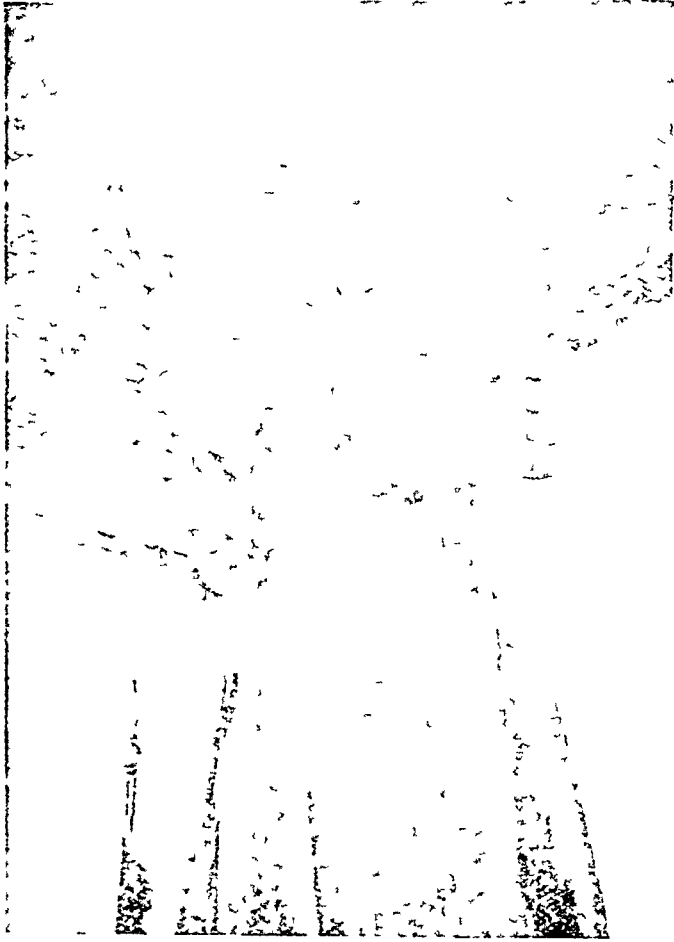
सीकर विम्बप्रतिष्ठा पर सीकर समाज की ओर से दिए गए मान पत्र के उत्तर में सर सेठ साहब भाषण देते हुए।

जयपुर शास्त्र भंडार के सचित्र यशोधर चरित्र का एक दृश्य।
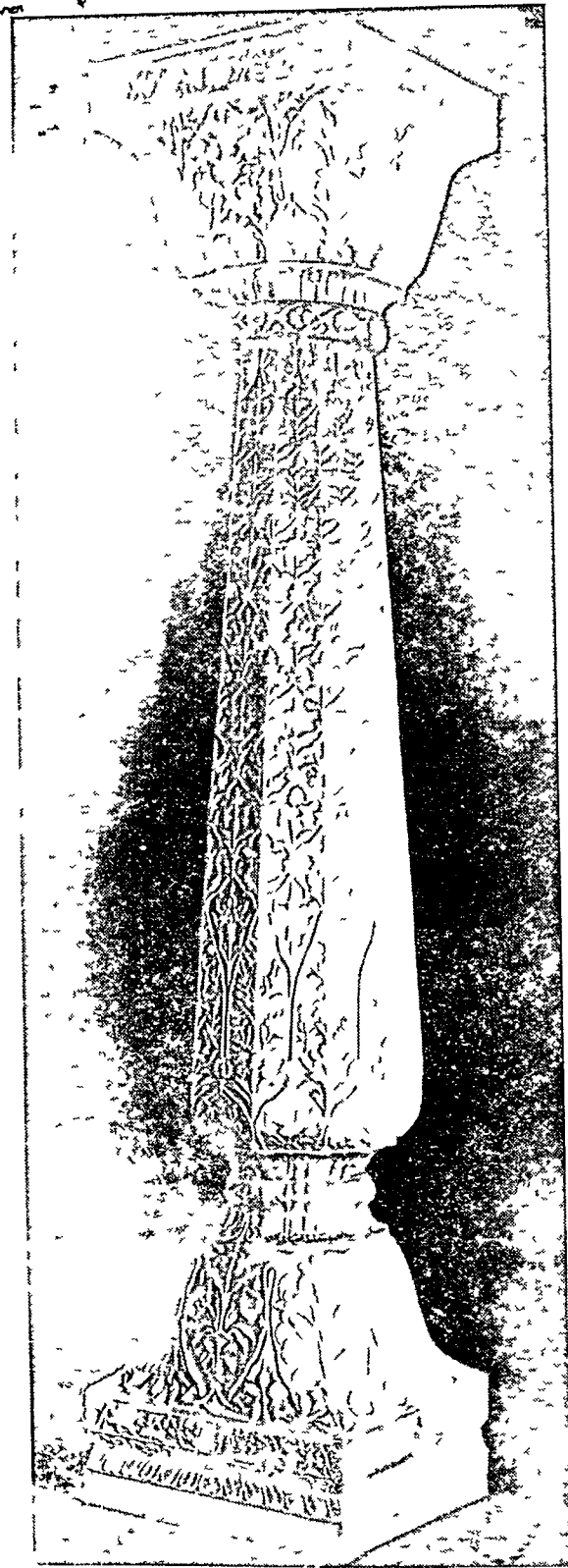
श्री विधीचंद जी गगवाल के मंदिर का संगमरमर का एक कलापूर्ण स्तम्भ ।
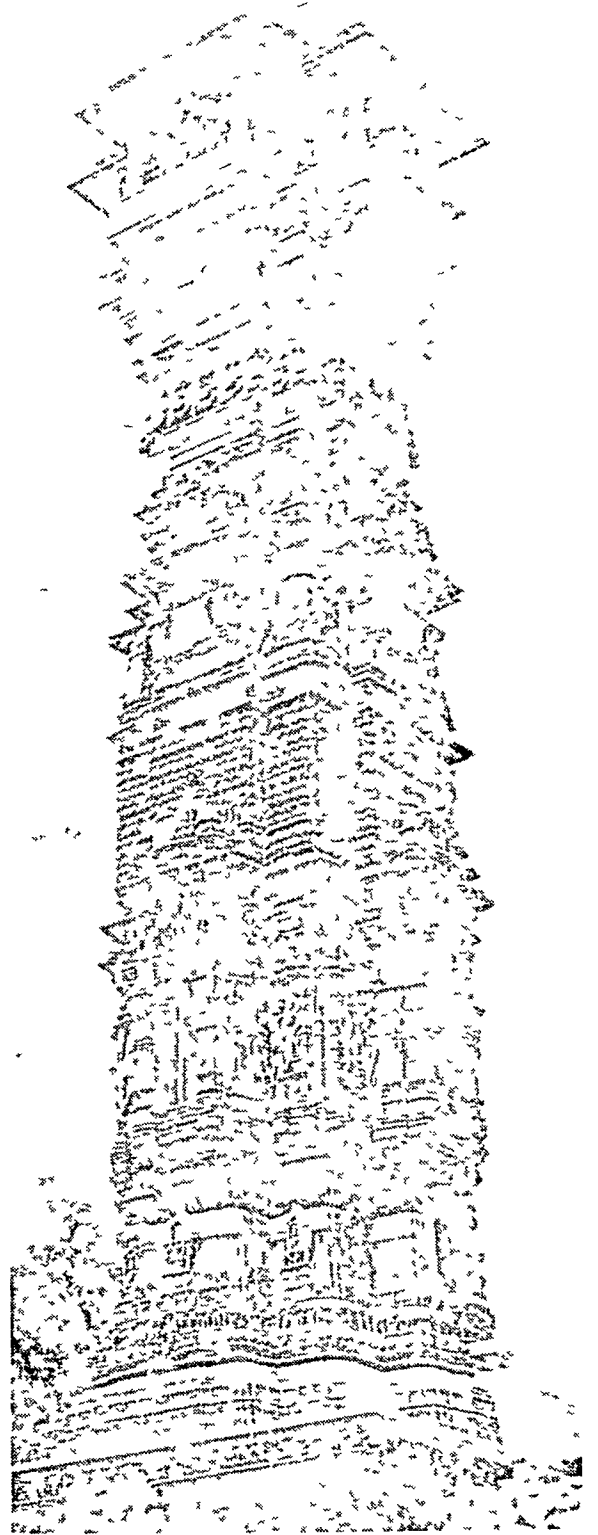
११ वीं शताब्दि मे जिज्जा जैन का बनवाया हुआ चित्तौडगढ़ का कीर्तिस्तम्भ ।

१
जीवन परिचय
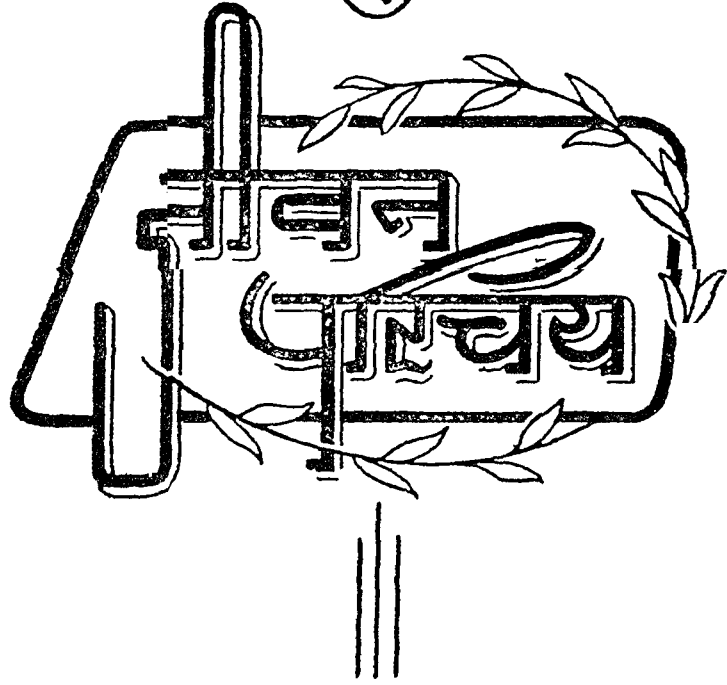
विशिष्ट पुरुषों के जीवन और व्यक्तित्व का अध्ययन दूर से नहीं, समीप से ही किया जा सकता है। मेरी यह इच्छा थी कि सेठ साहब का यह 'जीवन-परिचय' भी उनके समीप बैठ कर उनके व्यक्तित्व का अध्ययन करके ही लिखा जाय। वैसा अवसर हाथ न लग सका। जून १६५० मे इन्दौर जाने पर समाजसेवी भाई हुकमचन्दजी पाटनी ने मुझे पहिली बार इसके लिए प्रेरित किया था। उनकी ओर से फिर कोई कदम उठाया न जा सका। बाद मे अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा के महामन्त्री जैनजातिभूषण लाला परसादीलालजी पाटनी ने भी चर्चा की। महासभा के सुवर्ण-जयन्ती महोत्सव पर उसको प्रकाशित करने का आग्रह हुआ। मेरा कहना यही रहा कि सेठ साहब के समीप बैठ कर ही यह लिखा जाना चाहिये। बहुत कठिनाइ से केवल पांच-छः दिन का समय निकाला जा सका और वह भी मार्च के अन्तिम सप्ताह मे। लेकिन, तब 'जीवनी' को अभिनन्दन ग्रन्थ का रूप दिया जा चुका था। इसलिए इन थोड़े से दिनों का भी अधिक समय अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए सामग्री जुटाने मे निकल गया। सेठ साहब के व्यक्तित्व का अध्ययन तो क्या ही किया जा सकता था। फिर भी उसके लिए प्रयत्न किया गया। रात के बारह और एक बजे तक आपके पास बैठ कर चर्चा की गई। पर, उसे पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इसीलिए यह परिचय भी पूर्ण नहीं है।

सेठ साहब शतायु हों आप के सार्वजनिक अभिनन्दन का ऐसा ही अवसर हमे आपके शतायु होने पर भी प्राप्त हो। तब यदि इस कमी की पूर्ति की जा सके, तो बहुत अधिक उपयोगी होगा। राकफैलर, कार्नेगी और हेनरी फोर्ड के समान सेठ साहब के व्यापारीय जगत मे अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त व्यक्तित्व के अध्ययन पर भी ऐसे अनेक ग्रन्थ लिखे जा सकते है, जिन्हे अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य मे भी स्थायी स्थान मिल सकता है। अपने देशवासियों के लिए तो वे 'माइल स्टोन्स' की तरह अनन्त काल तक पथप्रदर्शक का काम दे सकते है। इसीलिये सेठ साहब के विशिष्ट व्यक्तित्व का सजीव चित्र हमारे साहित्य मे अङ्कित किया ही जाना चाहिए। 'जीवन-परिचय' का यह प्रयास तो उसकी केवल भूमिका ही समझा जाना चाहिये।

सत्यदेव विद्यालंकार
लेखक—'जीवन परिचय'

: १ :

कायाकल्प

"मै तीनों भाइयो मे रत्न बनूँगा ।"

इस पवित्र भावना से जो दृढ संकल्प सोलह वर्ष के युवक ने किया और उस पर वह जिस दृढता के साथ अंगद की तरह स्थिर होगया, उसी का परिणाम अनेक पदविभूषित रावराजा श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्दजी का वह विशिष्ट व्यक्तित्व है, जिसकी लोकोत्तर सफलताये देशवासियो के लिये गूढ पहेली बनी हुई है और उस दिन तो वे महान् सफलताये विश्वभर के व्यापारियों के लिये गूढ पहेली बनी हुई थी, जब कि ससार के सारे बाजार उसके हाथो मे खेला करते थे। भारतीय सभ्यता और भारतीय जीवन मे व्यक्तिगत चरित्र-निर्माण को समस्त सफलताओ का आधार माना गया है। हमारे चरित्रनायक की जीवन-कहानी भी इसी सचाई की प्रबल और प्रत्यक्ष साक्षी है। उसका सूत्रपात सारे ही जीवन का कायाकल्प कर देनेवाली जिस अद्भुत घटना के साथ हुआ, वह कितनी शिक्षा-प्रद, कितनी मनोरंजक और कितनी स्फूर्तिदायक है ?

संसारी जीवो के लिये महापुरुषो के जीवन को अद्भुत बना देनेवाली ऐसी घटनायें प्रायः सभी के जीवन मे घटती रहती है। अन्तर की जो पैनी दृष्टि उनको देख पाती है, वह जीवन का कायाकल्प कर जाती है। गौतम बुद्ध के जीवन का कायाकल्प करने वाले दृश्य हममे से कौन नही देखता ? कितने ही वृद्ध, रोगी और मृत व्यक्ति हम प्रायः देखते रहते है। परन्तु अपने अन्तर की पैनी दृष्टि से उन्हे देखनेवाला कौन है ? अन्यथा, हम सभी बुद्ध क्यो न बन जायं ? सोलहवर्षीय युवक हुकमचंद के हृदय मे एक भावना और संकल्प तब पैदा हुआ था, जब उसने अपने अन्तर की पैनी दृष्टि से अपने अन्तर का सहसा ही अवलोकन कर लिया था। उसी दिन उसने ऊपर की ओर जो कदम उठाया था, वह उसके उस अलौकिक उत्कर्ष का कारण बन गया, जो सभी को स्तंभित किये हुये है। इन्दौर और ग्वालियर अथवा मालवा या मध्यभारत ही नही, किन्तु बाहर भी जहाँ भी कही सर सेठ साहब को जानने वाले किसी भी व्यक्ति से चर्चा कीजिये, वह सहसा ही यह कह उठेगा कि "इसमे संदेह नही कि सेठ साहब का जीवन महान और व्यक्तित्व अद्भुत है।" इन्दौर सरीखे एक छोटे से शहर मे रहने-वाले सेठ साहब इतना नाम पैदा कर लेंगे, यह सोलह वर्ष की आयु मे उनके जीवन के क्रम को देखकर कोई कल्पना भी नही कर सकता था। 'हावल्या कावल्या' कभी उनके परिवार का नाम पड गया था और इन्दौर का शहर भी कभी इसी नाम से "हावल्या कावल्या सेठ का इन्दौर" कहा जाने लग गया था। इन्दौर निवासियो की आज की पीढी मे कितनो ही ने अपनी यात्रा मे यह अनुभव प्राप्त किया होगा कि उनके साथ के अपरिचित लोगो से उनका परिचय 'हावल्या कावल्या सेठ के इन्दौर' से अथवा 'उस इन्दौर' से ही हुआ है, जिसमे 'हावल्या कावल्या सेठ' रहते है।" उनकी स्वयं उपार्जित धन-संपत्ति और वैभव की उपेक्षा आज के साम्यवाद के युग मे 'पूंजीवाद' के नाम से भले ही की जा सकती हो; किन्तु अपनी अंतर्दृष्टि जगाकर, अपने को आत्म-तत्त्व की साधना मे लगा-

कर, मोक्ष की प्राप्ति करने का जो अटूट विश्वास उन्होंने अपने अंतर में पैदा किया है और जीवन के चतुर्थ भाग में पहुंचते ही साधनामय विरक्त जीवन को स्वेच्छा से अंगीकार करके उन्होंने जिस महान् आत्मिक सम्पदा का सम्पादन किया है, उसकी उपेक्षा भला कौन क्या कह कर कर सकता है ? पूंजीवाद को कोसने वाले भी इस तथ्य की उपेक्षा तो कदापि कर ही नहीं सकते कि उन्होंने अपनी अस्सी वर्ष से भी कुछ कम आयु में अस्सी लाख का वह सात्विक दान किया है, जिसका लाभ देश के सार्वजनिक जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों और सभी प्रदेशों को अनायास ही मिला है। 'स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम्" की कसौटी पर यदि इस महान जीवन की सफल कहानी की परख की जाय, तो कहना होगा कि अपने जन्म से सेठ साहब ने न केवल अपने वंश को समुन्नत किया है, किन्तु अपने धर्म, समाज, जाति तथा अपने नगर, राज्य और राष्ट्र का नाम भी समुज्वल किया है। इस महान और सफल जीवन का प्रारम्भ किस अद्भुत घटना के साथ हुआ ?

बहुत सम्भव सम्वत् १९४७ के दसहरे की बात है। अपने कुछ मित्रों सेठ फतेहचन्दजी और उनियारा के दीवान मागीलालजी के लड़के श्री भंवरलालजी के साथ मेले से युवा हुकमचन्द लौट रहे थे। रास्ते में उनके यहां रुक गये। त्योंहार की मिठाई सामने लाकर रखी गई। भांग की कतली, चक्की या बरफी, जिसे माजूम कहते हैं, कोई आधा सेर सामने रखी गई होगी। उस सारी को अकेले ही हुकमचन्द उड़ा गये। साथी देखकर दंग रह गये। वे उनको घर तक पहुंचाने गये केवल इसलिये कि कहीं नशे का इतना जोर न हो जाय कि उनका वहां पहुंचना भी कठिन हो जाय। वे घर पहुंचे और मकान के ऊपर भी बिना किसी के सहारे ही पहुंच गये। रात्रि का सोने का समय था। एकाएक एक विचार पैदा हुआ। पत्नी को बुलाया गया। उसको साक्षी रखकर उसी नशे में सभी प्रकार के नशे के परित्याग का संकल्प किया गया, जीवन का नया कार्यक्रम बनाया गया और उसको पूरी दृढ़ता के साथ निभाया गया। उसका शुभ परिणाम आज सबके सामने है।

जीवन का वह नया कार्यक्रम क्या था ? जीवन का आमूलचूल क्रान्तिकारी परिवर्तन था। इन दिनों में सेठ साहब का हृदय उस बालक के समान सर्वथा निर्दोष है, जो अपने दूषण को भी भूषण मानकर अपने माता-पिता के सम्मुख बिना किसी संकोच के सहज स्वभाव से स्वीकार कर लेता है और जिसकी मानसिक वृत्तियां इतनी शुद्ध और पवित्र हो जाती हैं कि वह हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के समान अपनी हिमालय की-सी भूलें भी स्वीकार करने में संकोच नहीं करता। यही आत्म-निरीक्षण उत्कर्ष की पहिली सीढ़ी है। इस अद्भुत घटना का वर्णन भी सेठ साहब ने स्वयं ही किया। आपने स्वयं ही बताया कि उन दिनों में आप प्रतिदिन आध सेर भांग छानते और उस पर भी एक तोला अफीम की गोली गले के नीचे उतार जाते थे। आहार, निद्रा और भोग-विलास के सिवाय जीवन का कोई प्रयोजन जान ही न पड़ता था। धन और यौवन की अटूट सम्पत्ति के साथ प्रभुत्व की मात्रा भी कुछ कम न थी, किन्तु 'अविवेक' अभी अपना साम्राज्य कायम न कर पाया था कि अन्तर की दृष्टि सहसा ही खुल गई। दिनभर मस्त होकर सोना ही सारे दिन का मुख्य काम था। सारी रात भी यों ही बीत जाती थी। सबेरे आठ से पहिले उठना न होता था। रात को १० बजे सेर भर दूध और उसमें पावभर घी, १२ बजे सेर डेढ़ सेर मिठाई, २ बजे फिर मिठाई का दूसरा दौर और ४ बजे कुछ और हाथ न लगता, तो दही की हंडिया पर ही हाथ साफ किया जाता। दिन में भी भोजन का यही क्रम रहता था। इस प्रकार आमोद-प्रमोद और भोगविलास में स्वच्छन्द बहने वाला युवक शतमुखीपतन की खाई के किनारे ही खड़ा था कि एकाएक संभल गया। उस घोर नशेके घोर अन्धकार में भी उसको दिव्य प्रकाश की एक किरण दीख गई और उसने उसको सहसा ही ऐसा पकड़ लिया कि जीवनभर आंखों से ओझल न होने दिया। उस नशे में ही उसके अन्तर्हृदय में एक ध्वनि पैदा हुई। उसने उससे कहा कि इस नशे

का परिणाम क्या होगा ? इस भांग के बाद सुरा और सुरबाला का क्रम शुरू हो सकता है। तब इस जीवन की क्या दुर्दशा होगी ? बस, इस अन्तर्ध्वनि की प्रेरणा हुई कि सारा जीवन ही बदल गया। अपनी पत्नी के सामने नशे का परित्याग करके जीवन का नया कार्यक्रम भी उपस्थित कर दिया गया। सबेरे पांच बजे उठना, स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर मन्दिरजी मे जाकर शास्त्रजी पढना, सेठजी के भोजन करने के बाद भोजन करके उनके साथ दूकान जाना, दूकान का बहीखाता स्वयं लिखना, शाम को सेठजी के बाद दूकान से उठना और उनके बाद भोजन करना, फिर दूकान का काम और रात को सबके बाद दूकान से उठना और स्वयं दूकान के बहीखाते संभाल कर दूकान बन्द करना। उसका पालन अक्षरशः किया गया। पिताजी और दोनो भाई इस परिवर्तन पर चकित रह गये। प्रारम्भ मे उन्होने समझा कि यह युवावस्था का दो दिन का उफान है। उनको भी क्या पता था कि यह सुषुप्तावस्था का स्वप्न नही किन्तु जागृत अवस्था का क्रान्तिकारी संकल्प है। दिनो के बाद सप्ताह और सप्ताहो के बाद मास बीतते गये,—युवक अपने व्रत को और भी अधिक दृढता के साथ निबाहता चला गया। यह नया क्रम उसके जीवन का साधारण अंग बन गया। घर के बडे लोग कभी कुछ पूछते, तो एक ही उत्तर होता कि "मुझे तीनो भाइयो मे घर का रत्न बनना है।' सवेरे मन्दिरजी मे शास्त्रजी पढने की धूम-सी मच गई। जैसा स्वस्थ चेहरा-मोहरा और तन-बदन था, आवाज़ मे वैसा ही माधुर्य एवं आकर्षण और हृदय मे वैसी ही आस्तिकता एव श्रद्धा थी। जनता खिंचती चली गई और श्रोताओ की संख्या भी बढने लगी। पांच-सात सौ स्त्री-पुरुष मन्दिरजी मे प्रतिदिन एकत्रित होने लगे। सब ओर चर्चा होने लगी और बिना किसी आन्दोलन तथा विज्ञापन के ही चारो ओर प्रचार हो गया। इसी प्रकार दूकान के सारे बहीखाते तथा रोकड आदि का सारा काम भी स्वयं संभाल लिया। मुनीम और रोकडिये ही नही, कभी कभी दुकान के जमादार भी खाली बैठे रह जाते। दुकान की झाड-पोंछ भी स्वतः ही की जाने लगी। जीवन बदल गया। उत्कर्ष की ओर अग्रसर युवक का प्रत्येक पग प्रगति और उन्नति के मार्ग पर ही बढता चला गया।

सेठ साहब का स्वयं यह कहना है कि उसी रात्रि मे, उसी नशे मे, उन्होने नैतिकता का व्रत भी अंगीकार कर लिया और उसको सारे ही जीवन मे इस दृढता के साथ निभाया कि वे कभी किसी स्त्री का चित्र तक देख कर भी विचलित नही हुये। चरित्र की इस उत्कृष्टता का प्रमाण और क्या चाहिये कि सारे इन्दौर मे उनके सम्बन्ध मे चरित्र-सम्बन्धी एक भी अपवाद सुनने को नही मिलता है। अपितु हर किसी के मुंह पर उनके उत्कृष्ट एवं पवित्र जीवन की प्रशंसा है। गुलाब के फूल के साथ कांटे और चन्द्रमा मे लगी कालिमा की तरह किस मानव-जीवन मे कोई कमी, कमजोरी या निर्बलता नही है ? यह न हो, तो सभी मुनि या देवता न बन जांय और यह पृथ्वी ही स्वर्ग या इन्द्रपुरी न बन जाय। सेठ साहब के जीवन की अन्य कमजोरियो की चर्चा करने वाले भी उनके नैतिक जीवन मे चरित्रसम्बन्धी किसी दोष की ओर अंगुली तक उठाने का साहस नही कर सकते। वे भी इसके लिये उनकी प्रशंसा ही करते सुने गये है।

चरित्र की इस पवित्रता और इच्छाशक्ति की इस दृढता से सेठ साहब के जीवन मे जो चमत्कार पैदा हुआ है, उसका वर्णन यथास्थान किया ही जायगा। फिर भी यहां उनके जीवन की एक विशेषता का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। सेठ साहब का मुख्य व्यापार कभी सट्टा ही था। वर्षों वे उसी मे रमे रहे है और अनेक बार उन्होने सट्टे के मैदान मे एकाकी रह कर भी सबका सफलता के साथ मुकाबिला किया है। यह आशका हर किसी को हो सकती है कि जो व्यक्ति सट्टे-फाटके मे इतना अधिक रमा रहता था, वह धर्म-ध्यान के लिये कैसे कुछ समय निकाल सकता होगा। सटोरियो की धर्म-ध्यान मे प्रवृत्ति होना यदि असम्भव नही, तो कठिन तो निश्चय ही है। एक बार सेठ साहब से भी यह प्रश्न पूछा गया। सेठ साहब ने सहज स्वभाव मे हंसते हुए

उत्तर दिया कि बहुत छोटी अवस्था मे ही मेरा यह स्वभाव रहा है कि जब भी कभी मैं किसी काम मे लग गया, तब उसी मे रम गया। प्रारम्भ से ही मुझे अपने पर और अपनी मानसिक वृत्तियो पर भी इतना अधिक नियन्त्रण रहा है कि मैने जब चाहा, तब अपने को किसी भी काम मे लगा लिया। जब मै राग रग तथा शृङ्गार मे लगता था, तब मुझे सट्टे-फाटके और धर्म-कर्म का कुछ भी ध्यान न रहता था और जब मैं सट्टे फाटके मे लगता था, तब मैं धर्म-ध्यान और राग-रग सभी कुछ भूल जाता था। इसी प्रकार जब मै धर्म ध्यान मे निमग्न होता था, तब मुझे सट्टे-फाटके या राग-रग का कुछ भी पता न रहता था। "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" सूत्र मे चित्त की वृत्तियों के जिस निरोध को योग कहा गया है, उसका खूब अच्छा अभ्यास जान पडता है कि सेठ साहब ने अपने व्यावहारिक जीवन मे किया है। तभी तो उन्होंने जिस ओर से एक बार मुंह मोड लिया, उस ओर फिर कभी देखा भी नहीं। नशे का परित्याग कर जीवन को सर्वथा नवीन क्रम के ढाचे मे ढालना साधारण काम नहीं था। सट्टा जब छोडा, तब उसके भाव तक मंगाने बद कर दिये गये। चित्त की वृत्तियो और इन्द्रियो की वासना पर इतना कठोर नियन्त्रण कर सकना साधारण तो क्या, असाधारण मानव के लिये भी इतना सुगम नही है। आत्म साधना की यही पहिली सीढी है, जिस पर सेठ साहब ने उस युवावस्था मे पूरी दृढता के साथ पग रखा था, जिसमें विचलित या पथभ्रष्ट होकर मानव शतमुखी पतन का शिकार प्राय हो जाता है। चरित्र की इस पवित्रता और इच्छाशक्ति की इस दृढता मे ही सेठ साहब के सफल और महान जीवन का रहस्य छिपा हुआ है। इस पवित्रता और दृढता का क्रमशः उत्तरोत्तर विकास निरन्तर ही होता गया है। इसीलिये सेठ साहब ने यह घोषणा अनेक बार की है कि "मै कुत्ते की मौत मरना नही चाहता।" सन् १९४२ में इन्दौर मे अष्टान्हिका पर्व के अवसर पर, जो प्रधानत आप की दीर्घायु कामना के लिये ही किया गया था, आपने यहा तक कहा था कि "मै अन्त समय पूरी सावधानी से बिताऊंगा और पण्डितमरण करूंगा।" मानो, सेठ साहब ने मृत्यु को भी अपने हुक्म मे बॉध लिया हो। ऐसे महान कायाकल्प का परिणाम मृत्यु जय-पद की प्राप्ति होना ही चाहिये।

अपनी इस साधना से अपने महान जीवन का स्वय सफल निर्माण कर चौथी ही पीढी मे अपने घर, नगर और देश की कीर्ति मे चार चाद लगा देने का अपूर्व यश सम्पादन करने वाले दानवीर, जैन सम्राट्, तीर्थ-भक्त शिरोमणि, रायबहादुर, राज्यभूषण, रावराजा श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्दजी साहब का जन्म सवत १९३१ की आषाढ शुक्ला प्रतिपदा को अत्यन्त शुभ घडी मे हुआ। फलित ज्योतिष के अनुसार इस शुभ घडी मे जन्म लेना जितना कल्याणकारी और मंगलकारी हो सकता है, उसकी सचाई का प्रतिपादक हमारे चरित्रनायक का महान सफल जीवन है। आपके जन्म के साथ ही घर की श्रीसमृद्धि अकल्पित और अप्रत्याशित ढंग से बढने लगी। सम्वत १९३७ मे छ वर्ष की छोटी-सी अबोध आयु मे ही आपका नाम दूकान के नाम मे सम्मिलित करके आपके पूज्य पिता सेठ सरूपचन्दजी ने अपने दोनो भाइयो सेठ ओंकारजी और सेठ तिलोकचन्दजी की सम्मति और सहयोग से तीनो भाइयो का कारबार सेठ तिलोकचन्दजी हुकमचन्दजी के नाम से शुरु कर दिया। शुभ नाम का प्रभाव जन्म से भी कई गुना अधिक हुआ और शुक्ल पक्ष मे होने वाले चाद की कलाओ के निरन्तर विकास की तरह दूकान का कारबार भी दिन दूना रात चौगुना बढता चला गया। प्रगति का यह वेग तब चरम सीमा पर पहुच गया, जब सेठ साहब ने सारा कारबार अपने हाथो मे संभाला। इन्दोर का जो यह फर्म सवत १९३७ मे १०-१२ लाख के आसामियो मे गिना जाता था, सम्वत् १९५६ मे उसकी प्रतिष्ठा २९-३० लाख पर पहुच गई थी। सम्वत् १९४८ मे तीनो भाइयो मे पहिला बटवारा होने पर तीनो की पाती में पाच-पाच लाख रुपया आया था, तो १९५७ में दूसरा बटवारा होने पर फिर दस-दस लाख तीनो के हिस्से मे आया और दस लाख की सेठ साहब की दूकान की साख के दस करोड की बनने मे अधिक समय नही लगा। तब

न मोटरें और न यातायात के कोई अन्य ही साधन थे। ऊटों पर जैसलमेर और मारवाड की मरुभूमि से उन्होंने निकलना शुरू किया। इसी के साथ लगे हुये शेखावाटी और बीकानेर में भी प्रवास का वह क्रम शुरू हुआ। निस्सन्देह, उनके पथ-प्रदर्शक वे राजपूत थे, जिन्होंने अर्थ के लिये नहीं, किन्तु राज्य के लिये और बाद में 'सेना' के लिये नैपाल, उडीसा, बर्मा तथा काबुल तक प्रवास किया था। इस प्रवास के साक्षी रूप चिन्ह आज भी यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलते हैं। जैन श्रमण संस्कृति का जिस समय यौवन काल था और जिस समय वह भारतीय संस्कृति के रूप में सारे देश में व्यापक थी, उस समय के उसके भग्नावशेष ही तो आज भी उसकी व्यापकता की सबल साक्षी दे रहे हैं। सुदूर दक्षिण के मैसूर राज्य में गोमटेश्वर, उडीसा में भुवनेश्वर में खण्डगिरी-उदयगिरि, बिहार में सम्मेदशिखर-पारसनाथ पर्वत, उत्तर प्रदेश में देवगढ-खजराहा, राजस्थान में आबू के देलवाडा के जगत्प्रसिद्ध मन्दिर, मध्यभारत में बडवानी तथा ग्वालियर के किले की ऐतिहासिक प्रतिमायें और सौराष्ट्र में गिरनारजी तथा शत्रुंजय पर्वत आदि उस सुवर्ण काल की छाया ही तो है, जब कि सारे देश को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने वाली श्रमण संस्कृति उस के कोने-कोने में छाई हुई थी। इसी प्रकार वैदिक काल, बौद्ध काल, मुगल काल, राजपूत काल तथा मराठा काल के भग्नावशेष भी उस काल के साक्षी रूप चिन्ह हैं। ऐसे ही चिन्ह कुछ दूसरे रूप में उन लोगों के भी उपलब्ध हैं, जिन्होंने अंग्रेजी काल से पहिले राजस्थान से प्रवास किया था। सारे देश में फैले हुए राजपूत राजपूताना से ही तो सर्वत्र गये हैं और वे यहाँ के सूर्यवंश और चन्द्रवंश की ही तो शाखा-उपशाखा है। मुर्शिदाबाद के जगत सेठ अमीचंद और उनके वंशधर भी तो मारवाड से ही प्रवास करके उधर जा बसे थे। निस्सन्देह, अंग्रेजी राज के अमन-चैन के दिनों में प्रवास की इस प्रवृत्ति को विशेष प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। राजस्थान में से होकर जाने वाली रेल की लाइनें तब नहीं बनी थीं। उधर अहमदाबाद की ओर इधर खण्डवा की रेलवे लाइन जब बन चुकी थी, तब इन्दौर प्रवासियों के लिये स्वतः ही एक बडा पडाव या केन्द्र बन गया। आने-जाने वालों के लिये विश्राम लेने का यह एक बडा और प्रमुख स्थान था, जो मध्य-प्रान्त, बरार, खानदेश, महाराष्ट्र, हैदराबाद, दक्षिण तथा बम्बई को भी राजस्थान से मिलाता था। उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल तथा उडीसा-आसाम तथा बर्मा की ओर जाने वाले भी प्राय इन्दौर होकर ही आया-जाया करते थे। इससे इन्दौर को जो महत्त्व मिला, उसीसे उसका आज का-सा निर्माण होकर उसको इतना अधिक गौरव भी प्राप्त हो गया। राजस्थानियों की व्यापार-व्यवसाय तथा उद्योग-धंधों में जो सहज प्रवृत्ति हुई, उससे देशवासी भलीभांति परिचित है। लेकिन, उनमें प्रवास करने, नयी बस्तियां बसाने और उनको समृद्ध बनाने की भी असाधारण प्रवृत्ति है। सारे देश को उनकी इस वृत्ति और प्रवृत्ति का समान रूप से असाधारण लाभ मिला है। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद तथा कानपुर आदि आधुनिक उद्योग-धंधों के केन्द्रों तथा व्यापार-व्यवसाय की मण्डियों को आबाद तथा समृद्ध करने का अधिकांश श्रेय राजस्थान के उन सुपूतों को ही है। देशव्यापी निर्माण के इस इतिहास का एक शानदार अध्याय इन्दौर में लिखा गया है।

चरित्रनायक के पूर्वज

इन्दौर के इस शानदार इतिहास का निर्माण करने में हमारे चरित्रनायक के पूर्वजों ने भी अपना हिस्सा पूरी शान के साथ अदा किया है। इस दृष्टि से अपने चरित्रनायक को तो हम वर्तमान इन्दौर ही नहीं, अपितु वर्तमान मालवा का भी निर्माता कह सकते हैं। उनके पूर्वज चार ही पीढी पहले यहां आये थे। सम्वत् १८४४ (सन् १७८७) में मारवाड के लाडनू प्रदेश के मेडसिल गांव से सेठ पूसाजी ने अपने दोनों पुत्रों श्री श्यामाजी तथा श्री कुशलाजी के साथ प्रवास किया और धनधान्य से पूरित मालवा के समृद्ध कस्बे में आकर वे बस गये। मारवाड में आपका प्रधानतः लेनदेन का ही काम था। इस वर्ष वर्षा न होने से यह काम भी चलना कठिन होगया।

भयंकर अकाल के कारण आपको भी प्रवास करना पड़ गया। लगभग पौने दो सौ वर्ष पहले के इन्दौर को आज की तुलना में कस्बा ही कहना चाहिये। होलकर राज्य की राजधानी तब महेश्वर थी। उस समय उस कस्बे की आबादी पांच-सात हजार से अधिक न होगी। ये बाजार, सड़कें, दूकानें और कोठियां तो होनी ही कहां थी ? जिसे आज की राजधानी में 'जूनी इन्दौर' कहा जाता है, तब उतना ही उसका आबाद हिस्सा था। होलकर राज्य के जन्म की कहानी भी साढ़े तीन सौ वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। मध्य भारत में होलकर, सिंधिया, धार, देवास आदि मराठा राज्यों का जन्म मराठों के उस उत्कर्ष काल में हुआ है, जब कि वे उत्तर में पानीपत तक जा पहुंचे थे। होलकर राज्य के संस्थापक वीर प्रतापी श्री मल्हारराव होलकर का जन्म सन् १६६४ में हुआ था। पुण्यभागा महारानी अहिल्याबाई ने अपने शासन काल (सन् १७५६–१७६०) में इस राज्य को सुख वैभव तथा ऐश्वर्य की चरम सीमा पर पहुंचा दिया था। इन्दौर के विकास का श्रीगणेश नगर के रूप में इन्हीं के काल में हुआ। सन् १७६६ के अगस्त मास में ७० वर्ष की आयु में महेश्वर में अहिल्या महारानी देवलोक को सिधार गईं। उनके स्वर्गवास के बाईस वर्ष बाद सम्वत १८७५ (सन् १८१८) में महेश्वर से राजधानी इन्दौर लाई गई और उसका भाग्य चमक उठा। सेठ पूसाजी को इन्दौर आये तब इकतालीस वर्ष हो चुके थ। कहना न होगा कि इन्दौर के भाग्यों के साथ सेठ पूसाजी का भाग्य भी चमक उठा। इसे भाग्य का खेल कहें या सेठ पूसाजी की दूर दृष्टि, जो भी हो, अत्यन्त शुभ घड़ी में वे इन्दौर आ बसे थे। इन्दौर की आबादी पांच गुना बढ़कर २०-२५ हजार पर पहुंच गयी थी। सर्राफे का काम अच्छे पैमाने पर शुरू हो गया था। इन्दौर का अपना हाली रुपया चलता था और सर्राफे में तोड़ा मोहर चलती थी। मुख्य दूकानें १५-२० से अधिक नहीं थीं। इन्दौर की विशेष प्रगति महाराज तुकोजीराव द्वितीय के शासनकाल में हुई। आबादी साढ़े पाच लाख पर पहुच गई। शिक्षा का विशेष रूप से विस्तार हुआ। उद्योग-धन्धों तथा व्यापार-व्यवसाय की भी उन्नति हुई। व्यापारियों को निजी कारबार के लिये भी आर्थिक सहायता दी जाती थी। किसी भी साहूकार का दिवाला पिटना राज्य की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझा जाता था। ग्यारह पंच नाम की व्यापारिक संस्था की स्थापना उन्हीं दिनों में हुई थी और उसको अनेक अधिकार भी प्रदान किये गये थे। १८६७ में महाराजा साहब की ही प्रेरणा से पन्द्रह लाख की पूंजी से स्टेट मिल चालू की गई थी। इसी का नाम इस समय "रायबहादुर मिल" है। १८६४ में राज्य में रेलवे का निर्माण आपकी प्रेरणा से किया गया। राज्य में पंचायतों का जाल बिछा कर मुखियाओं को न्याय करने के अधिकार दिये गये। इन्दौर नगर और राज्य की इस प्रगतिशील और उन्नतिशील पृष्ठभूमि में हमें सेठ पूसाजी के होनहार परिवार के महान उत्कर्ष की उज्ज्वल कहानी पढ़नी चाहिये।

पूसाजी का परिवार

सेठ पूसाजी का परिवार धन धान्य से ही नहीं, किन्तु पुत्र-कलत्र आदि से भी खूब समृद्ध और सम्पन्न हुआ। उनको किसी भी बात की कमी न रही। उनके पुत्र कुशलाजी के घर में गुलजीरा गम्भीरमलजी, नन्दरामजी, लछमीचन्दजी आदि ने जन्म लिया। दूसरे पुत्र श्यामाजी के परिवार में हमारे चरित्रनायक का जन्म हुआ। इसलिये उसी का परिचय यहां विशेष रूप से दिया जा रहा है। सेठ श्यामाजी के सेठ मानिकचन्दजी, सेठ लिखमीरामजी और सेठ नाथूरामजी नाम के तीन पुत्र हुये। इनमें पिछले दो के कोई सन्तान न हुई, किन्तु पहिले के पाच पुत्ररत्न हुये, जिनके नाम ये सेठ मगनीरामजी, सेठ सरूपचन्दजी, सेठ मन्नालालजी, सेठ ओंकारजी और सेठ तिलोकचन्दजी। दो लड़कियां भी उनके हुईं। तीसरे पुत्र मन्नालालजी का छोटी आयु में ही देहान्त हो गया। सेठ मगनीरामजी के कोई सन्तान न हुई। फिर भी उन्होंने साहूकारे का काम १८०७ में शुरू किया और उसके लिये पिताजी की अनुमति से "सेठ मानिकचन्द मगनीराम" नाम से दूकान कायम की।

उस समय मालवा में अफीम के व्यापार का जोर था। अन्य सारे व्यापार उसके सामने सर्वथा गौण माने जाते थे। हाजिर अफीम का सौदा होता था। किसान कच्ची अफीम लाते और व्यापारी उसको तयार करवा कर उनकी गोठिया बनवाते थे। मजदूरों को भी खूब काम मिल जाता था और वे कमाते भी खूब थे। गोठियों से ही पक्की पेटिया बांधी जाती थीं, पक्के पौने दो मन की एक पेटी होती थी। यहा से ये पेटियां बम्बई भेजी जाती थीं और बम्बई से इनको जहाजो पर लाद कर चीन भेजा जाता था। बम्बई और चीन मे भाव कई गुना अधिक होते थे। इसीलिये इन्दौर के व्यापारी सहज मे मालामाल होने लगे। चीन मे ही भारत की अफीम की अधिकतर खपत थी। चीनियो को अफीम का जो व्यसन था, वह जगत् प्रसिद्ध था। अग्रेजो पर यह दोषारोपण किया जाता था कि उन्होने अपने स्वार्थ के लिये चीन को अफीमची बनाया। सेठ माणिकचन्द मगनीराम की दूकान पर साहूकारे के साथ साथ अफीम का भी काम शुरू किया गया। व्यापार मे दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती चली गई। दूकान का नाम बाहर देसावरो मे भी मशहूर हो गया। उसकी साख जमती चली गई। सचाई का भी सिक्का जम गया। पुण्य का उदय हुआ। भाग्य तो अनुकूल था ही। तेरह वर्षों मे १६७० सम्वत् मे दूकान की गणना लखपतियों मे की जाने लगी। १६२२ मे व्यापार की इस चढती कला मे सेठ माणिकचन्दजी का स्वर्गवास हो गया और उनके सात वर्ष बाद सवत १६२६ में सेठ मगनीरामजी भी परलोक सिधार गये। दूकान का काम सेठ गंभीरमलजी पीपल्यावालो की पाती में व्यवस्थित रूप से चलता रहा। परन्तु दूकान का नाम बदल कर सेठ गम्भीरमल तिलोकचन्द कर दिया गया। तीनो भाई सेठ सरूपचन्दजी, सेठ ओंकारजी और सेठ तिलोकचन्दजी इसी दूकान पर काम करते रहे और व्यापार व्यवसाय का अनुभव प्राप्त करते हुये उसमे दक्ष होते रहे।

पिताजी

सेठ सरूपचन्दजी तीक्ष्ण बुद्धि वाले थे। व्यापार-व्यवसाय मे आपका दिमाग खूब चलता था। अपनी प्रखर बुद्धि के कारण व्यापार के रुख की परख करने में आप पारखी माने जाते थे। स्वभाव से बहुत अच्छे, उदार मना, धर्मात्मा, स्वाध्यायशील और नित्य नेम नियमपूर्वक निभाने वाले थे। स्वास्थ्य भी आपका बहुत अच्छा था। शरीर विशाल,उन्नत ललाट और मुख पर कान्ति चमकती थी। धर्म-पुण्य अपनी हैसियत के अनुसार करने मे कभी भी संकोच नहीं करते थे। धर्म मे अटल श्रद्धा थी। इसीलिये जात-विरादरी में सम्मान व प्रतिष्ठा भी खूब थी। तीनो भाइयो में आपस मे आदर्श प्रेम था। तीनों भाई एक दूसरे के परामर्श से सारा कामकाज सभालते थे। दोनो भाई सेठ सरूपचन्दजी का विशेष सम्मान करते थे। उनकी प्रखर बुद्धि व्यापार की खूब ही चमक उठी। परिश्रम, लगन, तत्परता और सत्य निष्ठा के कारण आपने सहसा ही अच्छा नाम पैदा कर लिया। पंचो मे आप मुखिया माने जाने लगे। उस समय जैन पचायत की चार तडें थीं और चारो ही अपने स्वाभिमान की रक्षा मे तत्पर थी।

हमारे चरित्रनायक को अपने पूज्य पिता के अनुरूप ही सब कुछ प्राप्त हुआ। अपितु सत पात्र को पा कर ये सब दिव्य गुण पूर्णता की चरम सीमा को पहुंच गये। वैसे ही विशाल तन, उदार मन और विपुल धन-सम्पदा की प्राप्ति पितृजन्य सस्कारो का ही तो परिणाम है। उन्नत भाल, कान्तिमय चेहरा, राजसी स्वरूप, धार्मिक वृत्ति, उदार चित्त, धर्म-पुण्य मे श्रद्धा और नित्य नेम वा अनुष्ठान तथा जात-विरादरी मे ही क्यो, राजपद एव जनपद मे भी एक सी प्रतिष्ठा के जो अकुर पितृजन्य संस्कारो के कारण हमारे चरित्र-नायक के सफल और महान जीवन मे प्रस्फुटित हुये, वे कालान्तर मे वट बीज से उगने वाले विशाल वृक्ष की तरह स्वत. ही सब ओर फैलते चले गये।

सेठ सरूपचन्दजी का शुभ विवाह सोनकच्छ मे सेठ सरूपचन्दजी शिवलालजी के यहां हुआ था।

धर्मपरायणा धर्मपत्नी का नाम था जबरीबाई। आप भी पति के ही समान नित्य नेम पालने वाली, धार्मिक वृत्ति की सुशीला महिला थी। उनका जोवन सादा और विचार ऊचे थे। उस समय की परिस्थिति मे परम सन्तोष मान कर वे घर का सारा कामकाज स्वयं ही करती थी। उसी मे वे महान आनन्द अनुभव करती थीं। वन को भी राजमहल बना देने वाली गृह कार्य मे दक्ष पतिपरायणा पत्नी को पाकर सेठ सरूपचन्दजी अपने को कृतार्थ मानते थे। पितृजन्य संस्कारों का अंकुर अनुरूप माता को पाकर वैसे ही खिल उठा, जैसे कि उर्वरा भूमि मे पडा हुआ बीज सहसा ही दृढ़ जड पकड लेता है और फल-फूल से लदे हुये पेड को जन्म देने का निमित्त बन जाता है। अनेक विद्वानो का यह अभिमत है कि माता के स्वभाव का परिणाम पुत्र मे प्रस्फुटित होता है। माता पुत्र को जैसा बना देती है, वैसा ही वह बन जाता है। बच्चे की पहिली शिक्षक माता की मानी गई है। उसकी कोख और गोद के ढांचो मे ही तो उसका चरित्र ढाला जाता है। इसीलिये पूर्ण पुरुष बनने के लिये माता, पिता और आचार्य के रूप मे तीन गुरु उसको मिलने ही चाहिये। वह बडा ही भाग्यवान होता है, जिसको ये तीन शिक्षक मिल जाते हैं। संसार के महान पराक्रमी नेपोलियन और इस युग के जगद्वन्द्य महात्मा गान्धी इसी कारण माता की प्रशंसा करते अघाते न थे। धर्मशास्त्रो मे सौ आचार्यो को एक पिता के समान और सौ पिताओ को एक माता के समान माना गया है। एक माता एक हजार आचार्यों के समान समझी जानी चाहिये। हमारे चरित्रनायक इस दृष्टि से विशेष भाग्यवान समझे जाने चाहिये। उनके महान और सफल जीवन का अकुर जिस माता की गोद में प्रस्फुटित हुआ, वह भी धन्य थी। माता ऐसे पुत्र को पाकर सचमुच ही धन्य हो जाती है, जो अकेला चन्द्रमा के समान सारी रजनी का अन्धकार हर लेता है। उस अंधकार को हरने मे सर्वदा असमर्थ तारात्रो के-से अनेक पुत्रों को जन्म देने पर भी उसको सन्तोष नही मिल सकता। सर सेठ साहब के चरित्र और जीवन को सहज मे ही चन्द्रमा से उपमा दी जा सकती है।

चरित्रनायक का जन्म

भाग्यशीला सौभाग्यशालिनी माता जबरीबाई दीतवारिया बाजार की हवेली मे संवत् १९३१ की आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा को चन्द्रसमान पुत्ररत्न को जन्म देकर धन्यभाग होगई। ईस्वी सन् के अनुसार १८७४ के जुलाई मास की १४ तारीख का मंगलवार का वह दिन है। तीनो भाइयो के बडे परिवार मे पहिले पुत्र की प्राप्ति पर जो अपार हर्ष मनाया गया, उसकी कल्पना सहज मे की जा सकती है। वह उनके लिये सचमुच ही अनमोल रत्न था। उसकी प्राप्ति पर घरकी निराशा का सारा अन्धकार दूर हो गया। माता-पिता की चिर अभिलाषा पूर्ण हुई। शुभ यश सम्पन्न पुत्र की प्राप्ति के लिये भगवत प्रीत्यर्थ किया जाने वाला दान पुण्य सफल हो गया। घर में ही नहीं, पास-पडौस के घरो मे भी आनन्द मनाया गया। चारो ओर वधाइयाँ बांटी गई। याचको को दान दिया गया। पूत के लक्षण पावने मे दीख पडने वाली कहावत उस पर चरितार्थ होती देखकर हर कोई उसकी सराहना करता। ज्योतिषियो ने भी बालक की जन्म कुण्डली देखकर अनुकूल ग्रहों के जबरदस्त योग बताये। चन्द्र और बुध को लाभ मे, शुक्र को पराक्रम में, शनि को पंचम भवन मे और गुरु को लग्न मे देख-कर वे भी चकित रह गये। उन्होने यह भविष्यवाणी की कि यह बालक बडा ही प्रतापी, पराक्रमी, यशस्वी, दानी, नीरोग, स्वस्थ, सबका हित चाहनेवाला और अटूट धन-वैभव का स्वामी होगा।
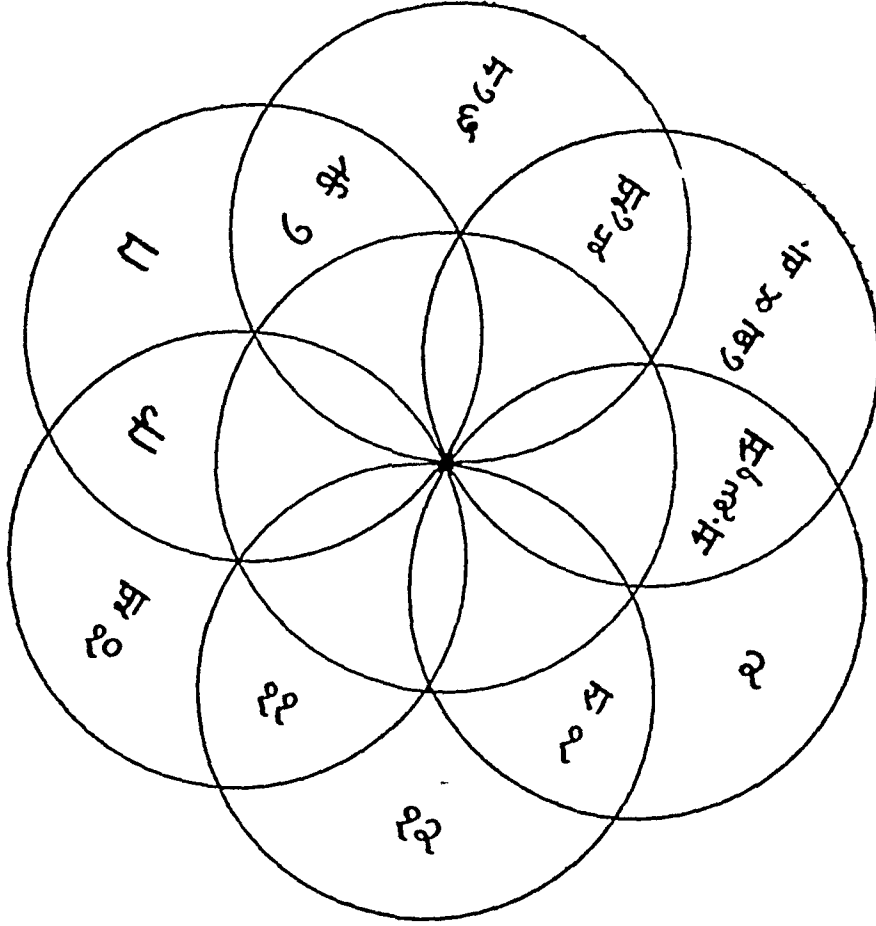
ज्योतिष विद्या के प्रकाण्ड पण्डित भारतविख्यात ज्योतिषी श्री सुधाकरजी की बनाई हुई यह जन्म कुण्डली है। अपना अभिमत प्रकट करते हुये उन्होंने लिखा था कि "स्वस्ति श्रीविक्रमसंवत्सरे चन्द्रलोकनवनिशाकरसमिते १९३१ शालिवाहनशाके रसनिधिनगभूमिते १७९६ द्वितीयाषाढ़शुक्लप्रतिपदिभौमे सौरसिद्धान्तानुसारेण तत्स्फुटघट्यादिमानम् २७।२८ पुष्यभे ६०।० हर्षणयोगे १७।१६ तात्कालिके ववनामकरणे मार्तण्डमण्डलार्वोदयाद्द्दिवसात्मकस्फुटेष्टघटिकासु साष्टत्रिंशद्विपलसप्तदशपलाधिकषोडशघटिकासु १६।१७।३८ इन्दौरनगरे (यत्र यमदिक्काः पलभागाः २२।४४ स्फुटपलभा ५।२ पलकर्ण. १३।१ मध्यरेखात. स्फुटा देशान्तरनाडिका॰ ०।३ पश्चिमः। वराणसीतो देशान्तरनाडिका॰ १।१२ पश्चिमः। चरखण्डानि ५१।४१।१७ मेषादिषण्णां राशिनामुदयमानानि २२७ मे०। २५८ वृ०। ३०६ मि०। ३४० क०। ३४० सिं०। ३२१ क०॥) श्रीमत्स्वरूपचन्द्रमहाशयानां पाणिगृहीती जायोभयकुलानन्ददायि पुत्ररत्नमजीजनज्जन्मदिने इन्दौरनगरे स्फुटं दिनमानम् ३२।५८। रात्रिमानम् २७।२ जन्मसमये सूर्यसिद्धान्तानुसारेण पुष्यभस्य व्यतीतं घटिकादि १७।२८ तस्य सर्वघटीमानं च ६३।४६ सौरा अयनभागाः २०।३७।३४ ग्रहलाघवीया अयनभागाश्च २२।२२।१५ घट्यादिपूर्व तत्कालमानम् ०।११।२२ वेधोपलब्धा अयनभागाः २१।५५।१६ स्पष्टलग्नम् ५।२७।१२।७ दशमलग्नम् २।२६।२७।१३ जन्मसमये शनेर्दशाया भोग्यमानम् १३।६।१६।२५।६ वर्ष्यादिकम् धान्यादशाया भोग्य मानम् वर्षादिकम् २।२।४।१०।१८।

अथ सौरोक्ता स्पष्टग्रहाः—

	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा	के
२	३	२	३	५	४	९	०	६
२९	६	२६	९	४	५	१८	११	११
२३	५९	३९	११	३२	५६	२५	३०	३०
३४	९	५४	३९	५०	२३	५४	२०	२०
५६	७५२	४०	३५	८	७०	४	३	३
५२	४४	००	४२ व	८	३०	५१ व	११	११

सेठ सरूपचन्दजी के घर मे जन्म लेने वाले भाग्यशाली बालक के पदार्पण के साथ ही घर का भाग्य भी पलट गया। उस समय उस घर की जो स्थिति हुई, उसको देखकर सहसा ही धन्यकुमार के पवित्र जीवन की पुण्यमयी कहानी याद आ जाती है। धन्यकुमार के जन्म से जैसे उसके पिता धनपाल का नाम सार्थक हो गया था, वैसे ही बालक हुकमचन्द के जन्म से सेठ सरूपचन्दजी का घराना वास्तव मे ही सेठों का घराना बन गया। धनपाल के सात पुत्र होने पर भी जब आठवें पुत्र धन्यकुमार का जन्म हुआ, तो माता-पिता के हर्ष का पारावार न रहा। उनको विशेष पुण्यदान करते देखकर उसके अन्य भाइयो को ईर्ष्या हुई। पर, वे यह देखकर स्तम्भित रह गये कि जहां भी कही बालक धन्यकुमार की नाल गाडने के लिये जमीन खोदी जाती थी, वहां ही धनदौलत का खजाना प्रगट हो जाता था। मानो, शिशु के पुण्य प्रताप से सारी ही भूमि धनमय हो गई थी। धनपाल ने उस धनसंपदा का मालिक राजा को मान कर वह खजाना उज्जैन लेजाकर उसको सौंप दिया। राजा ने उसको उनके पुत्र का पुण्य मान कर उनको ही लौटा दिया। भाइयो की ईर्ष्या शान्त न होकर और भी बढने लगी। भाइयो ने पिता से सबके पुण्य की परीक्षा करने के लिये आग्रह किया और कसौटी यह रखी गई कि अपना-अपना व्यापार करके कौन अधिक धन कमा कर लाता है। सबको सात-सात दीनारें दे दी गई। पर, धन्यकुमार व्यापार करना नही जानता था। पिता से व्यापार करने का तरीका पूछ कर वह भी क्रय-विक्रय करने में लग गया। सरलता, सत्यता, सादगी तथा निष्कपट व्यवहार ने भाग्य का साथ दिया। अन्त में जले हुये पलंग के पाये भी प्रभूत धनराशि देने वाले सिद्ध हुये। कहना न होगा कि सेठ सरूपचन्द के घर मे भी भाग्य और पुण्य का

उदय इसी प्रकार बालक हुकमचन्द के जन्म से हुआ। सारी उपमायें सर्वांश मे नहीं घटाई जाती। सेठ सरूपचन्द का घर कभी भी ईर्ष्या-द्वेष का अखाडा तो नही बना, परन्तु बालक हुकमचन्द ने बडे होकर जब व्यापार-व्यवसाय मे हाथ डाला, तब लक्ष्मी की चारो ही ओर से वर्षा होने लग गई। मानो धन्यकुमार का भाग्य तथा पुण्य लेकर ही बालक हुकमचन्द ने जन्म लिया।

बचपन और शिक्षा

शिक्षा का प्रसार और प्रबन्ध यद्यपि उस समय आधुनिक ढंग का नही था, फिर भी बालक हुकमचन्द की शिक्षा की चिन्ता तीनो ही भाइयो को थी। तीनो की अकेली सतान होने से सबकी आशाओं का वह केन्द्र था। इसी लिये उस होनहार बालक को सुशिक्षित बनाना सभी अपना कर्तव्य मानते थे। बालक तीव्र बुद्धि था। स्मरण शक्ति भी अच्छी थी। प्रतिभा भी प्रखर थी। दीतवारिया बाजार मे गुरु चिम्मनलालजी की एक पाठशाला थी। वे बच्चों को बडे प्यार से पढाते थे। इन्ही को बालक का पहिला गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बालक ने सहसा ही अक्षराभ्यास का पहिला पाठ पूरा कर लिया। गुरुजी बहुत प्रसन्न हुये। इस प्रारम्भिक शाला की पढाई पूरी करने के बाद बालक को गुरु मोहनलाल की पाठशाला मे भेजा गया। उस समय उसकी आयु थी केवल पाच वर्ष। गुरु मोहनलाल सात्विक वृत्ति के अधेड आयु के ब्राह्मण थे। आयु थी लगभग ४०-४५ वर्ष। बच्चो का अक्षराभ्यास करा कर व्यापारी हिसाब-किताब सिखा देना उनके विद्यालय का काम था। पचास के लगभग बालक उस समय उस विद्यालय मे पढते थे। उस समय की फीस आज उपहासास्पद प्रतीत होती है। एक से दस तक पहाडे याद करा देने की फीस थी केवल चार आना और एक सीधा। लगभग आठ दिन मे बालक उनको याद कर लेता था और फीस लाकर घर से दे दिया करता था। पूनम और अमावस को भी सीधा दिया जाता था। जीवन-निर्वाह के योग्य शिक्षा दी जाती थी और जीवन-निर्वाह के योग्य ही फीस ली जाती थी। कितना सरल ब्राह्मणोचित व्यवहार था ? आज सब उलटा हो व्यवहार है। न तो शिक्षा जीवनोपयोगी है और न फीस व खर्च की ही कोई सीमा है। आधुनिक शिक्षा का जीवन के साथ प्रायः कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। पहिले चौदह मास मे बालक दूकानदारी सँभालने के योग्य बना दिया जाता था। परन्तु अब चौदह वर्ष मे भी वह क्या कुछ सीख सकता है ? हमारे चरित्रनायक ने एक बार ठीक ही कहा था कि "एक ओर बी०ए० एम०ए० शिक्षितों की पंक्ति खडी कर दो और उन सबको मिला कर एक हुकमचन्द तो बना दो।" आज की शिक्षा हुकमचन्द बनाने वाली है ही नही। न वह सर्वसुलभ है और न सर्वोपयोगी ही। अत्यन्त प्राचीन ढंग पर बालक हुकमचन्द की पढाई गुरु मोहनलालजी के यहां होती रही। खाताबही लिखना और व्यावहारिक हिसाब-किताब मे कुशलता सम्पादन कर के मानो हुकमचन्द गुरुजी की चटशाला के नातक बन गये। उस समय यही उच्च शिक्षा उपलब्ध थी और उस समय की दुकानदारी के लिये इससे अधिक की आवश्यकता अनुभव भी नही की जाती थी।

स्नातकोत्तर शिक्षा उस समय की थी महाजनी का अभ्यास, जो कि दूकान मे ही कराया जाने लगा। बुद्धि आपकी अत्यन्त कुशाग्र थी। किसी भी बात को बात की बात मे सीख लेना आपके लिये अत्यन्त आसान था। आपके सहपाठी स्वर्गीय हीरालालजी कहा करते थे कि सेठ साहब पढने मे बहुत ही तेज थे और सबसे पहिले पहाडा याद करके गुरुजी को सुना दिया करते थे। अन्य लडको को बहुत समय लगता था। इसीलिये जहा अन्य बालको को फटकार पडती थी, गुरुजी का स्वभाविक वात्सल्य आपको सहज मे ही प्राप्त हो जाता था। होनहार बालक ने कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभासम्पन्न होने से व्यावहारिक के साथ साथ व्यापारिक, सामाजिक तथा धार्मिक शिक्षा भी अनायास ही प्राप्त कर ली।

तीनो भाइयो ने १६३७ मे "श्री त्रिलोकचन्द हुकमचन्द" के नाम से अपनी स्वतन्त्र दूकान शुरु की। छः ही वर्ष की छोटी सी आयु मे घर की अपनी दूकान के साथ सर सेठ साहब के भाग्यशाली नाम का सुयोग होने का जो चमत्कार प्रगट हुआ, उसका वर्णन यथास्थान किया जायगा। यहां इतना ही दिखाना अभीष्ट है कि शिक्षा-काल मे ही इस प्रकार सेठ साहब का नाम दूकान के नाम मे जुड़ जाने से बचपन मे ही व्यापार-व्यवसाय के सम्बन्ध मे जो संस्कार बालक के हृदय मे पैदा हुये, वे ही कालान्तर में फल-फूल कर कितने उपयोगी और आकर्षक बन गये? उसकी चर्चा करने से पहिले गृहस्थ-जीवन का अवलोकन कर लेना उचित होगा।

: २ :

गृहस्थ जीवन

सेठ पूसाजी की चौथी पीडी मे हमारे चरित्रनायक सर सेठ हुकमचन्दजी साहब का जन्म हुआ। तीनों भाइयो मे अकेले पुत्र थे। पुत्ररत्न की प्राप्ति को अनन्त पुण्यो का फल माना जाता है और जीवन की सारी सार्थकता का उसको निमित्त भी समझा जाता है। कुल परम्परा की रक्षा करने वाला होने से पुत्र की महिमा और भी अधिक है। फिर, जो पुत्र तीन घरो मे अकेला हो, उसकी महिमा कम से कम तीन गुनी तो बढ ही जानी चाहिये थी। इस लाड-प्यार मे निश्चिन्त जीवन बिताने वाले युवा हुकमचन्द पर ११ वर्ष की ही आयु मे सम्वत् १९५० मे घोर वज्रपात हुआ, जब आपके पूज्य पिता सेठ सरूपचन्दजी इस असार संसार को छोड कर चल बसे। अब घर का सारा दायित्व, दूकान का सारा भार, कारबार की सारी जिम्मेवारी, जात-बिरादरी का सारा सामाजिक व्यवहार आपके कन्धे पर आ पडा। सम्भवतः दैव को यही स्वीकार था कि इस अधपकी युवावस्था मे ही आप पर यह सारा दायित्व आ पडे, जिसमे कि अनुभव और अध्यवसाय से परिपक्व होकर सेठ साहब दिग्दिगन्तव्यापी कीर्ति को पाकर उसको संभालने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकें। यदि कहीं महासागर अपनी महानता को अपने मे सभाल न सके, यदि कही हिमालय अपनी गगनचुम्बी चोटियो का असह्य भार संभालने मे असमर्थ हो जाय और यह चारो ओर फैला हुआ दिव्य आकाश भी कही विचलित हो जाय, तो सृष्टि में सहसा ही प्रलय मचा देने वाला प्रचण्ड भूकम्प आजाय। इसी प्रकार मानव की यह प्रकृति भी यदि अपनी महानता को अपने मे समा न सके तो उसका निश्चय ही पतन हो जाय। लेकिन, अनुभव और अध्यवसाय से मानव मे जो क्षमता पैदा होती है, वह इस पतन से उसकी निश्चय ही रक्षा करती है। अपरिपक्व युवावस्था में पिता के स्नेहमय संरक्षण से वंचित करके दैव मानो सेठ साहब मे स्वावलम्बन, आत्मनिर्भरता और आत्म पौरुष की वह अदम्य भावना भरना चाहता था, जिसने उनके जीवन मे अद्भुत कमाल कर दिखाया। पूज्य पिता का यह असह्य वियोग भी प्रकारान्तर से आपके लिये वरदान ही सिद्ध हुआ। जीवन-निर्माण की इस कठोर प्रक्रिया से पड कर आप तपे हुये सोने की तरह निखर गये। इस परिपक्व पृष्ठभूमि के साथ जब आप कार्यक्षेत्र मे उतरे, तब जिधर भी हाथ डाला, उधर ही सफलता मानो बरमाला लिये सामने उपस्थित दीख पडी।

अपने समस्त कर्तव्यो का पालन आपने बडे धैर्य, तत्परता और साहस के साथ किया। पिताजी के वियोग की असह्य वेदना धैर्य के साथ सहन की। माता की सेवा का अक्षय पुण्य लाभ सम्पादन किया। व्यापार-व्यवसाय मे आशातीत उन्नति की। जाति-बिरादरी मे प्रथम श्रेणी का सम्मान प्राप्त किया। राज-दरबार मे भी शान के साथ अलभ्य प्रतिष्ठा लाभ की। नेपोलियन के शब्दकोष मे जैसे 'असम्भव' शब्द नहीं था, वैसे ही आपके शब्दकोष मे 'असफलता' नाम का शब्द न ही रहा।

सेठ देवकुमारसिहजी

सेठ सरूपचन्दजी, सेठ ओंकारजी और सेठ तिलोकचन्दजी तीन भाई सम्मिलित व्यापार तथा कारबार करते

सौभाग्यवती दानशीला सेठानी कंचनबाईजी धर्मपत्नी सर सेठ हुकमचंदजी साहब।

थे। संयुक्त परिवार 'हावल्या कावल्या' के नाम से पुकारा जाने लगा। तीनों भाइयों में सेठ सरूपचन्दके सिवाय दोनों भाइयों के कोई सन्तान न थी। सेठ ने ओंकारजी ने सम्वत् १६५० (सन् १८६३) मे मारवाड के जेतारण परगने से सेठ कस्तूरचन्दजी काशलीवाल को गोद लिया। आपका जन्म मारवाड में कालू नामक गांव मे सम्वत् १६४१ (सन् १८८४) मे हुआ था। आपके पिता हंसराजजी साधारण स्थिति के व्यक्ति थे और माता नेत्र-विहीना थीं। आपको गोद लाने के सात वर्ष वाद सम्वत् १६५७ (सन् १६००) में सेठ ओंकारजी का स्वर्गवास हो गया। सेठ कस्तूरचन्दजी ने सारा काम पूरी तत्परता के साथ संभाल लिया। साहूकारा और अफीम दो ही काम मुख्य थे। सन् १६११ तक इसी प्रकार नफे-नुक्सान मे काम चलता रहा। सम्वत् १६७० (सन् १६१३) में बम्बई की श्री तिलोकचन्द हुकमचन्द नाम की दूकान उठाकर तीनो भाइयो की दूकान तीनो के नाम से अलग-अलग कर दी गई। सम्वत् १६८७ मे सेठ कस्तूरचन्दजी भी निःसन्तान ही स्वर्ग सिधार गये। तीन विवाह करने पर भी उनको सन्तान-सुख का लाभ न मिल सका। आपके भी दत्तक पुत्र लाने का निश्चय किया गया और कुचामन से श्री देवकुमारसिंहजी को गोद लाया गया। आप अपने पिता श्री धन्नालालजी की सबसे छोटी सन्तान हैं। आपकी शिक्षा कुचामन और कलकत्ता मे हुई थी। चौदह वर्ष की आयु मे दत्तक आने पर आप तिलोकचन्द जैन हाईस्कूल मे भरती हुये। मैट्रिक पास करके होलकर कालेज मे उच्च शिक्षा प्राप्त की और एम० ए० एल० एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभा सम्पन्न होने से आप सदा ही पहिली श्रेणी मे उत्तीर्ण होते और विशेष पुरस्कार प्राप्त करते थे। इन्दौर मे ही सम्वत् १६६३ मे सेठ नाथूराम चुन्नीलालजी के यहां सेठ चुन्नीलाल जी की कन्या सौभाग्यवती कुसुमप्रभादेवीजी के साथ आपका शुभ विवाह हुआ। दो सन्तान हैं एक पुत्र और एक पुत्री। आपकी नाबालिगी की स्थिति मे घर और दूकान का सारा काम सर सेठ साहब ने अपने काम की तरह ही संभाला और कभी नुकसान नहीं होने दिया।

सेठ हीरालालजी काशलीवाल

सेठ ओंकारजी के समान सेठ तिलोकचन्दजी के घर मे भी कोई सन्तान नहीं थी। सम्वत १६४८में आपके यहां भी मारवाड गंगराने से सेठ कल्याणमलजी को गोद लाया गया। आपने सेठ तिलोकचन्द कल्याणमल के नाम से काम शुरू किया। आप सार्वजनिक भावना वाले सेठ थे। आपने कल्याण औषधालय और कन्या पाठशाला भी कायम की। बाद मे कल्याणमल मिल भी स्थापित की। सम्वत् १६८३ मे आपको रुधिर की कमी की शिकायत हुई। सर्वोत्तम औषधोपचार किया गया। बम्बई से भी डाक्टर बुलाये गये। फिर भी वर्ष के अन्त में आपका स्वर्गवास होगया।

सेठ त्रिलोकचन्दजी और सेठ कल्याणमलजी की विधवा पत्नियो ने बडे ही धैर्य और शान्ति के साथ वैधव्य का सन्ताप सहन किया। सहज धार्मिक वृत्ति के कारण वे विदुषी नारियों के सत्संग, धर्म ध्यान, स्वाध्याय और दान-पुण्य मे समय बिताने लगीं। श्रीमती भूरीबाईजी उदासीना की संगति का आपको विशेष लाभ मिला। सेठ साहब को भी दोनों भाइयो के स्वर्गवास की कुछ कम चोट न लगी थी। फैले हुये कारबार को संभालने और परिवार की परम्परा को आगे चलाने के लिये दत्तक लाने का निश्चय किया गया। योग्य दत्तक लाने का भार सेठ साहब पर ही पडा। सब परिस्थितियो पर सम्यक् प्रकार से विचार करके कुल की मर्यादा के सर्वथा अनुकूल समझ कर सेठ साहब ने अपनी गोद लाये हुये भैयासाहब कुंवर हीरालालजी साहब काशलीवाल को सम्वत् १८६४ मे स्वर्गीय भाई कल्याणमलजी के गोद दे दिया। भैय्या साहब को ४-४॥ वर्ष की ही आयु मे सम्वत १६५८ में अजमेर से सेठ साहब अपने लिये गोद लाये थे। आपके पूज्य पिताजी का नाम परमेष्ठीदासजी था। भैय्या साहब की शिक्षा-दीक्षा सेठ साहब की देख-रेख में ही हुई। आपको सब प्रकार से दक्ष, चतुर और

होशियार बनाने का विशेष प्रयत्न किया गया था। सत्रह वर्ष की आयु मे ही आपने अपना सारा कारबार संभालना-शुरू कर दिया था। इसी आयु मे आपका शुभ विवाह इन्दौर मे ही फर्म सेठ परसराम दुलीचन्द के मालिक सेठ फत्तेलालजी की सुपुत्री श्रीमती विनोदकुमारीबाई के साथ हुआ। विवाह इतने समारोह और धूमधाम के साथ हुआ कि सेठ साहब ने उसमे सवा लाख रुपया खर्च किया।

सेठ हीरालालजी काशलीवाल ने स्वतन्त्र रूप से अपने व्यक्तित्व का जो विकास किया है, सार्वजनिक जीवन मे अपना जो स्थान बनाया है और चहुँमुखी प्रवृत्तियो के कारण जनता तथा शासन दोनो मे जो सम्मान प्राप्त किया है, उससे आपकी गणना भी इन्दौर तथा मध्यभारत के भी पहिली श्रेणी के लोगो मे की जाती है। इन्दौर राज्य, भारत सरकार और सामाजिक संस्थाओं ने भी आपको अनेक सम्मानास्पद पदवियो से विभूषित किया है। रायबहादुर, राज्यभूषण, दानवीर, जैनरत्न आदि पदवियो से आपका नाम सुशोभित है। व्यापारिक क्षेत्र मे भी आपने अपने ढंग से विशेष काम किया है। प्रगट मे इन्दौर राज्य प्रजामण्डल की रीति-नीति से सहमत न होते हुए भी उसकी सार्वजनिक प्रवृत्तियो और लोकोपकारी कार्यो मे आपने उदारतापूर्वक सदा ही सहयोग दिया है। वही प्रजामण्डल इस समय स्थानीय कांग्रेस मे परिणत कर दिया गया है। आप पहिले इन्दौर की धारासभा के सदस्य थे और अब मध्यभारत की धारासभा के भी सदस्य हैं। अनेक प्रान्तीय तथा अखिल भारतीय सामाजिक एव व्यापारिक संस्थाओ का आपने सफलता पूर्वक सभापतित्व किया है। इन्दौर के विशाल श्री गान्धी भवन के निर्माण मे, जो कि इस समय इन्दौर नगर मे राष्ट्रपिता का अनन्य स्मारक है, आपका मुख्य हाथ रहा है। आप उसके ट्रस्टी भी हैं।

रायबहादुर राज्यभूषण सेठ त्रिलोकचन्द कल्यालमल फर्म तथा मिल का कार्य सफलता पूर्वक संचालन करते हुए आपने समाज-सेवा का भी सराहनीय काम किया है। पलासिया मे एक लाख की कीमत का नरसिह धाम बनवाया है। वहां धर्मशाला भी बनवाई गई है। रायबहादुर फर्नीचर मार्ट, टेट फैक्टरी और नरेन्द्र फैक्टरी के नाम से भी आपने अपना कारबार बढाया है। आपके कुंवर नरेन्द्रकुमार और राजेन्द्रकुमार दो पुत्र हैं। कन्या का नाम है श्रीमती कमलकुमारीजी। बडे पुत्र नरेन्द्रकुमारजी का शुभ विवाह कलकत्ता मे श्री चैनसुखजी के यहां और कन्या का परतवाडा में श्री चम्पालालजी हीरालालजी के यहा हुआ है। दो पौत्ररत्न श्री नरेन्द्रकुमारजी से और एक श्रीमती कमलकुमारीजी से है। इस प्रकार आपको धन्यधान्य व पुत्रपौत्र आदि से सम्पन्न वह वैभव प्राप्त हुआ, जो हर किसी के लिये सुलभ नही है।

सेठ साहब का प्रथम विवाह

हमारे चरित्रनायक सेठ साहब को भी पुत्र-पौत्र आदि से सब सांसारिक दृष्टियो से सम्पन्न, विशाल और समृद्ध परिवार का स्वामी होने का पुण्य प्राप्त है। जिस देश मे आयु की औसत इक्कीस-बाईस वर्ष भी कठिनाई से है, जिसमे लाखो बालक आँख खोलते ही उसको सदा के लिये मूंद लेते हैं और जिसमे अच्छे अच्छे सम्पन्न घर भी पुत्र-दर्शन की लालसा मे तरसते रह जाते हैं, उसमे सेठ साहब के-से विशाल परिवार का फलना-फूलना किसी संचित पुण्य का ही परिणाम है। सेठ साहब का प्रथम शुभ विवाह सम्वत् १९४३ के वैशाख मास मे मंदसौर के श्री भोपजी शंभुरामजी के पुराने और धनाढ्य घराने मे सेठ जोधराज की सुपुत्री सौभाग्यवती कंचनबाई के साथ हुआ। इस अवसर पर पूज्य पिता सरूपचन्दजी साहब ने दिल खोलकर उत्सव मनाया। उनके हर्षातिरेक की कल्पना सहज मे की जा सकती है। विवाह के बारह वर्ष बाद सम्वत् १९५५ मे सुपुत्री रतनबाईजी का जन्म हुआ। परन्तु कन्यारत्न के जन्म देने के सात दिन बाद ही सेठानीजी का स्वर्गवास हो गया। निस्सन्देह,यह बहुत बडी चोट थी। उसको धैर्य व सन्तोष के साथ सहन किया गया। मातेश्वरी जबरीबाईजी ने कन्या का लालन-पालन किया और उसमे अच्छे सस्कारो

का बीजारोपण किया। इसी कन्यारत्न का शुभ विवाह उज्जैन के मिलमालिक, वाणिज्यभूषण, साहित्य मनीषि, विद्याविनोदी, रायबहादुर सेठ लालचन्दजी सेठी के साथ सम्पन्न हुआ। झालरापाटन मे आपका घराना सेठ विनोदीराम बालचन्द अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त है। जात-बिरादरी और राजदरबार दोनो मे उसका समानरूप से सम्मान है। आप दयालु, सहृदय, मिलनसार, उदार, गुणग्राही और गुणी सज्जन हैं, जो व्यापार व्यवसाय मे निपुण और विद्याव्यसनी भी हैं। झालावाड और ग्वालियर दोनो ही राज्यो मे आपकी विशेष प्रतिष्ठा है। विवाह बहुत धूम-धाम से किया गया। सेठ साहब ने एक लाख रुपया खर्च किया। बरात भी खूब धूमधाम से आई। दो बडे घरानो के सम्मिलन से संगम का-सा दृश्य उपस्थित हो गया। सेठ लालचन्दजी साहब के मिल-व्यवसाय को समुन्नत करने मे सेठ साहब ने जो योग दिया, उसकी चर्चा यथास्थान की जायगी। यहां इतना ही लिखना उपयुक्त होगा कि सौभाग्यवती रत्नप्रभाजी के पतिपरायणा धर्मपत्नी के अनुरूप अपने पतिधर्म के यथावत पालन करने से सेठीजी का गृहस्थ-जीवन बडा ही सुखी और सम्पन्न बन गया। पतिदेव की सामयिक बीमारी के दिनो मे आप उनकी सेवा-सुश्रुषा मे दिन रात एक कर देती थी और अपने सुख-विश्राम का यत्किंचित् भी ध्यान न रखती थी। अपने सुख-स्वास्थ्य, शरीरारोग्य, भोजन-छादन तथा सुन्दर वस्त्राभूषण तक का आप पतिदेव के स्वास्थ्य के लिये परित्याग कर देती थीं। इसी प्रकार अपनी सासुजी की सेवा मे भी आप निरन्तर तत्पर रहती थी। उनका भी आपने सहज ही स्नेह सम्पादन कर लिया था। सम्वत् १६८० मे जब वे बहुत बीमार हुईं, तब उनकी सेवा-सुश्रूषा करने मे आपने कुछ भी उठा न रखा। एक लाख का दान उन्होंने अन्तिम समय मे किया और स्वर्ग सिधार गईं। आपके पहिली सन्तान पुत्ररत्न के रूप मे सम्वत् १६७० मे बाबू विमलचन्दजी सेठी हुये, जिनका शुभ विवाह सम्वत् १६८३ मे अजमेर के ख्यातनामा सेठ सर भागचन्दजी सोनी की बहिन श्री सौभाग्यवती श्रीमती तेजकुमारीबाई के साथ हुआ। १८ वर्ष मे ही विमल बाबू का स्वर्गवास हो गया। आपके दो पुत्र है—कुंवर भूपेन्द्रकुमारजी सेठी—जन्म सम्वत् १६८६ और बाबू तेजकुमारजी सेठी—जन्म सम्वत् १६८८।

सौभाग्यवती रत्नप्रभादेवीजी की दूसरी सन्तान कन्या राजकुमारीबाई का जन्म १६७२ मे हुआ। आपका शुभ विवाह जयपुर के सुप्रसिद्ध जौहरी स्वर्गीय बनजीलालजी ठोलया के यहां कुंवर रूपचन्दजी के साथ हुआ, जिनसे एक पुत्र हुआ। कुंवर रूपचन्दजी का स्वर्गवास भी छोटी ही अवस्था मे उज्जैन में हो गया।

तीसरी सन्तान मनोराजाबाई का जन्म सम्वत १६७४ मे हुआ। इनका शुभ विवाह हाट पीपल्या के सेठ तिलोकचन्द पन्नालाल के यहाँ सेठ तिलोकचन्दजी के सुपुत्र बाबू कस्तूरचन्दजी टोग्या के साथ हुआ। इनके दो पुत्र और एक कन्या है।

सर सेठ साहब इन सभी विवाहो मे ऊँचे दरजे के मौसाले मायरे लेकर गये थे। दिलखोलकर आपने खर्च किया। झालरापाटन-वालो की शान मे दो चांद और लगा दिये। जाति-बिरादरी के अवसरो पर ऊँचे से ऊँचा व्यवहार करना आपका स्वभाव-सा हो गया है, जो कि आपकी महानता के अनुरूप ही होता है। इससे जाति-पंचायत मे आपका गौरव खूब बढ गया है।

दूसरा विवाह

सर सेठ साहब का दूसरा शुभ विवाह सम्वत् १६५६ मे चित्तौडगढ के सेठ समर्थलालजी साहब की सुपुत्री के साथ हुआ। इनका साथ छः ही वर्ष का रह सका। १६६२ मे इनको एकाएक पेट की बीमारी हुई। सब प्रकार का औषधोपचार किया गया। बीमारी ने पीछा न छोडा। आपके कोई सन्तान न हुई और आप स्वर्ग सिधार गईं।

तीसरा विवाह

आयु केवल ३२ वर्ष की थी और कोई पुत्र भी न था। इसलिये आपका तीसरा विवाह सम्वत १६६३

मे वैशाख मास मे भोपाल के सेठ फौजमल साहब की सुपुत्री के साथ किया गया। आपका नाम भी विवाह के बाद श्रीमती कंचनबाई ही रखा गया। आपका पदार्पण बहुत ही शुभ हुआ। मानो, आप लक्ष्मी को ही साथ लेकर आई थी। विवाह के समय आपकी आयु केवल तेरह वर्ष थी। परन्तु थीं आप सद्भाग्यशीला, सद्गुणा और लक्ष्मी रूपा। आपकी कुण्डली शुभ लक्षणों से युक्त थी।
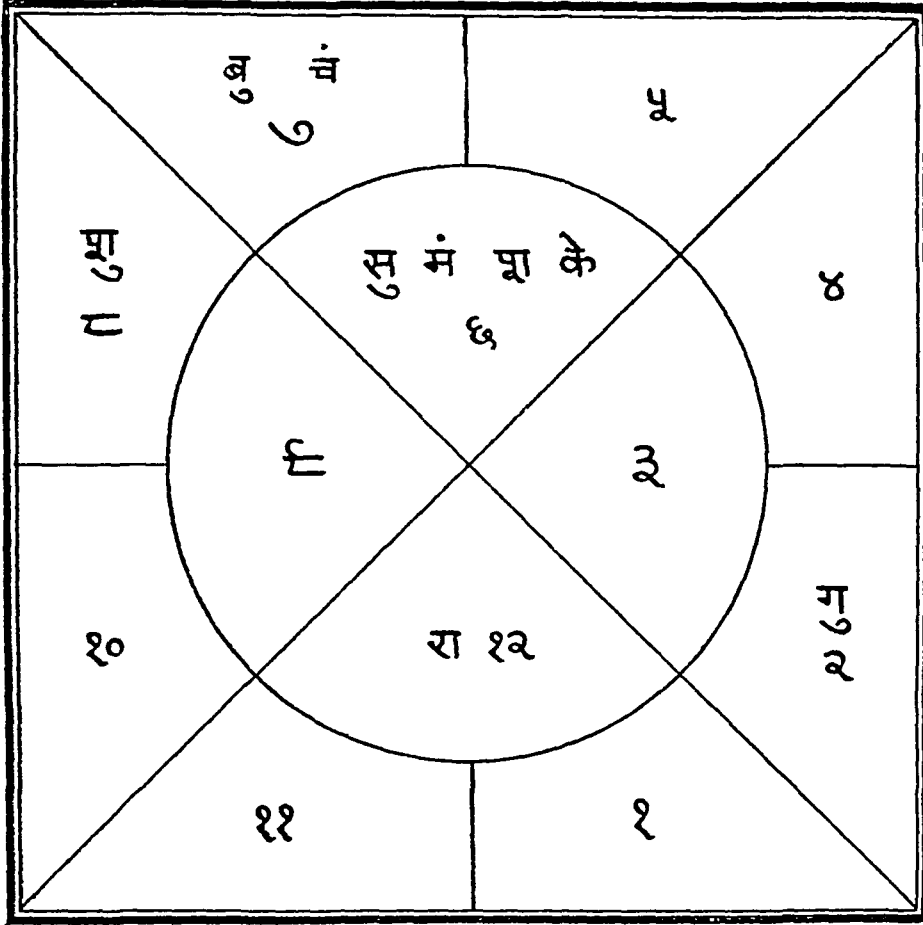
पतिपरायणा होने मे पति का स्नेह और सम्मान आपने सहज मे ही सम्पादन कर लिया। पठन-पाठन एवं स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी आपमे जागृत हुई और आपने प्राचीन साहित्य में से अनेक पतिपरायणा सन्नारियो के धार्मिक चरित्र पढ डाले। इससे आपका झुकाव धर्म-कर्म की ओर भी हुआ। राजुलदेवी, सीता, चेलनादेवी, मैनासुन्दरी, द्रौपदी, अजनासुन्दरी, मनोरमादेवी तथा रयनमजूषा आदि के चरित्रो का आप पर अच्छा प्रभाव पडा। यही कारण है कि आपके जीवन तथा चरित्र का विकास भी सेठ साहब के महान जीवन के अनुरूप ही हुआ और आपके हाथो से भी धर्म, समाज, देश और सबसे बढकर नारी जाति की महान सेवा हुई। सेठ साहब के साथ तो आपने यश का सम्पादन तो करना ही था, किन्तु योग्य पति की सुयोग्य पत्नी बनकर आपने स्वत भी उसका सम्पादन कर उसको कई गुना बढा दिया। सेठ साहब भी ऐसी पत्नी पाकर धन्य हो गये। यह ठीक ही कहा गया है कि—

"अनुकूला विमलागी कुलजा कुशला सुशीलसपन्नाम्।
पचसकारा भार्या पुरुषः पुण्योदयाल्लभते ॥"

निस्सन्देह पुण्योदय से ही अपने स्वभाव के अनुकूल, कोमल अङ्ग की अर्थात् पवित्र चरित्र वाली, श्रेष्ठ कुल की, सब गृहस्थ कार्य मे कुशल किंवा दक्ष और सुशील स्वभाव से सम्पन्न पत्नी पुरुष को पुण्योदय से ही प्राप्त होती है। अच्छा पति मिलना यदि पत्नी का सौभाग्य है, तो शास्त्रकार अच्छी पत्नी का मिलना पुरुष का भी सौभाग्य मानते हैं। विशाल घर को सारी व्यवस्था बडी उत्तमता के साथ सेठानीजी ने संभाल ली और घर-गृहस्थी की समस्त चिन्ताओं से सेठ साहब को सर्वथा मुक्त कर दिया। भगवत-पूजा, स्वाध्याय, पठन-पाठन आदि का नित्य नियम भी यथावत् शुरू हो गया। अनेक गहन धार्मिक ग्रन्थो का भी आपने अभ्यास कर लिया। पराई पीड को जानने और उसको हरने के लिये यथासाध्य सहायता करने के लिये आपने ऐसी सहृदयता कुछ स्वभाव से ही प्राप्त की है कि किसी का भी दु:ख देखकर आप सहसा ही वेह्वल हो जाती हैं। स्त्री-पुरुष-बालक-वृद्ध हर एक के कष्ट मे सहायक होने मे आपको गर्व और सन्तोष अनुभव होता है। यह नहीं कि आपकी सेवा मे उपस्थित होने वाले की ही आप सहायता करें;—दूर शहर से किसी के कष्ट का कोई समाचार आजाय, तो उसकी सहायता करने में भी पीछे नहीं रहती। कानोंकान किसी को पता भी नहीं चलता और दुखिया का दुःख दूर हो जाता है। इसीलिये किसी को भी आपकी सहायता के अंगीकार करने मे सकोच नहीं होता। सर सेठ साहब ने नारी जाति की सेवा के लिये जो सार्वजनिक कार्य किये हैं, उनके लिये उनके हृदय मे सत्प्रेरणा और सत्प्रवृत्ति पैदा करने का श्रेय भी सेठानीजी साहिबा को है। पालिताना मे सेठ साहब ने जब चार लाख के दान की घोषणा की, तो सेठानी साहिबा के प्रस्ताव पर उसी समय एक लाख रुपया स्त्री-शिक्षा के लिये नियत कर दिया गया। इसी एक लाख रुपये से इन्दौर मे सम्वत् १९७२ मे श्री कंचनबाई दिगम्बर जैन श्राविकाश्रम की स्थापना की गई। असहाय दिगम्बर जैन विधवाओ की सहायता के लिये सम्वत् १९७५ मे एक फण्ड कायम किया गया, जिसके आधीन "श्री कंचनबाई दिगम्बर जैन आश्रम" की स्थापना की गई। इसकी स्थापना का इतिहास बड़ा ही मनोरंजक है। बाद मे सम्वत् १९८१ मे "दानशीला कंचनबाई प्रसूतिगृह और शिशु स्वास्थ्य रक्षा संस्था" की भी स्थापना हुई। पारमार्थिक संस्थाओ मे इन संस्थाओं की चर्चा भी कुछ विस्तार के साथ की जायगी। यहां तो सेठानीजी के उदार, सहृदय, सुशील और लोकोपकारी स्वभाव का परिचय देने के लिये केवल प्रसंगवश उनका उल्लेख कर दिया गया है। आपके इस स्वभाव पर मुग्ध होकर इन्दौर के महिला समाज ने आपको 'दानशीला' की उपाधि से विभूषित किया और सर सेठ साहब की हरेक जयन्ती के अवसर पर आपको भी विशेष मानपत्र देकर सम्मानित किया था।

चौथा विवाह

ऐसा परम सौभाग्य और महान पुण्योदय होने पर भी चन्द्रमा की कालिमा की तरह उसमें भी कुछ कमी रह गई थी और वह कमी थी सेठानी साहिबा का अस्वस्थ रहना। १९७५ में तो सेठानीजी बीमार भी बहुत रहने लगगई थीं। हिस्टीरिया और आंव की शिकायत रहने लगी। एक-एक हजार रुपया प्रतिदिन की फीस देकर मशहूर डाक्टर औषधोपचार के लिये बुलाये गये। चिकित्सा मे यथासम्भव कुछ भी कमी न रखी गई। मन्दिरजी की वेदी-प्रतिष्ठा के समय सेठजी ने यह संकल्प किया था कि "सेठानीजी के लिये यह वर्ष अत्यन्त कष्ट का है। यदि १९७६ मे वे स्वस्थ रह गईं, तो मैं एक लाख रुपये की चांदी की प्रतिमा का निर्माण कराऊंगा।" इस चिन्ता में आप निमग्न हो ही रहे थे कि एक घटना और घट गई। आपने किसी अमेरिकन ज्योतिषी से अपनी जन्मपत्री बनवाई, तो उसमे लिखा था कि "इस वर्ष ईस्वी सन् १९१९ मे सेठजी के भावो मे नवीन अंकुर का उदय होगा और उनको नया विवाह करवाना होगा।" मनोवैज्ञानिक प्रभाव इसका विवाह के पक्ष मे ही पडा। पतिपरायणा पत्नी ने भी

अनुरोध किया और अपने सामने ही करने का आग्रह किया। इसलिये विवश होकर सेठ सुबालालजी पन्नालालजी की सुपुत्री के साथ इसी वर्ष इन्दौर मे लावरिया भैरो पर आपने चौथा विवाह कर लिया। परन्तु भावी प्रबल थी। सेठानी कञ्चनबाई का स्वास्थ्य सुधरने लगा और वे धीरे-धीरे पूर्ण आरोग्य को प्राप्त हो गई। इस हर्ष मे सेठ साहब ने ढ़ाई लाख का दान किया। चांदी की प्रतिमा के लिये घोषित किया गया एक लाख रुपया भी सेठानीजी के आग्रह का पालन करने के लिये दिगम्बर जैन असहाय विधवा सहायता फण्ड और भोजनशाला की स्थापना मे लगा दिया गया। इसी मे से डेढ लाख रुपया से बियाबानी मे यशवन्तराव आयुर्वेदीय जैन औषधालय स्थापित किया गया।

चौथी सेठानी साहिबा एक वर्ष बाद मद्रास मे विषम ज्वर से कुछ ऐसी पीडित हुईं कि हजार प्रयत्न और सर्वोत्तम औषधोपचार करने पर भी बच न सकी। काल की गति को कौन रोक सकता है ?

सेठानी कचनबाईजी का स्वास्थ आशातीत रूप मे सुधरा और सुधरता चला गया। सेठ साहब की चिन्ता भी सहसा दूर हो गई। पुण्योदय से सन्तान भी ऐसी प्राप्त हुई थी, जो "कुल का दीपक पुत्र है" की कहावत को चरितार्थ करने वाली सिद्ध हुई।

पहिली सन्तान कन्यारत्न के रूप मे सम्वत १९६९ मे हुई थी। इसका नाम रखा गया था तारामतीबाई। आप माता-पिता के सयुक्त सस्कार लेकर–धर्मशील, विनयशील और सहनशील स्वभाव लेकर प्रगट हुईं। विद्याभिरुचि स्वाभाविक ही थी। आप हस्तलिखित मासिक पत्रिका निकाला करती थी। अजमेर के सुप्रसिद्ध सेठ स्वर्गीय टीकमचन्दजी सोनी के सुयोग्य और ख्यातनामा पुत्र रायबहादुर कुंवर भागचन्दजी सोनी (भूतपूर्व सदस्य केन्द्रीय असेम्बली) के साथ शुभविवाह सम्वत् १९७० मे हुआ। विवाह अभूतपूर्व राजसी ठाठबाट से हुआ था। इन्दौर के अलावा धार, देवास तथा जावरा आदि से भी खास लवाजमा विवाह के लिये भेजा गया था। बरात के साथ भी जोधपुर, भरतपुर तथा धौलपुर आदि राज्यो का लवाजमा आया था। महू छावनी का इम्पीरियल बैंड और भरतपुर कवेण्टरी का भी बैण्ड आया था। बरात के लिये एक लाख खर्च करके मोती महल बनाया गया था। विवाह मण्डप भी बडा विशाल और दर्शनीय था। बिजली की अनुपम छटा देखते ही बनती थी। महाराज साहब इन्दौर महारानी साहिबा के साथ विवाह की शोभा बढाने पधारे थे। धार के महाराज तथा ए० जी० जी० साहब सेण्ट्रल इण्डिया भी पधारे थे। पर, काल की कराल गति से श्रीमती तारामतीबाई एक बालक और एक बालिका को स्मृति रूप मे छोडकर इस लोक को त्याग गईं। तब सेठ साहब ने छः हजार का दान-पुण्य किया। बालिका सौभाग्यवती चांदबाई ने पंजाब से हिन्दी और मैट्रिक की परीक्षायें प्रथम श्रेणी मे पास की। जयपुर के प्रसिद्ध जौहरी सेठ बनजीलालजी ठोलिया के सुपुत्र सेठ ताराचन्दजी के साथ आपका शुभ विवाह हुआ।

भैय्यासाहब राजकुमारसिंहजी

"कुल का दीपक पुत्र है" की कहावत को सत्य सिद्ध करने वाले भैय्यासाहब राजकुमारसिंहजी साहब का शुभ जन्म सम्वत् १९७० के जेठ बदी ९ गुरुवार २९ मई सन् १९१३ को जब हुआ, तब सारे कुटुम्ब, इष्टमित्रो और नगर मे भी अपार हर्ष की लहर दौड गई। सेठ साहब ने भी दिल खोल कर दान किया। आप भी पूज्य पिताजी के समान कुशाग्र बुद्धि, होनहार और तेजस्वी है। राजपुत्रों के साथ डेली कालेज मे आपकी शिक्षा हुई। सदा ही आप प्रतिष्ठा के साथ उत्तीर्ण होते रहे। एम०ए०, एल०एल०बी० तक आपने अध्ययन किया। आप साहसी, स्पष्टवादी, विनयशील और मृदुभाषी युवक है। आप सुयोग्य और सुशिक्षित भी है। सज्जनता और सहृदयता आप मे असाधारण है। आप सरल और मिलनसार हैं। सभा-सम्मेलनो और परिषदो मे आपका विशेष प्रभाव पडता है। आपके व्यक्तित्व मे आपके सुडौल तन, स्वस्थ मन और

सेठ साहब भैयासाहब हीरालालजी और सुपुत्री ताराबाई के साथ।

भैयासाहब राजकुमारसिंहजी का बाल्यावस्था का चित्र।

सेठ साहब अजमेर के रायबहादुर सेठ टीकमचंदजी और कुंवर भागचंदजी व कुंवर दुलीचंदजी
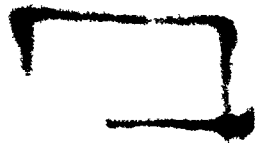
बिना भी देशी राज्यो मे राज्य और व्यापारी वर्ग मे परस्पर आदर्श सहयोग पाया जाता था। देशोन्नति और राष्ट्रीय भावना के लिये समदृष्टि भी दोनो मे कमाल की थी। राज्य की ओर से उन्नति के जो साधन काम मे लाये जाते थे, उनसे व्यापारियो को लाभ उठाने का पूरा अवसर दिया जाता था और किसी भी व्यापारी को व्यापार मे कुछ थोडी-सी भी हानि होना राज्य की हानि समझा जाता था। महाराज शिवाजीराव होलकर के पूज्य पिता महाराज तुकोजीराव द्वितीय ने शहर मे व्यापार-व्यवसाय को समुन्नत करने की जो दृढ नीव डाली थी, उसी पर उन्होने विशाल दीवारें खडी करने का उपक्रम किया और इन्दौर उन्नति के मार्ग पर सरपट बढता चला गया। महाराज तुकोजीराव तृतीय के शासन-काल मे यह गति और भी तेज हो गई। इन्दौर का मुख्य व्यापार व्यवसाय तब अफीम का ही था। उसी का सट्टा जोरो पर था। बाद मे रुई और सोने-चादी का भी सट्टा शुरु हुआ। सर्राफा उसका केन्द्र था। उसमे मुख्यत हाली का शुद्ध चादी का रुपया चलता था। राज्य की अपनी टकसाल थी। उसम सूरज छाप का रुपया और नादिया की छाप के तांबे के पैसे, अधन्ने, आने आदि भी ढाले जाते थे। अंग्रेजी सरकार का रुपया भी चलता था। हाली पर यह रुपया १८ सैकडा अधिक मिलता था। लेन-देन या भुगतान दोनो मे ही होता था।

हाजर माल की लेवाली बम्बई की होती थी। बम्बई से ही रुई और अफीम खरीदी जाती थी। बम्बई की लेबाबेची पर तेजी मदी चलती थी। रुई की खपत यहाँ अधिक थी। अफीम पेटियो मे बन्द होकर बम्बई भेज दी जाती थी। बाजार मे सभी चीजो के भाव इतने सस्ते थे कि वे आज शेखचिल्ली के किस्से जान पडते हैं।

कपडे की भी इन्दौर अच्छी मडी थी। बम्बई से खूब कपडा आता था और आस पास के दिसावर मे यही से पहुँचता था। तब कपडो की किस्मे इतनी न थी। जब मिले यहा खुली, तब महाराज तुकोजीराव तृतीय के समय कपडे का नया मार्केट बना और यहां से कपडे का निर्यात भी होने लगा। आगरे की दरियो का भी कभी यहां अच्छा चलन था। थोक माल के क्रय-विक्रय की इन्दौर मध्यभारत मे सबसे बडी मडी थी। कपडे की छपाई भी अच्छी और बहुत बडे पैमाने पर होती थी।

आपस मे बटवारा

सेठ साहब के यहा पितृ-परम्परा से साहूकारा और अफीम का ही काम होता था। अफीम के काम मे विशेष प्रगति की गई और बाद मे आपने मुख्यत: उसी को संभाल लिया। आपके दोनो भाई गोद आये थे। सेठ ओंकारजी के यहां सेठ कस्तूरचन्दजी, बाद मे सेठ देवकुमारसिहजी और सेठ तिलोकचन्दजी के यहा सेठ कल्याणमलजी, बाद मे सेठ हीरालालजी। तीनो भाइयो की हरी-भरी गोद को सुखी, सम्पन्न और समृद्ध बनाये रखने के लिये बटवारा करना आवश्यक समझा गया। लेकिन, बटवारा भी इस शान्ति, सन्तोष, स्नेह और सहृदयता के साथ किया गया कि किसी को कानोकान उसका पता भी नही चला। घर का प्रेमपूर्ण वातावरण मे कुछ थोडा-सा भी विघ्न उपस्थित न हुआ। किसी को बीच मे डालने की भी आवश्यकता न हुई। सम्वत् १९४८ (ईस्वी सन् १८९१) मे जब यह बटवारा हुआ, तो तीनो भाइयो के नाम का जमा खर्च बहियो मे अलग अलग डाला गया। तब प्रत्येक भाई के नाम पाच-पांच लाख रुपये लिखे गये। तीनो भाइयो के अध्यवसाय से यह सम्पदा उत्तरोत्तर बढती ही चली गई। उन्नति के मार्ग मे दो साल कोई भी विघ्न वाधा उपस्थित न हुई। लेकिन, १९५० मे सेठ सरूपचन्दजी के स्वर्गवास से एक बडी बाधा अवश्य उपस्थित हुई। पर, तीनो भाइयो ने श्रम, लगन और धुन से उनके अभाव की पूर्ति कर ली और कमी अनुभव न होने दी। छः वर्षबाद सम्वत् १९५६ मे यद्यपि घराना २५-३० लाख का गिना जाने लग गया था, किन्तु यह वर्ष देश के लिये अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ। देश के बडे भाग मे घोर दुर्भिक्ष छा गया था। फिर भी तीनो भाई विचलित नही हुये। धीर-वीर

"काटन प्रिंस आफ इण्डिया" सेठ हुकमचंदजी साहब ।

सेठ साहब की इन्द्रभवन की निजी गोशाला की गाय भैंसे तथा अन्यपशु ।

गति से अपने व्यापार-व्यवसाय को समुन्नत करने मे लगे रहे।

सम्वत् १६५७ में तीनो भाइयो ने काल की गति-मति को देखते हुये अपना-अपना व्यापार अलग करना उचित समझा। पहिले बटवारे के नौ वर्ष बाद हुये इस दूसरे बटवारे का भी किसी को पता न होने दिया गया। तीनो ने आपस मे बैठ कर चुपचाप बटवारा कर लिया। किसी को मध्यस्थ बनाना तो दूर रहा, इसकी सूचना तक न दी गई। मानो, तीनो भाइयो ने सुमति और कुमति का पाठ खूब भली प्रकार हृदयंगम किया हुआ था। वे सुमति का सुफल और कुमत्ति का कुफल भली प्रकार समझते थे। जिस बटवारे पर बडे-बडे घर उजड कर बरबाद हो जाते हैं, वंश परम्परा का पुराना स्नेह बिखर कर नष्ट हो जाता है और सगे भाई एक दूसरे के जानी दुश्मन बन जाते है, उसका इस घराने मे इतनी शान्ति, स्नेह और सहृदयता के साथ हो जाना कोई साधारण बात नही थी। "जहां सुमति तहां सम्पति नाना" की कहावत मानो इस युग मे इसी घराने के लिये लिखी गई थी। तीनो भाइयो के हिस्से मे १६४८ से दुगना अर्थात् दस-दस लाख रुपया आया। तीन दूकानें अलग-अलग कर ली गईं। उनके नाम क्रमशः ये रखे गये—सेठ सरूपचन्दजी हुकमचन्दजी, सेठ ओंकारजी कस्तूरचन्दजी और सेठ तिलोकचन्दजी कल्याणमलजी। बम्बई की दूकान तीनो मे सम्मिलित रही।

साहस का खेल

सेठ साहब का उस समय जो व्यापार व्यवसाय था, उसमे अविचल साहस का ही सारा खेल था। जोखम उठाने वाला वीर साहसी ही उस पार पहुंच सकता था। सेठ साहब अपार साहस के धनी थे और जोखम उठाने मे आपका साहस इतना साथ देता था कि बडी से बडी जोखम उठाने में भी आप संकोच नहीं करते थे। अब अकेले अपने भाग्य के साथ खेल खेलने मे आपको क्या संकोच हो सकता था? दिल खोल कर मैदान मे उतर पडे। अदम्य उत्साह, संशयहीन साहस, आशाभरी उमंगो से भरा हुआ हृदय और चढती हुई वह युवावस्था, जिसने हारना कभी सीखा ही नही। बस, सफलता के लिये और क्या चाहिये था? बुद्धि कौशल और व्यापार-पटुता ने भी खूब साथ दिया। स्पष्ट विचार करने वाली मानसिक भूमि और दूर की स्पष्ट कल्पना करने वाली सम्यक् दृष्टि तो स्वभाव से ही आपको प्राप्त है। जिस हृदय मे आनन्द, उत्साह और सफलता की भावना तथा कल्पना समाई रहती है, वह हारना और पराजित होना जानता ही नही। निराशा और निरुत्साह तो आपके पास जा ही नही सकते। परम आशामय और उत्साहमय हृदय आपको सदा सफलता की ओर ही प्रेरित्त करता रहा है। सेठ साहब की सफलता का रहस्य इस बात में भी छिपा हुआ है कि आप ससार के सारे बाजारो का मनन बडे ही ध्यान से किया करते थे। आज सारे देशो की एक-दूसरे से दूरी नहीं के बराबर हो गई है। संसार के एक कोने मे घटने वाली एक छोटी-सी घटना का भी असर सहज मे ही सारे संसार पर हुये बिना नहीं रहता। इसीलिये सफलता प्राप्त करने के लिये सब ओर समान दृष्टि रखनी और व्यापारिक गतिविधि की सार्वभौम जानकारी रखनी नितान्त आवश्यक है। ताने-बाने की तरह ससार का सारा व्यापार और सारे बाजार एक दूसरे के साथ गुथ-से गये है। इसीलिये सेठ साहब ने संसारभर के बाजारों की गति-विधि का गहरा अध्ययन करना शुरू किया। चारो ओर से तार, समाचारपत्र और व्यापारिक रिपोर्टें आप मंगाने लगे। सबका तौल-ताल लगा कर आप व्यापार का रुख बिठाते और सारे संसार मे बिछी हुई व्यापार की बसात पर अपने मोहरे ऐसे चलाते कि कभी किसी से मात नही खाते। व्यापार-व्यवसाय मे सेठ साहब ने कभी हठधर्मी से काम नही लिया। लकीर के फकीर आप कभी भी बने नही रहे। तभी तो व्यापारिक क्षेत्र मे आपने प्रगति की और औद्योगिक क्षेत्र मे भी चमत्कार कर दिखाया। एक तो बाजार के रुख के साथ रुख बदलना और दूसरे नये व्यापार को अपनाना दोनो मे ही सेठ साहब ने कमाल कर दिखाया। तभी तो अफीम, अलसी, रुई, चांदी, सोना, गेहूँ, गल्ला और नमक तक

सेठ साहब की इन्द्रभवन की निजी गोशाला की गाय, भैंसे तथा अन्यपशु ।

गति से अपने व्यापार-व्यवसाय को समुन्नत करने मे लगे रहे।

सम्बत् १९५७ मे तीनो भाइयो ने काल की गति-मति को देखते हुये अपना-अपना व्यापार अलग करना उचित समझा। पहिले बटवारे के नौ वर्ष बाद हुये इस दूसरे बटवारे का भी किसी को पता न होने दिया गया। तीनो ने आपस मे बैठ कर चुपचाप बटवारा कर लिया। किसी को मध्यस्थ बनाना तो दूर रहा, इसकी सूचना तक न दी गई। मानो, तीनों भाइयो ने सुमति और कुमति का पाठ खूब भली प्रकार हृदयंगम किया हुआ था। वे सुमति का सुफल और कुमति का कुफल भली प्रकार समझते थे। जिस बटवारे पर बडे-बडे घर उजड कर बरबाद हो जाते हैं, वंश परम्परा का पुराना स्नेह बिखर कर नष्ट हो जाता है और सगे भाई एक दूसरे के जानी दुश्मन बन जाते है, उसका इस घराने मे इतनी शान्ति, स्नेह और सहृदयता के साथ हो जाना कोई साधारण बात नही थी। "जहां सुमति तहां सम्पति नाना" की कहावत मानो इस युग मे इसी घराने के लिये लिखी गई थी। तीनों भाइयो के हिस्से मे १९४८ से दुगना अर्थात् दस-दस लाख रुपया आया। तीन दूकानें अलग-अलग कर ली गई। उनके नाम क्रमशः ये रखे गये—सेठ सरूपचन्दजी हुकमचन्दजी, सेठ ओंकारजी कस्तूरचन्दजी और सेठ तिलोकचन्दजी कल्याणमलजी। बम्बई की दूकान तीनो मे सम्मिलित रही।

साहस का खेल

सेठ साहब का उस समय जो व्यापार व्यवसाय था, उसमें अविचल साहस का ही सारा खेल था। जोखम उठाने वाला वीर साहसी ही उस पार पहुंच सकता था। सेठ साहब अपार साहस के धनी थे और जोखम उठाने मे आपका साहस इतना साथ देता था कि बडी से बडी जोखम उठाने मे भी आप संकोच नहीं करते थे। अब अकेले अपने भाग्य के साथ खेल खेलने मे आपको क्या संकोच हो सकता था? दिल खोल कर मैदान मे उतर पडे। अदम्य उत्साह, संशयहीन साहस, आशाभरी उमंगो से भरा हुआ हृदय और चढ़ती हुई वह युवावस्था, जिसने हारना कभी सीखा ही नहीं। बस, सफलता के लिये और क्या चाहिये था? बुद्धि कौशल और व्यापार-पटुता ने भी खूब साथ दिया। स्पष्ट विचार करने वाली मानसिक भूमि और दूर की स्पष्ट कल्पना करने वाली सम्यक् दृष्टि तो स्वभाव से ही आपको प्राप्त है। जिस हृदय में आनन्द, उत्साह और सफलता की भावना तथा कल्पना समाई रहती है, वह हारना और पराजित होना जानता ही नही। निराशा और निरुत्साह तो आपके पास जा ही नही सकते। परम आशामय और उत्साहमय हृदय आपको सदा सफलता की ओर ही प्रेरित करता रहा है। सेठ साहब की सफलता का रहस्य इस बात मे भी छिपा हुआ है कि आप संसार के सारे बाजारो का मनन बडे ही ध्यान से किया करते थे। आज सारे देशो की एक-दूसरे से दूरी नही के बराबर हो गई है। संसार के एक कोने मे घटने वाली एक छोटी-सी घटना का भी असर सहज मे ही सारे संसार पर हुये बिना नहीं रहता। इसीलिये सफलता प्राप्त करने के लिये सब ओर समान दृष्टि रखनी और व्यापारिक गतिविधि की सार्वभौम जानकारी रखनी नितान्त आवश्यक है। ताने-बाने की तरह ससार का सारा व्यापार और सारे बाजार एक दूसरे के साथ गुथ-से गये है। इसीलिये सेठ साहब ने संसारभर के बाजारो की गति-विधि का गहरा अध्ययन करना शुरू किया। चारो ओर से तार, समाचारपत्र और व्यापारिक रिपोर्टें आप मंगाने लगे। सबका तौल-ताल लगा कर आप व्यापार का रुख बिठाते और सारे संसार मे बिछी हुई व्यापार की बसात पर अपने मोहरे ऐसे चलाते कि कभी किसी से मात नही खाते। व्यापार-व्यवसाय मे सेठ साहब ने कभी हठधर्मी से काम नहीं लिया। लकीर के फकीर आप कभी भी बने नही रहे। तभी तो व्यापारिक क्षेत्र मे आपने प्रगति की और औद्योगिक क्षेत्र मे भी चमत्कार कर दिखाया। एक तो बाजार के रुख के साथ रुख बदलना और दूसरे नये व्यापार को अपनाना दोनो मे ही सेठ साहब ने कमाल कर दिखाया। तभी तो अफीम, अलसी, रुई, चांदी, सोना, गेहूँ, गल्ला और नमक तक

मे भी आपने प्रवेश किया और सारे बाजार अपने हाथ मे करते चले गये। १९१० मे कभी सारे बाजार आपके हाथो मे खेला करते थ और देशी ही नही, किन्तु विदेशो व्यापारी भी आपसे डाह करने लग गये थे। कभी-कभी सारे आपके विरोध मे एक होकर षडयन्त्र भी रचा करते थे। आपकी धाक सारे भारत मे ही नही, किन्तु विदेशो मे भी जम गई थो।

अनोखी सूझ-बूझ

अफीम के बाजार की एक मनोरंजक घटना यहा देनी आवश्यक है। उससे आप की सूझ-बूझ और दूर दृष्टि का भी सम्यक् परिचय मिलता है। तब इन्दौर का मुख्य व्यापार यही था और सट्टा भी इसी का होता था। इसी मे सेठ साहब भी रमे हुये थे। लेकिन, अफीम नशे की चीज है। वह मानवता के लिये अभिशाप है। चीन मे जब नवजीवन और नव चैतन्य की लहर पैदा हुई, तब अफीम के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन शुरू हुआ। चीन के नवयुवकों ने उसके विरुद्ध आवाज उठाई। यूरोप के सुधारप्रेमियो ने चीनी युवको का जोरदार समर्थन किया। यूरोप और अमेरिका के समाचारपत्रो ने भी इस आन्दोलन को उठा लिया। अग्रज सरकार पर यह दोषारोपण किया जाने लगा कि वह चीन को अफीमची बनाने मे लगी हुई है। इसी आन्दोलन के सिलसिले मे यूरोप मे एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो कर अफीम की खेती और व्यापार पर रोक लगाने की माग की गई। ब्रिटिश सरकार को भी इसे स्वीकार करना पड गया। यहीं से अफीम की खेती और व्यापार की घटती कला शुरू हुई और मालवा का एक मुख्य धंधा चौपट हो गया। यह सर्वथा स्वाभाविक ही होना चाहिये था कि सेठ साहब अफीम के व्यापार से हाथ खीच लेते। लेकिन, इस रोकथाम के कारण एक बार तो बाजार का चढना निश्चित था। सेठ साहब ने इस परिस्थिति से लाभ उठाने का निश्चय किया। १९०९-१० मे भारत सरकार ने अफीम की निकासी पर नियन्त्रण रखने के लिये एक्सपोर्ट लाइसैन्स की प्रथा का श्रीगणेश कर दिया। सेठ साहब ने बीस-पच्चीस लाख की हुण्डिया अफीम खरीदने मे लगा दी। जगह जगह मुनीम गुमाश्ते खरीदने को भेजे गये। सब चकित थे कि सेठ साहब क्या कर रहे हैं? पर, भाव चढना शुरू हुआ और अफीम की जिस पेटी की कीमत १२-१४ सौ रुपया थी, उसकी कीमत १० १४ हजार तक पहुच गई। बस, क्या था? दो-तीन करोड पैदा कर लिया। सारे देशवासी चकित रह गये। बडे-बडे व्यापारियो ने भी दांतो तले अगुली दबा ली। इसी पर १२ मार्च १९१० को बम्बई के 'टाइम्स आफ इण्डिया' ने आपको "मर्चेण्ट प्रिंस आफ मालवा" लिखा था। मालवा के निवासी होने से आपको मालवा का व्यापारी बादशाह कहा गया था। सिकन्दर और नैपोलियन की तरह आपने अपनी धीरता, वीरता तथा साहस का परिचय दिया। सेठ साहब के अभ्युदय का प्रभात यहीं से उदय होता है। इस सफलता से सेठ साहब का साहस और उत्साह कई गुना बढ गया। व्यापार की गति-विधि की गहरी जानकारी प्राप्त करके निश्चित किये गये ध्येय, साहस और सामर्थ्य मे पुरुष जो सफलता प्राप्त कर सकता है, उसका एक समुज्ज्वल उदाहरण सेठ साहब ने उपस्थित कर दिखाया। आपने यह बता दिया कि ससार की गतिविधि से परिचित होना कितना आवश्यक है? इसी के अनुसार अपने व्यापार का रुख रखा जाना चाहिये, साहस व उत्साह का सबल हाथ मे रखना चाहिये, जोखिम उठाने मे आत्म-विश्वास तथा दृढता से काम लेना चाहिये और अविचल भाव से लक्ष्य पर दृष्टि रखते हुए अग्रसर होना चाहिये।

फिर भी यह निश्चित था कि अफीम के व्यापार को सर्वथा तिलाजलि देनी ही होगी। वह वैसी ही अबाध गति से चल नही सकता था। इसीलिये सेठ साहब ने सम्वत १९६८ (सन् १९१०-११) मे रुई, अलसी, चांदी और सोने का हाजर-वायदे का सौदा करना शुरू कर दिया। उसमे भी आप जल्दी ही छा गये। सम्वत् १९७० में आपका यह व्यापार उन्नति के शिखर पर पहुचा हुआ था। १९७१-७२ मे तो यह स्थिति आ गई कि

१०-२० लाख की हर रोज हार जीत कर लेना साधारण बात हो गई। कोई भी सौदा कर लेना आपके लिये खेल हो गया। आपकी लेवा-बेची पर बाजार चढने-उतरने लगे। १०-१५ रुपये बाजार को नीचे-ऊपर कर देना आपके लिए कुछ भी मुश्किल न था। आपका दलाल बन कर काम करना भी सेठ बन जाने के लिए बहुत था। आपके दलाल भी आपकी दलाली से लाखो पैदा कर लेते थे। इतनी आय किसी दूसरे धन्धे मे सम्भव न थी। इसी लिये लोग आपकी दलाली को भी अपने लिये परम भाग्यशाली मानते थे।

पहले विश्वव्यापी महायुद्ध से पैदा हुई स्थितियो से भी आपने पूरा लाभ उठाया। अनेक बाजारो मे तेजी आई। शेयरो के भाव बहुत बढ गए। उनसे भी आपने अच्छा धन कमाया। कहते हैं कि भगवान जब देता है, तब छप्पर फाड कर देता है। सचमुच ही आपने इसी प्रकार धन कमाया। चारो ओर सफलता ही सफलता दीख पडती थी। समुद्र मे जाकर समाने वाली नदियो की तरह न मालूम लक्ष्मी की कितनी नदियां आप मे आकर समा जाती थी?

व्यापार-व्यवसाय मे समय-सूचकता का विशेष महत्व है। लकीर के फकीर बने रहने से काम नही चलता। सेठ साहब ने अपने व्यापार को बदलने और फैलाने दोनो ही मे समयसूचकता और सूझ-बूझ से काम लिया। इन्दौर का बम्बई के साथ तो पुराना सम्बन्ध था। इसीलिये वहां तो सेठ साहब की दूकान थी और जोर-शोर से काम भी चलता था। सम्वत् १६७२ मे कार्तिक मास मे कलकत्ता मे भी दूकान खोल दी गई। इसकी कहानी बहुत ही मनोरंजक है।

कलकत्ता मे दूकान

आपके कुछ मित्रो ने कलकत्ता मे यह विचार किया कि वायसराय पर जोर डालकर आपको 'राजा' का खिताब दिलाया जाना चाहिए। सेठ भजनलालजी लोहिया ने आपको इसी काम के लिये कलकत्ता बुलाया। आप वहां पहुंचे, तो आपके सामने यह प्रस्ताव रखा गया। आपने यह कहकर इनकार कर दिया कि मै "रावराजा" की पदवी से ही सन्तुष्ट हूं। आपने यह भी कहा कि एक राज्य मे दो राजाओ का रहना ठीक न होगा। पर, मित्र सारी भूमि तय्यार कर चुके थे। इसलिये आपका वायसराय के मिलिटरी सेक्रेटरी से मिलना आवश्यक हो गया। उसने बातचीत के सिलसिले मे कहा कि इसके लिये कलकत्ता मे आपकी दूकान होनी आवश्यक है। अन्यथा, इन्दौर के एजेण्ट और राजा की इसके लिये सलाह लेनी होगी। आपने कहा कि दूकान तो कल ही खोली जा सकती है। वहां से लौटे और दूकान खोलने की चिन्ता मे लग गये। पारख कोठी मे अजमेर के स्वर्गीय सेठ टीकमचन्दजी सोनी (सर सेठ भागचंदजी सोनी के पिताश्री) की दूकान थी। उसके मुनीम थे रायबहादुर श्रीहरकिशनदासजी भट्टड। उनके पास आप गये और उनकी चार आना की पत्ती मे दूकान खोलने का निश्चय किया। उन्होने कहा कि कल का दिन तो शुभ नही है। इस दिन मुहूर्त्त करना ठीक न होगा। आपने कहा कि मेरे लिये यही ठीक है। उसी कोठी मे कुछ हिस्सा खाली था। मुनीमजी ने कहा कि पिछले २०-२५ वर्षों मे इस स्थान मे कइयो का दिवाला पिट चुका है। आपने कहा कि बस, अपने लिये यही स्थान ठीक है। इन्दौर से ५० लाख रुपया तुरन्त मंगा लिया गया। मुहूर्त्त करने के निमन्त्रण दे दिये गये। दूसरे ही दिन १२ बजे बडी धूमधाम से मुहूर्त्त हो गया और दूकान का काम शुरू कर दिया गया। पचास लाख का सौदा पहिले ही दिन हो गया। जब भुगतान का समय आया, तो मुनीमजी ने कुछ पार्टियो को भुगतान करने मे आपत्ति की। उनकी साख बिगड चुकी थी और दस लाख रकम के डूब जाने का डर था। उस समय के प्रमुख सेठ हरदत्तरामजी चमडिया ने सबकी जमानत देते हुये कहा कि पहिले ही भुगतान मे ऐसा नही होना चाहिये। सेठ साहब का एक भी पैसा डूबा नही। अफीम की पेटी, कपडा, शक्कर, अलसी और जूट के काम मे दूकान ने जल्दी ही नाम पैदा कर लिया। जूट की स्वतन्त्र रूप से दलाली करनेवाली

आपकी पहिली भारतीय दूकान थी। नहीं तो यह सारा काम यूरोपियन फर्मों के हाथ मे था। भारतीय उनके मातहत काम करते थे। जूट की खेती ६० फी सदी बंगाल और आसाम मे ही होती है। किसान अपनी फसल व्यापारी को, व्यापारी कलकत्ता के आढतिये को और वह किसी मिल या निर्यात करने वाली फर्म को बेच देता है। आढती का सारा काम अग्रेजो के हाथ मे था। सेठ साहब उसमे प्रवेश करने वाले पहिले भारतीय थे। कलकत्ता मे उद्योग व्यवसाय को जमाने की चर्चा तो अगले प्रकरण मे की जायगी। यहां इतना ही उल्लेख करना आवश्यक है कि 'राजा' का खिताब लेना तो आपने स्वीकार न किया, किन्तु आपके इस सत्साहस की सराहना चारो ही ओर की गई और कलकत्ता के बाजार मे भी आपकी राजा की सी प्रतिष्ठा कायम होने में अधिक समय नही लगा। जब भी कभी आप कलकत्ता जाते थे, तो हजारो की भीड आपके दर्शनो के लिये जमा हो जाया करती थी।

अवसर से लाभ

महायुद्ध से पैदा हुई परिस्थितियो से भी सेठ साहब ने बडा लाभ उठाया। उपस्थित अवसर से लाभ उठाना ही तो व्यापारी का काम है। आपने अवसर से लाभ उठाने मे कभी चूक नहीं की। अवसर पैदा करना और पैदा हुये अवसर से लाभ उठाना ही कुशल व्यापार है। सेठ साहब कुशल व्यापारी हैं। तभी तो लक्ष्मी की आप पर अपार कृपा हुई। अवसर से लाभ उठाने मे आपने समुद्र मे से मोती निकालने वाले गोताखोरो को भी मात कर दिया। जहा आप गहरी डुबकी लगाते, वही से मोती आपके हाथ लग जाते। जिधर भी आप हाथ पसारते, उधर से ही लक्ष्मी का वरद हस्त बढता हुआ दीख पडता। आपकी यह महान सफलता सट्टे के बाजार मे ईर्ष्या व डाह का कारण बन गई। अनेक सटोरिये आपके विरुद्ध गुट्ट बना कर एक हो गये। रुई, चादी, गेहूँ और अलसी सभी के भाव तेजी पर थे। बाजार ने भीषण रूप धारण कर लिया। रुई की खडी का भाव ७०० पर पहुँच गया था। आपने दिल खोलकर व्यापार किया और आपको निरन्तर लाभ ही होता चला गया। आपने इस वर्ष मे एक करोड पैदा किया। भारत से बाहर यूरोप और अमेरिका के व्यापारिक क्षेत्रो मे भी आपका नाम चमक उठा। आपका यश और कीर्ति चारो ओर फैल गई। सट्टे के बाजार मे आपका सिक्का माना जाने लग गया। जिधर भी आपका रुख होता, उधर ही तहलका मच जाता।

सरकार का अनुरोध

यूरोपीय महायुद्ध के कारण रुई, अलसी और चादी के समान गेहू के बाजार मे भी बहुत तेजी आगई। भाव इतने ऊँचे चढ़ गये कि लोगो मे हाहाकार मच गया। सेठ साहब तेजी मे खूब खेलते थे। गेहूं के बाजार मे भी आप उतर पडे। सरकार के पास शिकायते पहुचाई जाने लगी कि इस महगाई के कारण सेठ हुकमचन्द हैं। उनको रोके विना यह महगाई नही रुकेगी। भारत सरकार के गृह सदस्य स्वयं बम्बई आये। सेठ साहब को भी बुलाया गया। बम्बई के गवर्नर के सामने चर्चा हुई। आपसे कहा गया कि "गेहू तो मनुष्य का खाद्य पदार्थ है। इसके महगा हो जाने से उसके लिए घोर संकट उपस्थित हो जायगा। इसका व्यापार आपको इस रूप मे नहीं करना चाहिये कि वह इतना महगा हो जाय। आपने जो ख्याल किया है, वह लोकहित की दृष्टि से उचित नही है।' सेठ साहब ने सहृदयता का परिचय दिया। गवर्नर और गृहमन्त्री का परामर्श आपने स्वीकार कर लिया। अपना गेहू का सौदा आपने बराबर कर दिया। जो भाव पौने दस का था, वह उतर कर सवा आठ रह गया। डेढ रुपया मन उतरने से जनता ने सन्तोष की सास ली और जानने वालो ने सेठ साहब को धन्यवाद दिया। सेठ साहब ने दिखा दिया कि आप केवल पैसे के लोभी हृदयहीन व्यापारी नही हैं।

चादी और नमक के सम्बन्ध मे भी ऐसी ही घटनायें घटो। गेहू की तरह जब चादी पर आपका ध्यान गया

तब आपने चांदी के पाट भी चारों ओर से खरीदने शुरू कर दिये। चांदी का भाव इतना तेज हो गया कि सरकार भी उसके प्रभाव से अछूती न रह सकी। भारत सरकार के गृह सदस्य ने फिर आपसे अनुरोध किया कि आप चांदी का ख्याला इस बुरी तरह न करें और आपने चांदी के जो बीस हजार पाट खरीद किये है, वे सरकार को उचित कीमत पर दे दें। सरकार का अनुरोध स्वीकार करके आपने चांदी का सट्टा भी छोड दिया और बीस हजार पाट भी सरकार को बेच दिये। चांदी की तेजी रुक गई। जनता और सरकार दोनो ने सेठ साहब का आभार माना।

व्यापारी की गति राजा की तरह होनी चाहिये। सफल व्यापारी महत्वाकांक्षी सम्राट की तरह दिग्विजय अपना लक्ष्य बना कर मैदान मे निकलता है। सेठ साहब का इस समय यही लक्ष्य प्रतीत होता था। ब्राह्मण का भूषण तो सन्तोष हो सकता है, किन्तु राजा और व्यापारी के लिये सन्तोष दूषण है। इसके लिये यह बिलकुल ठीक ही कहा गया है कि "असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः, सन्तुष्टाश्च महीभुजाः।" असन्तोष से तात्पर्य यहां महत्वाकांक्षा से है। जिस महत्वाकांक्षा से सेठ साहब इन दिनो मे प्रेरित हो रहे थे, वह जल की धारा की तरह अपना रास्ता बनाये बिना नही रह सकती थी। गेहूं और चांदी से तो हाथ खीच लिया गया, किन्तु आपका ध्यान सहसा ही सांभर के नमक की ओर गया? एक दम दस हजार बैगन का आर्डर दे दिया गया और उसके रवन्ने भर दिये गये। नमक के बाजार मे भारी उथल-पुथल मच गई। उसका भाव एक दम तेज हो गया। जनता मे बेचैनी फैल गई। सरकार क्षुब्ध हो गई। युक्तप्रान्त के गवर्नर के सेक्रेटरी और साल्ट कमिश्नर सेठ साहब के पास भेजे गये। सेठ साहब से फिर निवेदन किया गया कि नमक तो मनुष्य और पशुओ का भी आवश्यक खाद्य पदार्थ है। इसका आपको इतने बडे पैमाने पर व्यापार नही करना चाहिये कि यह आवश्यक पदार्थ भी सबको सुलभ कीमत पर प्राप्त न हो सके। इसीलिये आपने जितना रुपया भरा है, वह लौटा लीजिये।" सेठ साहब ने अनुरोध स्वीकार कर लिया। नमक का भाव उतर गया। महत्वाकांक्षी यदि रुद्र रूप धारण कर लेता है, तो नादिरशाह और औरंगजेब की तरह इतिहास मे अपने को बदनाम कर लेता है; नही तो महत्वाकांक्षा पर सहृदयता का अंकुश रखने वाला वीर प्रतापी और पराक्रमी सम्राट् अकबर और शाहजहां की तरह नाम पैदा कर जाता है। सेठ साहब ने भी यह बता दिया कि आपकी महत्वाकांक्षा भी सहृदयता से शून्य नहीं थी। मानवता का उत्पीडन करके धन पैदा करना आपने अपने जीवन का लक्ष्य नही बनाया था।

नमक के बाद सेठ साहब का ध्यान भडोच जीन की ओर गया। संबत् १९७४ मे आपने इसका व्यापार किया और लगभग पौन करोड का नफा पैदा किया। इससे आपका यश भी खूब बढ़ा। लोग यह कल्पना भी नही कर सकते थे कि गेहूँ, चांदी और नमक के बाद सेठ साहब किसी और क्षेत्र मे कुछ कर सकेंगे। जब आपने भडोच जीन मे पौन करोड की आय कर दिखाई, तब विरोधी भी आपका लोहा मान गये। लाख-लाख गांठ का माथे पोते का व्यापार कर लेना आपके लिये बांये हाथ का खेल हो गया। दलालों और व्यापारियो मे आपके व्यापार की धूम रहती थी। बाजार का भाव जानने के लिये आपके व्यापार का रुख देखा जाता था।

संवत् १९७७ मे आपका भाग्य व पुण्य और अधिक चमक उठा। इस वर्ष आपने रुई का सट्टा खूब दिल खोल कर किया। शुरू-शुरू मे सेठ साहब को ५० लाख का घाटा दीख पडने लगा। बम्बई के व्यापारी भी आपके विरोधी बन गये। पर, आपने साहस, धैर्य और विश्वास नही खोया। बाजार ने रुख पलटा और तेजी पर जाना शुरू हो गया। परिणाम उलटा ही हुआ। पचास लाख का नुकसान दीखते-दीखते नब्बे लाख का मुनाफा हो गया। विरोधी भी चकित रह गये।

कुछ प्रसग

इन्ही प्रसगो मे एक बार ऐसा भी हुआ कि बम्बई के व्यापारियो की शिकायत पर सेठ साहब से यह भी कहा गया कि यदि आप बाजारो मे उथल-पुथल करना नही छोडेंगे, तो सरकार को आपके लिये विशेष कानून बनाना पडेगा और सट्टे के भावो का नियन्त्रण करना पडेगा। आपने वाइसराय के प्रतिनिधि से साफ ही कह दिया कि अकेले मेरे लिये कानून बनाया जाना संभव नही है। आपने और भी दिल खोल कर सट्टा किया और बाजार आपके हाथ ही रहा। उस समय के सुप्रसिद्ध सटोरिये मैसर्स मथुरादास माधवदास, ऊमर सोभानी, शापुरजी भारुचा आदि बीस-तीस फर्में कई बार आपके विरोध मे एक हो गई। परन्तु आपने उनसे एक बार भी मार नहीं खाई। अफीम, रुई, चादी, शेयर, अलसी, गेहू आदि सभी का सट्टा आपने किया। खोने की चिन्ता आपने कभी की ही नहीं। दो-चार महीने मे, नही तो दूसरे वर्ष मे खोये हुये से भी कही अधिक आप कमा लेते थे। आपका स्वय यह कहना है कि आपको १३ वर्ष की आयु से ही सफलता मिलनी शुरू हो गई थी। अनुभव से भी अधिक आपका विश्वास प्रकृति, कर्म, भाग्य और बुद्धि पर है। पच्चीस वर्ष की आयु के बाद विशेष सफलता प्राप्त की। सम्बत् १६६० से २००० तक के वर्ष आपके लिये विशेष भाग्यशाली सिद्ध हुये। बुद्धि ने विशेष साथ दिया। जो कुछ भी सूझता था, वह अनुकूल ही पडता था।

एक बार की बात है कि आप बनारस मे थे। आपको स्वप्न मे जान पडा कि आपको शीघ्र ही विशेष लाभ होने वाला है। आप कलकत्ता पहुँचे और वहा से बम्बई। बाजार नीचे गिर रहा था। ३०० पर बाजार आ गया था। आपने ७०० से खरीदी शुरू की थी। सब ओर यही चर्चा थी कि इस बार आप बचेगे नही। पर, आपको भी क्या सूझा? आपने जापान और अमेरिका मे लेवावेची शुरू करदी। अमेरिका मे खरीदी और जापान मे बेची का परिणाम यह हुआ कि अमेरिका मे भाव चढने शुरू हुये। यहा भी उसका असर पडा। बढते-बढते भाव १००० से भी ऊपर पहुँच गया। सब दग रह गये। आपने हिसाब किया, तो आपको चालीस लाख देना था और १०-१२ करोड लेना था। मुनीम की राय यह हुई कि चालीस लाख भी क्यो दिया जाय, जब कि सामने वाले दिवाला निकाल कर देने से मुकर जाने वाले है। आपकी सम्मति यह हुई कि अपने को तो देना ही चाहिये और बाद मे लेने का तकाजा करना चाहिये। ४० लाख चुका कर आपने १०-१२ करोड की माग की और आधे पौने मे सबसे निपटारा कर लिया। कई करोड का लाभ हुआ। बम्बई के बाजार मे तूफान-सा आ गया। ऐसा कई बार हुआ। एक बार तो प्राय. सभी प्रतिस्पर्धी फर्मो का काम फेल हो जाने से बम्बई के दलाल अपना धन्धा डूब जाने के भय से आपकी दूकान पर टूट पडे। कोई १३०० दलालो को आपने ४-५ लाख बाट कर सन्तुष्ट किया। बम्बई से इन्दौर लौट कर यहा के भी सब कर्मचारियो को तीन-तीन मास का वेतन इनाम मे दिया गया। साहस के साथ उदारता भी आप मे कूट-कूट कर भरी हुई है।

कलकत्ता मे भी आप इसी प्रकार बाजार को अपने हाथो मे नचाया करते थे।

सट्टे से घृणा

इस प्रकार लाखो का वारा-न्यारा करने वाले सेठ साहब के हृदय मे धार्मिक भाव भी अकुरित हो रहे थे। व्यापार मे इतना अधिक रम जाने पर भी वह आपके स्वभाव का अङ्ग नही बन सका। उसमे आप डूबे नही, अपितु उसको आपने अपने हाथो मे रखा। यही कारण है कि जब सट्टे के प्रति उपराम वृत्ति पैदा हुई, तो उससे पीछा छुडाना आपको कठिन नही हुआ। फिर भी यह कुछ कम आश्चर्य की बात न थी कि जो सफल व्यापारी सभी बाजारो पर छाया हुआ था, जो सट्टे के बाजार का बेताज का बादशाह था और जिसके तेज से व्यापार मे समुद्र के ज्वार-भाटे के समान उतार-चढाव होता था, वह एक दम सट्टे से हाथ खीच ले। बात यह थी कि सेठ

साहब किसी लहर में पड कर सट्टे के शिकार न हुये थे। अपने विवेक को जागृत रखते हुये ही आप सट्टे-फाटके का खेल खेलते थे। उसकी बुराइयों की भी आपको स्पष्ट कल्पना थी। आप जानते थे कि यह कोई श्रेष्ठ-व्यापार नही है। इन दबी हुई भावनाओं को जागृत होने का समय तब मिला, जब इन्दौर मे सम्वत् १९७९ मे अखिल भारतवर्षीय अग्रवाल महासभा का चौथा वार्षिक अधिवेशन अमलनेर के यशस्वी उद्योगपति श्रीयुत प्रतापजी सेठ के सभापतित्व मे हुआ। उसमे सट्टे के विरोध मे भी एक प्रस्ताव रखा गया था। स्वागत समिति के मन्त्री श्री हजारीलालजी जैन ने यह प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुये कहा था कि "मेरी समझ से अग्रवाल जाति के तीन-चौथाई लोग इस फाटके के धन्धे मे फंसे हुये है। मारवाडी अग्रवालो मे इसका अधिक जोर है। कलकत्ता और बम्बई मे तो यही मुख्य व्यापार है। लोग कह सकते है कि महासभा तो हमारा व्यापार ही चौपट करना चाहती है। परन्तु सच्चे व्यापार को कौन रोकता है? प्रस्ताव मे भी तो उसका निर्देश किया गया है। फाटके की बदौलत एक आदमी तो कोडपति अवश्य बन जाता है, किन्तु कितने ही करोडो से हाथ धोकर माथे पर हाथ धर कर रह जाते है। सम्भव है कि किसी समय रेल आदि न होने से इसको चालू किया गया हो। इसीलिये एक मास की नियत मुद्दत पर माल खरीदा बेचा जाता था, जिससे कि ठीक अवधि मे उसको यथास्थान पहुँचा दिया जा सके। यही प्रथा बिगड कर अब किस भयानक रूप मे जा पहुँची है। घर मे तो रुई की एक गांठ भी नही है और बेची जाती हैं हजारो। कपडे आदि का सट्टा भी इसी प्रकार किया जाता है। सट्टे को फाटके का रूप मिल कर वह एक जुआ बन गया है और उसको रोकना आवश्यक हो गया है। जुये से पाण्डवो की जो दुर्दशा हुई, उसको कौन नही जानता। कोरा प्रस्ताव पास कर लेने से तो उसका अन्त न होगा। यदि यहां पधारे हुये एक सौ भाई भी उसको छोडने की प्रतिज्ञा कर सके, तो उसका थोडे ही दिनो मे सहज मे अन्त हो सकता है।"

सेठ साहब भी सभामण्डप मे उपस्थित थे। आपसे प्रस्ताव पर कुछ बोलने के लिये कहा गया। आपने अग्रवाल न होते हुये भी उसका समर्थन अत्यन्त जोरदार शब्दो मे किया। आपने कहा कि "आप लोगो को यह बडे ताज्जुब की बात मालूम होती होगी कि जिस काम को मै स्वयं करता हूँ और जिसमे मैं स्वयं रंगा हुआ हूँ, उसीका खण्डन करने के लिये मै यहां खडा हूँ। इस प्राणी के लिये संसार मे चार पदार्थों धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को सिद्ध करने क लिये धर्मग्रन्थो मे कहा गया है। हमारे जैन धर्मशास्त्रो मे इस भूगोल मे दो सूर्य और दो चांद माने गये है। दो सूर्य-चाँद ही नही है, अपितु चारो दिशाओं मे चार दीपक रख दिये गये है, जिनसे इनके प्रकाश मे मनुष्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारो का सम्पादन कर सके। कुछ लोग यह भी कह सकते है कि मै तो अग्रवाल नही हूँ। मै अग्रवालो की सभा मे क्यो बोल रहा हूँ। पर, भाइयो! यह अकेले अग्रवालो की ही नही, मेरी भी सभा है। मै तो सब भाइयो का चाकर हूँ। मेरी योग्यता नहीं और न मेरा चरित्र ही इतना ऊंचा है कि मै आप विद्वानो को उपदेश दे सकूं। थोडा-बहुत अनुभव मैने अवश्य ही प्राप्त किया है। उसे ही आप सबके सामने उपस्थित करना चाहता हूँ। मेरा यह अनुभव है कि सट्टा या फाटका न केवल हमारे इस देश हिन्दुस्तान मे, किन्तु यूरोप और अमेरिका मे भी जोरो पर है। पर, हमे तो अपने पैरो के सामने देखना है, दूसरो की ओर नही। उनमें एकता बहुत है। वे बडी-बडी कम्पनियां बना कर दुनिया मे फायदे से काम करते है। मैं इसी काम में रंगा हूँ। इसी से मैने सारी सम्पत्ति पैदा की है। पर, दिल से मै इससे घृणा करता हूं और भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सद्बुद्धि दे कि इससे मेरा जल्दी ही पिण्ड छूट जाय। अपने लिये तो मै भगवान से प्रार्थना करता ही हूं, किन्तु अपनी सन्तानो को भी इसे एक दम छोड जाने को कह जाऊंगा। हमारे देश के कितने ही युवक इस अनर्थ मे फंस कर इज्जत-आबरू सब कुछ खो देते हैं। घर वालो से वे चोरी तक करते है। नौकर गुमाश्ते आदि भी चोरी के चक्कर मे इसी के कारण पड जाते है। मै इसे निहायत घृणा की दृष्टि से देखता हूँ।

धन पैदा करना जितना कठिन है, उससे भी कही अधिक कठिन है उसकी रक्षा करना। इसलिये सच्चे व्यापार मे ही सन्तोष मानना चाहिये। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मुझे ऐसी बुद्धि दें कि मै जल्दी ही इस बुरे व्यापार मे छुट्टी प्राप्त कर लू।" सट्टे-फाटके मे रंगे होने पर भी इस भाषण से सेठ साहब के मनोगत भावो का पूरा पूरा पता मिल जाता है। सुनने वाले चकित रह गये कि आप इस व्यापार को छोडना चाहते हैं, जब कि करोडों धन आपने इसी से पैदा किया है।

इस भाषण के बाद भी सट्टे का रंग आप से जल्दी उतरा नही। चार-पांच वर्ष और उसी मे बीत गये। उसकी बुराई को स्वीकार करते हुये भी आपने उसको छोडने की न तो घोषणा की थी और न उसके लिये शपथ ही ली थी। सम्वत् १९८२ तक सट्टे मे काफी उथल-पुथल रही। विलायत और अमेरिका के वायदे के व्यापार में विशेष घटा-बढी हुई। सेठजी भी घाटे के चक्कर मे आगये और आपको भी बहुत कुछ खो देना पडा। अग्रवाल महासभा मे प्रगट किये गये विचारो को इससे फिर बल मिला। सम्वत् १९८२ मे आप किसी काम से बम्बई गये हुये थे। वहा ही आपको सट्टे से हाथ खींच लेने की आत्मप्रेरणा हुई। फिर भी आपने केवल पांच वर्ष के लिये ही उसको छोडने का संकल्प किया। इस संकल्प पर भी सुनने वाले आश्चर्यचकित रह गये। अनेकों को तो सुनने पर विश्वास भी न हुआ। पर, संस्कारी पुरुष के लिये कोई संकल्प कर लेना और उसको दृढता के साथ निभा लेना कठिन नही है। सेठ साहब ने सट्टा-फाटका यहां तक छोडा कि भावो के तार मंगाने भी बन्द कर दिये। तब तो और अधिक आश्चर्य प्रगट किया जाने लगा। साहस के समान सयम के भी आप महाधनी सिद्ध हुये। पांच वर्ष तक सकल्प पूरी तत्परता के साथ निभाया गया।

सट्टे का परित्याग

पांच वर्ष पूरे हुये नही कि सेठ साहब फिर मैदान मे उतर आये। पर, टूटी हुई शृंखला फिर जुड न सकी। अच्छा होता कि उसको जोडने का प्रयत्न किया ही न जाता। समय और परिस्थितियो ने आपका साथ न दिया। वे भी मानो आन्तरिक प्रेरणा के ही अनुकूल बन गईं। लाभ न होकर सेठ साहब को हानि ही उठानी पडी। अनुकूलता न देख कर आपके हृदय मे फिर उपराम वृत्ति पैदा हुई। आपके हितैषियो ने भी आपको उससे अलग हो जाने की ही सलाह दी। परिणाम यह हुआ कि आपने १९९० मे आयुभर के लिये सट्टे का परित्याग कर दिया। उसका विचार तक करना आपने छोड दिया। वर्षों की बीमारी इस बार ऐसी छूटी कि फिर आक्रमण न कर सकी। 'बीमारी' इसलिये कि सट्टे का व्यसन वस्तुत रोग ही है, जो खाते-पीते, सोते-जागते चौबीसो घण्टे घेरे रहता है। उसी के सकल्प-विकल्प मे आदमी डूबा रहता है। चोट खाकर भी आदमी सभलता नही। यह असाध्य-सी बीमारी व्यसन ही तो है। कितने ही करोडपति इसी के कारण कगाल बन गये। सेठ साहब ठीक समय पर संभल गये। वह आन्तरिक प्रेरणा थी। अग्रवाल महासभा मे प्रगट किये गये विचारो को मूर्त रूप धारण करने मे ग्यारह वर्ष लग गये। इसी से इस रोग के असाध्यरूप का परिचय मिलता है। मृगतृष्णा के पीछे भागनेवाले हरिणा की तरह मनुष्य भी सट्टे की मृगतृष्णा मे फंसा रहता है। पर, आपने अपने पर संयम से नियन्त्रण पा लिया और सट्टे की मोहमाया से बाहर निकल ही तो आये।

दिग्विजय

सेठ साहब का व्यापारिक जीवन अविचल साहस, अटूट धैर्य, अगद की-सी दृढता, स्पष्ट दूरदर्शिता, अनोखी सूझ-बूझ, अक्षय-निधि पैदा करने की तीव्र महत्वाकांक्षा और उसको पूरा करने के अथक उद्योग की दृष्टि से आदर्श और अनुकरणीय है। सफलता आपने जो प्राप्त की, उसे क्षत्रियो की भाषा मे 'दिग्विजय' कहा जा सकता है। सिकन्दर और नैपोलियन भी अन्त मे पराजित हो गये, किन्तु आपने पराजय स्वीकार नहीं की। मुह मोडना

आपने सीखा नही। वैश्य के लिये कहा गया है कि वह सैकडो हाथो से पैदा करे। परन्तु आप तो सहस्त्रबाहु हो कर व्यापार के क्षेत्र मे उतरे और अतिरथी के समान आपने विजय-प्राप्त की। कमाने से अधिक व्यापारी की खोने के समय परीक्षा होती है। वह उसके लिये वही काल होता है, जो रामचन्द्र के लिये राजसूय यज्ञ की पूर्ण तय्यारी हो जाने के बाद बनवास के लिये था। सेठ साहब के व्यापारिक जीवन मे भी ऐसे अवसर आये और उनको धैर्य, साहस व शान्ति के साथ पार करने मे ही तो आपकी सफलता का रहस्य छिपा हुआ है। 'जोखिम' उठाना इसी का तो नाम है। जो व्यापारी जोखिम नही उठा सकता, वह सफल भी नही हो सकता। खोने के समय ही जोखिम उठाया जाता है। यह वह फिसलन है, जहां से पैर रपटने के बाद संभलना प्रायः असम्भव हो जाता है। पैर रपटा कि हर गंगा की सी स्थिति उस व्यापारी की हो जाती है, जो इस नाजुक अवसर पर धैर्य व साहस खो बैठता है। सेठ साहब ने ऐसे अवसरो पर ऐसे धैर्य व साहस से काम लिया है कि किसी ने कभी आपके चेहरे पर विषाद की रेखा तक नही देखी। चिन्ता ने कभी आपको सताया नही। हृदय आपने छोटा किया नही। आत्मविश्वास की मूर्ति बन कर आप अत्यन्त विपरीत और सर्वथा प्रतिकूल परिस्थितियो मे से पार निकल गये। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो यह उपदेश दिया है कि—

"सुखदु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्वस्व नैव पापमवाप्स्यसि।"

पाप का तात्पर्य यहां निराशा, निरुत्साह तथा असफलता समझना चाहिये। व्यापार मे इसी भावना से आपने पदार्पण किया था। इसीलिये करोडो की सम्पत्ति घर मे आने पर भी आप 'विगतस्पृह' और खोने का अवसर उपस्थित होने पर भी 'अनुद्विग्न' बन कर धीर-वीर बने रहते थे। 'दु:खेश्वनुद्विग्नमन· सुखेषु विगतस्पृह.' के ढांचे मे ही मानो आपने अपना जीवन ढाला हुआ है। आपके व्यापारिक जीवन की सफलता का यही रहस्य है।

मालवा के व्यापारी जगत मे आप पहिले करोडपति हैं। इसीलिये बोलचाल की भाषा मे आपको 'धनकुबेर' नाम दे दिया गया।

: ४ :

उद्योग-धंधे

"सर सरूपचन्दजी हुकमचन्दजी, जिनकी अध्यक्षता मे इस प्रदर्शनी की आयोजना हुई है, भारतीय उद्योग-धन्धों का श्रीगणेश करने वालो के पथप्रदर्शक या अगुआ हैं। हुगली के तट पर बनी हुई सबसे बडी जूट मिल के वे व्यवस्थापक, सचालक और मालिक हैं। कलकत्ता के उपनगर मे बिजली से चलने वाला उनका फौलाद का जो कारखाना है, उसको देख कर मुझ जैसा वैज्ञानिक भी हैरान हो जाता है। जिस समय हम लोगो ने स्वदेशी उद्योग-धन्धों के महत्त्व को ठीक-ठीक समझा भी न था, उससे भी बहुत पहिले सर हुकमचन्दजी ने अपनी दूरदर्शिता से कपडे की मिलो का महत्त्व जान लिया था और उनका श्रीगणेश भी कर दिया था। उनकी औद्योगिक हलचलों का क्षेत्र सिर्फ महाराज होलकर के राज्य तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सारे देश मे फैला हुआ है। यही कारण है कि आज कलकत्ता और बम्बई भी उनके अदम्य उत्साह तथा कार्यकुशलता का वैसा ही परिचय दे रहे हैं, जैसा कि उनका यह इन्दौर नगर।"

ये शब्द सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक, स्वदेशी-आन्दोलन के अगुआ और महान देशभक्त आचार्य श्री प्रफुल्लचन्द्र राय ने १९३३ के जनवरी मास मे इन्दौर में आयोजित स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुये कहे थे। इसी प्रकार १९३० में मद्रास मे भी स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुये आचार्य महोदय ने कहा था कि "सर हुकमचन्दजी ने यद्यपि कालेज की शिक्षा प्राप्त नही की है, तो भी अपने साहस और बुद्धिबल से आपने कलकत्ता के पास बिजली से चलने वाला स्टील बेल्डिंग कारखाना खोल दिया है। हिन्दुस्तान मे सफलतापूर्वक चलने वाला इस देश का यह एक ही कारखाना है।' आचार्य राय अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक थे। कलकत्ता का सुप्रसिद्ध दवाइयों का बडा कारखाना "बगाल केमिकल एण्ड फार्मास्युटिकल वर्क्स" आपका ही स्थापित किया हुआ है। स्वदेशी उद्योग-धन्धो में हाथ डालने वाले हर व्यक्ति को आप प्रोत्साहन दिया करते थे। वैज्ञानिक अत्यन्त रुखी प्रकृति का व्यक्ति होता है। सहज मे वह किसी की सराहना नही करता। आचार्य राय भी इसके अपवाद नहीं थे। इसलिये उनके मुह से सेठ साहब की सराहना मे कुछ कहा जाना बहुत अर्थ रखता है। वे सेठ साहब को 'देश के करोडों क्षुधार्थियों को अन्न देने वाला" कहा करते थे। स्वदेशी उद्योगधन्धो का अभिप्राय भी यही था कि स्वदेश का पैसा स्वदेश मे रहे, देशवासी भूखे न मरें और देश मे कगाली को पैर पसारने का अवसर न मिले। व्यापार-व्यवसाय में सेठ साहब ने करोडों का जो लाभ प्राप्त किया, वह उनके लिये व्यक्तिगत रूप में जितना समृद्धिशाली सिद्ध हो सकता था, उतना दूसरो के लिये नही। लेकिन, औद्योगिक विकास से प्राप्त होने वाली समृद्धि मे जहा हजारो की भूख मिटती थी, वहा देश भी समृद्ध होता था। इसीलिये सेठ साहब का औद्योगिक स्वरूप व्यापारिक स्वरूप से कहीं अधिक आकर्षक और महान् है। आचार्य राय सरीखों का ध्यान भी उसकी ओर आकर्षित हुये बिना नहीं रहा।

मालवा मिल

मालवे मे अफीम के व्यापार का बन्द होना भी कितना श्रेयस्कर हुआ ? उसका ही यह परिणाम हुआ कि सेठ साहब की व्यापारिक प्रतिभा और कल्पना की जलधारा को अपने लिये मार्ग ढूंढ निकालना आवश्यक हो गया। यदि कही सेठ साहब अफीम के व्यापार मे ही फंसे रहते, तो उद्योग-धन्धो की ओर आपका ध्यान न गया होता और इन्दौर का कदाचित औद्योगिक केन्द्र के रूप मे ऐसा विकास भी न हुआ होता। सेठ साहब ने व्यापारिक क्षेत्र की तरह औद्योगिक क्षेत्र मे भी कमाल कर दिखाया। इसीलिये आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने भी आपकी भूरि-भूरि सराहना की। 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः' का कथन औद्योगिक क्षेत्र मे भी आप पर चरितार्थ हुआ। औद्योगिक क्षेत्र मे चमत्कारपूर्ण सफलता प्राप्त करने का योग भी आपकी जन्मपत्री में ही लिखा हुआ था। स्वभाव से आप उद्यमी ही नही, किन्तु उद्योगशील भी है। आपके हृदय मे यह भावना पैदा हुई कि मालवे की रुई का कपडा यहां ही क्यो न बनाया जाय ? यहां की रुई विलायत जाकर वहां से यदि उसका कपडा बनकर आ सकता है और वहां के लोग उसको यहां बेच कर धन पैदा कर सकते हैं, तो उसका कपडा यहां ही क्यो न बनाया जाय और लाभ उठाया जाय ? यह विचार और कल्पना ही इन्दौर मे खड़ी हुई नौ सूती मिलों की जननी यानी जन्म देने वाली है। अपनी इस कल्पना को मूर्त रूप देने के लिये सेठ साहब ने सन् १९०० मे इन्दौर मालवा कम्पनी कायम की। कम्पनी की पूंजी पन्द्रह लाख रखी गई। जमीन भी ले ली गई। दो कठिनाइयां थीं। एक तो यह कि आपको स्वयं तो मिल-संचालन का कुछ अनुभव न था और दूसरे राज्य मे लिमिटेड कम्पनियो की रजिस्ट्री होने का कानून न था। पहिली कठिनाई बम्बई के सेठ सर करीमभाई इब्राहीम को कम्पनी का मैनेजिंग एजेण्ट नियत करके और दूसरी कठिनाई कम्पनी को बम्बई मे रजिस्टर्ड करके वहां ही उनका केन्द्रीय कार्यालय कायम करके हल की गई। सेठ साहब स्वयं कम्पनी के स्थायी डायरेक्टर नियुक्त हो गये। अपनी सीमा को जानते हुये दूसरे के अनुभव से लाभ उठाने वाला कभी भी धोखा खा नहीं सकता। मिल निरन्तर उन्नति करती चली गई। उसकी उन्नति से औरों को भी प्रोत्साहन मिला। यूरोप के पहिले महायुद्ध मे कम्पनी के शेयर का भाव ६००) तक चला गया था।

हुकमचन्द मिल

मालवा मिल की सफलता से सेठ साहब इतने उत्साहित हुये कि आपने अपनी एजेंसी मे मिल खोलने का निश्चय किया। ठीक चार ही वर्ष बाद १९१२ मे आपने १५ लाख की पूंजी से एक और मिल खोल ली, इसका नाम 'दि हुकमचन्द मिल्स' रखा गया। इसका शिलारोपण और उद्घाटन इन्दौर के तत्कालीन महाराजा साहब सर तुकोजीराव होलकर के हाथो से सम्पन्न कराया गया। महायुद्ध के कारण इसके माल की खपत भी खूब हुई और इसके शेयर की कीमत भी नौ सौ रुपयों पर पहुँच गई। दूसरे महायुद्ध मे इसके शेयर की कीमत २४००) पर जा पहुँची थी। इन दिनो मे एक वर्ष का मुनाफा भी एक करोड रुपया हुआ था। जिस मिल की मूल पूंजी केवल १५ लाख रुपया थी, उसका एक वर्ष का मुनाफा एक करोड रुपया होना असाधारण सफलता थी। इस मिल के काशमीरे कपड़े और रंगीन माल ने सारे ही देश मे नाम पैदा किया है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, बंगाल मे ही नही, किन्तु अफगानिस्तान तथा बिलोचिस्तान तक मे इसके कपड़े की अच्छी मांग और अच्छी खपत थी।

मिल ने सुव्यवस्था और कार्यपटुता से इतनी पूंजी जमा कर ली कि सन् १९१९ ईस्वी मे इसके रिजर्व फण्ड से इसी मिल की शाखा के रूप मे एक मुनाफा मिल और खोल दी गई। श्री केशोरावजी पुराणिक और जैनजातिभूषण लाला हजारीलालजी जैन ने प्रारम्भिक दिनो मे इसका कार्य इतनी तत्परता के साथ चलाया कि

सेठ साहब ने प्रसन्न होकर आप दोनो को हुकमचन्द मिल्स के क्रमशः १०० और ५० फुल्ली पेड अप शेयरर्स इनाम मे दिये। अन्य कर्मचारियो को भी डबल बोनस दिया गया। इस मिल मे कुल ११७६ करघे और ४०५१२ तकुये है। इसकी गणना भारत की प्रथम श्रेणी की मिलो मे की जाती है। श्रीमान् आर सी. जाल एम ए. एल एल बी इसके सफल और कुशल मैनेजर हैं।

राजकुमार मिल

इस दूसरी मिल की स्थापना के तीन ही वर्ष बाद एक और मिल खडी की गई। उसका नाम अपने सुयोग्य पुत्र भैयासाहब श्री राजकुमारसिंहजी के नाम पर "दि राजकुमार मिल्स" रखा गया। प्रारम्भ मे मिल का काम कुछ ढीला रहा। शेयरो का भाव गिर कर ४० रु० पर आ गया, किन्तु बाद मे भाव चढा और इस महायुद्ध मे वह ५०० रु० तक बढ गया।

उज्जैन में हीरा मिल

इन्दौर के बाद आपका ध्यान उज्जैन की ओर भी गया। उज्जैन भी वस्तुत मालवा का ही हिस्सा है। फिर भी वह ग्वालियर राज्य के आधीन था। स्वर्गीय ग्वालियर महाराज माधवराव सिन्धिया स्वदेशी उद्योगधधो के अन्यतम समर्थक थे। ग्वालियर मे अनेक उद्योग उनके संरक्षण मे शुरू हो चुके थे। उज्जैन की ओर भी उनका ध्यान था। सेठजी पर भी उनकी कृपा थी। उन्होने ही सेठजी को उज्जैन मे मिल की स्थापना करने के लिये प्रेरित किया था। आपने हीरा मिल्स की स्थापना का उपक्रम किया ही था कि सन् १९२६ मे महाराज साहब स्वर्ग सिधार गये। इसीलिये मिल का काम कुछ दिन के लिये रोक देना पडा। अन्त मे सन् १९२८ सम्वत् १९८५ कार्तिक वदी ३ को महारानीजी साहिबा श्री चिनकूराजा साहिबा (वर्तमान महाराज की पूजनीया मां साहिबा) के हाथो से मिल का शिलान्यास बडे समारोह के साथ कराया गया। महारानी साहिबा स्पेशल गाडी से उज्जैन पधारी थी। इसमे सारा सामान सर्वथा नवीन ढग का लगाया गया। मिल का बारीक और रगीन कपडा खूब पसंद किया गया।

उज्जैन मे विनोद मिल्स की भी स्थापना हो चुकी थी, किन्तु उसकी उन्नति का श्रेय भी सेठ साहब को है। मिल के मालिक झालरापाटन के श्री विनोदीरामजी बालचन्दजी के यशस्वी स्वत्वाधिकारी राय-बहादुर, वाणिज्यभूषण, साहित्यमनीषि रायबहादुर सेठ लालचन्दजी सेठी का शुभ विवाह सेठ साहब की पहिली कन्या श्रीमती रत्न प्रभाबाईजी के साथ हुआ था। इसीलिये सेठ साहब उनके काम को भी अपना ही काम समझते थे। १९१४ मे महायुद्ध शुरू होने पर मिल की हालत मे अन्य मिलो के समान कुछ सुधार या उन्नति न हुई। यह सेठ साहब को बहुत बुरा मालूम हुआ। आपने सेठीजी को अनेक लम्बे-लम्बे पत्र लिखकर स्वय अपने हाथो मे मिल का काम संभालने का आग्रह किया। आपने यहा तक लिख दिया कि काम सभालने के लिये पाच-दस लाख, जितने की भी जरूरत होगी, मै मदद करने को तैयार हू। पर, मिल का काम एक दम संभालना चाहिये। आपके लिखने का प्रभाव हुआ और आपने १२ जून १९१८ को स्वयं उज्जैन जाकर मिल का काम संभाल लिया। मिल का प्रबन्ध सभला कि माल भी अच्छा पैदा होने लगा, शेयरो की कीमत भी बढने लगी और इतना लाभ हुआ कि पास की एक दूसरी मिल 'क्षिप्रा मिल' को भी ४ लाख ६१ हजार मे खरीद कर 'दीपचन्द मिल्स' के नाम से चालू किया गया और विनोद मिल के अन्तर्गत ही उसका प्रबन्ध ले लिया गया। सेठ साहब की प्रेरणा का कितना अद्भुत परिणाम हुआ? डूबती हुई मिल ने एक और डूबी हुई मिल का भी उद्धार कर दिया।

कलकत्ता में जूट मिल

इन्दौर और उज्जैन मे प्राप्त की गई इस सफलता से भी अधिक बडी सफलता वह थी, जो सेठ साहब

ने कलकत्ता के औद्योगिक क्षेत्र मे प्राप्त की थी। कलकत्ता की पहिली यात्रा मे वहां कोठी तो खोल दी गई थी और जूट-पाट की एजेन्सी का काम भी शुरू कर दिया गया था। लेकिन, आपके मन मे जूट की मिल खोलने का विचार भी पैदा हो चुका था। हुकमचन्द मिल के मुनाफे मे १९१९ मे एक और मिल खोल देने के बाद आपका उत्साह बहुत बढ गया। उसके बाद आप कलकत्ता गये, तो इस विचार को मूर्त रूप देने का निश्चय किया। सबसे पहिले सन् १८५५ मे श्रीलंका के एक उद्योगपति श्री आकलैण्ड ने कलकत्ता मे जूट मिल खोली थी। तब से अंग्रेजो या विदेशियो का ही जूट मिलो पर एकाधिकार था। जूट मिल एसोसियेशन मे भी उन्ही का बोलबाला था। सच तो यह है कि इस उद्योग पर एकाधिकार बनाये रखने के लिये ही इस एसोसियेशन का संगठन किया गया था। कलकत्ता मे जूट का काम इतनी तेजी पर था कि केवल सन् १९१० मे जूट की नौ नई मिलें स्थापित हुई थीं। जूट के उद्योग मे इतनी उन्नति होने पर भी भारतवासियो का उसमे प्रवेश नही हो सका था। १९१९ तक यही स्थिति रही। उस वर्ष कलकत्ता जाने पर सेठ साहब ने नैहाटी मे अपनी जूट मिल खोलने का निश्चय किया। दी हुकमचन्द जूट मिल्स नाम से ८० लाख की पूंजी की कम्पनी खडी की गई। सेठ साहब का नाम कम्पनी की साख के लिये काफी था। समाचार पत्रो मे कोई विज्ञापन नही किया गया। दलालो को दलाली नही दी गई। कम्पनी के कागज भी तैयार न हुये थे। सब ओर धूम मच गई। बात की बात मे ४॥ करोड के शेयरो की दरख्वास्तें आ गईं। पांच की मांग करने वाले को मुश्किल से एक ही शेयर दिया जा सका। कोई छोटा काम करना तो सेठ साहब जानते ही न थे और सफलता मानो हाथ जोडे आपके द्वार पर खडी रहती थी। इसके मामूली शेयर की कीमत ७॥) से बढकर सहसा ही ३२) पर पहुँच गई और शीघ्र ही मिल के मुनाफे से नं० २ और नं० ३ की मिलें भी खोल दी गईं। जूट के उद्योग मे काम करने वाली यह पहिली भारतीय मिल थी। अथवा यह कह सकते है कि सेठ साहब ही सबसे पहिले भारतीय थे, जिन्होने इस क्षेत्र मे प्रवेश करके भारतीयो का माथा गौरवान्वित किया था और अंग्रेजो के एकाधिकार पर सफल छापा मारा था। इसमे दस हजार मजदूर काम करते थे। छः हजार हार्स पावर की बिजली काम में लाई जाती थी। ३०० करघो से शुरू की गई मिल मे ६-७ वर्ष मे ही २१२५ करघे चलने लग गये थे और ८० लाख की पूंजी की मिल की कीमत सवा दो करोड पर पहुंच गई थी। १९३४ मे इसमे सर्वथा नयी मशीने बिठाई गईं, जिनका आविष्कार उसी वर्ष हुआ था। मिल के प्रबन्ध के लिये अपने मुनीम श्री हरकिशनदासजी भट्टड की साझेदारी मे सर सरूपचन्द हुकमचन्द एण्ड कम्पनी गठित की गई। सारे संसार की जूट मिलो मे यह तीसरे नम्बर की मिल समझी जाती थी। भारत मे तो निर्विवाद रूप से इसका पहिला स्थान था।

लोहे का कारखाना

जूट मिल मे प्राप्त हुई सफलता से प्रेरित होकर सेठ साहब ने २५ लाख की पूंजी से "हुकमचन्द आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड" नाम की कम्पनी खडी की। इसमे भी श्री हरकिशनदास भट्टड का हिस्सा रखा गया। लोहे का यह कारखाना भी अपने ढंग का एक ही था। आचार्य राय इस पर बहुत अधिक मुग्ध थे और अपने भाषणो मे प्रायः इसकी चर्चा किया करते थे। रेलवे कम्पनियो को इस कारखाने का काम बहुत अधिक पसन्द था। उनके काम का ढेर लगा रहता था और उनके आर्डर पैंडिग मे पडे रहते थे।

श्री हरकिशनदासजी भट्टड के बाद उनके पुत्र सर्वश्री शिवकृष्ण भट्टड, देवकृष्ण भट्टड, पन्नालाल भट्टड, और बुलाकीदास भट्टड ने उनका काम संभाला।

बीमा के क्षेत्र में

१९२९ मे सर सरूपचन्द हुकमचन्द एण्ड कम्पनी ने बीमे का काम शुरू किया और उसके लिये "हुकम-

चन्द इंश्योरेंश कम्पनी लिमिटेड" के नाम से एक कम्पनी खडी कर ली। आग, मोटर दुर्घटना और जिन्दगी के बीमे का काम शुरू किया गया।

१६३४ तक कलकत्ता का काम खूब फला-फूला। लक्ष्मी जूट मिल भी खरीद ली गई। परन्तु बाद मे बेच दी गई। सेठ साहब स्वय प्रति वर्ष कलकत्ता जाकर सारे काम-काज की देखभाल किया करते थे। परन्तु इधर तीन-चार वर्ष नही जा सके। इन्दौर मे भी काम काफी बढ चुका था। इन्दौर मे ही कपडा मिलो, हुकमचन्द मिल्स और राजकुमार मिल्स तथा उज्जैन मे एक कपडा मिल हीरा, मिल्स का सारा काम भी सर सरूपचन्द हुकमचन्द एण्ड कम्पनी की मैनेजिंग एजेंसी मे था। इनके अलावा अनेक जिनिंग फेक्टरियां और प्रेस भी जहां तहा थे। कुछ अन्य काम-काज खेता आदि का भी फैला दिया गया था। इसीलिए कलकत्ता के कामकाज की स्वयं देखभाल कर सकना आपके लिये संभव नहीं रहा। वैसे भी १६३४-३८ तक कलकत्ता मे भीषण औद्योगिक संकट रहा। १६३६ मे वह संकट चरम सीमा पर पहुच गया। भट्टड बन्धु उसको सभाल न सके। इसलिये सेठ साहब ने श्री बसन्तीलालजी कोठारिया को वहा भेजा। उन्होने वहा जाकर भट्टड बन्धुओ की साझेदारी समाप्त कर दी। हुकमचन्द जूट मिल की मैनेजिंग एजेंसी मे मेंसर्स रामदत्त रामकिशनदास को शामिल किया गया। हुकमचन्द स्टील कम्पनी मे भरतिया एण्ड कम्पनी को मैनेजिंग एजेंसी मे मिलाया गया। श्री ढेडराज भरतिया को बीमा कम्पनी का काम सौंप दिया गया। उनके स्वर्गवास के बाद उनके उत्तराधिकारी श्री सीताराम भरतिया उसका प्रबन्ध करते रहे। परन्तु १६४६ मे वे भी उसको संभालने मे असमर्थ होगये और फिर से उसका प्रबन्ध सर सरूपचन्द हुकमचन्द कम्पनी को अपने हाथो में लेना पड गया। उसके बाद से उसका प्रबन्ध एक डाइरेक्टर बोर्ड के हाथों मे है।

कम्पनी की अधिकृत पूंजी २५ लाख की है, जिसमे दस लाख कारबार मे लगी हुई हैं। भारत के जालन्धर, कानपुर, और मद्रास, अहमदाबाद, सूरत, बम्बई, अजमेर, दिल्ली, धनबाद आदि बडे-बडे शहरों मे आपकी शाखायें हैं।

कलकत्ता में नेताजी सुभाष रोड के ३८ नम्बर पर सेठ साहब का अपना शानदार भवन और जमीन आदि की काफी जायदाद है। मैसर्स हुकमचन्द राजकुमारसिंह लिमिटेड कलकत्ता के नाम से भी कारबार चलता है।

सूत, जूट और स्टील के उद्योग मे सेठ साहब ने वैसे ही यश सम्पादन किया, जैसे कि अफीम, रूई, सोना-चादी आदि के सट्टे मे किया था। सट्टे और फाटक का व्यापार तो फिर भी एक व्यसन या रोग था, किन्तु ये तीनो ही उद्योग स्वदेश के लिये अत्यन्त आवश्यक थे। स्वदेशी उद्योग-धन्धो को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ इनसे हजारो देशवासियो का पालन-पोषण भी होता था। यह अनुमान किया गया था कि सेठ साहब द्वारा संचालित मिलो मे कम से कम पन्द्रह-बीस हजार मजदूर तो काम करते ही होगे। इनके आश्रित परिवार वालो की सख्या गिनी जाय, तो सेठ साहब ७०-८० हजार देशवासियो का नित्य प्रति भरण-पोषण करने का पुण्य प्राप्त करते थे। इतने देशवासियो की अप्रत्यक्ष शुभकामना से सेठ साहब ने इतना यश एवं पुण्य संचय किया हो, तो इसमे आश्चर्य क्या है? सेठ साहब ने स्वदेश के औद्योगिक क्षेत्र पर अपनी चमत्कारपूर्ण सफलता की अमिट छाप सदा के लिये लगा दी है। जब भी कभी स्वदेशी के आन्दोलन का इतिहास लिखते हुये उसको सफल बनाने में सक्रिय सहयोग देने वाले महानुभावो के क्रियाकलाप का वर्णन किया जायगा, तब निश्चय ही उसमे सेठ साहब के यशस्वी नाम का उल्लेख अगुआ के रूप मे किया जायगा। भले ही सेठ साहब प्रत्यक्ष रूप से कभी उग्र राजनीतिक क्षेत्र मे नहीं आये, किन्तु स्वदेशी उद्योगधन्धो को प्रतिष्ठित करने के लिये किया गया यह

महान कार्य देशसेवा की दृष्टि से भी इतना अधिक महत्व रखता है कि आपकी गणना बिना किसी संकोच के महान देश सेवकों में भी की जा सकती है। एक देशी राज्य के नागरिक होने और स्वभावतः सामाजिक एवं धार्मिक व्यक्ति होने के कारण ही आपने राजनीतिक क्षेत्र मे प्रवेश नहीं किया। अन्यथा, आपने राजनीतिक क्षेत्र में भी नाम और यश अवश्य ही प्राप्त किया होता। फिर भी इन्दौर राज्य के राजनीतिक क्षेत्र मे आपके महान व्यक्तित्व का अपना विशिष्ट स्थान, मान और महत्व सदा ही रहा।

: ५ :

स्वदेश का उत्कट प्रेम

"प्रिय श्री हुकमचन्दजी साहब,

खादी के लिये सरदार वल्लभभाई की अपील आपने देखी होगी। उसी की एक कापी आपको भेज रहा हू। आप कृपया अपने यहा की म्यूनिसिपैलिटी तथा अन्य सज्जनों द्वारा खादी की खपत करवाने का प्रयत्न करेंगे, ऐसी आशा है। इस सम्बन्ध मे जितना काम किया जा सके, उतना ही करना आवश्यक है। परिणाम की सूचना मुझे वर्धा के पते पर भेजें।

जमनालाल बजाज का
वन्देमातरम्"

यह पत्र स्वर्गीय देशभक्त सेठ जमनालालजी बजाज ने सन् १९३१ के सितम्बर मास मे खादी के सम्बन्ध मे सरदार वल्लभ भाई पटेल द्वारा प्रकाशित उस अपील के नीचे ही लिखकर भेजा था, जो उन्होने १४ सितम्बर १९३१ को अहमदाबाद से कांग्रेस के अध्यक्ष अर्थात् राष्ट्रपति के नाते प्रकाशित की थी। स्वर्गीय सेठजी महात्मा गांधी के दाये हाथ माने जाते थे और खादी का जो प्रचण्ड आन्दोलन उन्होने १९२० मे शुरू किया था, वे उसके सर्वेसर्वा थे। अखिल भारतीय चरखा संघ के तत्वाधान मे खादी के उत्पादन और प्रसार का जो देशव्यापी आन्दोलन शुरू किया गया था, उसकी बागडोर तब सेठ जी के ही हाथो मे थी। इसीलिये सेठजी ने सर सेठ साहब को यह पत्र लिखकर उनसे खादी के प्रसार मे मदद चाही थी। महात्मा गान्धी ने हिन्दी के लिये सेठ साहब मे जो आशा की थी, वैसी ही आशा सेठजी ने खादी के सम्बन्ध मे सेठ साहब से की थी। यह इस पत्र से प्रकट है। लेकिन, कुछ लोगो को इस पर आश्चर्य हो सकता है कि जो व्यक्ति इतनी कपडा मिलो का मालिक हो और जिसके वैभव व उपभोग मे विदेशी पदार्थों की इतनी अधिक खपत हो, उससे ऐसी आशा किस प्रकार की जा सकती थी? ऐसे लोगो को विज्ञानाचार्य और स्वदेशी के उत्कट प्रेमी डाक्टर प्रफुल्लचन्द्रराय द्वारा इन्दौर मे १९३२ मे उद्घाटित की गई स्वदेशी प्रदर्शनी के अवसर पर स्वागताध्यक्ष के पद से दिया गया सेठ साहब का भाषण एक बार अवश्य ही पढ लेना चाहिये। वह भाषण इस ग्रन्थ के दूसरे भाग मे विशेष रूप से दिया जा रहा है। उसमे सेठ साहब ने कहा था कि "मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि खादी इस देश का प्राण है। गांवो के लोगो के लिये खाली समय का उपयोग करके दो पैसे दूसरे देशो को जाने देने से रोकने और अपनी अधूरी एवं नाकाफी कमाई मे मदद पहुंचाने वाला ऐसा कोई दूसरा साधन नही है। यही ऐसा उपाय है, जो दिन-ब दिन उजडने वाले गांवो की रक्षा कर सकता है और करोडो भूखो मरने वाले उनके निवासियो को बचा सकता है। इसलिये खादी का ज्यादा से ज्यादा प्रचार होना मै अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ।"
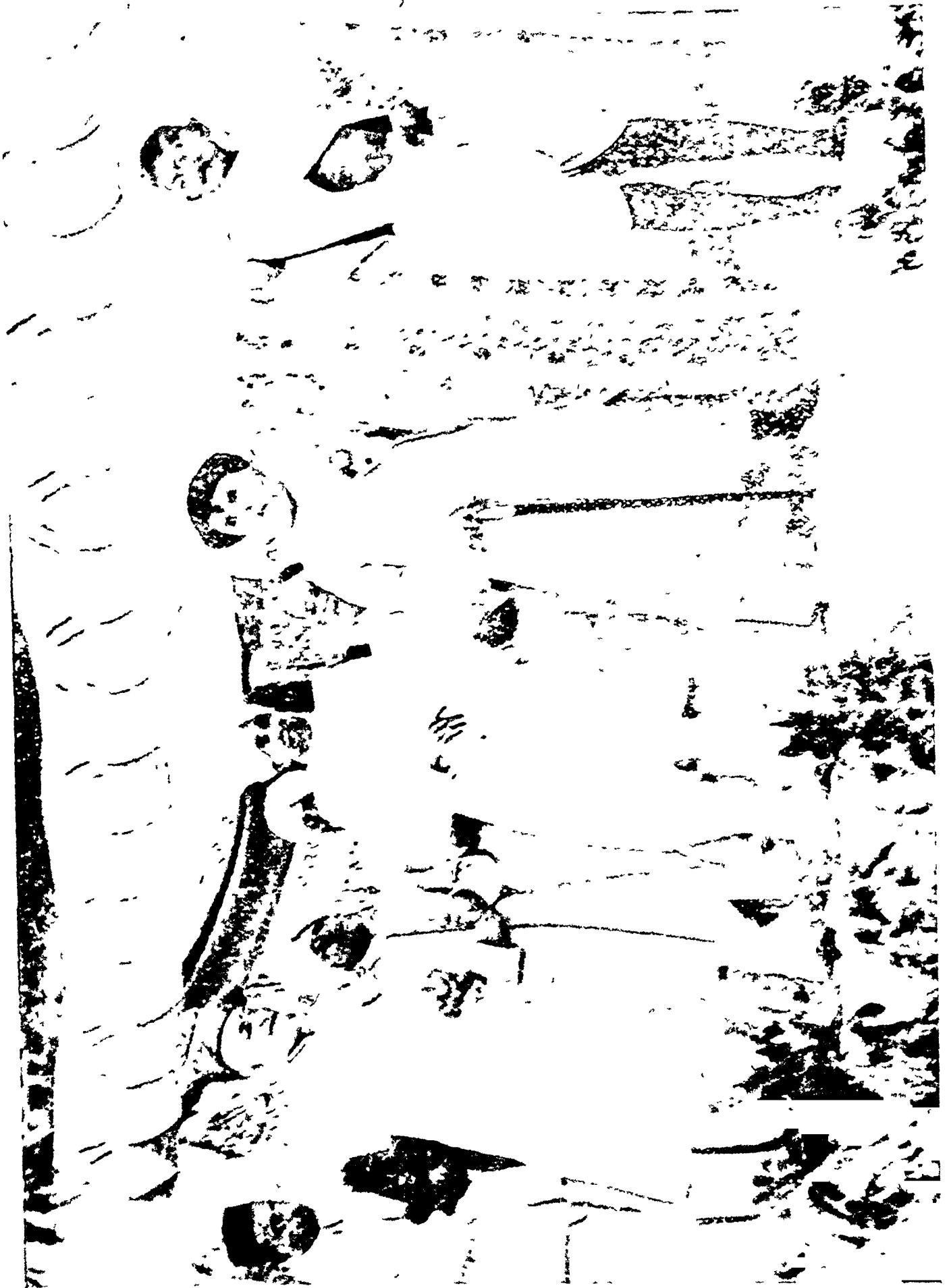
ग्रामोद्योग खादी प्रदर्शनी का सन् १९३५ में महात्मा गांधी ने उद्घाटन किया था। सेठ साहब, डा० सरयूप्रसाद और वैद्यवर कन्हालीराम जी द्विवेदी।
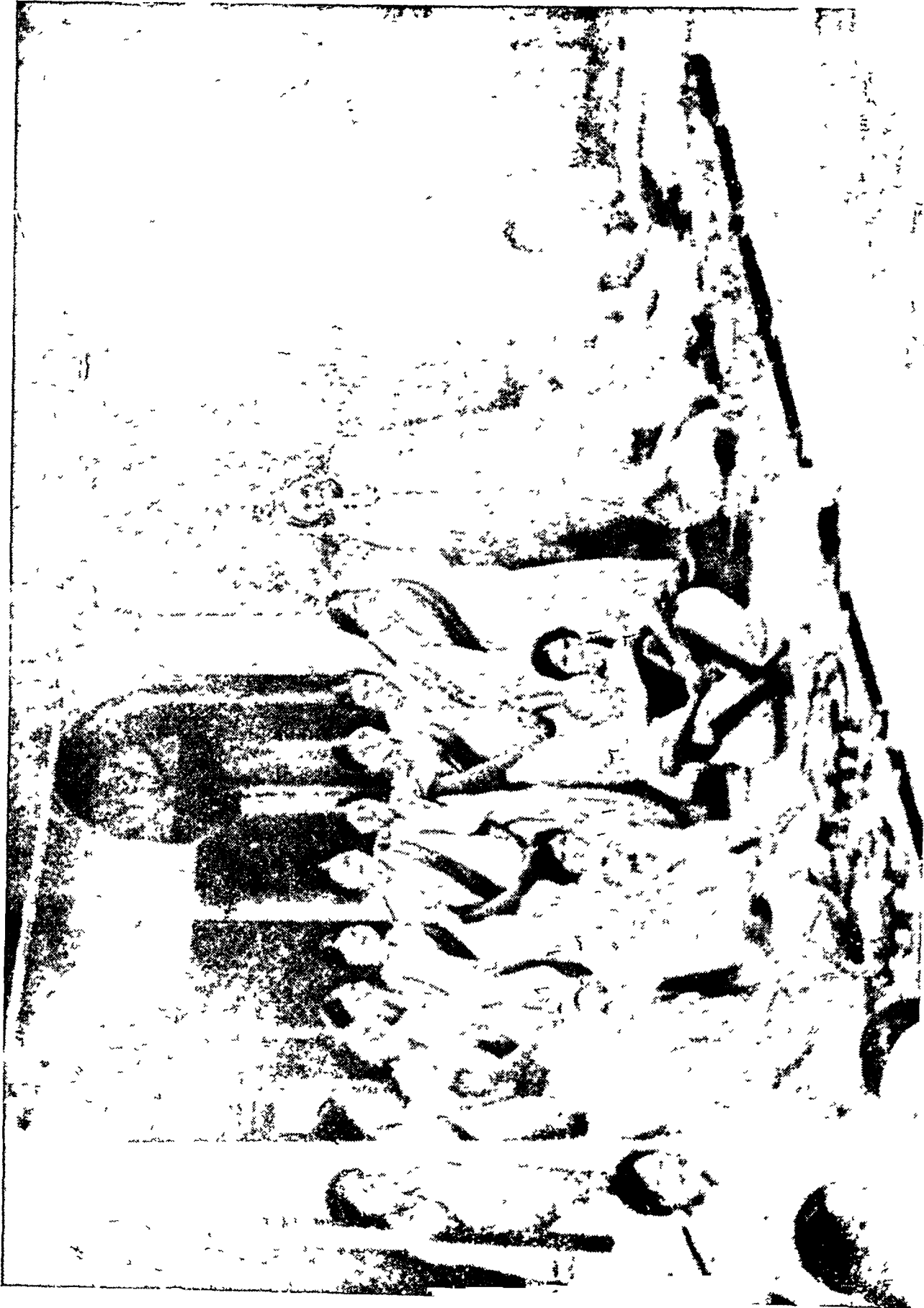
गांधी जी कस्तूरबा और मीरा बहेन आदि के साथ इन्द्रभवन में भोजन करते हुये। सेठ साहब पीछे खड़े हैं।
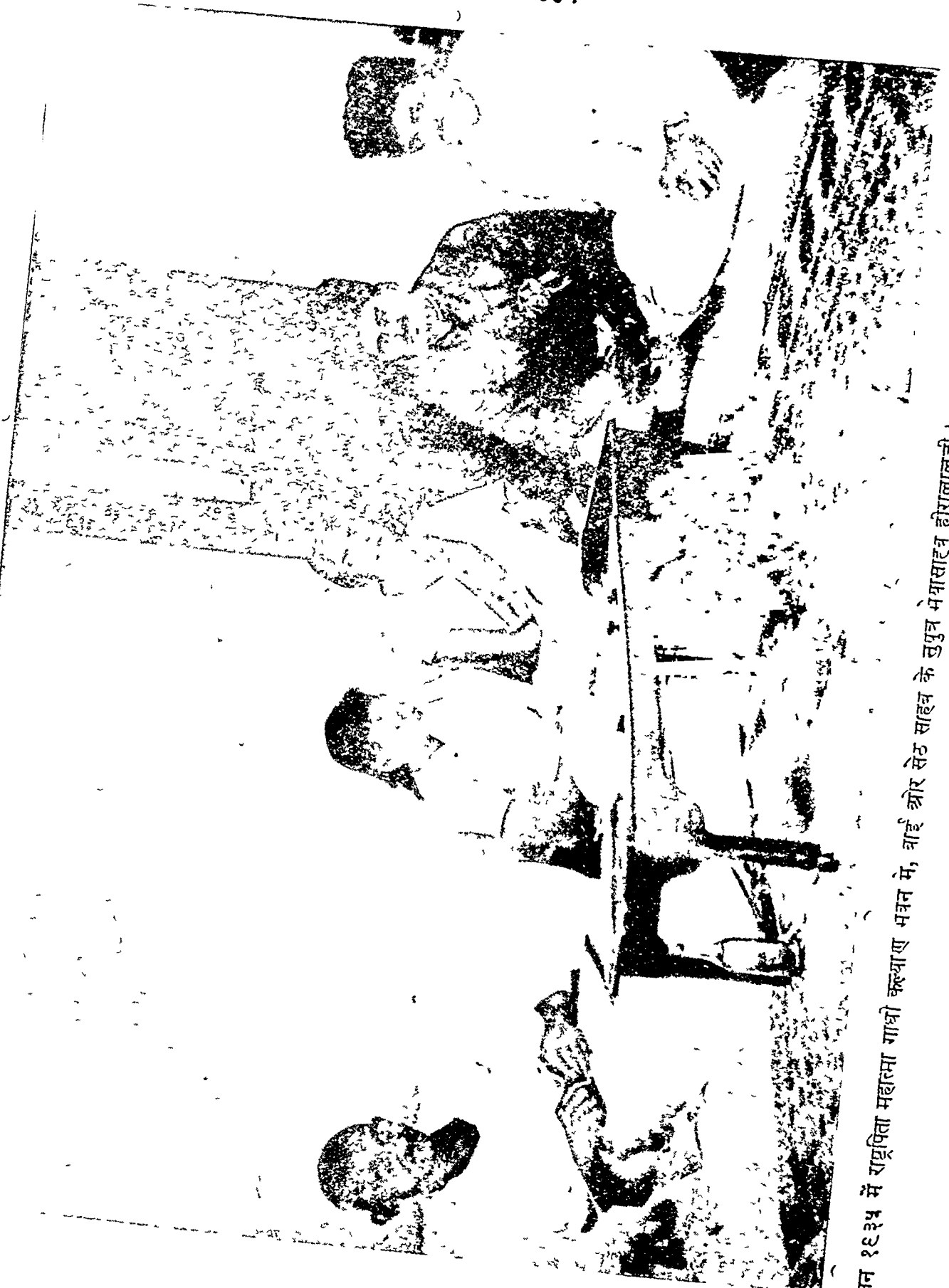
सन १९३५ में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी कल्याण भवन में, बाईं ओर सेठ साहब के सुपुत्र भैयासाहब हीरालालजी।

१९३५ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर माता कस्तूरबा गांधी का इन्द्र भवन में महिलाओं द्वारा स्वागत । एक ओर मीरा बहेन बैठी हैं और दूसरी ओर दानशीला सेठानी कंचनबाईजी (धर्मपत्नी सर सेठ हुकमचंदजी साहब) ।
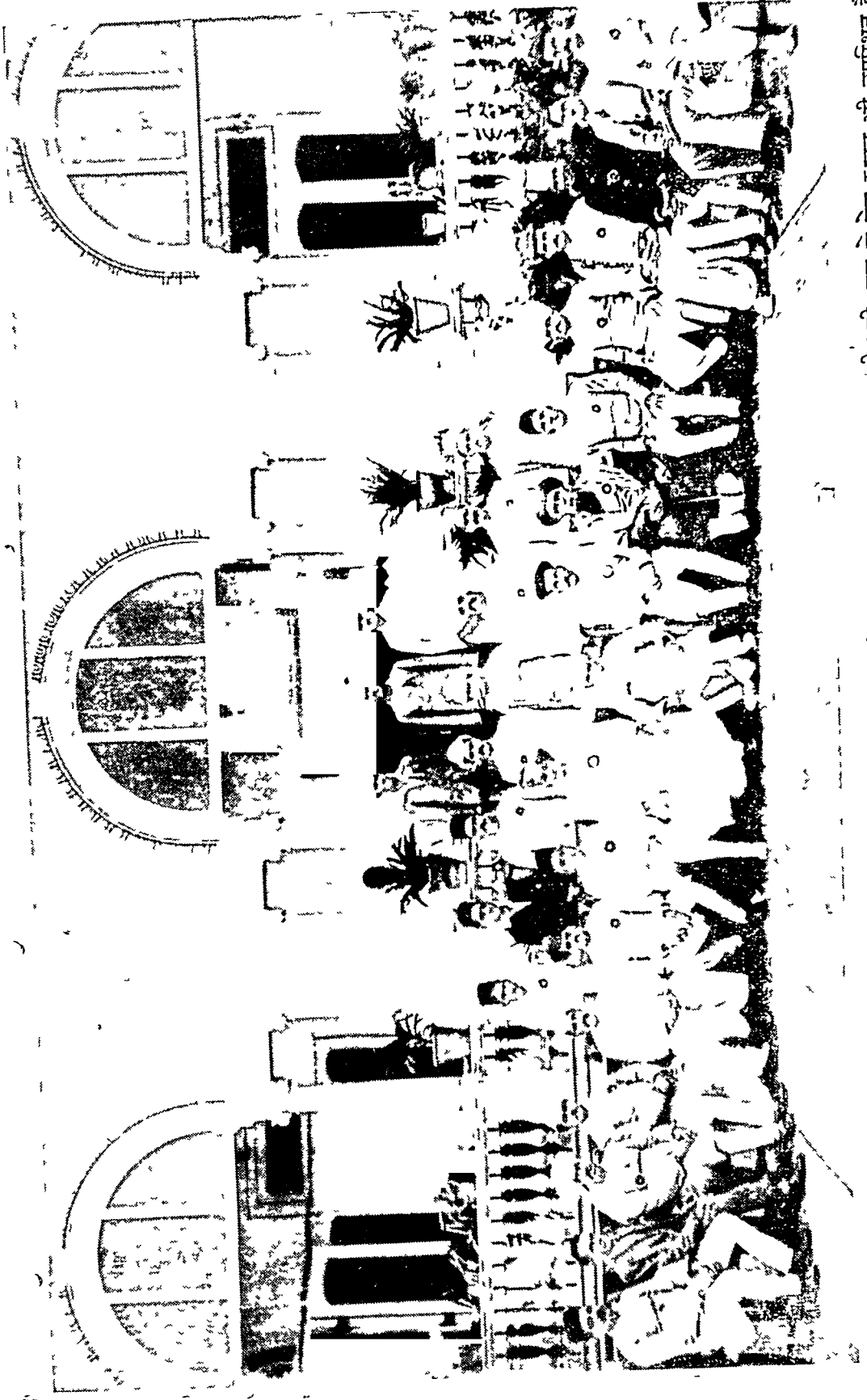
सन् १९३५ में अखिल भारतीय ज्योतिष सम्मेलनके समय स्वागत समितिके सदस्यों के साथ अध्यक्ष महामना मालवीय जी, इन में सेठ साहब भी उपस्थित हैं
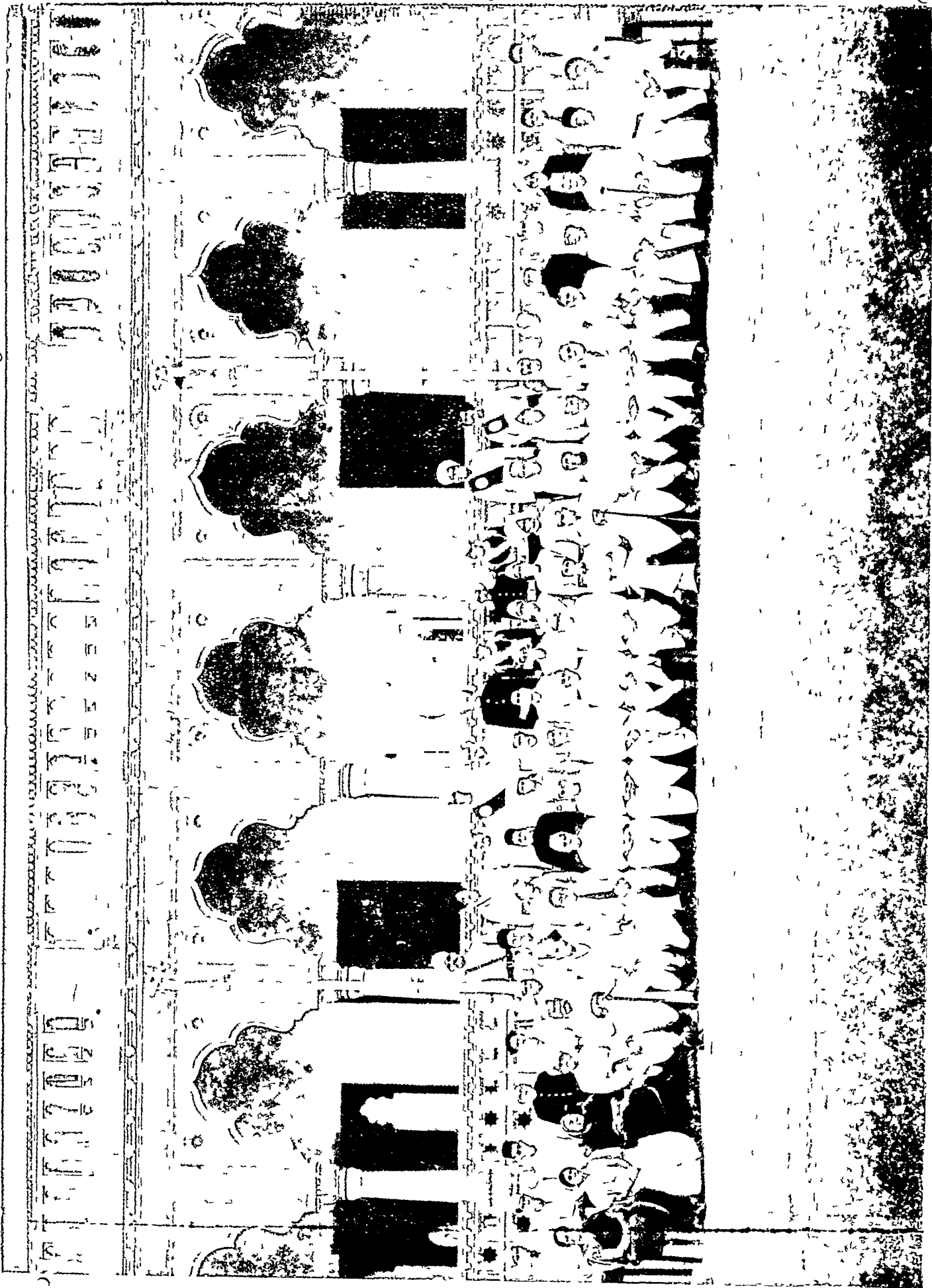
इन्दौर राज्य धारासभा। सन् १९४८ मे सेठ साहब भी सदस्य थे।

सन १६१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन इन्दौर के स्वागताध्यक्ष ।

स्वदेशी का उत्कट प्रेम

उद्योगधंधो के प्रकरण मे यह दिखाया जा चुका है कि सेठ साहब के हृदय मे कपडा मिल खोलने की कल्पना इसी विचार से पैदा हुई थी कि मालवा की रुई का कपडा मालवा मे ही तय्यार किया जाना अत्यन्त आवश्यक है; क्योकि इसी रुई का तो कपडा विलायत से बनकर आता है। अपनी इसी भावना और कल्पना को आपमे अपने इस भाषण मे भी प्रगट किया था। आपने कहा था कि, "इन्दौर राज्य मे और मध्य भारत मे कच्चे माल का बहुत बडा खजाना है और हमारे आगे बहुत उज्ज्वल भविष्य मुस्करा रहा है। मुझे आशा है कि यहां के नरेश, धनिक और जनता के अगुआ इस बात की ओर ज़रूर ध्यान देगे कि कच्चे माल के इस अखूट साधन-सम्पत्ति का किस तरह अच्छे से अच्छा उपयोग किया जाय।" इसी भाषण मे आपने विदेशियो की स्वदेशी की कल्पना को दूसरे देशो के शोषण किंवा चूसने का साधन बताते हुए अपनी स्वदेशी की कल्पना को "स्वदेशी धर्म" कहा था। वस्तुतः हमारे लिए स्वदेशी की भावना और कल्पना एक धर्म ही है, जिसका लक्ष्य देश की गरीबी को दूर करने और जन-साधारण को स्वयं अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे लगाना है। सेठ साहब माल की "खूब पैदावार को" स्वदेशी नही मानते, क्योकि आपका कहना है कि जिन देशो मे माल की खूब पैदावार होती है उनमे भी बहुत से लोगो को पेट भर खाना और तन ढकने को कपडा भी नहीं मिलता। उनमे लाखो लोग भूखो मर रहे है। उनके पेट भरने की समस्या अधिकारियो को उलझाये हुए है। दिन पर दिन बेकारी बढती जा रही है। संसार के आर्थिक अवस्था के डावांडोल होने का कारण उत्पादन का यही बेढंगा ढंग है। पश्चिम का अर्थशास्त्र और राजनीति इसी कारण आर्थिक समस्याओ को सुलझाने मे समर्थ नहीं हो रहे, अपितु उन पर "मर्ज बढता गया ज्यो-ज्यो दवा की" की ही कहावत चरितार्थ हो रही है। समस्यायें और परिस्थितियां और भी जटिल होती जा रही हैं। इसी लिए सेठ साहब ने अपने उस भाषण मे देशवासियो को पश्चिम की अंधी नकल करने से सावधान किया था। आपने स्पष्ट शब्दो मे यह चेतावनी दी थी कि हमे अपना अर्थशास्त्र किसान की झोपडी और उसके खेत व खलिहान से शुरू करना होगा। अन्यथा गांव उजड जायेंगे और शहर उनका भार नही संभाल सकेंगे।

अपने इसी भाषण मे सेठ साहब ने स्वदेशी के आन्दोलन को सफल बनाने के लिए स्वदेशी बैंक और स्वदेशी बीमा कम्पनियां स्थापित करने पर भी जोर दिया था। आपने कहा था कि "विदेशी बैंक और इन्शोरेंस कम्पनियां हमारे देश की गाढी कमाई को खीच कर अपने व्यापार को पुष्ट कर रही हैं।" यही कारण है कि सेठ साहब ने कलकत्ता मे जूट मिल और लोहे का कारखाना खोलने के साथ साथ बीमा कम्पनी भी स्थापित की और इन्दौर मे बैंक कायम करने के साथ साथ सहोद्योगी बैंक कायम करने मे भी पूरा सहयोग दिया। मध्यभारत के सहोद्योगी आन्दोलन का भी आपको अगुआ कहा जा सकता है। आधुनिक शिक्षा-दीक्षा से सर्वथा अनभिज्ञ होने पर भी देश की आर्थिक समस्या की गहराई मे जा कर आपने उसका जो निदान और उपचार ढूंढ निकाला था, उसको केवल शब्दो मे ही न कह कर उसे अपने जीवन मे भी पूरा उतारा था। स्वदेशी प्रदर्शिनी मे आपने यह घोषणा की थी कि "अब मै आगे अपने घर मे जहां तक बन सकेगा, वहां तक देशी ही चीजें काम मे लाऊंगा। इस बात का मै हमेशा पूरा ध्यान रखूंगा।"

बम्बई मे १९३१ मे स्वदेशी का जो आन्दोलन शुरू हुआ था, उसके आप ही अगुआ थे। इसी वर्ष मई मास मे बम्बई के व्यवसाइयो की एक बडी सभा हो कर स्वदेशी वस्त्र के प्रचार और विलायती वस्त्र के बहिष्कार का निश्चय किया गया था। आप ही उस सभा के अध्यक्ष थे।

सन् १९३८ के जून मास के शुरू मे आगरा-बेलनगंज की फर्म श्री हजारीलाल गणेशीलाल के मालिक श्री सरदारीमलजी गोधा की सुपुत्री के विवाह मे सम्मिलित होने के लिए वहां गये थे। उस समय वहां के समा-

चारपत्रो और सार्वजनिक संस्थाओ ने आपका स्वागत स्वदेशी आन्दोलन के समर्थक के रूप मे किया था। वहा के एक स्थानीय दैनिक पत्र "आगरा पंच" ने लिखा था कि "विवाह की बरात मे सबसे बडा आकर्षण जिसने हज़ारो आदमियो को अपनी ओर आकर्षित किया था, वह था भारत के धनकुबेर, राज्यभूषण, दानवीर सर सेठ हुकमचन्दजी का जलूस मे होना। जितने लोग बरात देखने पहुँचे, सबकी आखे इन्दौर के इसी महापुरुष की ओर थी।" वहा की सुप्रसिद्ध स्वदेशी बीमा कम्पनी ने आपके सम्मान मे एक प्रीतिभोज का आयोजन किया था, जिसमें कम्पनी के चेयरमैन बाबू मथुराप्रसादजी कक्कड और सचालक बाबू श्रीचन्दजी दौनेरिया दोनो ने ही आपके उत्कट स्वदेशी प्रेम और स्वदेशी के क्षेत्र मे की गई आपकी महान सेवाओ का विशेष रुप से उल्लेख किया था। उन्होने कहा था कि "पिछले पच्चीस सालो मे सेठसाहब ने अपनी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता से हिन्दुस्थान के व्यापार को तथा उद्योगधन्धो को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया है। पिछले पच्चीस सालो मे व्यापारिक क्षेत्र मे तथा १६३० के स्वदेशी आन्दोलन के समय मे आपने जो कार्य किये है, उनकी मैं हृदय से सराहना करता हूँ। श्री बिडला साहब भी व्यापारिक क्षेत्र मे उन्नति कर रहे है, परन्तु मै कह सकता हूँ कि सेठ सर हुकमचन्दजी की बराबरी पिछले पच्चीस वर्षो मे व्यापारिक क्षेत्र मे कोई भी नही कर सकता।"

इन्दौर मे १६३५ मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर ग्रामोद्योग खादी प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। इन्दौर के वयोवृद्ध समाजसेवी वैद्य ख्यालीरामजी द्विवेदी उस प्रदर्शनी के सयोजक और स्वागताध्यक्ष थे। महात्मा गांधी के हाथो से ही उसका उद्घाटन कराया गया था। इस प्रदर्शनी मे भी सेठ साहब ने सक्रिय सहयोग दिया था। आपकी इन प्रवृत्तियो के कारण ही अनेक समाचारपत्रो ने उन दिनो मे आपकी जीवनी तथा परिचय प्रकाशित किये थे और आपको "देशभक्त" कह कर आपका विशेष रूप से सन्मान किया था। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय तो आप पर आपके इस उत्कट स्वदेशी प्रेम के कारण ही इतने मुग्ध थे कि उन दिनो मे अपने भाषणो तथा लेखो मे स्थान-स्थान पर आपकी सराहना किया करते थे। इन्दौर की स्वदेशी प्रदर्शनी का १६३३ मे उद्घाटन करते हुये उन्होने यहां तक कहा था कि "भारत मे स्वदेशी उद्योगधन्धो के सामने जो विशाल क्षेत्र है, उसका हमने ठीक ठीक अनुमान भी नही किया था कि उससे पहले सर हुकमचन्दजी ने अपनी दूरदर्शिता से कपडे की मिलो के महत्व को जान लिया और मिले खोल भी दी।" इसी प्रकार आपने मद्रास मे भी स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुये सेठ साहब का विशेष रूप से उल्लेख किया था। अपनी आत्मकथा मे भी उन्होने आपकी चर्चा की है। एक बार तो उन्होने अपने और सेठ साहब द्वारा किये गये स्वदेशी के कार्य की तुलना करते हुए सेठ साहब को शाही शेर और अपने को घरेलू बिल्ली या उसका बच्चा कहा था। इसी प्रकार बंगला के सुप्रसिद्ध और प्रमुख दैनिक पत्र "आनन्द बाजार पत्रिका" मे फरवरी १६३३ मे कराची तथा इन्दौर के सस्मरण लिखते हुये सेठ साहब की जो प्रशसा की थी, उसकी चर्चा यथास्थान की गई है। इसमे सन्देह नही कि आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय हमारे देश के उन कुछ विशिष्ट व्यक्तियो मे से है, जिनका सारा ही जीवन स्वदेशी की साधना मे पूरा हुआ है। वे अकारण ही सेठ साहब की प्रशंसा नही कर सकते थे। आज कल की राजनीति के दृष्टिकोण से देखने वाले सेठ साहब को "सरकारपरस्त" और 'पूजीपति" कह कर उनकी उपेक्षा भले ही कर सके, परन्तु उन्होने स्वदेश और स्वदेशी के लिये अपने जीवन मे जो कुछ भी किया, उसमे इतना आकर्षण अवश्य था कि उससे आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय सरीखे विज्ञानाचार्य, देशभक्त सेठ जमनालालजी सरीखे स्वदेशीप्रेमी, महामना मालवीयजी सरीखे राष्ट्रनेता सहसा ही आकर्षित हुये बिना नहीं रह सके। यह सभी महापुरुष हमारे देश की दिव्य विभूति हैं। सेठ साहब की धन-संपत्ति, वैभव और राजसी ठाठबाट का उनके लिये ऐसा कोई आकर्षण होना ही न था। यदि सेठ साहब मे स्वदेशी और देशप्रेम की यत्किंचित

भी भावना नहीं होती, तो ये महापुरुष आपकी ओर इस प्रकार आकर्षित हो ही नहीं सकते थे और उनकी लेखनी या वाणी आपको इतना गौरवान्वित नहीं कर सकती थी। सेठ साहब का यह उत्कट स्वदेशी प्रेम देश के व्यावसायिक एवं औद्योगिक विकास तथा प्रगति मे जिस रूप में सहायक हो सका है, उसका उल्लेख देश के आर्थिक इतिहास मे निश्चय ही स्वर्णाक्षरों मे किया जायगा। यही सेठ साहब की देशभक्ति और देशसेवा है, जिसके लिये "हाथ कंगन को आरसी क्या" की कहावत चरितार्थ होती है। इसी के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसके साहित्य की श्रीवृद्धि मे सेठ साहब ने जो सहयोग दिया है, उसको भी देखा जा सके, तो स्वदेश प्रेम की आपकी भावना अत्यन्त स्पष्ट रूप मे सामने आ जाती है। हिन्दी और उसके साहित्य के प्रति सेठ साहब का जो अनुराग है, वह आपके उत्कृष्ट स्वदेश प्रेम का ही सूचक है।

: ६ :

सार्वजनिक सेवा

सैंकडो हाथो से उपार्जन करने के धर्मशास्त्रो के आदेश का सेठ साहब ने जिस खूबी के साथ पालन किया, उससे कही अधिक खूबी से आपने उनके इस आदेश का भी पालन किया कि उस उपार्जित सम्पत्ति को हजारो हाथो से लोकसेवा मे लगा दो। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारो को सिद्ध करना मानव जीवन का लक्ष्य बताया गया है। अर्थ और काम को धर्म और मोक्ष के बीच मे बांधा गया है। यदि अर्थ का सम्पादन करते हुये धर्म की दृष्टि मंद पड गई और काम मे आसक्त होने वाले मानव ने मोक्ष के परम लक्ष्य को आंखो से ओझल कर दिया, तो उसका पतन सुनिश्चित है और अन्त मे उस का शतमुखी पतन हुये बिना रह नही सकता। सेठ साहब ने जिस अर्थ का सम्पादन किया, वह सांसारिक लोगो की दृष्टि मे कुबेर के खजाने के समान है। वह अपार धन जिस यौवन मे प्राप्त हुआ था, उसमे प्रभुता का वातावरण भी चारो ओर छाया ही हुआ था। परन्तु 'अविवेक' उसमे कभी चंचु-प्रवेश भी कर नही सका। 'धर्म' पर गडी हुई दृष्टि कभी भी उखड नही सकी। मोक्ष के परम लक्ष्य से दृष्टि कभी भी दूर नही हुई। भारतीय एवं जैन समाज व्यवस्था का भी पुरातनतम लक्ष्य यही रहा है कि वैश्य समस्त समाज और राष्ट्र की सामूहिक समृद्धि को ही अपना चरम उद्देश्य मानकर व्यापार-व्यवसाय तथा उद्योग-धन्धो मे अपने को प्रवृत्त करे। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के शब्दो मे वह अपने को उस सारी सम्पत्ति का ट्रस्टी माने, जिसका वह उपार्जन करता है। सेठ साहब ने इतनी अतुल सम्पत्ति का उपार्जन किया, इसमे सन्देह नहीं कि उसका उपभोग भी किया, आपके निवास-स्थान इन्द्रभवन का राजसी वैभव भी किसी राजमहल से कम नही है और 'सेठ' ही नहीं, 'सर सेठ' शब्द भी आपके नाम के साथ जुडकर सार्थक हो गये, फिर भी यह स्पष्ट है कि आपने लोकसेवारूपी धर्म का पालन भी खूब किया और जन-कल्याणरूपी मोक्ष का लक्ष्य कभी भी अपनी आखो से ओझल नहीं होने दिया। कोई भी अवसर ऐसा नही आया, जब धर्म, समाज तथा देश की सेवा मे आपने हाथ न बटाया हो। जब जैसा समय उपस्थित हुआ और जैसी माग आपसे की गई, आपने अपनी श्रद्धा और अपनी सामर्थ्य के अनुसार दिया और दिल खोलकर दिया। इस समय तक आप लगभग ८० लाख का दान कर चुके है। प्राय सभी सार्वजनिक क्षेत्रो मे काम करने वाली सभी प्रकार की सस्थाओ को आपकी उदारता का लाभ मिला है। शिक्षा, साहित्य, लोकसेवा, स्वास्थ रक्षा, शिशुरक्षा, गोसेवा, तीर्थ, देवालय इत्यादि सभी क्षेत्रो मे आपने अपने उदारचेता स्वभाव से सभी प्रकार की संस्थाओ को उपकृत किया है। वृद्ध-युवा बालक और स्त्री-पुरुष सभी को उसका समान रूप से लाभ मिला है। बम्बई के मारवाडी विद्यालय को २५ हजार दिया गया, तो बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय मे भी ८१ हजार लगाया गया। नई दिल्ली के लेडी हार्डिङ्ग मेडिकल कालेज को तो चार लाख मिल गया। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने दस हजार प्राप्त किया, तो १९२१ मे तिलक स्वराज्य फण्ड मे भी २५०० की भेंट दी ही गई। इन्दौर मे आप द्वारा स्थापित, संचालित,

पोषित और पुष्ट की गई संस्थाओं का तो जाल ही बिछा हुआ है, बिना किसी अत्युक्ति के यह कहा जा सकता है कि इन्दौर मे सार्वजनिक संस्थाओ और सार्वजनिक जीवन को आपसे विशेष प्रेरणा, प्रोत्साहन और बल मिला है। राजनीतिक संस्थाओं को शुरू मे सहयोग देने मे संकोच होते हुये भी उनकी भी सहायता आप समय-समय पर करते ही रहे हैं। अन्नदान, औषधदान और विद्यादान के साथ-साथ जीवनदान की भी अजस्र धारा आपकी उदारता तथा पारमार्थिक संस्थाओ के सोते से निरन्तर बहती ही रहती है। कृषि और गोपालन के आदर्श को भी आपने सक्रिय रूप देने का अनुकरणीय प्रयत्न किया है। देवदर्शन और धर्मलाभ की जो व्यवस्था आपने इन्दौर शहर मे की है, उससे उसको तीर्थस्थान का-सा महत्त्व प्राप्त हो गया है। जैसे व्यापार-व्यवसाय और उद्योगधन्धो मे आपकी चहुँमुखी प्रतिभा ने अपना अप्रतिम प्रभाव दिखाया है, वैसे ही आपके उदार स्वभाव ने लोकोपकारी सार्वजनिक जीवन मे भी चहुँमुखी उदारता का विशाल परिचय दिया है। आपके इस महान् लोकोपकारी जीवन का प्रारम्भ दिगम्बर जैन धर्म तथा दिगम्बर जैन समाज से होने पर भी वह वहाँ ही रुक नही गया, किन्तु गंगोत्री मे गोमुख से निकलने वाली गंगा की पवित्र धारा की तरह वह ज्यो-ज्यो आगे बढा, त्यो-त्यो उसका स्वरूप विकसित ही होता चला गया है। प्रभात मे प्रगट होने वाले बालरवि की किरणें, आषाढ मास मे बरसने वाले बादल की बौछारें और बसन्त मे नवजीवन प्रदान करने वाले समीर के झोके जैसे मानवमात्र के कल्याण के लिये ही होते है, ठीक वैसे ही सेठ साहब के उदारतापूर्ण दान का लक्ष्य भी सदा ही मानवजीवन का परम कल्याण रहा है। उसके लिये धर्म, जाति, सम्प्रदाय, प्रदेश अथवा काल की भी कोई सीमा नही रखी गई। समुद्र की तरह उसका कोई ओर या छोर बताया नही जा सकता।

आपकी उदारता अथवा दान प्रणाली की एक और विशेषता है। वह यह कि आपकी दृष्टि सदा यही रही कि जिस किसी संस्था को भी अपने धन से खडा किया जाय, उसमे अपना तन-मन भी लगाया जाय। यथा सम्भव उसकी व्यवस्था कर दी जाय। अन्यों द्वारा संस्थापित अथवा संचालित संस्था का प्रश्न तो अलग है, किन्तु अपने द्वारा संस्थापित संस्था का ध्रुव फण्ड स्थापित करने पर आपकी सदा ही दृष्टि रही है और अपने द्वारा दी हुई रकम का एक बडा भाग आपने उसके ध्रुव फण्ड के लिये स्थिर कर दिया है। आप द्वारा संस्थापित संस्थाओ के विवरण से पाठको को ज्ञात हो सकेगा कि आज भी पारमार्थिक संस्थाओ के ध्रुवफण्ड की कितनी सुन्दर व्यवस्था आपने की हुई है और आपने निरन्तर उस व्यवस्था को सुदृढ बनाने का ही प्रयत्न किया है। जनता के लिये प्रस्तावित संस्थाओ के भवन, सम्पत्ति और ध्रुव फण्ड भी जनता को ही सौंपकर आपने उनका ट्रस्ट बना दिया है। इसका लाभ यह होता है कि उनको किसी पर निर्भर न रहकर परमुखापेक्षी नहीं बनना पडता। स्वतन्त्र रूप से उनका संचालन होता रहता है और वे निरन्तर विकासोन्मुखी प्रगति करने मे लगी रहती है। व्यापार-व्यवसाय और उद्योगधन्धो मे प्राप्त की गई सफलता की तरह ही सेठ साहब ने सार्वजनिक संस्थाओ के संचालन मे भी कमाल कर दिखाया है।

नेताओ के साथ आत्मीयता

इन्दौर नगर को देश के बडे-बडे महान् नेताओ का सम्मान करने का गर्व प्राप्त है। अन्य अनेक प्रगतिशील राज्यो की तरह इन्दौर राज्य भी अपने यहां हुये अखिल भारतीय आयोजनो मे विशेष दिलचस्पी लेता रहा है। फिर भी इन्दौर मे गतकाल मे हुये अधिकांश आयोजनो का श्रेय हमारे चरित्रनायक सेठ साहब को है। राष्ट्र-पिता महात्मा गान्धी जिन हिन्दी साहित्य सम्मेलनो के अध्यक्ष होकर दो बार इन्दौर पधारे, उनकी सफलता का श्रेय भी सेठ साहब को ही है। महात्मा गांधी दुबारा आने को तत्पर न थे। तब सेठ साहब की जानकारी के बिना ही आपके नाम से गान्धीजी को तार दे दिये गये थे और फोन पर भी सेठ साहब ने इनका आग्रह किया कि

गाधीजी को उसे स्वीकर करना ही पड गया। सम्मेलन मे पधारने वाले साहित्य प्रेमियो के लिये १६१८ मे बसाये गये नगर का नाम सेठ साहब के नाम पर "हुकमचन्द नगर" रखा गया था। १६३५ मे दूसरी बार भी मुख्य द्वार आपके हो नाम से बनाया गया था। जब आठवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन पर आने के लिये महात्मा गाधी ने एक लाख की निधि जमा करने की शर्त लगा दी थी, तब स्वागतसमिति की व्यवस्था के लिये दिये गये २५००) के अलावा भी आपने दस हजार रुपया प्रदान किया था। गांधीजी ने इन्द्रभवन मे पधार कर आपका आतिथ्य भी स्वीकार किया था और माता कस्तूरबा गांधी व मीरा बेन के साथ आपने वहां भोजन भी ग्रहण किया था। इसी प्रकार देशपूज्य महामना पण्डित मदनमोहनजी मालवीय भी दो बार आपके यहा पधारे और आपकी हीरक-जयन्ती के उत्सव मे भी उन्होने पधारने की कृपा की थी। ज्योतिष सम्मेलन के अध्यक्ष होकर पधारने के लिये मालवीयजी ने इनकार कर दिया, किन्तु सेठ साहब ने फोन पर इतना आग्रह किया कि वे उसे अस्वीकार नही कर सके। आपके हीरक जयन्ती उत्सव पर मालवीयजी ने अपने भाषण मे आपकी बहुत सराहना की थी। अपने समय के महान् वैज्ञानिक आचार्य प्रफुल्लचन्द्रराय ने भी आपका आतिथ्य स्वीकार किया था। इन्दौर के महाराज तुकोजीराव और ग्वालियर के स्वर्गीय महाराज माधोरावजी सिंधिया भी आपका विशेष सम्मान करते थे। वर्तमान नरेश श्रीमान् यशवन्तराव भी आपका आतिथ्य स्वीकार करते रहे हैं। महाराज जियाजी-राव सिंधिया तो आपको 'काका' कहकर आपका सम्मान करते हैं। बीकानेर के राजनीतिकुशल महाराज गंगासिह जी ने तो आपको अत्यन्त आग्रह के साथ अपने यहा कई बार बुलाया था और आपका राजकीय आतिथ्य-सत्कार किया था। मध्यभारत तथा राजपूताना के प्राय: सभी राजा, महाराज तथा नबाब आपका समान रूप से आज भी सम्मान करते है। सौराष्ट्र तथा गुजरात के राजाओ मे भी आपकी विशेष प्रतिष्ठा है। मैसूर और बडौदा के नरेशो तक मे आपका सम्मान है। इस सारे सम्मान तथा प्रतिष्ठा का कारण आपका सांसारिक वैभव और सम्पत्ति ही नही है किन्तु आपकी वह सार्वजनिक भावना है, जिससे प्रेरित होकर आपने देशव्यापी सार्वजनिक सस्थाओ को अपनी उदारता से उपकृत किया है। जैन सस्थाओ, जैन देवालयो और जैन तीर्थों के कारण आप इन लोगो के विशेप सम्पर्क मे आये हैं। उस सबका विवरण यथास्थान दिया जायगा, यहा तो इतना ही दिखाना अभीष्ट है कि सेठ साहब ने अपनी सार्वजनिक भावना, सार्वजनिक वृत्ति और सार्वजनिक सेवा से राष्ट्रीय नेताओ और राजकीय पुरुषो का स्नेह, सम्मान और आदर समान रूप से प्राप्त किया है। अपने सार्वजनिक जीवन का निर्माण भी सेठ साहब ने स्वयं ही किया हैं। उसी के उज्ज्वल उदाहरण आगे के पृष्ठो मे देने का यत्न किया जा रहा है।

सार्वजनिक सेवा की परम्परा

सेठ साहब के परिवार मे सार्वजनिक सेवा का शुभ श्रीगणेश बहुत पहिले हो चुका था। आपके दादाभाई की गोद आने वाले सेठ कल्याणमलजी ने और सेठ ओकारजी के सुपुत्र चरित्रनायक के पिता सेठ कस्तूरचन्दजी ने अनेक सार्वजनिक कार्यों का आरम्भ कर दिया था। औषधालय और कन्या पाठशाला की स्थापना उनके समय मे ही कर दी गई थी। सेठ साहब ने इस परम्परा को भी पराकाष्ठा पर पहुचा दिया।

दुर्भिक्ष सहायता

लोक सेवा मे हाथ बटाने का सबसे पहिला अवसर सेठ साहब को सम्बत् १६५६ के भीषण दुर्भिक्ष के दिनो मे प्राप्त हुआ। यह दुर्भिक्ष इतना भयानक था कि चारो ओर हाहाकार मच गया था। गरीबो के लिये अन्न वौर वस्त्र की इतनी सुन्दर व्यवस्था की गई थी कि लोग आज तक भी उसको भूले नहीं हैं। प्रत्येक गरीब को आध सेर अनाज और आवश्यकता के अनुसार कपडा दिया जाता था। संकटापन्न लोगो को मुसीबत के दिन काटने को वहुत बडा सहारा मिल गया।

प्लेग में

सम्बत् १९६० मे और फिर १९६५ मे इन्दौर मे जोरो की प्लेग फैली। लोगो को बीमारी का कष्ट तो भोगना ही था। क्वारंटीन के कष्टों से तो घावो पर नमक ही छिड़क गया। लोगो मे त्राहि त्राहि मच गई। हमारे पाठको को याद होना चाहिये कि पूना मे सन १८९७ मे प्लेग फैलने पर क्वारएटीन के कष्टो के विरोध मे ही तो लोकमान्य तिलक ने पहिला प्रचण्ड आन्दोलन प्रारम्भ किया था। तब पूना के प्लेग कमिश्नर श्री रैण्ड को चापेकर युवक के हाथों अपनी जान से हाथ धोना पड गया था और लोकमान्य पर हत्या के लिये प्रेरित करने के अपराध मे राजद्रोह का पहिला मुकद्दमा चलाया गया था, जिसमें उनको १८ मास के कठोर कारावास की सजा दी गई थी। इन्दौर मे वैसा उग्र आन्दोलन होना तो सम्भव ही न था। पर, लोगो को क्वारएटीन के कष्ट प्रायः वैसे ही थे। लोग घबरा उठे। तब सेठ साहब ने जनता की सेवा का सराहनीय कार्य किया। एक हजार रुपया तो आपने गरीबों के लिये झोपडे बनाने को दिया और अपने जबेरी बाग तथा राऊ के बंगले मे सैकडो-हजारो को आश्रय दिया। क्वारएटीन के कष्टो के सम्बन्ध मे आप स्वयं प्रधान-मन्त्री से मिले और क्वारएटीन को आपने उठवा दिया। ऐसी संक्रामक बीमारियो के अवसर पर आप सदा ही जनता की सेवा करते रहे और उसके कष्टो को दूर करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहे।

सेठ साहब की व्यापक सार्वजनिक सेवा का प्रारम्भ जैन समाज और जैनधर्म की सेवा से ही हुआ था। आपने इस दिशा मे सबसे पहिला यह काम किया कि एक सौ रुपया मासिक खर्च करके उन जैन भाइयोंके लिये, एक चौका खोल दिया, जो कही कोई रोजगार न मिलने के कारण बेकार रहते थे। ऐसे जैन भाई रोजगार मिलने तक सम्मान के साथ वहां भोजन कर सकते थे। उनके स्वाभिमान की रक्षा होकर उन्हे अपने पैरो पर खडा होने का अवसर मिल जाता था और वे अन्तःकरण से सेठ साहब का आधार मानते हुये आपके प्रति कृतज्ञता प्रगट किया करते थे।

चार लाख का दान

बम्बई के पालीताना तीर्थस्थान मे बम्बई प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा का अधिवेशन सम्बत् १९७० मे हुआ। आप ही उसके सभापति थे। वहां आपने चार लाख रुपये दान की घोषणा की। इन्दौर मे स्थापित की गई पारमार्थिक संस्थाओ का शुभ श्रीगणेश इसी महादान से हुआ समझना चाहिये।

औषधालय को चालीस हजार

पहिला बडा सार्वजनिक दान जैन समाज से बाहर सम्भवतः आपने इन्दौर छावनी के किंग एडवर्ड अस्पताल के लिये सम्बत् १९७० मे राजबहादुर पण्डित नन्दलालजी जज की प्रेरणा से दिया। उसमे एक वार्ड बनवाने के लिये चालीस हजार प्रदान किये और मेडिकल कालेज के लिये भूमि खरीदने के लिये भी आपने पच्चीस हजार देने की उदारता प्रगट की। छावनी के ही लेडी ओडायरा गर्ल्स स्कूल के स्थायी फण्ड के लिये भी आपने दस हजार उदारतापूर्वक दिये।

सम्वत् १९७२ मे कान्यकुब्ज हितकारिणी सभा के वार्षिक अधिवेशन पर उसको एक हजार की सहायता प्रदान की और इन्दौर के कृष्णापुरा की जनरल लाइब्रेरी को भी एक हजार रुपया प्रदान किया।

मैडिकल कालेज को चार लाख

सम्बत् १९७४ मे चार लाख का महत्वपूर्ण बडा दान नई दिल्ली मे बनाये गये लेडी हार्डिङ्ग मैडिकल कालेज तथा अस्पताल के लिये दिया। वायसराय महोदय ने स्वयं इसके लिये अपील की थी और आपको व्यक्तिगत पत्र लिखा था। इस पुनीत दान से उक्त संस्था मे एक वार्ड बनाया गया है और उस पर आपके नाम

का शिलालेख भी लगाया गया है। नई दिल्ली की घनी आबादी के मध्य में यह लोकोपकारी संस्था ऐसे स्थान पर कायम की गई है, जिससे कि पुराने शहर की बस्तियां भी कुछ दूर नहीं हैं। यह महिलाओं के लिये एक मुख्य अस्पताल है और महिला डाक्टर तय्यार करने वाली उत्तर भारत की यह एक प्रमुख संस्था है। वायसराय महोदय ने फिर एक निजी पत्र लिख कर इसके लिये आपके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित की थी।

मिशन गर्ल्स स्कूल को २५,००० रु०

इन्दौर का मिशन गर्ल्स स्कूल स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे अच्छा काम कर रहा था। इसके लिये अपना भवन बनाने का कार्य हाथ मे लिया गया। सेठ साहब के पास भी अपील लेकर उसके कार्यकर्ता आये। आपकी सात्विक दानवृत्ति इतनी व्यापक है कि उसके सामने जाति, सम्प्रदाय तथा धर्म आदि के भेदभाव की समस्त संकीर्ण भावनायें क्षीण पड चुकी है। आपने शिष्टमण्डल का स्वागत किया और पच्चीस हजार के उदार दान से एक भवन खरीद कर विद्यालय को दे दिया। संचालकों को भवन की चिन्ता मे सर्वथा मुक्त कर दिया।

पूना की दक्षिण एजूकेशन सोसाइटी शिक्षा के क्षेत्र मे बहुत बडा और सराहनीय कार्य कर रही है। राजर्षि गोखले और लोकमान्य तिलक सरीखे देशभक्तो का भी उससे सम्पर्क रहा है। कर्मयोगी आचार्य कर्वे उसका शिष्टमण्डल लेकर धनसंग्रह के लिये इन्दौर आये। आपको भी एक हजार रुपया प्रदान करके सेठ साहब ने आपका भी सम्मान किया।

पहली बार सन् १९२० मे बीकानेर जाने के उपलक्ष मे आपने महाराज को किसी भी लोकोपकारी कार्य मे खर्च करने के लिये पाच हजार रुपया भेजा था। इसी प्रकार आपने तत्कालीन ए० जी० जी० को (सम्वत् १९७६ मे) पांच हजार रुपये भेजे और लिखा कि श्रीमान् इस धनराशि का उपयोग किसी भी सार्वजनिक हितकारी कार्य के लिये कर सकते है। ग्वालियर के महाराजा श्रीमन्त माधोरावजी सिंधिया को भी आपने इसी आशय से ग्यारह हजार रुपया भेजा। मानो, दान के लिये सेठ साहब किसी न किसी उपयोगी अवसर और पात्र की खोज मे रहा करते थे।

मंहगाई में लोक-सेवा

सम्वत् १९७४ मे महंगाई बहुत बढ गई थी। महायुद्ध के कारण भी खाद्य पदार्थों की कीमतो मे बेहद तेजी आगई थी। गेहूँ का भाव ४० रुपया मन पर पहुंच गया था, घी का १२० और शक्कर का २४ रुपया पर। गरीबो के लिये गृहस्थी का प्रवन्ध चलाना दूभर हो गया था। मंहगाई भत्ते से भी काम चलाना कठिन हो रहा था। सेठ साहब ने अपने समस्त कर्मचारियो को सैतीस सैकडा मंहगाई दी और १९७७ मे उतनी ही वेतन-वृद्धि करके उसको वेतन मे मिला दिया। लेकिन, आम जनता का कष्ट तो मंहगाई के कारण बढता ही चला गया। धानमडी के लूटे जाने तक का भय उपस्थित हो गया। सेठ साहब इस विकट परिस्थिति मे लोकसेवा के लिये सामने आये। आपने ३८-४० रुपये मन के महंगे भाव पर अन्न खरीद कर पांच रुपये मन के भाव बेचना शुरू कर दिया। स्वय एक लाख का घाटा उठा कर जनता को आपने जो राहत पहुँचाई, उसकी चर्चा तब हर स्त्री पुरुष के मुंह पर थी। होलकर नरेश और सरकारी अधिकारी भी आपके प्रति कृतज्ञता प्रगट करने लगे। आपकी इस दूरदर्शिता के कारण एक बडा संकट टल गया। लूटपाठ और अराजकता की सभावना दूर हो गई। जनता मे शान्ति और सन्तोष छा गया।

बियावानी में औषधालय

लगभग सम्वत् १९६९-७० मे दो सौ रुपये मासिक व्यय से स्थापित किये गये औषधालय ने विशाल

रूप सम्वत् १९७५ मे तब धारण किया, जब सेठ साहब ने ढाई लाख के दान की घोषणा की। उस दान से इन्दौर के बियाबानी मुहल्ले मे "प्रिंस यशवन्तराव आयुर्वेदिक जैन औषधालय" स्थापित किया गया। इन्दौर के युवराज के नाम पर ही यह नाम रखा गया था और तत्कालीन महाराजबहादुर श्रीमन्त सर तुकोजीराव होलकर के हाथो से उसका उद्‌घाटन-समारोह सम्पन्न कराया गया था। उद्‌घाटन के अवसर पर एक लाख के दान की घोषणा की गई। उसमे से साठ हजार औषधालय के चिरस्थायी फण्ड मे और चालीस हजार प्रबन्ध-विभाग मे चालू व्यय के लिये दिया गया। इससे औषधालय की व्यवस्था स्थायी हो गई। सेठ साहब का यही तो तरीका था, जिससे कि वे अपनी संस्थाओ की नींव पूरी तरह दृढ कर देते थे। यह औषधालय लोक-सेवा का अत्यन्त सराहनीय काम कर रहा है। सेठ साहब इस पर दो लाख बीस हजार रुपया आज तक खर्च कर चुके हैं।

प्रसूति गृह

प्रसूति गृह सेठ साहब द्वारा स्थापित की गईं संस्थाओ मे से एक प्रमुख संस्था है, इसलिये इसकी स्थापना का कुछ विवरण देना आवश्यक है। सम्वेदशिखरजी की यात्रा से लौटकर आपने जिस एक लाख के दान की घोषणा की थी, उसमे से पचास हजार स्त्रियोपयोगी कार्य के लिये रखा गया था। ट्रस्ट कमेटी की बैठक मे राज्यभूषण सेठ हीरालालजी काशलीवाल ने जच्चाओ की होने वाली दुर्गति और सुआ रोग का सन्तान तथा माता पर जो कुप्रभाव पडता है, उसकी चर्चा की और प्रसूति गृह तथा शिशु रक्षा के लिये समुचित वैज्ञानिक व्यवस्था करने का प्रस्ताव किया। प्रस्ताव स्वीकार हो गया। तत्कालीन होम मिनिस्टर की सहमति से जमीन लेली गई और कार्य प्रारम्भ किया गया। आधार शिला सम्वत् १९८१ मे महारानी साहेबा के हाथो से रखवाई गई। संस्था का नाम "श्रीमती कञ्चनबाई प्रसूति गृह और शिशु स्वास्थ्यरक्षा संस्था" रखा गया। सुप्रसिद्ध स्टेट सर्जन श्री सरजूप्रसादजी के सहयोग से संस्था ने आशातीत प्रगति की और शहर की एक बडी आवश्यकता की पूर्ति कर दी। पचास हजार तो इमारतो मे ही लग गया और ध्रुव फण्ड के लिये भी पैंतीस हजार का प्रबन्ध हो गया। चौबीसो घण्टे संस्था का द्वार प्रसूताओ के लिये खुला रहता है। तीन वार्डो मे तीस प्रसूताओ के रहने का प्रबन्ध है। पलंग, बिस्तर, दवा आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था है।

सम्वत् १९७७ मे अपनी दूसरी कन्या श्रीमती ताराबाई के शुभ विवाह पर भी आपने छब्बीस हजार के दान की घोषणा की थी। १९८० मे सेठ साहब श्री सम्वेदशिखरजी की यात्रा पर गये थे। वहां से सफल वापिस लौटने पर आपने एक लाख के दान की घोषणा की थी। इनमें से पचास हजार तो प्रसूति गृह के काम मे लगाया गया और पचास हजार महाविद्यालय के ध्रुव फण्ड मे जमा किया गया।

मारवाडी विद्यालय को

'मारवाडी विद्यालय' बम्बई की एक पुरानी सार्वजनिक संस्था है, जो मारवाडी समाज मे शिक्षा के प्रसार का अभिनन्दनीय कार्य कर रही है। उसको आपने पच्चीस हजार की उदार सहायता प्रदान की।

हिन्दी साहित्य से अनुराग

किसी शिक्षा-संस्था मे कोई विशेष और उच्च शिक्षा प्राप्त न करने पर भी हिन्दी और उसके साहित्य के प्रति आपका अनुराग बहुत गहरा और सराहनीय है। आपने हिन्दी साहित्य की समृद्धि की अभिवृद्धि मे भी सराहनीय सहयोग दिया है। सम्वत् १९७५ अथवा सन् १९१८ मे इन्दौर मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आठवां अधिवेशन हुआ। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी उसके अध्यक्ष थे। महाराज यशवन्तराज होलकर तब युवराज थे। युवराज के हाथो उसका उद्‌घाटन कराया गया था और सेठ साहब उसके स्वागताध्यक्ष थे। स्वागत समिति की ओर से अभ्यागत सज्जनो के आतिथ्य सत्कार तथा निवास आदि के लिये जो नगर बसाया गया था, उसका नाम

सेठ साहब के नाम पर 'हुकमचन्द नगर' रखा गया था। दो हजार आपने स्वागत समिति के काम के लिये, ७५१ रुपये साहित्य प्रकाशन और दस हजार रुपये सम्मेलन की निधि ने हिन्दी मे शब्दकोष प्रकाशन करने के लिये प्रदान किये। अनेक प्रतिनिधि आपके निजी मेहमान थे, जिनको रंग महल आदि मे ठहराया गया था।

इन्दौर की प्रमुख साहित्यिक संस्था मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति को भी आपका सम्पूर्ण सहयोग प्राप्त रहा है। वर्षों आप उसके सभापति रहे हैं। रायबहादुर मुन्तजिम खासबहादुर डाक्टर सरजूप्रसादजी उसके संस्थापक थे और प्रधान-मन्त्री भी रहे थे। समिति की ओर से आपके दान से "हुकमचन्द ग्रन्थमाला" का प्रकाशन हो रहा है। दस हजार रुपया आपने समिति के भवन की अपील होने पर भी दिया और उस भवन के शिवाजी हाल के लिये सेठ कस्तूरचन्दजी से भी तीस हजार के लगभग मिल गया। मध्य भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को भी सेठजी का सम्पूर्ण सहयोग प्राप्त है। पहिला अधिवेशन देवास के महाराज, दूसरा उज्जैन के प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य पं० सूर्यनारायणजी व्यास और तीसरा अधिवेशन ११-१२ जून १९४४ को बागली मे सेठ साहब के सभापतित्व मे हुआ। बागली के ठाकुर साहब मेजर सज्जनसिंहजी ने इसका उद्घाटन किया था। सेठ कस्तूरचन्दजी टोंगिया उसके स्वागताध्यक्ष थे। सेठ साहब का भाषण अत्यन्त सामयिक था, जो बहुत ही सराहा गया था। सेठ साहब ने इसमे ठीक ही कहा था कि "आपको मुझसे किसी विद्वत्तापूर्ण लम्बे-चौडे भाषण की आशा या अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये। मैने जो कुछ कहा है, वह मेरे अल्प अनुभव की बातें है।" सचमुच ही सेठ साहब का क्रियात्मक अनुभव इतना विशाल है कि उससे सभी क्षेत्रो मे लाभ उठाया जा सकता है। 'हिन्दी' के प्रति अपनी सहज आस्था और निष्ठा का उल्लेख आपने इन शब्दों मे किया था कि "आपको विदित ही है कि यह मेरी वृद्धावस्था है और मै सासारिक कार्यो से एक प्रकार से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा हूँ। फिर भी हिन्दी के हितो के सरक्षण का प्रश्न जब मेरे सामने आता है, तब मै अपनी उस उदासीन वृत्ति को सहज मे भूल जाता हू और आज भी उसी भाव से प्रवृत्त होकर यहा आपके समक्ष उपस्थित हूँ।" विनीत भावना की प्रतिमूर्ति देखनी हो, तो इन शब्दो मे देखिये कि "मध्यभारत को गौरव है कि यहा दो बार अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन हो चुके हैं। जहा इन अधिवेशनो मे तप और त्याग की प्रतिमूर्ति उपस्थित थे, वहा राजकीय वैभव व राज्याश्रय भी पूर्ण मात्रा मे कार्यकर्ताओ को प्रोत्साहन दे रहा था। इन दोनो सम्मेलनो की आयोजना मे जो थोडी-बहुत सेवा मुझसे हो सकी थी, वह की थी और मध्यभारतीय साहित्य सम्मेलन की भी स्थापना से अब तक मै उसका समर्थक व सहायक रहा हू और आज भी उस पवित्र नाते को निबाहना मैने अपना कर्तव्य समझा है।"

प्रान्तीय सम्मेलन को स्थायी रूप देने के लिये आपने स्वय १००१) प्रदान किया और अपने मित्रो को भी प्रेरित करके दस हजार का चदा सहज मे ही करवा दिया। बागली मे आपके व्यक्तित्व का विशेष प्रभाव पडा और चंदा देने मे तो होड ही सी लग गयी।

१९३५ में फिर दुबारा इन्दौर मे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन महात्मा गाधी के ही सभापतित्व मे हुआ। इसी सम्मेलन मे हिन्दी के राजभाषा और राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने को मांग की गई थी। सेठ साहब का इस बार भी सराहनीय सहयोग रहा।

गाधीजी को पच्चीस हजार

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की सेठ साहब के साथ कितनी घनिष्ट आत्मीयता पैदा हो गई थी, इसका पता १९३५ मे ३० अप्रैल को वर्धा से महात्मा गांधी के सेठ साहब को लिखे गये पत्र से मिलता है। वह पत्र यह है--

"भाई हुकमचन्द जी,

अब तक आपके तरफ से मुझे कुछ नही मिला, यह दुःख की बात है। अब भी अवश्य आशा रखूंगा कि हिन्दी प्रचार के लिये मुझे एक अच्छी हुण्डी मिल जायगी।

इसके साथ मजदूरों का दिया हुआ खत भेजता हूँ। यदि उस पत्र में लिखी हुई बात सही है, तो उसका इलाज शीघ्र करना आवश्यक और उचित समझता हूँ। कोई कारण नही कि आपके यहां आदर्श स्थापित न हो।

वर्धा *आपका*

३०—४—३५ *मो० क० गाधी"*

यह पत्र सेठ साहब के प्रति महात्माजी की आत्मीयता के साथ साथ सेठ साहब के उस हिन्दी प्रेम और मजदूरो के प्रति उस आदर्श व्यवहार का भी सूचक है, जिसका कि गान्धीजी को भी पूरा भरोसा था। इस पत्र के उत्तर मे आपने पच्चीस हजार रुपया गान्धीजी को भिजवाया था।

हिन्दी की कवितायें सुनने की भी सेठ साहब को विशेष रुचि है। कवियो की कविताये सुनना, उनसे वार्तालाप करना और उनका सम्मान करना भी कभी आपका स्वभाव-सा बन गया था। किसी स्कूल या कालेज की विशेष शिक्षा न होने पर भी आपको पुस्तकें और समाचार पत्र पढने की विशेष अभिरुचि है। आपने सैकडो ग्रन्थ पढे होगे और दो-चार दैनिक समाचारपत्र तो आप अब भी प्रति दिन देखते व पढते है। देश व संसार की गतिविधि को आप पूरी जानकारी रखते हैं। स्मरण शक्ति भी आपकी आश्चर्यजनक है। पढी हुई भी बात आपको याद रह जाती है। कोई लेखक या सम्पादक सामने आया और उसकी पुस्तक या समाचारपत्र आपने कभी पढा है, तो उसी की चर्चा प्रारम्भ हो जायगी। हिन्दी के प्रति आपका प्रेम निर्विवाद और संशयरहित है। गुजराती का भी आपको अच्छा अभ्यास है। गुजराती की पुस्तकें और समाचारपत्र भी आप प्राय पढते रहते है।

तिलक स्वराज्य फण्ड

१९२० मे देश की सर्वोपरि राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस की बागडोर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के हाथों मे जब आई, तब आपने एक वर्ष मे स्वराज्य-प्राप्ति के लिये जो कार्यक्रम प्रसिद्ध किया था, उसमे लोकमान्य तिलक की पुण्य स्मृति मे कायम किये गये कांग्रेस के कोष मे एक करोड रुपया जमा करना भी तय किया गया था। उस समय सभी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियां और सभी कार्यकर्ता इस निधि के लिये चन्दा जमा करने मे जुटे हुये थे। अजमेर राजपूताना और मध्यभारत की एक ही प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी थी और उसका कार्यालय था अजमेर मे। अजमेर से देशभक्त श्री चांदकरणजी शारदा के नेतृत्व मे वयोवृद्ध श्री गणेशनारायणजी सोपानी, श्री गौरीशंकरजी भार्गव और स्वामी नृसिंहदेवजी का एक शिष्टमण्डल इन्दौर धन संग्रह करने के लिये आया। हिन्दी मे त्रिविध कोषों के रचयिता श्री सुखसम्पतिरायजी भण्डारी के साथ यह शिष्टमण्डल सेठ साहब की सेवा मे उपस्थित हुआ। आपने इस शिष्टमण्डल का उचित सम्मान किया और २५०१) तिलक स्वराज्य फण्ड मे प्रदान किया। इसमे सन्देह नही कि उस समय सेठ साहब का कांग्रेस के साथ कोई विशेष सम्पर्क नही था। फिर भी आपके ही प्रभाव से इन्दौर से लगभग चालीस हजार की राशि जमा हो गई।

डेली कालेज

इन्दौर की छोटी-बडी सभी संस्थाये आपके उदार दान से उपकृत होती रही है। इन्दौर का 'डेली कालेज' मध्यभारत की वह संस्था है, जिसमे राजाओ, महाराजाओ और नवाबो तथा रईसो के लडके ही शिक्षा ग्रहण करते हैं। आपके सुयोग्य पुत्र भैया साहब श्री राजकुमारसिंहजी साहब ने भी इसी कालेज मे शिक्षा ग्रहण

की है। उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये आपने सम्वत् १९८९ में पच्चीस हजार रुपया प्रदान किया था। कालेज की प्रबन्धकारिणी समिति ने इसको धन्यवाद के साथ स्वीकार किया था।

प्लाण्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट

कृषिसम्बन्धी खोज करने वाली और अपनी खोज से किसानों तथा कृषिप्रेमियों को लाभान्वित करने वाली "प्लाण्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट" नाम की एक संस्था है। इस उपयोगी संस्था के विद्यार्थियों को स्कालरशिप देने के लिये आपने चार हजार रुपये प्रदान किये।

सर हुकमचन्द नेत्र औषधालय

इन्दौर में इतने औषधालय होते हुये भी आंखों के औषधालय की कमी थी और यह कमी बहुत खटकने वाली थी। आंखों के बीमार बहुत कष्ट उठाते थे। जनता के इस कष्ट और नगर की इस कमी को दूर करने के लिये तत्कालीन लोकप्रिय प्रधानमन्त्री रायबहादुर सर सिरेमल बापना तथा स्टेट सर्जन डा० सरजूप्रसादजी तिवारी ने सेठ साहब से निवेदन किया। दोनों के परामर्श पर सेठ साहब ने इकानवे हजार रुपये आंखों का औषधालय खोलने के लिये दिये। इस रकम से महाराजा तुकोजीराव हास्पिटल के अन्तर्गत आंखों का अस्पताल खोल दिया गया। सेठ साहब के नाम पर उसका नाम "सर हुकमचन्द आई हास्पिटल" रखा गया। समय-समय पर सेठ साहब इस हास्पिटल में अनेक भवन बनवाते रहे हैं। महाजन वार्ड आपका ही बनवाया हुआ है। इसी प्रकार इससे लगे हुये फीमेल हास्पिटल में सौभाग्यवती इन्दिरा महारानी आऊटडोर हास्पिटल, नर्सेस इन्स्टीट्यूशन और फैमिली वार्ड भी आपके ही बनवाये हुये हैं। इनमें एक लाख रुपया आपने व्यय कर दिया है। उसका उद्घाटन श्रीमान् महाराजा साहब श्री यशवन्तरावजी होलकर के हाथों से कराया गया। मध्यभारत में इस औषधालय ने आंखों के औषधोपचार के लिये विशेष ख्याति प्राप्त की। बहुत दूर-दूर से लोग आंखों के उपचार के लिये यहां आने लग गये थे। महाराजा साहब ने अपना भाषण स्वयं ही पढा और उसमें आपने सेठ साहब और उनके घराने की दानशीलता की भूरि-भूरि सराहना की।

महाराजा साहब ने अपने भाषण में कहा था कि "इस समारंभ के अवसर पर "सर हुकमचन्द आई हॉस्पिटल" और "राज्यभूषण रायबहादुर कल्याणमल नर्सिंग होम" का उद्घाटन करते हुए उस उत्कृष्ट औदार्य का, जिसके कारण ये दोनों सुन्दर इमारतें बन सकी हैं, हार्दिक गौरव प्रकट करने में हमको विशेष आनन्द होता है। "नर्सिंग होम" के द्वारा इन्दौर और आस-पास के लोगों को औषधोपचार की अधिक सुविधाएं प्राप्त होंगी और यह उस व्यक्ति का जो आजीवन अपनी दानशीलता के लिये प्रसिद्ध था, उपयुक्त स्मारक होगा। वैसे तो यह अस्पताल उस बड़ी संस्था का, जो हमारे प्रतापी पितामह महाराजा तुकोजीराव के नाम से प्रसिद्ध है, नेत्र चिकित्सा विभाग का एक अमूल्य योग होगा।

"इन इमारतों का इन्दौर की जनता के उपयोग के लिए दिया जाना समाज सेवा का एक सुन्दर उदाहरण है, जिससे हमारे प्रमुख नागरिकों को उत्साहित होना चाहिए और मुझे आशा है कि उनका उत्साह हमेशा बढ़ता रहेगा। इन इमारतों के दाताओं की उदारता का संतोषकारक लक्षण, जिसकी ओर हम आज आपका ध्यान आकर्षित करें, यह है कि यह उदारता व्यावहारिक उपयोगिता के स्वरूप में प्रकट की गई है। इस देश में इस बात पर शायद ही ध्यान दिया जाता है कि दान निस्वार्थ दाताओं की कीर्ति का कारण होता है। वह उन दाताओं की कीर्ति द्विगुणित करता है, जो निस्वार्थ भाव से ही नहीं अपितु बुद्धिमानी से दान करते हैं।

"अविचारपूर्वक किया हुआ दान यद्यपि दाता की धार्मिकता का परिचायक है, तथापि हो सकता है कि वह पानेवाले को बहुत ही कम या कुछ भी फायदा न पहुंचा सके। यह हो सकता है कि अनुचित दान का नतीजा

केवल याचकवर्ग का ही पालनकर्त्ता रह जाय।

"हिन्दुस्तान के निवासी अपनी उदारता, भिक्षा देने मे तत्परता तथा गरीब और दुःखी प्राणियों को मदद देने मे प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ प्रतिवर्ष धर्मादा के नाम से अधिक मात्रा मे चन्दा एकत्रित किया जाता है, किन्तु इस उदारता का प्रतिफल किसी चिरस्थायी रूप मे नजर नही आता। हिन्दुस्तान में दानरूपी अविरत वहने वाली नदी का विभाजन बिल्कुल असंगठित है। दयापूर्वक देने की प्रवृत्ति है; किन्तु उस दान की मार्गदर्शक दूरदर्शिता का अभाव है। ऐसी हालत मे यह देखकर समाधान होता है कि इस मौके पर दोनों सज्जन अपने स्वार्थत्याग के इन दोनो स्मारको के कारण न केवल दान देने बल्कि रचनात्मक उदारता का उदाहरण पेश करने मे सफल हुये हैं। उत्तम होगा, यदि दूसरे सज्जन भी इसका अनुकरण करें और हमको विश्वास है कि ज्यो-ज्यो समय गुजरेगा, त्यो त्यो इन्दौर शहर मे दान का संगठन अधिकाधिक महत्व का होता जायेगा और धार्मिक या मामूली दान के हितकर फल अत्यधिक-परिमाण मे बढ़ जावेंगे। चूंकि हम सुसंगठित दान के विषय मे बोल रहे हैं, हम आपका ध्यान एक दूसरे उद्देश्य की ओर, जिसका सीधा सम्बन्ध सार्वजनिक अस्पतालो की आर्थिक तथा कर्मचारियो की योजना से है—खीचना चाहते है। दूसरे देशोमें प्रत्येक शारीरिक रोग के इलाज के लिए बडी बडी संस्थाओ को प्रतिवर्ष जनता की इच्छानुसार दिये हुए चन्दे से आर्थिक सहायता मिलती है। इन संस्थाओ मे बहुधा खानजी डाक्टर भी अधिकांश अवैतनिक कार्य करते हैं। इस देश मे नियमबद्ध चिकित्सा अपनी बाल्य-दशा मे ही है। उसके विस्तार मे विलम्ब होने का कारण यह है कि यहां इस विषय में सरकार की आय मे से बहुत अधिक मात्रा मे सहारे की आशा की जाती है। सरकार अपना कर्त्तव्य अदा करने के लिए तैयार है। लेकिन, बगैर दीगर सहायता के वह विस्तृत रूप मे सार्वजनिक चिकित्सा का कुछ बोझा उठाने को जवाबदारी सहन करने की आशा नही कर सकती। निःसंशय, सर हुकमचन्दजी और रायबहादुर हीरालालजी का औदार्य, जिसका सम्मान करने के लिए आज हम सब यहाँ एकत्रित हुए हैं, योग्य दिशा मे एक कदम स्वरूप है। किन्तु यहाँ पर भी हमें भविष्य मे संस्था के चलाने तथा उसमे योग्य चिकित्सक की सेवा मिलाने के लिए सार्वजनिक दान के हर संगठन और व्यक्तिगत स्वार्थत्याग की आवश्यकता होगी। इन बातो मे सार्वजनिक मत को शिक्षित करने के लिये बडा भारी अवसर है और हमको आशा है कि यहाँ पर एकत्रित हुए समस्त महानुभाव तथा शहर के दीगर निवासी हमारे इस अभिप्राय के महत्व को महसूस करेंगे। हम केवल निरन्तर आर्थिक सहायता और प्रचुर परिमाण मे दान और खानगी व्यक्तियों द्वारा नियमबद्ध समाजसेवा से ही इन्दौर शहर तथा होलकर स्टेट की जरूरत के अनुरूप उपयुक्त रोग चिकित्सा कार्य को चलाने तथा उसका विकास करने की आशा कर सकते है। अन्त मे आपने जो हमारा सत्कार किया है तथा इन दोनो नूतन संस्थाओ के दाताओ ने हमारे लिए जिन सम्मानसूचक शब्दो का प्रयोग किया है, इन दोनो के लिए सौ० महाराणी साहिबा तथा अपनी ओर से हम हार्दिक धन्यवाद प्रकट करते हैं। हम दोनों उस समाज सेवा भाव को स्वीकार करने मे, जिसकी प्रेरणा से ये दोनो संस्थाएं, अस्तित्व मे आई हैं तथा उनके उद्घाटन सम्बन्धी उत्सव के मौके पर अध्यक्ष पद को स्वीकार करने मे सच्चा आनन्द अनुभव करते है।"

श्री अहिल्या माता गौशाला

सेठ साहब की गोरक्षा भी आदर्श और अनुकरणीय है। आपकी निजी गोशाला मे जैसी गाय, बैल, और भैंस हैं, वैसे आस-पास मे मिलने मुश्किल है। पिछले ही वर्षों मे इन्दौर मे एक बृहद् यज्ञ वेदमन्त्रो के पाठ से किया गया था, जिसके लिए गौओ के प्रदर्शन की भी आवश्यकता थी। तब आपकी गोशाला की ही गायें वहां लाई गई थी। उनके नाम भी आपने बहुत सुन्दर रखे हुये हैं। घर के पारिवारिक जनो की तरह उनका

लालन-पालन और पोषण किया जाता है। घर की दूध, घी, दही आदि की सारी आवश्यकता उसी से पूरी की जाती है। कितने ही गरीब लोग प्रतिदिन छाछ प्राप्त करके सन्तुष्ट और तृप्त होते है। फिर भी इन्दौर सरीखे धार्मिक नगर मे गोरक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध न था। सम्वत् १९७७ मे लोगो का इस ओर आपने ही ध्यान आकर्षित किया। आपने पिंजरापोल की स्थापना के लिये एक शिष्टमण्डल संगठित किया। ग्यारह पचो की देख-रेख मे चलने वाली गोशाला को भी आदर्श रूप देने की आपने बात उठाई। फण्ड की कमी थी। आपने दूकान दूकान से चन्दा जमा करने का प्रस्ताव किया। आपने शिष्टमण्डल संगठित किया और स्वयं दूकान दूकान पर जाकर सत्तर हजार रुपया जमा करा दिया। अपने पास से ३१०१) रुपया प्रदान किया। प्रातःस्मरणीया पुण्य-श्लोका अहिल्या महारानी के नाम पर "श्री अहिल्या माता गोशाला" की स्थापना की गई। आप वर्षों उसके अध्यक्ष रहे। आपको उसकी निरन्तर चिन्ता रहती है। अपने मुनीम गुमाश्तो से आप अपनी ही देखरेख म उसकी सारी व्यवस्था चला रहे है।

तुकोजीराव क्लाथ मार्केट

इन्दौर कपडे की बहुत बडी मण्डी तो था ही, परन्तु मिले खुल जाने से उसको और भी महत्व प्राप्त हो गया। सूती मिलों की संख्या इस समय पौन दर्जन पर पहुची हुई है। इसीलिये उनके माल की निकासी के लिये एक बडे मार्केट की आवश्यकता अनुभव की गई। बग्गीखाने पायगा की भूमि इसके लिये पसद की गई और महाराज सर तुकोजीराव होलकर के हाथो से उसका शिलान्यास भी करा दिया गया। कुछ सरकारी झगडो और आपसी मतभेद से उसका काम बीच मे ही रुक गया। मामला सेठ साहब के पास आया। आपने बीच मे पडकर सारा मामला निपटाया और मार्केट को बनवाकर बसा भी दिया। "श्री महाराजा तुकोजीराव क्लाथ मार्केट" इसी का नाम है। आप ही मार्केट कमेटी के अध्यक्ष हैं। दूर-दूर शहरो के व्यापारी आकर इस मार्केट मे बस गये और इस मार्केट से देश की सभी मंडियो को कपडा जाना शुरू हो गया था। इस मार्केट की सफलता के लिये सेठ साहब द्वारा किये गये प्रयत्न के प्रति आभार प्रदर्शित करने के लिये मार्केट कमेटी ने इन्दौर के जैन समाज के अनुसार इस मार्केट मे आपकी मूर्ति प्रस्थापित करने का निश्चय किया है।

हिंदू विश्वविद्यालय को

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के समान महामना पण्डित मदनमोहनजी मालवीय के निकट सम्पर्क मे आने का सुअवसर भी आपको प्राप्त हुआ। हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये चन्दा जमा करने के सिलसिले मे महामना मालवीयजी १९२० मे इन्दौर पधारे थे। टाउन हाल मे (इस समय जिसको 'गान्धी हाल' नाम दे दिया गया है) महाराजा साहब के सभापतित्व मे विराट् सभा हुई। आपने तीनो भाइयों की ओर से पन्द्रह हजार देने का निश्चय प्रगट किया और विश्वविद्यालय मे "जैन मन्दिर" और "जैन बोर्डिङ्ग हाउस" बनवाने की इच्छा प्रगट की। उस समय महामना मालवीयजी ने इस रकम को थोडी कह कर स्वीकार नही किया और सेठ साहब ने उसको उनके नाम से अलग जमा कर दिया। सम्वत् १९७१मे सेठ साहब का 'हीरक जयन्ती उत्सव' मनाया गया। उसी अवसर पर महामना मालवीय जी अखिल भारतीय ज्योतिष सम्मेलन के सभापति होकर इन्दौर पधारे थे। आपसे उत्सव मे पधारने का भी अनुरोध किया गया। उस अवसर से लाभ उठा कर सेठ साहब ने अपने पिछले दान के सम्बन्ध मे फिर यह घोषणा की कि "वह रकम व्याज सहित इस समय तक ४५ हजार हो चुकी है। उससे पाच हजार अपनी ओर से और मिला कर पचास हजार मालवीयजी की सेवा मे उपस्थित करता हूँ।"

मन्दिर और बोर्डिङ्ग हाउस के लिये योग्य भूमि के लिये लिखा-पढी की गई और स्वय भी सेठ साहब

दो बार इसी उद्देश्य से बनारस गये। एक बार तो विश्वविद्यालय के शिलारोपण-समारंभ के समय और दूसरी बार सम्बत् १९९० मे कानपुर जाने पर। सेठ साहब मालवीयजी के साथ इस सम्बन्ध मे निरन्तर पत्र-व्यवहार करते रहे। अन्त मे २० मार्च १९४८ को अत्यन्त समारोह के साथ इसका शिलान्यास हो गया। सेठ साहब ने इसके लिये तब इक्यासी हजार का शुभ दान किया, जो कि शुरू मे १५ हजार ही था, हीरक जयन्ती पर आपने उसको ५० हजार कर दिया था और अब उसको ८१ हजार कर दिया गया।

तुकोगंज मे भूतपूर्व महाराज साहब द्वारा एक क्लब की योजना की गई। सेठ साहब ने क्लब के भवन के लिये पहिले पचास और बाद मे पच्चीस हजार रुपये दिये।

किसानो के लिये दो लाख

सम्बत् १९७० मे श्रीमाध महाराज साहब ने किसानो की सहायता के लिये एक निधि की स्थापना की थी। सेठजी से भी इसके लिये अनुरोध किया गया। आपने दो लाख रुपया प्रदान किया और उसका विनियोग महाराजा साहब की इच्छा पर ही छोड दिया।

श्री राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक कालेज

सम्बत् २००० मे फागुन बदी २ (११ फरवरी १९४४) को अपने सुयोग्य पुत्र के नाम पर "श्री राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक कालेज" की स्थापना का उद्घाटन महोत्सव महाराज श्री यशवन्तराव होलकर के द्वारा सम्पन्न किया गया था। महाराज ने अपने भाषण मे कहा था कि "आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली हमारे पूर्वजो के उन्नत ज्ञान का प्रमाण देती है। उन्होंने अपनी उपयोगिता से भारत के मस्तक को ऊंचा उठा रक्खा था। यहां पर यह ध्यान रखना चाहिए कि केवल पूर्वजो के नाम पर ही कोई कार्य जनता का ध्यान अधिक समय तक आकर्षित नही कर सकता। वर्तमान युग के वैज्ञानिक खोज का परिणाम है कि पश्चिमी देशो ने चिकित्सा प्रणाली मे आश्चर्यजनक उन्नति की है। उसको ध्यान मे रखते हुमे आयुर्वेद प्रणाली मे संशोधन की बहुत कुछ आवश्यकता मालूम होती है। औषधि-निर्माण मे भी बहुत कुछ सुधार की मांग है। इससे प्रामाणिक औषधियां जनता मे अधिक विश्वास उत्पन्न कर सकेंगी। चरक और सुश्रुत मे जिस शस्त्र-क्रिया का उल्लेख मिलता है, उससे भी परिस्थिति अनुसार सुधार करने की आवश्यकता है। आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली को हमारे राज्य मे राज्याश्रय देने की योजना हमारे सामने कई वर्षो से थी। सुयोग्य व्यक्ति ही वैद्यका व्यवसाय करे, इस ध्येय की शर्त के लिये लगभग आठ वर्ष पूर्व हमने इन्दौर मेडिकल एक्ट जारी करने की स्वीकृति दी थी। इस एक्ट के अनुसार जो व्यक्ति योग्य थे, उनकी सूची तैयार की गई। देहातो मे इस प्रणाली का अधिक प्रचार करने के उद्देश्य से कुछ दवाखानो मे वैद्यो की नियुक्ति करने का प्रबन्ध किया गया। जिनकी संख्या प्रतिवर्ष बढ रही है। यद्यपि आरम्भ मे इन दवाखानो का प्रबन्ध करने वाले योग्य वैद्यो की नियुक्ति मे कुछ कठिनाइयां उपस्थित हुईं, परन्तु हर्ष की बात है कि अब इन दवाखानो का कार्य सन्तोष-जनक रूप मे चल रहा है। हमे आशा है कि इस संस्था से उत्तीर्ण होने वाले भावी वैद्य हमारी प्रजा विशेषत: हमारी कृषक प्रजा, जिसकी बहतरी और खुशहाली की योजनाओ की ओर हमारा ध्यान सदैव लगा रहता है, के स्वास्थ्य की उन्नति मे दिलचस्पी दिखाकर लोकसेवा का कार्य करने मे पूर्ण सहयोग प्रदान करेगे। हम फिर सर हुकमचन्दजी के अनेक लोकसेवा के कार्यों की सराहना करते है और आशा करते है कि हमारे राज्य के अन्य धनिक भी उनका उदाहरण ग्रहण कर अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग लोकसेवा के कार्यों मे ही करते रहेगे।"

सेठ साहब ने महाराजा साहब का आभार मानते हुये यह घोषणा की कि "चिरंजीव राजकुमारसिंह ने इस कालेज के लिये अपने पास से एक लाख दिया है।" भवन आदि का ५० हजार इससे अलग था। इस प्रकार

यह दान डेढ़ लाख का हो गया। इसी पर भैय्या साहब को 'दानवीर' की उपाधि से विभूषित किया गया है।

मालेगांव के हिन्दू

मालेगांव दक्षिण के हिन्दुओं का कर आदि के कारण स्थानीय अधिकारियों के साथ कुछ झगडा हो गया और हिन्दू लोग मालेगांव छोड कर बाहर जाने लगे। उनका एक डेपूटेशन सेठ साहब के पास भी आया। आपने बम्बई के बडे लोगो और सरकारी अधिकारियों के साथ लिखापढी की। आप गवर्नर से स्वयं भी मिले। उनके सारे कष्ट आपने दूर करा दिये। इसके लिये वहां की जनता अब भी आपका आभार मानती है।

विक्रमादित्य

उज्जैन में सम्बत् २००० पूरे होने पर श्री विक्रमादित्य महोत्सव मनाने का आयोजन किया गया था। उसके लिये आपने पचास हजार देने की घोषणा की थी। सम्बत् २००१ मे श्रावण वदी ७ को श्रीमान महाराज यशवन्तराव के युवराज-जन्म के उपलक्ष मे गरीबों की सहायता के लिये ७००१) दिये गये थे। सम्वत् २००१ की वैशाख वदी १४ को ग्वालियर महाराज के नामकरण महोत्सव के अवसर पर परमार्थ कार्यों के लिये इक्कीस हजार प्रदान किया था। इसी वर्ष उज्जैन मे राजयक्ष्मा का औषधालय बनाने के लिये ग्वालियर महाराज को चार लाख, बम्बई के राजयक्ष्मा औषधालय को २१ हजार, ग्वालियर मे माउण्टसरी विद्यालय बनाने के लिये अपनी ओर से ८२०० और सेठानी साहिबा की ओर से ४१०० रुपये प्रदान किये। सम्बत् २००२ मे बैशाख सुदी १० को इन्दौर के राजयक्ष्मा अस्पताल के लिये इन्दौर नरेश की मार्फत दो लाख और इसी वर्ष फागुन वदी १२ को श्री राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक-कालेज की स्थिर निधि के लिये एक लाख दिया। संयोगितागज के गर्ल्स स्कूल को २००३ मे २१०१, उज्जैन महिला मण्डल को सेठानीजी की ओर से ५००० और अखिल भारतीय महिला परिषद् को भी ५००० दिया गया।

देशी राज्य लोक परिषद्

तिलक स्वराज्य फण्ड मे दिये गये दान की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। सम्बत् २००३ मे असोज वदी ६ को आपने इन्दौर राज्य प्रजामण्डल की सहायता के लिये २१०१, चैत वदी ११ को ग्वालियर मे पण्डित जवाहरलालजी नेहरू के सभापतित्व मे हुये अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के आठवे अधिवेशन के लिये स्वागत समिति को पाच हजार, फिर २००४ में फागुन वदी १० को मध्य भारत देसी राज्य लोक परिषद् को ३१०० और इन्दौर कांग्रेस कमेटी को भी आपने २००० रुपये प्रदान किये।

स्थानीय गाधी निधि

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की पुण्य स्मृति म कायम की गई राष्ट्रीय निधि के लिये भी आपने स्थानीय निधि मे दस हजार एक का दान दिया। बम्बई मे जमा की गई निधि मे भी दो हजार दिये। सरदार पटेल द्वारा उद्योगपतियो की ओर से की गई पांच करोड की निधि मे भी आपने अपना हिस्सा प्रदान किया।

सम्बत् २००३ मे भादवा सुदी २ को शरणार्थी रिलीफ फण्ड मे आपने पच्चीस हजार रुपये प्रदान किये।

इनके अलावा जो छोटी-मोटी अन्य रकमे समय-समय पर दी गई, उनका जोड भी पन्द्रह लाख पर पहुच जाता है। धार्मिक और सामाजिक कार्यों मे लगाये गये लाखो रुपयो की चर्चा तो अगले प्रकरण मे की जायगी। कुल मिलाकर सारा दान ८० लाख के लगभग हो गया है। अब भी दान का यह प्रवाह बंद नहीं हुआ है। ऊपर के दिये गये विवरण से यह प्रगट है कि यह दान सहस्रधारा की तरह सब ओर, सभी संस्थाओं और सभी कार्यों के लिये दिया गया है। लोकोपकार की कोई भी दिशा उससे वंचित नही रही है। राजकीय किंवा

शासकीय क्षेत्र के समान राष्ट्रीय किंवा राजनीतिक क्षेत्र भी उससे वंचित नहीं रहे। शहर की जनता के लिये जहां-जहां अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं के समान गांवों के किसान भाइयों की पुकार पर भी सेठ साहब ने समुचित ध्यान दिया। अन्न-दान, वस्त्र-दान, औषध-दान के साथ जीवन-दान और सबसे बढ़कर ज्ञान-दान का पुण्य लाभ करके सेठ साहब ने अपनी सम्पत्ति को सार्थक बना लिया। संस्थाओं की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से और काल की दृष्टि से भी यह दान इतना व्यापक है कि इसको 'सर्वमेधयज्ञ' का अनुष्ठान कहा जा सकता है। 'सर्वमेध' का अभिप्राय यहां लोकोपकार और जनकल्याण की सभी प्रवृत्तियों को सफलतापूर्वक पूर्ण बनाना है। यह अपने पाठकों पर ही छोड़ना समुचित रहेगा कि वे देखें कि सार्वजनिक जीवन की कौन सी दिशा या प्रवृत्ति ऐसी है, जो सेठ साहब के उदार दान के सात्विक लाभ से वंचित रह गई है। इस प्रकार का चहुँमुखी दान करने वाले बिरले ही भाग्यवान दीख पड़ते हैं।

: ७ :

धार्मिक क्षेत्र में

"आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥"
"अरब खरब की सम्पदा, उदय अस्त लों राज ।
धर्म बिना सब व्यर्थ ज्यों, पत्थर भरी जहाज ॥"

धर्मशास्त्रो मे ही नही, नीतिग्रन्थो मे भी धर्म की असाधारण महिमा गाई गई है । आज का मानव धर्म से इतना उपराम या विमुख हो गया है कि उसे नीति अथवा व्यवहार मे धर्म की कुछ भी आवश्यकता अनुभव नही होती । नीति को वह धर्म से बिलकुल रहित ही मानता है । इसीलिये वह इतना अधिक स्वच्छन्द होता जा रहा है कि उसको जीवन मे सयम, सादगी, सरलता, सहिष्णुता तथा सहृदयता आदि को कुछ भी आवश्यकता अनुभव नहीं होती । हमारे शास्त्रो मे कहा गया है कि ऐसे स्वच्छन्द जीवन और पशु के जीवन मे कुछ भी अन्तर नही है । खाना-पीना, सोना, जागना, डरना-डराना और इन्द्रिय भोग तो पशु और मनुष्य समान रूप से करते ही है। मनुष्य मे यदि अधिक कुछ है, तो वह केवल धर्म है और धर्म के बिना वह पशु के समान है। मनुष्य ने यदि अरब-खरब की सम्पदा पैदा कर ली और जहां से सूर्य उदय होता है, वहां से लेकर जहा वह अस्त होता है, वहा तक का राज्य भी प्राप्त कर लिया, तो धर्म के बिना वह सब वैसे ही व्यर्थ है, जैसे कि पत्थर से भरा हुआ जहाज होता है । पत्थरो से भरे हुये जहाज का भविष्य डूबने के सिवाय और क्या हो सकता है ? इसी प्रकार धर्म से विमुख होकर मनुष्य अन्त मे डूबेगा ही । कितने मनुष्य है, जो इस सचाई को समझते है और समझ कर भी उसको अपने जीवन मे पूरा उतारते है । इसीलिये तो आज के मानव ने उस ससार को, जिसको कि वह स्वर्ग बना सकता है, नरक बना रखा है और नरक की भीषण यातनाये भोगने मे वह लगा हुआ है । हमारे चरित्रनायक इसके अपवाद है । धर्म मे आपकी सहज और स्वाभाविक आस्था है। कुलपरम्परा से ही धार्मिक वृत्ति आप मे असाधारण रूप मे जागृत हुई है । आप स्वय उसको जन्मसिद्ध मानते है । आपके जन्म के ग्रहो का योग भी कुछ ऐसा प्रस्तुत है कि उसी मे यह निहित है कि आपकी धार्मिक वृत्ति भी अत्यन्त प्रबल होगी । पुराने इतिहास और साहित्य मे ऐसे महापुरुषो का चरित्र अवश्य मिलता है, जिन्होने संसार मे राजकीय वैभव मे रहकर भी उसका उपभोग इस रूप मे नही किया कि वे उसमे तल्लीन हो गये हो । लोक मे राजा जनक को 'विदेह' इसीलिए कहा गया है कि धर्म मे लीन होने पर वे अपने देह की सुध-बुध भूल जाते थे । ससार के सुख, वैभव और ऐश्वर्य की तो बात ही क्या है ? राजा भरत भी ऐसे ही चक्रवर्ती सम्राट् थे । उन महापुरुषो की पुरानतम परम्परा की एक दिव्य झाकी सेठ साहब ने भी अपने सफल और महान जीवन मे उपस्थित कर दिखाई है । आपके साधनामय विरक्त जीवन का चित्र तो यथास्थान उपस्थित किया जायगा । यहा तो केवल वह भव्य

पृष्ठभूमि ही उपस्थित की जा रही है, जिस पर सेठ साहब सरीखे चतुर चित्रकार ने अपने सक्रिय जीवन का वह दिव्य चित्र अङ्कित किया है। संसारी जीवों के लिये तो आपने एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर दिखाया है।

इसमे सन्देह नही कि सेठ साहब के व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन के उत्कर्ष का आधार श्री दिगम्बर जैन धर्म है। उसकी इकाई दिगम्बर जैन समाज कहा जा सकता है। परन्तु आपके धर्म और समाज की इस भावना तथा कल्पना को संकीर्णता कहीं छू भी नही सकी है। वह समुद्र की तरह महान, हिमालय की तरह उज्ज्वल और आकाश की तरह विशाल है। अनुदारता का उसको कही स्पर्श भी नहीं हुआ है। तभी तो आपके जीवन की प्रगति इस प्रकार विकासोन्मुखी हुई है कि उसको देखने वाले चकित रह जाते हैं। आपके प्रारम्भिक जीवन की छाया मे आज के जीवन को देखने वाले सहसा ही विस्मय मे पड जाते है। परन्तु जिन्होने इस प्रगति और विकास के क्रम का कुछ बारीकी या गहराई से अध्ययन किया है, उनके लिए यह समझ सकना कुछ भी कठिन नही है कि जो हमारे चरित्रनायक के जीवन में माता के स्तनपान के साथ ही धार्मिक संस्कारो का बीजारोपण हो गया था और उन बीजो का अंकुर जब फूटा, तब वह आकाश मे सिर ऊंचा किये ऊपर की ओर ही बढता चला गया।

जैन धर्म और जैन समाज पर ही नही, किन्तु किसी पर भी कोई सकट उपस्थित हो, तो तुरन्त उसके निवारण के लिये समुचित कार्यवाही करना आपका स्वभाव बन गया है। प्लेग, मंहगाई और दुर्भिक्ष आदि की आधिभौतिक किंवा दैवीय आधिव्याधि उपस्थित होने पर मनुष्यमात्र की सेवा के लिये आपका हृदय विकल हो उठता है। ५ फरवरी १९५१ को बांकानेर-मध्यभारत मे श्री १०८ मुनि महावीर कीर्तिजी महाराज पर मन्दिरजी की धर्मशाला को आम रास्ते मे जाते हुये एक गुण्डे ने लकडी से प्रहार कर दिया। उसकी सूचना सेठ साहब को दी गई, तो आपने तुरन्त फोन करके अधिकारियो को उचित कार्यवाही करने के लिये प्रेरित किया। एक जैन पत्र मे इस घटना की पूरी जानकारी न होने के कारण कुछ ऐसी आलोचना कर दी गई कि "जैन समाज घोर निद्रा मे है और मुनि महाराज पर इतना उपसर्ग होने पर भी किसी मे चेतना नही आई।" इस पर सेठ साहब ने उक्त पत्र के सम्पादक-महोदय को एक पत्र लिखते हुये लिखा कि "इस घटना के बाबत हमारे पास धर्मपुरी के जैन समाज का तार आने से हमने फौरन कार्यवाही की। ·· · · आपने जैन समाज और पुलिस को घोर निद्रा मे लिखा, सो ऐसी बात नही है। बांकानेर और धर्मपुरी से तार द्वारा समाचार मिलते ही हमने पर्याप्त प्रयत्न किया, जिसका विवरण यहां के पत्रो मे भी छप गया है, सो भेजते हैं। आपको पढने से सब मालूम हो जायगा। यह कैसे हो सकता है कि खास हमारे मध्यभारत मे ही ऐसी घटना हो जावे और हम चुप रहे? ऐसे मामलो मे हम सदा सतर्क रहते है और फौरन कार्यवाही करा कर ठीक करा देते है। यह तो हमारे मध्यभारत का ही गांव था, सो टेलीफोन करने से काम बन गया। बाकी दूसरी जगह के काम मे भी पूर्ण लगन से यथाशक्ति काम किया ही जाता है।"

आचार्यश्री में श्रद्धा

परमपूज्य जगत्‌वन्द्य चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज अपने चरित्र और तपोबल के प्रभाव से संसार मे अपना अद्वितीय स्थान रखते है। अवसर निकाल कर सेठ साहब आपके दर्शनो का लाभ निरन्तर लेते रहते है? आचार्य श्री संघसहित जब इन्दौर पधारे थे, तब आपके अद्वितीय व्यक्तित्व का सेठ साहब पर विशेष प्रभाव पडा। स्वदारसन्तोष व्रत तो आप प्रारम्भ से ही पालते आ रहे है और पीछे ६० वर्ष की अवस्था मे आचार्यश्री के सम्मुख त्रिलोकचन्द जैन हाईस्कूल मे आपने हजारो की उपस्थिति मे पूर्ण ब्रह्मचर्य का

व्रत लिया और उसका आप यथावत् पालन कर रहे हैं। आपके-से धन-वैभव, सुख-सम्पत्ति और सर्वसाधना सुलभ व्यक्ति के लिये संयम का जीवन बिताना कितना कठिन है? फिर भी आपका संयम सराहनीय और अनुकरणीय है। आचार्यश्री और मुनिधर्म पर जब भी कोई उपसर्ग या संकट उपस्थित हुआ, आप उसके निवारण करने मे सहसा ही तत्पर हो गये और अपने प्रयत्नो मे सफल होकर ही आप शान्त हुये। सन् १९२९ मे आचार्यश्री सघ के साथ दिल्ली पधारे थे। तब सरकार की ओर से कुछ पाबन्दियां लगा दी गईं थी। उन पर विचार करने के लिये कलकत्ता मे एक विराट सम्मेलन का आयोजन किया गया था। आप ही उसके सभापति हुये थे और सारी कार्रवाई आपके ही नेतृत्व में की गई थी। १९४२ मे नातेपूते (शोलापुर) मे आप पर उपसर्ग होने पर अदालत मे जब मुकदमा चला, तब आप अहोरात्र चिन्तित रहते थे और चारो ओर फोन आदि करके उचित परामर्श देते रहे थे। आपने सभी सदस्यो को अर्जेण्ट तार देकर महासभा की बैठक बुलाने का भी अनुरोध किया था। आप स्वयं मोटर द्वारा इन्दौर से दिल्ली पधारे थे और मुकद्दमे की पैरवी के लिये समुचित प्रबन्ध किया था। बम्बई सरकार ने हरिजन मन्दिर प्रवेश कानून को जब जैन मन्दिरो पर भी जबरन् लागू किया, तब सन् १९४८ मे आचार्यश्री ने अन्न का परित्याग कर जो आत्मसाधना की, उससे सेठ साहब को बहुत चिन्ता हुई। सेठ साहब ने काफी समय तक अन्नाहार का भी त्याग कर दिया था। पीछे आचार्यश्री की वृद्धावस्था का आपके तन-बदन पर विपरीत असर पडने लगा, तब आप और भी अधिक चिन्तित रहने लगे। आप स्वय भी बम्यई मे बीमार थे। आपकी शारीरिक स्थिति चिन्ताजनक हो गई थी। फिर भी आपने आचार्यश्री के दर्शनो के लिये जाने का आग्रह किया। डाक्टरो ने रेल-यात्रा करने की अनुमति न दी। आपने इन्दौर से अपनी मोटर गाडिया मंगा कर यात्रा करने और आचार्यश्री के दर्शनो के लिये गजपंथा जाने का सारा प्रबन्ध कर लिया। अन्तिम समय मे पता चला कि आचार्यश्री का विहार आगे की ओर हो गया है। तब निराश होकर आपने यात्रा का विचार छोड दिया और मोटरें इन्दौर लौटा दी गईं। इन दिनो मे भी आपको आचार्यश्री के स्वास्थ्य की विशेष चिन्ता रहती है और उनके सम्बन्ध मे समाचार मंगाते ही रहते है। आपकी गुरुभक्ति अनुकरणीय है।

श्रीकानजी स्वामी में भक्ति

सौराष्ट्र मे दिगम्बर जैन धर्म की प्रभावना करने वाले, हजारो को दिगम्बर जैन धर्म की दीक्षा देने वाले और स्वयं भी सम्वत् १९९२ के लगभग श्वेताम्बर से दिगम्बर धर्म को अगीकार करने वाले श्री कानजी स्वामी मे भी आपकी अपार भक्ति है। स्वामीजी के दर्शनो के लिये आपने तीन बार सोनगढ की यात्रा की है। वहां जैनधर्म की प्रभावना करने मे आपका बहुत बडा हाथ रहा है। वहा आपने लगभग एक लाख रुपये का दान मन्दिर तथा स्वाध्याय भवन आदि के निर्माण के लिये किया है। सन् १९४८-४९ मे अत्यन्त रुग्ण और अशक्त रहते हुये भी आपने लाठी-सौराष्ट्र मे होने वाले पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव मे जाने का उत्साह प्रगट किया था। उन दिनो मे आप प्रायः यही कहा करते थ कि श्री कानजी स्वामी सनातन दिगम्बर जैन धर्म का महान उद्योग कर रहे है। इसीलिये उनके उपदेश से दिगम्बर जैन धर्म स्वीकार करने वाले हजारो भाई-बहिन धन्य है। मेरा उनके प्रति उत्कट वात्सल्य भाव है।

पहिली बार सेठ साहब सन् १९४५ मे अपने परिवार के विशिष्ट लोगो—सौ० सेठानी साहिबा, सेठानी प्यारकुंवरबाईजी (डा० वी० रा० ब० स्व० सेठ कल्याणमलजी की पत्नी) सेठ फतेचन्दजी सेठी, सेठ नाथूलालजी सराफ, लाला हजारीलालजी जैन, पं० नाथूलालजी शास्त्री आदि अनेक सज्जनो तथा नौकर-चाकरो के साथ धार, सरदारपुर, दाहोद, गोदरा, अहमदाबाद, डाकोर, बाबरा, भायला, धधूका आदि होते हुये तीन मोटरों पर स्थल मार्ग से गये थे। सोनगढ मे श्रीसीमधर स्वामी का दिगम्बर जैन मन्दिर, श्री समोसरण मन्दिर, जैन स्वाध्याय

मन्दिर पुस्तकालय आदि दर्शनीय हैं। यहां सेठ साहब ने १२५०१ रुपये जैन मन्दिर ट्रस्ट को प्रदान किया। सेठानी साहिबा ने भी १२५०१ रुपये, सेठानी प्यारकुंवरबाईजी ने ५००१ रुपये और सेठ फतेचन्द सेठी ने ५०१ रुपये प्रदान किये। इस संस्था के मासिक पत्र "आत्मधर्म" को गुजराती मे हिन्दी मे प्रकाशित करने के लिये भी सेठ साहब ने १००१ रुपये दिये। राजकोट के श्री जौहरी कालीदास राघवजी ने श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत ४१५ गाथाओं को चांदी के सुन्दर पत्रो पर खुदवाया था। वह उन्होने सेठ साहब को भेंट किये और सेठ साहब ने श्री कानजी स्वामी को समर्पित किये। सोनगढ के आर्यसमाज के गुरुकुल मे भी आपका स्वागत सम्मान किया गया। आपको सोनगढ मे ४० स्थानो के प्रतिनिधियो ने मानपत्र भेंट किया और श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप के शिलान्यास के लिये पधारने की प्रार्थना की। जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट की ओर से प्रकाशित १८ ग्रन्थ भी आपको भेट किये गये। लौटते हुये राजकोट और बडवान आदि मे आपका भव्य स्वागत किया गया। बडवान के भाइयो की ओर से बैरिस्टर पोपटलाल चुडगीगर ने कहा कि "सर सेठ साहब का सम्मान हम धनकुबेर होने के नाते नही करते, अपितु इसलिये करते हैं कि आप दृढ धार्मिक और लोकोपकारी महापुरुष है। इसीलिये आपके प्रति हमारा आदरभाव है। आपके इधर आने से नवीन दिगम्बर जैन बन्धुओ को बड़ा बल मिला है।"

तीसरी बार सेठ साहब "भगवान श्री कुन्द कुन्द प्रवचन मण्डप" का उद्घाटन करने के लिये १८ फरवरी १९४७ को सोनगढ़ स्पेशल बोगी रिजर्व करवा कर गये थे। दूसरी बार इसी का शिलान्यास करने के लिये पधारे थे। तब आपने ११००१ रुपया प्रदान किया था। इस बार भी कुटुम्ब के लोग और आपकी पार्टी साथ थी। भैया साहब श्री राजकुमारसिंहजी कलकत्ता से हवाई जहाज से एक दिन पहले पहुँच गये थे। बडवान तथा अन्य स्टेशनो पर महिलाओ ने मगल गीत गाकर स्वागत किया। २१ फरवरी को बडी धूमधाम से जलूस निकाले जाने के बाद भवन का उद्घाटन किया गया और परिवार के उपस्थित पांचो सदस्यो (स्वयं सेठानी साहेबा, भैय्या साहब, पुत्रवधु और पौत्र) की ओर से सात-सात हजार कुल पैंतीस हजार का दान "स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट" को देने की घोषणा की। विद्यार्थियो का भैय्या भगवतीदासजी रचित निमित्त उपादान का रोचक संवाद सुनकर उनको १०१ रुपये का पारितोषक प्रदान किया। २२ फरवरी को भावनगर राज्य के दीवान साहब के सभापतित्व मे ५६ स्थानो के दिगम्बर जैन भाइयो की ओर से आपको मानपत्र भेट किया गया। आपने विनम्र शब्दो मे कहा कि श्री कानजी स्वामी द्वारा की जाने वाली धर्म प्रभावना मे अपनी सारी सम्पत्ति के उपयोग को भी मै सफल मानूंगा।" २३ फरवरी को स्टेट की मोटरो से आप सारी पार्टी के साथ भावनगर गये और वहां ताज-महल अतिथि भवन मे ठहराये गये। घोघा बन्दर के भव्य दिगम्बर जैन मन्दिरो के दर्शन किये, जिनमे पचासो चौबीसी और अति प्राचीन स्फटिक की प्रतिमा है। सोनगढ के महिला ब्रह्मचर्य आश्रम मे महिलाओ की सभा सेठानीजी की अध्यक्षता मे हुई।

श्वास रहते भी सहयोग दूंगा

२४ फरवरी को विछिया ग्राम जयन्दन राज्य मे नवीन दिगम्बर जैन मन्दिर और स्वाध्याय मन्दिर का शिलान्यास करने के लिये करीब सौ मनुष्यो के साथ स्पेशल गाडी से गये। वहां स्टेट गार्ड ने आपको सलामी दी और स्टेट के लवाजमे के साथ जनता ने आपका स्वागत किया। महिलाओ का "आज सोना को सूरज उगियो" स्वागत गीत अत्यन्त ओजस्वी और महत्वपूर्ण था। सेठ साहब ने कहा कि "श्री कानजी स्वामी के प्रभाव से इस ओर जहां भी कही दिगम्बर जैन मन्दिर की नीव डाली जायेगी, तो मुझे बुलाने पर श्वास रहते भी आकर सहयोग दूंगा।" आपने अपने परिवार के उपस्थित पांचो व्यक्तियो की ओर से एक-एक हजार कुल पांच हजार भेट किया। स्वर्गीय सेठ कल्याणमलजी साहब और सेठ देवकुमारसिंहजी एम० ए० की पत्नियो ने भी

२०१-२०१ प्रदान किया। आपकी प्रेरणा से तत्काल ३२ हजार का चन्दा जमा हो गया। इसके अतिरिक्त एक हजार रुपया जसदन के परवार साहब ने भी प्रदान किया। लौटते हुए आपने आबूजी के ऐतिहासिक मन्दिरों और चित्तौडगढ के ऐतिहासिक किले तथा अन्य स्थानों का भी अवलोकन किया। वहां जीर्ण-शीर्ण जैन मन्दिरो और मानस्तम्भ पर निर्मित जैन मूर्तियों को देख कर आपने उन स्थानों को उदयपुर राज्य से प्राप्त कर उनका जीर्णोद्धार करने पर जोर दिया। दानवीर धर्मवीर सर सेठ भागचन्दजी सोनी को इसके लिये प्रेरित भी किया। सारे मार्ग मे खूब चर्चा रही। भैय्या साहब श्री राजकुमारसिंहजी की धर्मजिज्ञासा, प्रतिभा तथा बुद्धिमत्ता की श्री कानजी स्वामी ने सराहना की। २६ फरवरी की रात को सेठ साहब सब साथियों के साथ इस धर्मयात्रा से वापिस लौटे।

कुल परम्परा

सेठ साहब मे धर्मप्रभावना की यह उत्कट भावना पारिवारिक सस्कारो का ही परिणाम समझी जानी चाहिये। धर्म कार्यों मे आवश्यकता तथा अवसर के अनुसार मुक्त दान से खर्च करना आपके घराने की परिपाटी रही है। सम्वत् १९३९ मे, जब सेठ साहब आठ वर्ष के थे, बडवानी सिद्धक्षेत्र पर बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था। तब सेठत्रय माणिकचन्दजी, सरूपचन्दजी और ओंकारजी कुटुम्ब सहित पन्द्रह दिन पहले वहां पहुच गये थे बहुत उत्साह से उक्त तीनो भाइयो ने योगदान दिया और खर्चे मे भी उदारता से हाथ बंटाया। पहाड की तलेटी मे तब मकराने का एक मन्दिर भी बनवाया था। इस अवसर पर दस हजार रुपया खर्च किया गया था।

सन् १९४८-४९ की भयानक बीमारी मे कभी किसी ने भी आपके मुह से 'आह' की आवाज नहीं सुनी। हर समय मणिमय माला हाथ मे रखते हुये 'अरहन्त' का ही निरन्तर जाप करते रहे।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के साथ उसके जन्म समय से ही आपका सम्पर्क है। ४०-४५ वर्षों से यह सम्पर्क विशेष रूप से है। सच तो यह है कि आपके सम्पर्क, सहयोग और नेतृत्व से महासभा को आज का सा स्वरूप, शक्ति, सगठन तथा बल मिला है और आपकी सार्वजनिक प्रवृत्तियो का क्षेत्र भी महासभा के ही कारण इतना व्यापक, विस्तृत और प्रभावशाली बन सका है। महासभा के सम्बन्ध मे सबसे बडी उल्लेखनीय बात तो यह है कि आपने महासभा के साथ सम्पर्क हो जाने के बाद अपनी सार्वजनिक प्रवृत्तियो, जैन धर्म तथा जैन समाज की सेवा का सारा श्रेय प्राय महासभा को ही देने का प्रयत्न किया और अपने व्यक्तित्व को महासभा के संगठन की भेट सर्वतोभावेन कर दिया। गांधीजी के महान व्यक्तित्व का जो लाभ कांग्रेस को मिला है, उससे कुछ अधिक ही लाभ आपके महान व्यक्तित्व से महासभा को प्राप्त हुआ है। सन् १९१९ मे श्री सम्मेदशिखरजी मे अपने चौदहवे चालू अधिवेशन के सभापतित्व का कार्य सम्पादन किया और वहां आप प्रधानमन्त्री नियुक्त किये गये, जो कि दो वर्ष तक रहे। फिर मथुरा मे सन् १९१४ मे १९ वे वार्षिक अधिवेशन के आप सभापति हुये और सात वर्षों तक आप स्थायी सभापति रहे। फिर सन् १९३८ मे बजेडिया मे ४१ वे अधिवेशन के आप सभापति हुये। उसके बाद सन् १९४० मे देवगढ मे ४२ वे और ४३ वे अधिवेशनो के सभापति हुये। इन अवसरो पर दिये गये आपके भाषणो को बहुत अधिक सराहा गया। समय-समय पर आप महासभा के चालू खर्च और स्थायी फण्ड के लिये बराबर बडी-बडी रकमे देते रहे। सम्वत् १९७० मे मथुरा मे महासभा के तेतीसवे वार्षिक अधिवेशन पर आपको महासभा की ओर से मानपत्र दिया गया और "दानवीर" की पदवी से भी विभूषित किया गया। यहा अपने महासभा के चालू खर्च के लिये बडी रकम दी। सन् १९४४ मे उज्जैन मे हुये ४९ वे अधिवेशन मे आपने सात हजार रुपया अपने पास से देकर विशेष चन्दा करा दिया। मालवा प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा के आप स्थायी अध्यक्ष है और उसके अनेक अधिवेशनो का भी आपने सभापतित्व किया

और उसके लिये भी हजारों रुपया प्रदान किया। बम्बई प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा को भी आपसे विशेष सहायता और बल मिला है। इस समय आप महासभा के संरक्षक हैं। धर्म, जाति और समाज की सेवा का जो भी कार्य आप करते हैं, उसका सारा श्रेय महासभा को देने मे आप तनिक भी संकोच नही करते।

सेवा जीवन का व्रत

जैन धर्म और जैन समाज की सेवा को जीवन का व्रत बनाकर आपने जो महान कार्य किये हैं, उनको मुख्यतः चार भागो मे बांटा जा सकता है। एक तीर्थों की सेवा, दूसरा जैन तीर्थों अथवा मुनिधर्म के लिये उपस्थित होने वाले उपसर्ग या संकट का निवारण, तीसरा आपस के झगडो का निपटारा और चौथा विविध संस्थाओ की स्थापना और सहायता। सामान्य रूप से गत आधी सदी की दिगम्बर जैन समाज की प्रगति एवं विकास का इतिहास आपके जीवन के साथ छाया की तरह जुड़ा हुआ है। दोनो को एक दूसरे से अलग करना कठिन है। यदि उससे सेठ साहब के व्यक्तित्व और जीवन कार्य को अलग कर दिया जाय, जो कि संभव नही है, तो वह निश्चय ही अर्थशून्य और प्रभावशून्य हो जायगा।

तीर्थों की सेवा

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणकचन्दजी के देहान्त के बाद से ही तीर्थ क्षेत्र कमेटी का कार्यभार आपके कन्धो पर है। उसी समय से आप उसके अध्यक्ष है। तीर्थों की मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा तथा गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने और उन पर दिगम्बर समाज के स्वत्व एवं अधिकारो की रक्षा के लिये आपने अहोरात्र प्रयत्न किया है।

सबसे पहिला प्रसग सम्भवतः सम्वत् १९४७ मे इन्दौर मे ही उपस्थित हुआ, तब शक्कर बजार मे मारवाडी दिगम्बर जैन मन्दिर पर कलश चढाने के समय कुछ अडचन उपस्थित की गई। मामला सेठ साहब के पास लाया गया। आपने महाराज साहब तथा रेजीडेण्ट के सम्मुख सारी परिस्थिति उपस्थित की और कलश चढाने का हुक्म प्राप्त किया। आषाढ मास मे हजारो की उपस्थिति मे कलशारोहण उत्सव बडे समारोह और धूमधाम के साथ सम्पन्न किया गया। सेठ साहब ने इस महोत्सव पर पच्चीस हजार रुपये व्यय किये।

श्रीसम्मेदशिखरजी

सम्बत् १९४६ मे जैनियो के परम-पवित्र पर्वतराज श्रीसम्मेदशिखरजी के लिये एक संकट उपस्थित हो गया। वहां पर अंग्रेजो की बस्ती बसाने का निश्चय किया गया। समस्त जैनसमाज मे सहसा ही हलचल मच गई। हजारीबाग के डिप्टी कमिश्नर के पास विरोध मे हजारो तार भेजे गये। अनेक शिष्टमण्डल भी मिलने गये। अन्त मे बगाल-बिहार के तत्कालीन छोटे लाट ने मौके पर पहुँच कर स्वयं सारी स्थिति देखने का निश्चय किया। २३ अगस्त १९८७ को छोटे लाट वहां पहुँचे। स्थान स्थान के जैन मुखिया वहां एकत्रित हुये। इन्दौर से सेठ साहब भी सेठ कस्तूरचन्दजी, सेठ कल्याणचन्दजी, सेठ अमोलकचन्दजी, सेठ बालचन्दजी, सेठ मुन्नालालजी और सेठ मागीलालजी आदि के साथ वहां पहुंचे। छोटे लाट के आने पर जैन समाज के समस्त उपस्थित मुखिया नंगे पैरो उनके साथ पर्वतराज पर पहुँचे और उनको यह बताया गया कि पर्वतराज का एक-एक कंकर जैनियों के लिये पवित्र और पूज्य है। यदि जैन समाज की इस भावना और विरोध का विचार न करके यहां अंग्रेजो की बस्ती बसाने के लिये बगले बनाये ही गये, तो उसमे भयंकर विरोधाग्नि सुलग उठेगी। पन्द्रह लाख जैनियो का यहा खून बह जायगा। पर, बंगले नही बनने दिये जायेंगे। लाट साहब पर इसका असर पडा और बंगले बनाने की योजना स्थगित कर दी गई। बम्बई म सम्बत् १९६७ मे जैन समाज के प्रमुख नेताओ ने इकट्ठे होकर निश्चय किया कि पर्वतराज को खरीद ही क्यो न लिया जाय और ऐसा कोई प्रश्न भविष्य मे पैदा होने का अवसर

न आने दिया जाय। दानवीर सेठ माणिकचन्दजी इसके लिये चन्दा जमा करने को स्वयं इन्दौर पधारे। सेठ साहब ने स्वयं अपने पास से पाच हजार देकर इन्दौर से पच्चीस हजार जमा करा दिये।

श्रीमक्सी क्षेत्र

सम्वत् १९८४ मे श्रीमक्सीजी तीर्थक्षेत्र पर धर्मशाला बनवाने के लिये पांच हजार प्रदान किये। इस तीर्थ की व्यवस्था और निरीक्षण आपके ही हाथो मे है। आपके ही कारण यहां के झगडे आपस मे निपटते रहते है। अन्य कुछ क्षेत्रो की तरह इस क्षेत्र के लिये भी श्वेताम्बरियो और दिगम्बरियो के झगडो पर दोनो ओर के लाखो रुपये खर्च हो चुके थे। अन्त मे सन् १९०२ मे कैलाशवासी श्रीमन्त महाराज श्री माधवराव सिंधिया ने दिगम्बरियो के पक्ष मे निर्णय देकर वर्षों की कलह समाप्त की। इस क्षेत्र के लिये भी आपने स्थायी कोष का प्रबन्ध किया, जिसके लिये अपने पास से अच्छी रकम देकर दूसरो को भी देने के लिये प्रेरित किया।

राजगढ ब्यावरा मे ब्राह्मणो के विवाद के कारण जैनियो के जलूस पर रोक लगा दी गई थी। वहां के जैनी भाई सेठजी के पास आये। सेठजी स्वयं दरबार राजगढ से जाकर मिले। ६ सितम्बर १९१८ के पत्र से दरबार ने जलूस निकालने की आज्ञा दे दी और उससे सम्बन्धी सारी रुकावटें भी दूर कर दी गईं।

तारगाजी और "जैन सम्राट" का पद

श्री तारंगाजी सिद्ध क्षेत्र पर भी दिगम्बरियो और श्वेताम्बरियो मे काफी सघर्ष चल रहा था। सेठ साहब ने महीकाठा पोलिटिकल एजेन्ट से इस सम्बन्ध मे लिखा-पढी की और सम्वत् १९८९ मे दोनो पक्षो के लोग बम्बई मे इकट्ठे हुये और सेठ साहब के प्रभाव के कारण पोलिटिकल एजेण्ट की उपस्थिति मे आपस मे समझौता होकर पुराना विवाद और संघर्ष मिट गया। इस क्षेत्र की आपने जो सेवा की, उसके प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिये आपको आचार्य श्री कुन्थूसागरजी के समक्ष "जैन सम्राट" की पदवी से विभूषित किया गया और यहा स्थापित किये गये मानस्तम्भ के उत्तर मे यह लेख दिया गया है कि "वीर निर्वाण सम्वत् २४६४ मे भारत-शिरोमणि जैनदिवाकर रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी साहब इन्दौर आपकी धर्मपत्नी विदुषीरत्न सौभाग्यवती श्रीमती कञ्चनबाईजी तथा भैया साहब राजकुमारसिहजी आदि सहकुटुम्ब व सेक्रेटरी बाबू वसन्तीलालजी कोरिया व प० खूबचन्दजी शास्त्री आदि सहित यात्रार्थ पधारे। तब सर सेठजी साहब ने तीर्थभक्त सेठ जीवनलालजी बखारिया कल्लोलनिवासी के प्रस्तावानुकूल तारंगाजी क्षेत्र स्थायी फण्ड हेतु आदर्श योजना प्रस्तुत की। विशेषानुरोध से संरक्षक पद स्वयं स्वीकार किया। पश्चात तीर्थभक्त सेठ जीवनलालजी बखारिया ने पेथापुरवासी शाह पन्नालालजी तथा वैद्यरत्न पण्डित आनन्ददासजी जैन गर्ग योजना के विषय मे इन्दौर पहुँचे। वहा पर सेठ साहब की प्रेरणा से बडवानी व पावागिरी ऊन दर्शनार्थ गये। यहां मानस्तम्भ के दर्शन कर तीर्थभक्त सेठ जीवनलाल बखारिया के प्रबल मानता हुई कि श्री तारगाजी पर भी मानस्तम्भ हो। अत पूज्य श्री कुन्थूसागरजी मुनिराज के चरणो मे विचार प्रगट किये व तारंगाजी पर जनसमुदाय के सन्मुख विचार-प्रस्ताव रखा। पूज्य श्री के सदुपदेश से सायरावासी कञ्चनबाई ने मानस्तम्भ की पूर्ति कर अपूर्व पुण्योपार्जन किया। एतदर्थ धन्यवाद है।"

श्रीऋषभदेवजी

उदयपुर-मेवाड के श्रीऋषभदेवजी के सुप्रसिद्ध तीर्थ पर भी काफी समय से परस्पर विषाद चल रहा था। सम्वत् १९८९ मे ध्वजादण्ड चढाने के अवसर पर उस विवाद ने उग्र संघर्ष का भीषण रूप धारण कर लिया। श्वेताम्बरियो ने दिगम्बरियो पर मन्दिरजी मे ही लाठियो मे आक्रमण कर दिया। ६ दिगम्बरी घायल हो गये और मन्दिरजी मे ही उनका देहान्त भी हो गया। पं० गिरधारीलालजी भी उनमे एक थे। सारे समाज मे हलचल मच गई। सेठ साहब के पास समुचित कार्यवाही करने के लिये चारो ओर से तार आने शुरू हो गये।

कई शिष्टमण्डल भी उदयपुर गये और अन्त में सेठजी को भी वहां जाना पड़ा। अजमेर से स्वर्गीय सेठ टीकमचन्दजी भी सोनी पधारे। आपको बागोर की हवेली के गेस्ट हाउस में वर्नार राज्य के मेहमान के ठहराया गया। महाराणा साहब से मिलने की जब सहूलियत न हुई, तब आपने दौरे पर ही जाकर उनसे मुलाकात की और सारी घटना उनको कह सुनाई। श्री महाराणा साहब की जो तलवार वहां रखी हुई थी, उसको उठाकर अपने गले पर रखते हुये कहा कि यदि हमारे साथ न्याय नहीं हो सकता, तो अच्छा है इसको हमारे गले पर चला दिया जाय। हम धर्म पर मर मिटेंगे। पर, अन्याय सहन नहीं करेंगे। आपकी इस दृढ़ता का महाराणा साहब के हृदय पर जादू का-सा असर हुआ और सेठ साहब को न्याय करने का उन्होंने आश्वासन दिया। महाराणा साहब ने अपने वचन को पूरा किया और कुछ स्थानीय अधिकारियों के विरुद्ध भी कार्यवाही की गई।

श्री पावागिरी-ऊन

पावागिरि सिद्धक्षेत्र इन्दौर राज्य के नीमाड जिले के सेगांव परगने के समीप अज्ञात अवस्था में था कि तीर्थभक्त सेठ हासुखजी सुसारी के असीम परिश्रम से की गई खोज से यह प्रसिद्धि में आया। श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा, पांच अन्य प्रतिमायें तथा चरणपादुका भूमि में से प्राप्त हुई थी। एकाएक उनके सम्बन्ध में कुछ निर्णय करना कठिन था। इसलिये सम्वत् १९९१ के श्रावण मास की सुदी ६ अर्थात १६ अगस्त १९३४ को सेठ साहब की अध्यक्षता में दीतवारिया धर्मशाला में सभा होकर इसका विवेचन किया गया। अनेक पण्डितों ने विचार-विनिमय तथा शास्त्र-चर्चा करके यह निर्णय किया कि यही पावागिरी का सिद्धक्षेत्र है, जो शास्त्रप्रतिपादित चिन्हों के सर्वथा अनुकूल है। परन्तु राज्य से उसको प्राप्त करना और जैनियों के अधिकार में लेना आवश्यक था। सेठजी इसके लिये कटिबद्ध हो गये। महाराज की सेवा में प्रार्थना-पत्र भेजा गया। वह स्वीकार कर लिया गया। २९ अगस्त १९३५ के हुजूर श्री शंकर आर्डर १९४ के अनुसार यह क्षेत्र दिगम्बर जैन समाज को देना स्वीकार कर लिया गया। ९ अक्टूबर १९३५ को ही मन्दिरजी और धर्मशाला की नींव सेठ साहब के ही हाथों से डाली जाकर जीर्णोद्धार का कार्य शुरू कर दिया गया। आस-पास के स्थानों सनावद, महेश्वर, तोतारा, सुसारी तथा बड़वानी आदि से हजारों जैन इस अवसर पर पधारे। सेठ साहब के १००१) के दान से इस कार्य के लिये चन्दा लिखना शुरू किया गया। इस क्षेत्र कमेटी के, जिसका नाम दिगम्बर जैन पावागिरी संरक्षिणी कमेटी है, आप ही सभापति और कोषाध्यक्ष हैं। मन्दिर का निर्माण हो जाने के बाद प्रतिष्ठा-महोत्सव का आयोजन किया गया। इन्दौर के सेठ हीरालालजी वासीलालजी काला की ओर से श्री बिम्ब प्रतिष्ठा पंचकल्याणक महोत्सव बड़े ही समारोह के साथ सम्पन्न कराया गया और मन्दिरजी के शिखर पर कलश चढ़ाया गया। इसी अवसर पर मालवा प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा का अधिवेशन भी हुआ। इसी समय धर्मशाला की नींव खोदने के समय तीसरे भगवान संभवनाथजी की मूर्ति प्राप्त हुई। प्राकृतिक दृष्टि से स्थान बड़ा ही मनोरम है। पूर्व दिशा में चेलना नदी बहती है। पश्चिम में कमलतलाई है। उत्तर में ऊन गांव है। दक्षिण में नारायणकुण्ड है, जो वैष्णवों का तीर्थ है। कहते हैं कि प्राचीन काल में यहां ९९ मन्दिर और तालाब थे। उनके चिह्न अब भी दीख पड़ते हैं। १०-१२ मन्दिरों के खण्डहर तो अब भी अवशेष हैं, जो अस्त व्यस्त अवस्था में पड़े हुये हैं। इनमें खुदाई का काम दर्शनीय है। ग्वालेश्वर वाले मुख्य मन्दिर की प्रतिमायें विशाल हैं। बीच की भूमि तपोभूमि कही जाती है। सुवर्णभद्र आदि चार मुनीश्वरों ने यहीं से मोक्षपद प्राप्त किया। मूर्तियों पर अनेक सम्वत् दिये हुये हैं। एक पर १२५२ सम्वत है। इससे यह स्पष्ट है कि समय-समय पर इस मन्दिर और क्षेत्र का जीर्णोद्धार होता रहा है। बावनगजाजी और सिद्धवरकूट के बीच का यह प्राचीन पावागिरी सिद्धक्षेत्र है। इस समय इसके जीर्णोद्धार और उसको दिगम्बर जैन समाज के अधिकार में लाने का अधिकतर श्रेय सेठ साहब को ही है।

श्री गजपन्थाजी

नासिक के पास श्री गजपंथाजी क्षेत्र के समीप सैनिको की दूसरे महायुद्ध के दिनो मे एक छावनी थी। वहां रगरूट सैनिक भरती किये जाते थे। उन्होने एक बार पहाडी पर जाकर क्षेत्रजी पर इतना उत्पात किया कि मन्दिरजी का ताला तोडकर मूर्तियां आदि चुरा लाये। वहा के चौकीदार और माली आदि ने रोका, तो उनके साथ उन्होने मारपीट भी की। समस्त जैन समाज मे समाचार पहुचते ही तहलका मच गया। सेठ साहब को भी विशेष सूचना दी गई। आपने तुरन्त नई दिल्ली मे महासभा के कार्यालय को सूचना दी और उच्च फौजी अधिकारियों तक मामला पहुँचाने का अनुरोध किया। महासभा के कार्यालय से और अजमेर से महासभा के प्रधान सर सेठ भागचन्दजी की ओर से अभी सम्बन्धित अधिकारियो को तार दिये ही गये थे कि सेठ साहब का तार आया कि हमे पता चला है कि गजपन्थाजी मे ऐसी कोई विशेष गडबड नही हुई है। महासभा के अधिकारी असमंजस मे पड गये कि क्या किया जाय ? सेठ साहब ने सम्मति दी कि उच्च अधिकारियो को खेद प्रकट करते हुये लिख दिया जाय कि हमे पहिले जो सूचना मिली थो, वह ठाक नही थी। लेकिन, इसी समय फिर यह पता चला कि घटना सर्वथा सत्य है। स्थानोय सैनिक अधिकारियो ने जनता मे क्षोभ न फैलने देने के लिये सारे मामले को दबा देने के लिये वैसा समाचार भिजवा दिया था। बस, फिर क्या था ? सेठ साहब ने जोर लगाकर उचित कार्यवाही करने का आदेश महासभा को दिया। महासभा के प्रधान के नाते सर सेठ भागचन्दजी सोनी से आपने अनुरोध किया कि वे ऊचे अधिकारियो से स्वय मिले। आप तब केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य थे। आप रक्षामन्त्री और गृहमन्त्री आदि से मिले। प्रधान सेनापति तथा बम्बई प्रान्तीय सरकार के अधिकारियो को भी तार दिये गये। सेठ साहब ने फोन व तार आदि से सम्बन्धित अधिकारियो का सोना मुश्किल कर दिया। अन्त मे स्थानीय सैनिक अधिकारियो को उचित कार्यवाही करने के लिये लाचार होना ही पड गया। सिपाहियो की परेड मे पहचान करवाई गई। उनकी बैरको की तलाशी ली गई। क्षेत्रजी से चोरी किया गया सारा सामान सिपाहियो के सामान मे से और कुछ इधर-उधर छिपाया मिल गया। कोर्टमार्शल किया गया। अपराधी सैनिको को सजा दी गई। इससे यह भी प्रगट है कि सेठ साहब ऐसे मामलो मे कितने सतर्क और सावधान रहते है ?

श्री गोमटस्वामी का मस्तकाभिषेक

सम्वत् १६८२ मे आप परिवारसहित श्री गोम्मटस्वामी महामस्तकाभिषेक महोत्सव मे सम्मिलित हुये। मैसूर राज्य के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक तीर्थ श्री श्रवणबेलगोला पर श्री १००८ बाहुबली स्वामीजी की ५७ फोट ऊंची एक विशाल प्रतिमा है। उसका मस्तकाभिषेक हर बारहवे वर्ष अत्यन्त समारोह के साथ हुआ करता है। मैसूर महाराज भी इसमे सम्मिलित होते है। इस वर्ष भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी का अधिवेशन भी यहां ही किया गया था। सेठ साहब इसके अध्यक्ष थे। मन्दारगिरी से पुल बनाने का प्रश्न वहा उपस्थित हुआ। आपने स्वयं होकर कलश की बोली बोलनी शुरू कर दी। बात की बात मे पैंतीस हजार उसी स्थान पर एकत्रित हो गया। इस अवसर पर लगभग बीस हजार जैनी एकत्रित हुये थे। मार्ग मे और श्रवणबेलगोला मे भी सेठ साहब का अपूर्व स्वागत हुआ। मैसूर मे तो आपको अभिनन्दन-पत्र भी भेट किया गया।

सम्वत् १६६६ मे आप फिर दुबारा श्री श्रवणबेलगोला के श्री गोम्मटस्वामीजी के महामस्तकाभिषेक महोत्सव मे सम्मिलित हुये। इस बार वहां तीस हजार के लगभग जैनी भाई उपस्थित हुये थे। मैसूर महाराज भी युवराज के साथ महोत्सव मे सम्मिलित हुये थे। इस बार सेठजी ने फिर महामस्तकाभिषेक के लिये कलशों की बोली बोली और अस्सी हजार की निधि जमा कर दी। पाच हजार से पांच रुपये तक की बोली बोली गई।

तीर्थ की रक्षा और स्थायी व्यवस्था के लिये आप दो बार फिर भी श्री श्रवणबेलगोला गये। दो वर्ष की लिखा पढ़ी के बाद आपने यह रकम मैसूर स्टेट बैंक में जमा करवा दी और सरकार से इसकी ट्रस्ट कमेटी के लिये स्वीकृति दिलाकर ही आपने सन्तोष माना। इस प्रकार आपने सदा के लिये भगवान के महामस्तकाभिषेक के लिये खर्च का प्रबन्ध कर दिया। रकम सुरक्षित कर दी गई और व्याज से अभिषेक का व्यय पूरा किया जाने लगा।

बागीदौरा में प्रतिष्ठा

सम्वत् १९८४ में आप बागीदौरा में हुये श्री जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव में सम्मिलित हुये। अत्यन्त अधिक कार्यव्यग्र होते हुये भी वहां के पंचों के स्वयं आकर आग्रह करने के कारण आप टाल न सके। बांसवाडा से आगे जाने पर रात होने से रास्ता भूल गये। जंगल का रास्ता था। साथी घबरा गये, तो रिवाल्वर हाथ में लेकर आप सबसे आगे आगे हो लिये। वहां मालवा प्रान्तिक सभा का अधिवेशन भी था। लौटते हुये बांसवाडा के दरबार साहब ने एक दिन रोककर आपको अपना मेहमान रखा। इसी वर्ष आपने मोटरों से श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा की। चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज का संघ वहां पधारा था। बम्बई के सेठ घासीलालजी पूनमचन्दजी की तरफ से श्री बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव का समारोह भी था। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का वार्षिक अधिवेशन और तीर्थ क्षेत्र कमेटी की भी बैठक वहां थी। सेठ साहब तीर्थक्षेत्र कमेटी के प्रधान थे। पण्डित पार्टी और बाबू पार्टी में यहां खींचतान बहुत अधिक बढ़ गई। आपने बड़ी युक्ति के साथ दोनों दलों को संभाला और सभा का कार्य सम्पन्न किया। अपनी ओर से ५१०० रुपया प्रदान करके क्षेत्र कमेटी के लिये अच्छी बड़ी धनराशि जमा करवा दी।

बडवानी में बिम्बप्रतिष्ठा

सम्वत् १९८७ में सेठ साहब के समधी श्री परसरामजी दुलीचन्दजी फर्म के मालिक सेठ फत्तेचन्दजी साहब ने बडवानी में श्री बिम्बप्रतिष्ठा (पंचकल्याणक) महोत्सव कराया। आपने सारा कार्यभार सेठ साहब को सौंप दिया। श्री बडवानी सिद्धक्षेत्र का विशेष महात्म्य है। श्री १००८ इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण तथा अन्य अनेक मुनिगण भी यहीं से मोक्ष पधारे हैं। यहीं पर्वत पर श्री आदिनाथ भगवान की ७२ फीट ऊंची विशाल प्रतिमा है। सेठ हरसुखजी साहब सुसारी और लाला देवीसहायजी साहब बडवानी वालों ने इस प्रतिमाजी का जीर्णोद्धार कराया था और उसी के उपलक्ष में यह प्रतिष्ठा-महोत्सव किया गया था। बडवानी शहर के पास एक विशाल सभा मण्डप बनवाया गया। हजारों की संख्या में कैम्प व तम्बू आदि लगाये गये थे और लाउडस्पीकर का भी प्रबन्ध किया गया था, जो इस क्षेत्र के लिए अभूतपूर्व था। स्टेट की ओर से सेठ साहब के लिये खास दरबारी डेरा दिया गया था और सैनिक पहरे का प्रबन्ध किया गया था। बडवानी शहर से पर्वत तक पक्की सडक बनवाने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो सेठ साहब ने श्री बावनगजाजी आदिनाथ भगवान के महामस्तिकाभिषेक के कलशों की बोली बोलकर तत्काल तीस हजार रुपये जमा कर दिये। आधी रकम सडक बनवाने के लिये स्टेट के सुपुर्द कर दी गई। यहां चूलगिरी पर सेठ साहब का बनवाया हुआ एक मन्दिर भी है। स्वर्गीय रायबहादुर सेठ कल्याणमलजी की पत्नियों ने इस मन्दिर पर जो शिखर बनवाया था, उस पर सेठ साहब ने इसी अवसर अपने हाथों से कलश चढाया था। इसी अवसर पर बडवानी में सेठ साहब के सभापतित्व में मालवा प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा का अधिवेशन था। इसी में आपको "तीर्थ भक्त शिरोमणि" के पद से विभूषित किया गया था। जैन समाज के आपके प्रति आदर और तीर्थों के प्रति आपकी श्रद्धा की यह निशानी है। १९७८ में भी आप यहां पधारे थे। तब आपको मानपत्र दिया था और आपने धर्मशाला के लिये चार हजार और मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये एक हजार प्रदान

किया था।

आपने पावापुरजी, शत्रुंजयजी और शौरीपुर बटेश्वरजी आदि सिद्धक्षेत्रों तथा अतिशय क्षेत्रों की भी महान सेवा की है और उन पर दिगम्बर जैन धर्म तथा दिगम्बर जैन समाज के प्रभुत्व तथा प्रभाव को अक्षुण्ण बनाये रखने का महान पुण्य तथा श्रेय सम्पादन किया है। गिरनारजी सिद्धक्षेत्र के लिये आप अब भी प्रयत्नशील हैं और कई बार सौराष्ट्र के प्रधानमन्त्री श्री ढेबर भाई से टेलीफोन पर बातचीत कर चुके हैं। भैयासाहब श्री राजकुमारसिंहजी को वहां शिष्टमण्डल में कई बार भेज चुके हैं।

३ मुनिराज सेवा

इसी प्रकार मुनिधर्म पर संकट आने पर भी आपने उसके निवारण के लिये भी कुछ उठा नहीं रखा और मुनिराज की सेवा का अक्षय पुण्य सम्पादन किया है। चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के संघ पर आये हुये उपसर्ग या संकट का निवारण करने की तरह आपने अन्य स्थानों पर भी ऐसा संकट उपस्थित होने पर मुनिराज की सेवा के लिये तुरन्त ही उपयुक्त कार्यवाही की। ऐसे अवसरों पर कमजोरी, कायरता या घबराहट दिखाना आप जानते ही नहीं। तन-मन-धन सर्वस्व की बाजी लगा देते हैं। दिल्ली और नातेपूते की चर्चा पीछे की जा चुकी है। सम्वत् १९८६ में बयाना में रथयात्रा पर और राजाखेड़ा में मुनि संघ तथा दिगम्बर जैनियों पर आक्रमण किया गया। आपने उन राज्यों के दीवान तथा पोलिटिकल एजेण्ट और ए. जी. जी. तक मामला पहुंचाया और सफलता प्राप्त की। श्री पावापुरजी तीर्थक्षेत्र पर मन्दिरजी के मामले में आप स्वयं वहां गये और सफल होकर लौटे। बंडीलालजी दिगम्बर जैन कारखाना जूनागढ़ गिरनार कमेटी की बागडोर सम्वत् १९६९ से ही आपके हाथों में है, जब कि आप सेठ माणकचन्दजी के साथ वहां गये थे। इसका प्रधान कार्यालय प्रतापगढ़ में है। आप इसके अध्यक्ष हैं। इसके द्रव्य की रक्षा करने, इसको ब्याज पर लगाने और यहां पर होने वाले झगड़ों को निपटाने का भार भी आप पर ही है। दिगम्बरी भाइयों के अधिकारों की रक्षा के लिये आप निरन्तर कटिबद्ध रहते हैं।

ईडर में

ईडर के साधरा महीकांठा स्थान में मुनिविहार पर प्रतिबन्ध लगाने पर आप सर सेठ भागचन्दजी सोनी के साथ वहां गये और प्रतिबन्ध को दूर कराया। आचार्य श्री कुन्थुसागरजी के प्रति भी आपकी अटूट श्रद्धा थी। सम्वत् १९९६ में मुनिजी वहां ससंघ विराजते थे। तब आप उनके दर्शनों के लिये वहां पहुंचे और बिना सूचना दिये ही वहां पहुँच गये। ईडर महाराज को आपके आगमन का पता लगते ही आपको हिम्मतनगर के राजमहल में स्टेट गेस्ट के रूप में ठहराया गया और सारा प्रबन्ध राज की ओर से ही किया गया। स्वयं महाराज भी हवाई विमान से मुनिश्री के दर्शनों के लिये पधारे और सेठ साहब की धार्मिक भावना तथा मुनिभक्ति देखकर गद्‌गद् हो गये। आपके शुभागमन का समाचार बिजली की तरह चारों ओर फैल गया। ईडर के जैन समाज की ओर से आपको मानपत्र भेंट किया गया और लौटते हुये अनेक स्टेशनों पर गाड़ी को अधिक समय रोक कर आपको मानपत्र तथा चायपार्टी आदि देकर जैन समाज ने आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट कर अपने को कृतार्थ किया।

हैदराबाद में प्रतिबन्ध

हैदराबाद में सन् १९३३ में मुनिविहार पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाने पर उसको निवारण कराने के लिये आप स्पेशल ट्रेन से सत्याग्रह करने के लिये हैदराबाद जाने और साथ में हजारों जैनियों को भी ले जाने के लिये तय्यार हो गये। इन्दौर में विरोध में हुई सभा में आपने घोषणा की थी कि "यदि मुनिधर्म के लिये बलिदान की भी आवश्यकता हुई, तो सबसे पहले मेरा बलिदान होगा और मुनिधर्म की रक्षा अवश्य की जायगी।"

आपकी इस वीर गर्जना और साहसपूर्ण तैयारी से सारे ही जैन समाज में उत्साह, जोश और बलिदान की वेगवती लहर दौड़ गई। हजारों जैन भाई आपके नेतृत्व में हैदराबाद कूच करने को तय्यार हो गये। लेकिन, नवाब साहब के ठीक अवसर पर संभल जाने से ऐसा समय न आया। सेठ साहब के तारों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि मुनिधर्म की समस्त बाधायें निजाम राज्य से सदा के लिये दूर हो गईं।

इन्दौर में प्रतिबन्ध

मुनि विहार के सम्बन्ध में अपने घर इन्दौर में सन् १९३५ में अत्यन्त संकटमय विषम स्थिति पैदा हो गई। लेजिस्लेटिव कौंसिल ने मुनि विहार प्रतिबन्धक कानून के सम्बन्ध में एक बिल पास कर दिया था। इसे सहन करना सेठ साहब के लिये संभव ही न था। आपको पूरे एक वर्ष उसके विरुद्ध प्रयत्न करना पड़ा और अन्त में आपने महाराजा साहब से उसको हटवा कर ही सन्तोष किया। १९३४ में आपकी साठवीं वर्षगांठ पर हीरक जयन्ती मनाने का निश्चय हो गया था। परन्तु आपने इस प्रतिबन्ध के रहते किसी भी प्रकार का उत्सव मनाने से इनकार कर दिया। प्रतिबन्ध हटने पर १९३६ में यह उत्सव मनाया गया। इस प्रकार जहां भी कहीं ऐसा संकट, बाधा या रुकावट उपस्थित हुई, तो आप पूर्ण प्रयत्न करके उसको दूर करवा कर ही शान्त हुये।

"जैनीदण्डनम्" पुस्तक की जब्ती

सन् १९४२ में 'जैनीदण्डनम्' नाम की एक पुस्तक बघेलखंड के जसो राज्य के एक पण्डित भगवताचार्य ने लिखी थी। वह इलाहाबाद के किसी प्रेस में प्रकाशित हुई थी। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ने उसको जब्त कराने का काम जब अपने हाथ में लिया, तब आपने उसके लिये कितने ही तार व पत्र सम्बन्धित अधिकारियों को दिये। ए० जी० जी० से आप स्वयं मिले। जसो राज्य के राजा साहब के साथ भी लिखापढ़ी की। छः मास बाद उत्तर प्रदेश की सरकार ने उसको जब्त किया। राजा साहब जसो ने उसको जब्त किया और लेखक की जैन-धर्मविरोधी हरकतों को सदा के लिये ही बन्द करवा दिया।

आकलूज काण्ड

शोलापुर के आकलूज गांव में दिसम्बर १९५० को स्थानीय अधिकारियों ने ताले तोड़कर जबरन हरिजनों को जैन मन्दिरों में प्रवेश करवाया। मामला इस समय बम्बई हाईकोर्ट में पेश है। सेठ साहब ने इस मामले से भी तार व फोन आदि करके मामला हाईकोर्ट में ले जाने का परामर्श दिया और उचित कार्यवाही करने में सहायता प्रदान की।

आप साधनामय विरक्त जीवन बिताते हुये भी मुनिधर्म पर आने वाले संकटों का निवारण करने के लिये अहोरात्र चिन्तित और प्रयत्नशील रहते हैं। आप स्वयं आजकल कहीं बाहर नहीं जा सकते, तो भैया साहब राजकुमारसिंहजी को भेज कर समुचित कार्यवाही करने का प्रबन्ध करते हैं। भैया साहब सेठ साहब के पदचिन्हों पर चलते हुये आपके आदेश-निर्देश का यथावत् पालन कर धर्म तथा समाज की सेवा करने में लगे रहते हैं।

२ आपस के झगड़ों का निपटारा

आपस के झगड़े निपटाने की कला में सेठ साहब ने विशेष निपुणता प्राप्त की है। न केवल दिगम्बर जैन समाज के आपस के, किन्तु कोई भी झगड़ा किन्हीं भी लोगों में आपस में क्यों न हो, उसको निपटाने का कार्य यदि आपको सौंपा जाता है, तो उसको निपटाये बिना आप दम नहीं लेते।

बड़नगर के तेरापंथी गोट का पंचायती झगड़ा इतना बढ़ गया था कि हजारों रुपया मुकद्दमेबाजी में भी फूंक दिया गया था और मन्दिर के द्रव्य तथा समाज की शक्ति व्यर्थ में नष्ट हो रही थी। मन्दिरजी की आमदनी और खर्च का कोई नियमित हिसाब रखा न जाता था। अन्त में सारा मामला सेठ साहब के हाथों में दे दिया

गया। सेठ साहब कई बार बडनगर गये और अपने प्रभाव से काम लेकर आपने आपस का पचायती झगडा आपस मे ही निपटा दिया और वैमनस्य दूर कर शान्ति कायम करा दी। आय-व्यय के हिसाब की भी समुचित व्यवस्था कर दी। तब से पचायत और मन्दिरजी का कार्य सुचारू रूप से चल रहा है।

सोनकच्छ मे भी इसी प्रकार आपसी वैमनस्य के कारण हजारो रुपयो की गडबड काफी समय से चल रही थी। वहा के लोगो ने भी आप से झगडा व वैमनस्य दूर करने की प्रार्थना की। श्री केसरीमलजी के विशेष आग्रह से आप ९ नवम्बर १९३३ को सोनकच्छ पधारे। मन्दिरजी का सारा हिसाब सभाला। जिनसे रकम लेनी निकलती थी, उनसे लिखा-पढी करके मामला निपटाया। कुछ को उनकी अनुचित कार्यवाही के लिये दण्ड भी दिया। अपने स्वभाव तथा प्रभाव से सबको सन्तुष्ट कर वर्षो पुरानी कलह शान्त कर दी।

मथुराजी मे राजा लक्ष्मणदासजी की धर्मपत्नी और वहा की पंचायत मे मन्दिरजी के हिसाब आदि को लेकर बहुत झगडा चल रहा था। मामले-मुकदमे मे दोनो ओर से काफी रुपया बरबाद किया जा रहा था। समाज मे भी वैमनस्य बढता जा रहा था। आपके प्रयत्न से राज्यभूषण सेठ हीरालालजी साहब को मध्यस्थ बनाया गया और उनका निर्णय दोनो पक्षो के द्वारा मान्य हो जाने से एक पुराने सघर्ष का अन्त हो गया।

४ सस्थाओं की स्थापना और सहायता

जैन सार्वजनिक संस्थाओ, मन्दिरो, धर्मशालाओ, पुस्तकालयो, स्वाध्याय भवनो तथा ऐसी ही अन्य सस्थाओ की सेठ साहब ने समय-समय पर जो सहायता की है, उसका विवरण दान की विस्तृत सूची मे दिया जा रहा है। यहा भी संक्षेप मे उसका उल्लेख इस लिये किया जा रहा है कि उससे उनकी धर्म प्रभावना पर विशेष प्रकाश पडता है।

सबसे पहिले चार लाख के बडे दान की घोषणा सम्भवत आपने सम्वत् १९७१ में पालीताना मे बम्बई प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा के अधिवेशन पर की थी, जिसके कि आप ही सभापति थे। स्वयंसेवको ने आपकी गाडी के घोडे खोल दिये और स्वयं गाडी खीच कर आपका जलूस निकाला। सेठानी साहिबा श्रीमती कंचनबाई ने उसी समय उसमे से एक लाख रुपया स्त्री शिक्षा के लिये अलग करवा लिया। नरसिह बाजार इन्दौर मे इसी एक लाख से श्री कंचनबाई दिगम्बर श्राविका आश्रम की स्थापना सम्वत १९७२ मे की गई। महारानी श्रीमती चन्द्रावतीबाई ने उसका उद्घाटन किया और सेठानी साहिबा को "दानशीला" की पदवी से सम्मानित किया गया।

असहाय विधवा सहायक फण्ड

स्त्रीशिक्षा के लिये यह ठोस कदम उठाने के बाद सेठानी साहिबा का ध्यान विधवा बहिनो की दयनीय दशा की ओर भी गया और आपने सेठ साहब से अनुरोध करके सम्वत १९७५ मे दिगम्बर जैन असहाय विधवा सहायता फण्ड स्थापित करवाया। सम्वत् १९७५-७६ मे सेठानीजी के बहुत बीमार रहने के कारण सेठ साहब ने मन्दिरजी की वेदी प्रतिष्ठा के समय यह घोषणा की कि "सेठानीजी का यह वर्ष बहुत अधिक कष्ट का है। यदि सम्वत् १९७६ उनके लिये निर्विघ्न बीत गया, तो मैं एक लाख की चादी की प्रतिमा निर्माण कराऊगा।" सेठानी जी ने स्वास्थ्य लाभ कर लिया और जब प्रतिमा बनवाने का प्रश्न आया, तो आपने सेठ साहब से अनुरोध किया कि इस धनराशि को विधवा बहिनो की सहायता मे लगाया जाय। इसी अनुरोध पर इस फण्ड की स्थापना की गई।

इससे पहिले सम्वत १९७० मे हस्तिनापुर के श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम के शिष्ट मण्डल को दस हजार अपने पास से दे कर इन्दौर से कुल १६५०० रुपये का चन्दा करवा दिया था।

रथयात्रा महोत्सव

सम्बत १९८३ मे श्वेत अश्वो का स्वर्णमय वह विमान भगवान का रथ बन कर तय्यार हो गया, जिस पर सेठ साहब ने पचास हजार रुपया व्यय करने का सकल्प किया था। इसी उद्देश्य से रथयात्रा निकाली गई और पारमार्थिक संस्थाओं का द्वादश वर्षीय महोत्सव भी जबरीबाग मे किया गया। भव्य पंडाल मे मांडलिक पूजन विधान किया गया। इस उत्सव और रथयात्रा की छटा दर्शनीय थी। महाविद्यालय के विद्यार्थियो को तत्कालीन ए. जी. जी सर रेजिनाल्ड ग्लांसी की अध्यक्षता मे पारितोषक दिये गये। इन्दौर की समस्त जैन-अजैन कन्याओ को लेडी ग्लासी की अध्यक्षता मे पुरस्कार बांटा गया। उत्सव की समाप्ति पर सेठ साहब ने प्रीतिभोज भी दिया।

उदासीन आश्रम

पालीताना मे घोषित किये गये चार लाख रुपया के दान मे से दस हजार रुपया उदासीन आश्रम की स्थापना के लिये अलग रख दिया गया था। यह आश्रम तुकोगज मे स्थापित किया गया। उद्देश्य इसका यह था कि जो लोग घर-गृहस्थी और सांसारिक जंजाल से विरक्त होकर धर्म की साधना मे अपने को लगाना चाहे, उनको जीविका के अर्जन की चिन्ता न रहे। पं० पन्नालालजी गोधा ने १५०रु० मासिक की मुनीमी छोडकर उदासीन वृत्ति धारण की और इस आश्रम का भार सभालने की इच्छा प्रकट की। उस दस हजार के अलावा तीनो भाइयो ने दस दस हजार रुपया और लगाया। एक दुमजिली खुली इमारत मे इसका काम शुरू किया गया। इस समय इसकी निधि मे एक लाख रुपया जमा है।

शीतवारिया का भव्य जैन मन्दिर

सम्बत् १९७८ मे शीतवारिया के श्री दिगम्बर जैन मन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव बडी ही धूमधाम और समारोह के साथ किया गया। मारवाडी गोठ मे परस्पर मे मतभेद पैदा हो जाने से शान्तभाव से धर्मसाधना और धर्मप्रभावना करने के लिये श्रीमाणकचंदजी मगनीरामजी की गोठ अलग कायम की गई थी, तभी सम्वत् १९६९ मे इस मन्दिर की नीव डाली गई थी। वहां पहिले श्री कनीराम-चम्पालाल का मकान था। वह तीनो भाइयो ने खरीद लिया और मन्दिर के लिये उसको दे दिया। मन्दिर का निर्माण आधुनिक निर्माण-कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। जयपुर और इरान तक से कुशल और सुयोग्य कारीगर बुलाये गये। सारा काम प्रायः काच का ही किया गया। रंग-बिरंगे काच के अत्यन्त सुन्दर और मनोहर चित्र बनाये गये हैं। सिद्धक्षेत्र, समोशरण, तीन लोक, नन्दीश्वर द्वीप, स्वर्ग की रचना, सप्त व्यसन तथा अष्टकर्म इत्यादि के भाव के द्योतक चित्र देखते ही बनते है। चमर, छत्र, अशोक वृक्ष, पुष्पक विमान आदि की छटा भी काच-निर्मित चित्रो मे ही दिखाई गई है। चित्रों के साथ उपदेशप्रद भावपूर्ण दोहे, श्लोक, कथा तथा वचन भी दिये गये है। दर्शक जब चित्र देखता और उनको पढता है, तब भक्ति के भावावेश मे आये बिना नही रह सकता।

मन्दिर की शोभा धार्मिक दृष्टि से तो इतनी अधिक है कि इसी के कारण इन्दौर नगरी को तीर्थ का-सा महत्व प्राप्त हो गया है, क्योकि इन्दौर आने वाला धार्मिक व्यक्ति इसके पुण्य दर्शन से धर्म-लाभ किये बिना रह नही सकता। कलात्मक दृष्टि से भी मन्दिर की शोभा और आकर्षण इतना अपूर्व है कि इन्दौर के दर्शनीय स्थानो की यात्रा के लिये आने वाला व्यक्ति इसके दर्शन करने के लोभ का संवरण नही कर सकता। सेठ साहब की धार्मिक वृत्ति के साथ-साथ यह विशाल मन्दिर आपके कला प्रेम की भी साक्षी अनन्त काल तक देता रहेगा। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सभी को इसको देखने की आपने उदारतापूर्ण अनुमति दी हुई है। भारत के भूतपूर्व वायसराय लार्ड रीडिंग व लेडी रीडिंग, भूतपूर्व प्रधान सेनापति फील्ड मार्शल सर विलियम वर्डवुड, बडौदा के

महाराज, दतिया, प्रतापगढ, कुशलगढ, कांछी बडोदा, ध्रांगध्रा और वामडा के नरेश, मध्यभारत के एजेण्ट और आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय तथा महामना मालवीयजी सरीखे देशनेता आदि इसके दर्शन कर चुके हैं। जो भी देखने आता है, वह सेठ साहब के कला-प्रेम और धर्म-प्रेम की सराहना किये विना नही रहता। मन्दिर की दिव्यता, भव्यता, कारीगरी, पच्चीकारी, चित्रकला, भाव दर्शन आदि की सराहना दर्शक करता रह जाता है। मन्दिर की इतनी उत्कृष्ट कल्पना के लिये भी वह सेठ साहब की प्रशंसा करता है। लाखो रुपया इसमे लग चुका है और अब भी काम बराबर होता ही रहता है। इसमे एक सरस्वती भण्डार भी है, जिसमे जैन ग्रन्थो का नियमित रूप से स्वाध्याय करने वाले नर-नारियो के लिये लगभग पाच हजार ग्रन्थो का सग्रह किया गया है। अन्य धर्मों के ग्रन्थ भी इसमे रखे गये है। इस विशाल मन्दिर के साथ मे ही एक विशाल धर्मशाला भी बनवाई गई है, जिसमे जाति की रसोई आदि के लिये भी अत्यन्त उत्तम व्यवस्था है। इस पर एक लाख रुपया खर्च किया गया है।

दिल्ली में

सम्वत् १९८० मे दिल्ली मे बिम्ब प्रतिष्ठा पचकल्याणक महोत्सव बडे समारोह के साथ किया गया था। दूर-दूर से लाखो दिगम्बर जैन भाई उसमे सम्मिलित हुये थे। सेठ साहब भी इष्टमित्रो और परिवार के लोगो के साथ पधारे थे। प्रतिष्ठा मण्डप के पास ही आपका कैम्प लगा था। दीक्षा कल्याणक के बाद भगवान् का आहार आपके ही यहा हुआ था। सेठ साहब ने इस शुभ अवसर पर ५१००० रुपये के दान की घोषणा की। इनमे से तीस हजार जबरीबाग के विश्रान्ति भवन को दुमंजिला बनाने पर व्यय किया, बीस हजार दीतवारिया के मन्दिरजी के लिये नियत किया गया और एक हजार दिल्ली की संस्थाओ को दिया गया। सेठ साहब के दर्शनो के लिए आपके डेरे पर भीड लगी रहती थी। आपके धर्मप्रेम की खूब चर्चा रही और प्रभाव भी खूब रहा।

सम्मेदशिखरजी की यात्रा

दिल्ली से सेठ साहब श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा पर गये। मार्ग मे अनेक तीर्थक्षेत्रो के दर्शन किये। जहा भी कहीं मन्दिर अथवा धर्मशाला के निर्माण किवा जीर्णोद्धार की आवश्यकता अनुभव की, वहां उसके लिये अनुमति दे दी और अपने आदमी भेज कर उसको पूरा करा दिया। इन सब कार्यों मे कुल मिला कर इस धर्मयात्रा मे एक लाख पन्द्रह हजार रुपये खर्च हुये। यात्रा से सकुशल लौटने पर सेठ साहब का इन्दौर की जनता ने भव्य स्वागत किया। जबरीबाग से शहर तक आप पैदल ही पधारे और पचासो-स्थानो मे इतर-पान आदि से आपका सम्मान किया गया। आपने भी एक प्रीतिभोज दिया, जिसमे पाच हजार नर-नारी सम्मिलित हुये। इसी दिन पारमार्थिक संस्थाओ तथा दिगम्बर जैन खडेलवाल स्वयसेवक मंडल की ओर से आपको अभिनन्दन पत्र भेट किये गये। आपने इस अवसर पर एक लाख के दान की घोषणा की। इसमे से पचास हजार महाविद्यालय और बोर्डिंग हाउस के ध्रुव फण्ड मे और पचास हजार प्रसूतिगृह की स्थापना के लिये दिये गये। इस यात्रा मे भी अपने साथियो की सेठ साहब ने बहुत ध्यान से सेवा की। किसी को कोई कष्ट नही होने दिया। कलकत्ता मे कुछ साथी बीमार हो गये, तो आपने स्वय ही उनकी सेवा-सुश्रुषा की। इसके लिये आपके सभी साथी आपके चिर ऋणी बन गये।

इन्दौर में व्रत उद्यापन महोत्सव

सम्वत् १९८८ मे सेठ साहब ने इन्दौर मे व्रत उद्यापन महोत्सव कराया था। श्री दीतवारिया धर्मशाला मे तीन लोक मण्डल की अपूर्व रचना अत्यन्त दर्शनीय ढंग से की गई थी। तीन सुवर्णमयी वेदियो पर श्री जिनेन्द्र भगवान विराजमान किये गये। अकृत्रिम चैत्यालय की रचना जयपुर से श्री दीवान विधीचन्दजी के मन्दिर

सीकर मे १९४८ की बिम्ब प्रतिष्ठा के अवसर पर ऐरावत हाथी पर इन्द्र भगवान को जन्माभिषेक के लिये पाडुक शिला की ओर लेजारहे हैं और सेठ साहब स्वयं महावत बने है
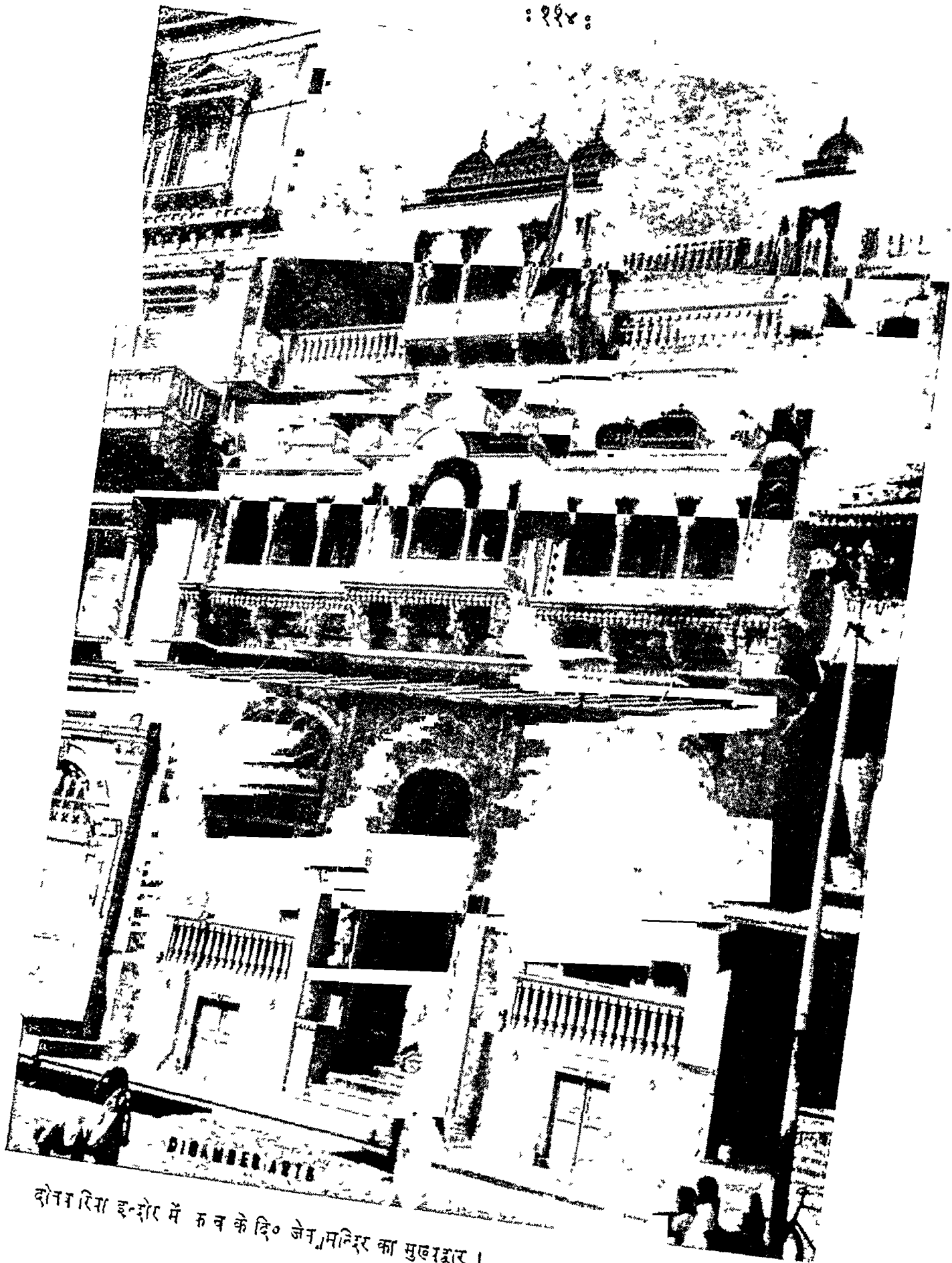
दोतवारिया इन्दौर में क व के दि० जैन मन्दिर का मुखद्वार।
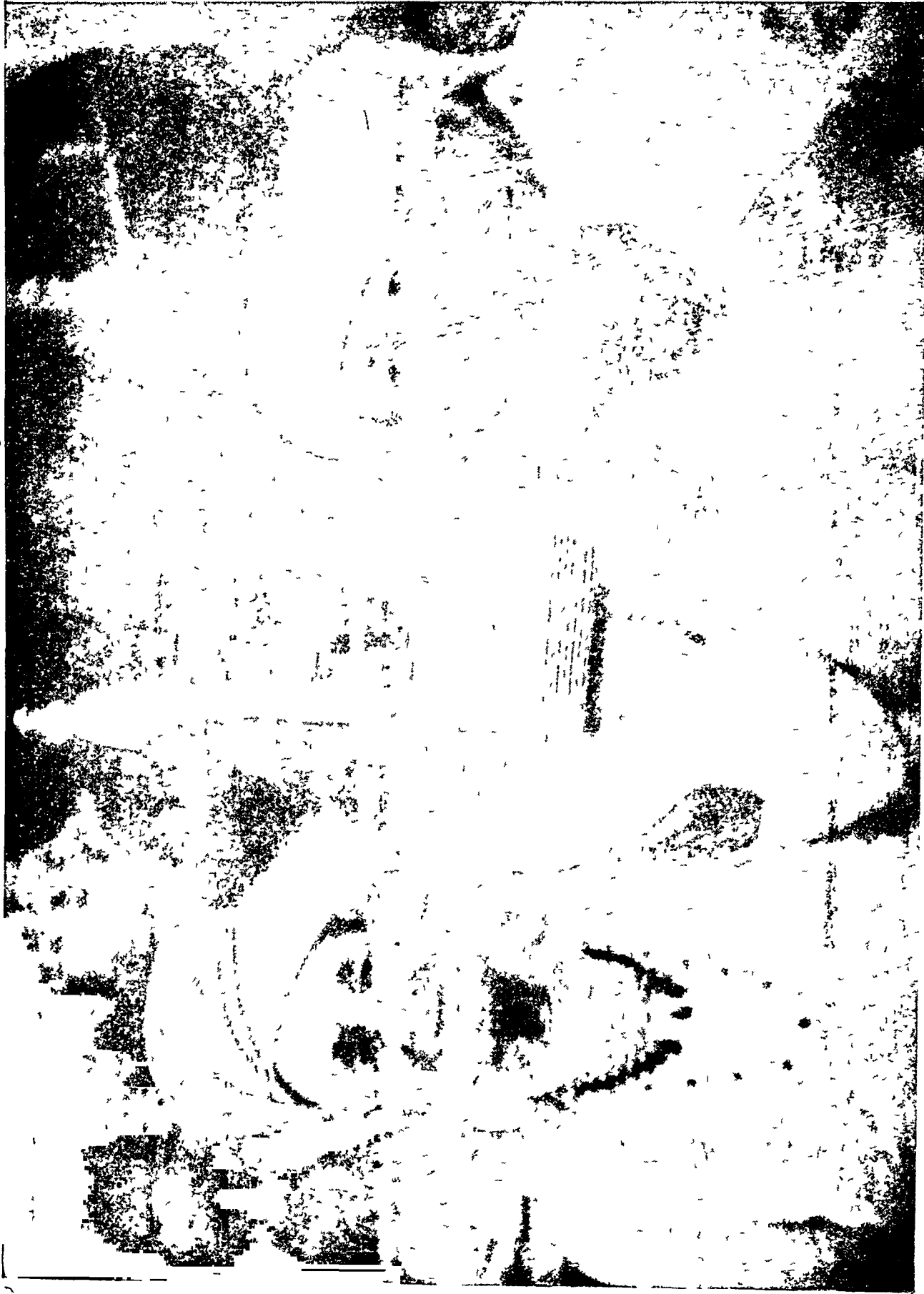
सीकर मे सन १९४८ मे बिम्ब प्रतिष्ठा मे भगवान को वैराग्य होने पर पालकी मे विराजमान कर लेजाते हुये राजागणों मे सर सेठ हुकमचदजी और सर सेठ भागचंदजी साहब ।
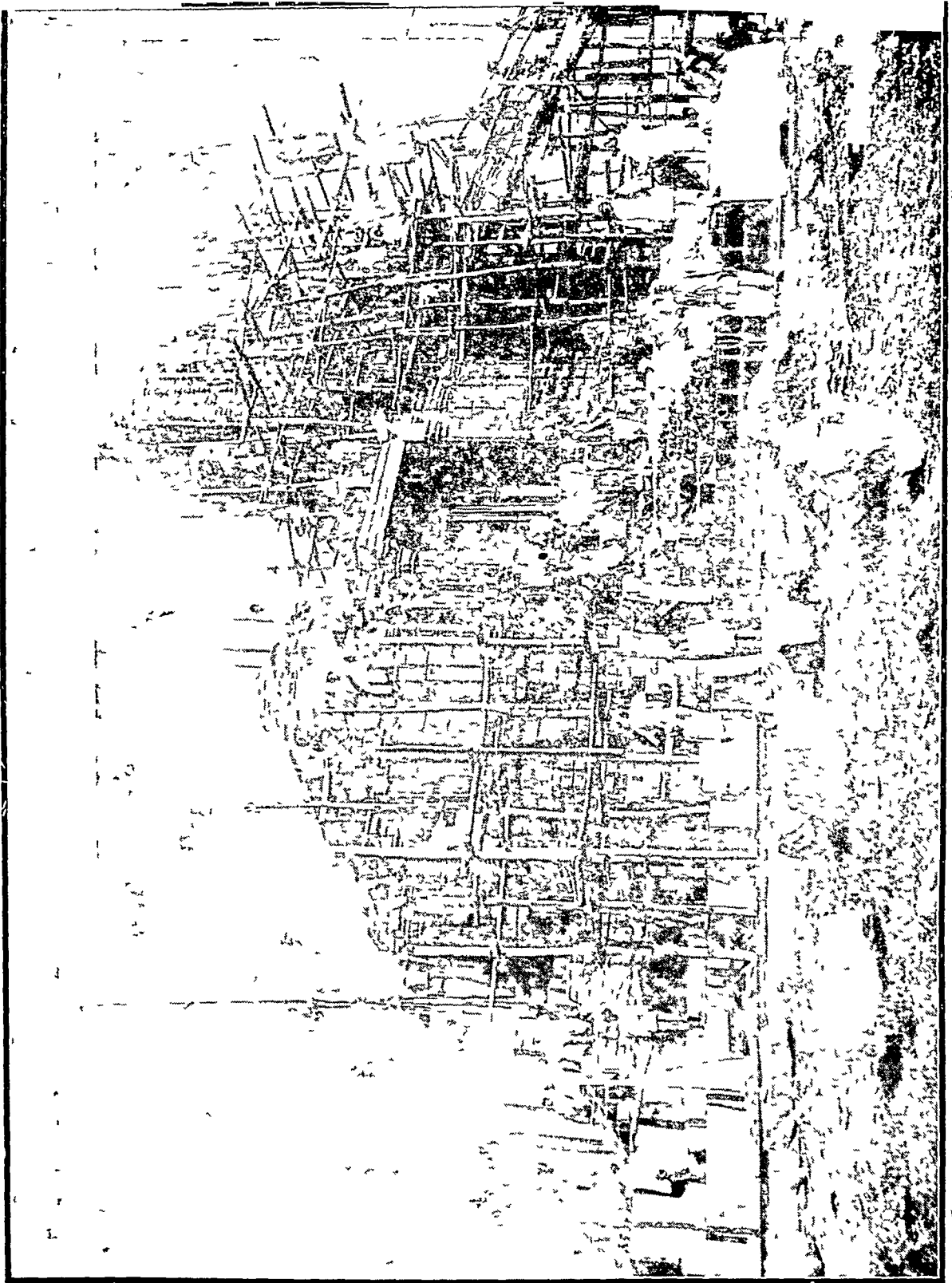
दीतवारा इन्दौर में काच के मन्दिरजी पर कलशारोहणका दृश्य।
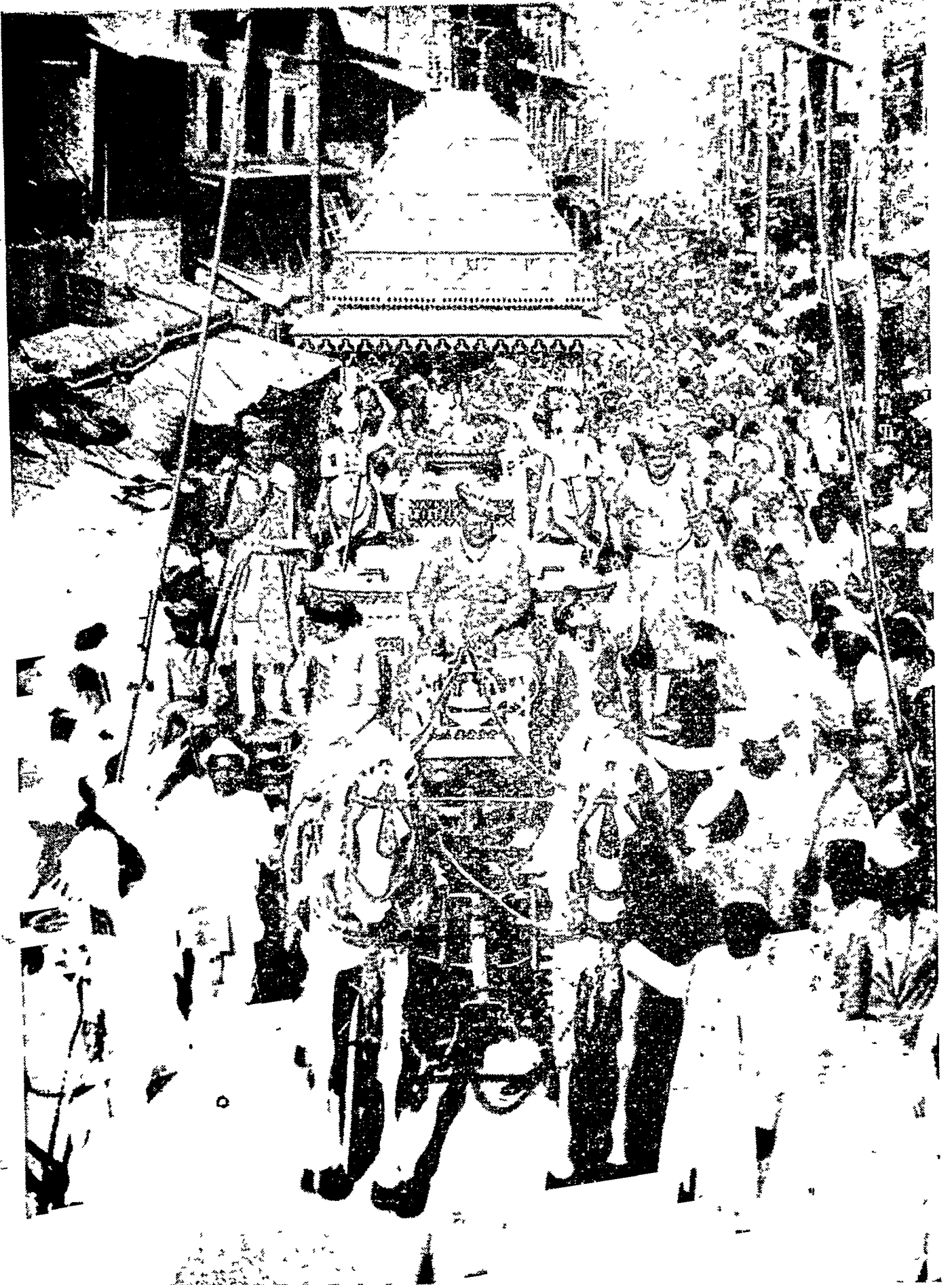
सेठ साहब के बनाये हुये श्वेत अश्वरथ का जलूस। रथ मे भगवान विराजमान है और सेठ साहब सारथी बने हुये हैं।
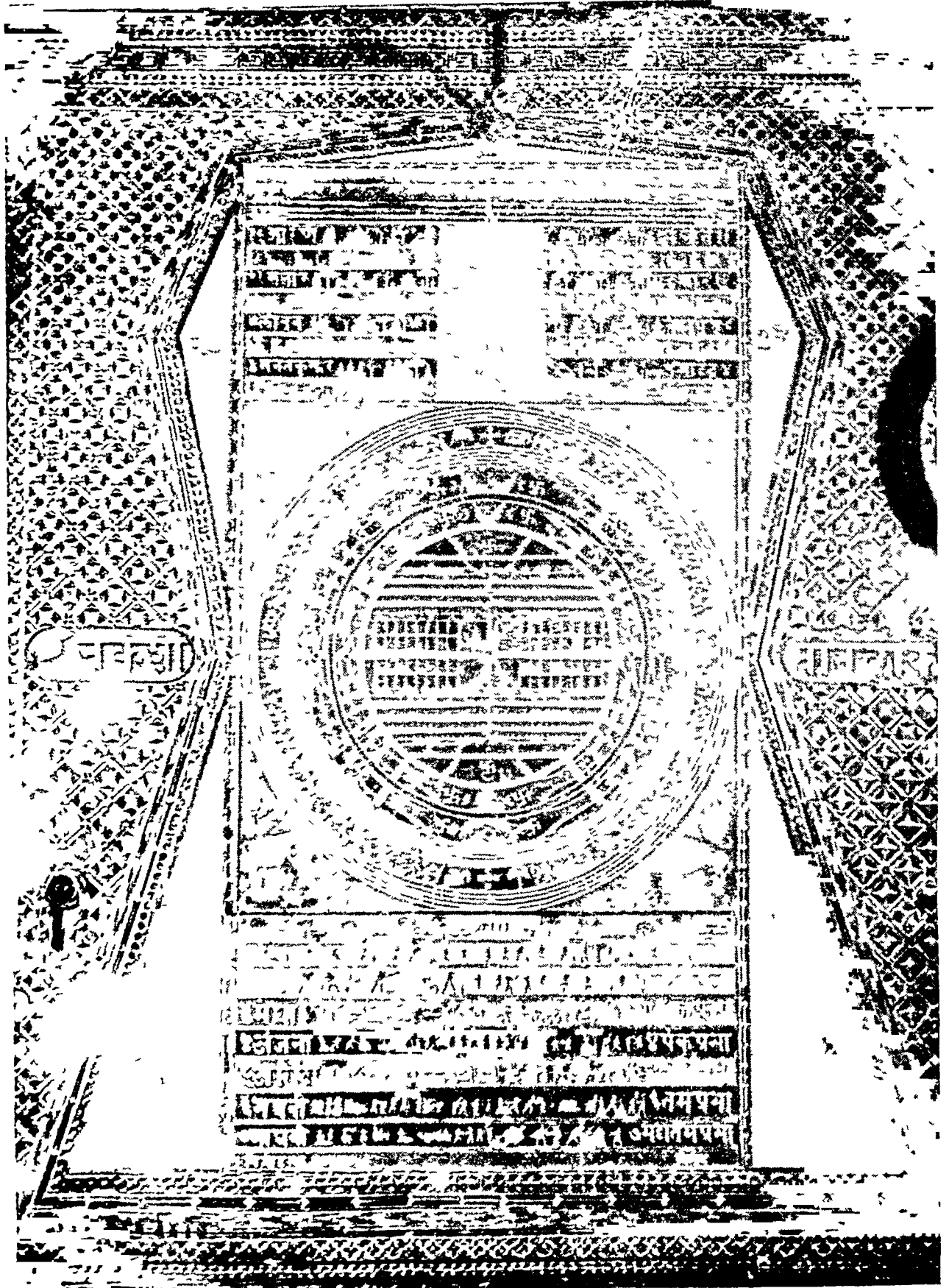
इन्दौर मे सेठ साहब के काच के मन्दिर मे तीनलोक का नकशा ।

इन्दौर में सिद्धचक्र विधान में सेठ साहब पूजा करते हुये।

श्रीमत भैयासाहब राजकुमारसिंहजी आदि पूजन करते हुये।
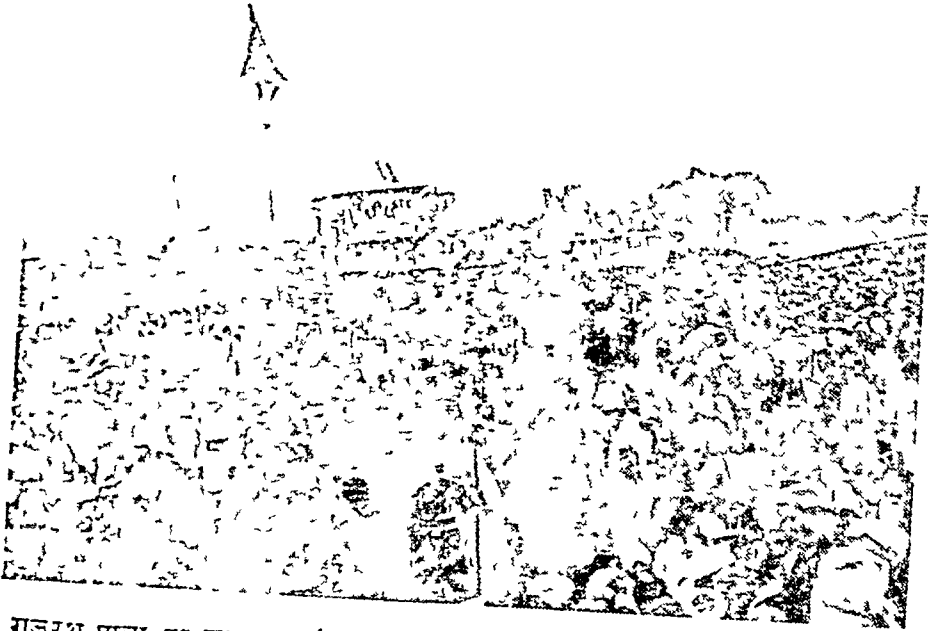
गजरथ यात्रा का लवाजमा (सन् १९४२)
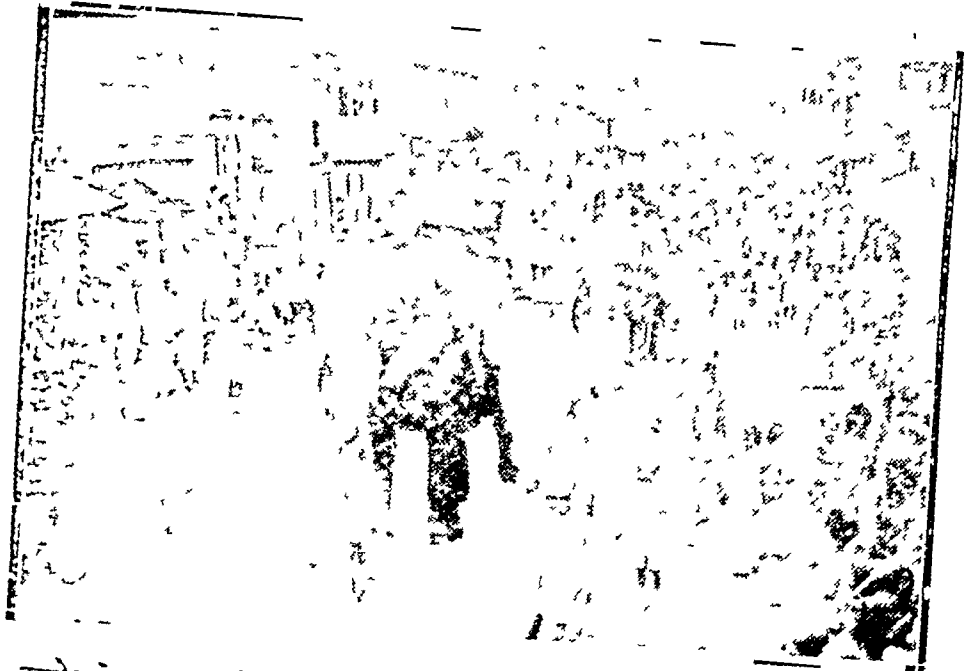
इन्दौर के गजरथ महोत्सव का एक दृश्य (सन् १९४२)

जी से मगा कर की गई थी। लगभग पांच हजार जैनी भाई और प्राय: समस्त जैन पण्डित मण्डली पधारी थी। दीतवारिया मे बनाया गया विशाल सभा मण्डप शाम मे ही खचाखच भर जाता था। अजैन नर-नारी भी बहुत बडी संख्या मे सम्मिलित होते थे। यात्रियो के ठहरने की समुचित व्यवस्था रंगमहल आदि मे की गई थी। उत्तमोत्तम भजन मंडलियां उपदेशक तथा विद्वान दूर-दूर से पधारे थे। सेठ साहब ने एक लाख रुपया और पच्चीस हजार के सोने-चादी के उपकरण श्री दीतवारिया मन्दिरजी को भेट किये थे। अन्य सब मन्दिरो को भी बहुत से उपकरण दिये गये। आपका और सेठ कल्याणमलजी हीरालालजी साहब का इस महोत्सव पर ढाई लाख रुपया खर्च हुआ।

बिम्ब प्रतिष्ठा व गजरथ महोत्सव

सम्बत् १९९८ मे दानवीर जैनरत्न राज्यभूषण रायबहादुर सेठ हीरालालजी साहब की वृद्धा मातुश्री द्वारा 'कल्याण भवन' तुकोगंज पर बनाये गये सहस्रकूट चैत्यालय सहित संगमरमर के मन्दिरजी बना कर तय्यार किये गये थे। उनका प्रतिष्ठा-महोत्सव करवाने का विचार सेठ हीरालालजी कर ही रहे थे कि जाति के पंचो ने आपसे "बिम्ब प्रतिष्ठा तथा गजरथ महोत्सव' करने का अनुरोध किया। तुकोगंज मे यशवन्त क्लब के पास 'शान्ति नगर' बसाया गया। भारत के विभिन्न स्थलो से कोई २५ हजार नरनारी इस महोत्सव के लिये पधारे होगे। महोत्सव बहुत धूम धाम से सम्पन्न हुआ। अन्तिम दिन तिमंजले गजरथ की सवारी निकाली गई और मंडप की तीन प्रदक्षिणा दी गई। इसी अवसर पर मालवा प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा और खण्डेलवाल दिगम्बर जैन महासभा के भी वार्षिक अधिवेशन हुये। सेठ साहब और सेठ हीरालालजी साहब की ओर से दो लाख के दान की घोषणा की गई। सेठ फतेहचन्दजी साहब ने भी ५० हजार के दान की घोषणा की। बुन्देलखण्ड के दिगम्बर जैन समाज मे यह पुरानी परम्परा है कि जिस महानुभाव के घराने मे तीन बिम्ब प्रतिष्ठा हो जाती हैं, उसको 'श्रीमन्त' की पदवी से सम्मानित किया जाता है। यह बहुमान सेठ साहब और भैया साहब को प्रदान किया गया और बहुमूल्य सिरोपाव भी भेट किये गये। आपके परिवार मे सम्बत् १९५९ मे इन्दौर मे पहिली, सम्बत् १९६२ मे उज्जैन मे दूसरी और १९९८ मे हुई यह तीसरी बिम्ब प्रतिष्ठा और गजरथ महोत्सव था।

शांति मंगल महोत्सव

दो वर्ष बाद सम्बत् २००० मे सेठ साहब के यहां एक और महोत्सव की योजना की गई थी, जो आपकी धार्मिक भावना की ही द्योतक थी। कुछ ज्योतिषियो ने आपकी जन्मपत्रीमे मारकेश की दशा बताई थी। सेठानीजी और सेठ साहब की भी यह इच्छा हुई कि धर्माराधन का कुछ विशेष आयोजन किया जाय। पति-पत्नी दोनो की स्वाभाविक धर्मनिष्ठा के कारण ऐसा विचार होना सहज ही था। सिद्धचक्र विधान की योजना की गई। सेठ साहब ने इसका नाम "शान्ति मंगल महोत्सव" रखा था। दीतवारिया बाजार मे बडे पैमाने पर धार्मिक उत्सव करने क लिये विशाल मण्डप बनाया गया। पांच हजार नरनारी स्थान-स्थान से इसके लिये पधारे। सिद्धचक्र विधान और एक लाख जापके लिये ८ दिन का कार्यक्रम रहा। नवे दिन रथयात्रा और हवनविधान होकर करीब पाच हजार भिक्षुओ को मिष्ठान्न बांटा गया। २०-२५हजार नरनारियो को प्रीतिभोज दिया गया। स्थान की कमी और जाति व्यवहार के विचार के कारण दस-बारह रसोइयो की व्यवस्था की गई थी। जवेरीबाग की पारमार्थिक संस्थाओं के लिये छ: लाख के दान की घोषणा की गई। पन्द्रह सौ चादी के गिलास और वैराग्य-वर्धक मालाये भी बाँटी गई। इस सब समारोह मे ६४५२०॥=) खर्च किया गया था।

लोगो मे यह समाचार फैल गया था कि सेठ साहब संसार का परित्याग करके वैराग्य-वृत्ति धारण करने

जा रहे हैं। ऐसा न करने के लिये सेठ साहब से अनुरोध किया जाने लगा। अनेक तार व पत्र आपके पास दूर दूर से आये। सिद्धचक्र विधान के बाद सेठ साहब ने अत्यन्त मार्मिक और सारगर्भित भाषण देते हुये कहा था कि "मेरे संसार छोड़ने की जो बातें उड़ रही हैं, वे बिना पाये के नहीं हैं। इसको वास्तविक परिस्थिति मैं आपके सामने स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। मेरी आयु के बारे में ज्योतिषी लोग कुछ कहते हैं। मैं स्वयं भी ज्योतिष देखने वाला हूं। परन्तु आयु के पूरे दिन तो भगवान ही जान सकते हैं। मेरे को इस बारे मे कतई चिन्ता नहीं है। यह शरीर दो वर्ष रहे, दो मास रहे या दो दिन ही क्यों न रहे? संसार मे जो यह मनुष्य देह मिली है, इसमें जिस तरह दूध से मक्खन निकाला जाता है, उसी तरह जितना पुण्य या धर्मकार्य बन सके, उतना करना यही मेरा सदा से ध्येय रहा है। परन्तु मैं ऐसी कोई बात नहीं करूंगा, जिससे पीछे मेरी हंसी हो। मेरे संसार छोडने के बारे मे इन्दौर के भूतपूर्व प्राइम मिनिस्टर सर एस० एम० बापना साहब का भी तार मुझे मिला है। आपने लिखा है कि "मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप संसार का त्याग न करें। संसार मे रह कर आप अपना और लोगों का भी भला कर सकते हैं।" इसके जवाब मे मैंने तार दिया कि "आपके समान हितचिन्तक लोग इसी तरह की सलाह दे रहे हैं। लाल साहब, भैया साहब, सेठानी साहबा भी यही सलाह देते हैं।" इन सलाहों को ध्यान मे रख कर मैं ऐसा कोई काम नहीं करूंगा, जिससे संसार के प्राणियों की सेवा न हो सके। मैं धर्मकार्य मे अधिक समय खर्च करूंगा। अभी सौगन्ध-सम्पत तो लूंगा नहीं। यद्यपि मैं जितनी बन सकेगी, उतनी आपकी, समाज की तथा देश की सेवा करता रहूँगा, तथापि थोडा-बहुत दान हो जाय, तो ठीक है। मौके-मौके पर दान करते रहना अपना कर्तव्य है। इसीलिये मैं इस समय भी छः लाख रुपये का दान करता हूँ।"

इन्दौर की जनता इस अनुष्ठान और दान से इतनी प्रभावित हुई कि तत्कालीन प्रधानमन्त्री राजा ज्ञाननाथ के सभापतित्व मे सेठजी के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिये एक विशेष आयोजन किया गया। अनेक संस्थाओं ने अनेक ज्ञानवर्धक शास्त्र चांदी के करंड आदि मे रख कर सेठ साहब को भेंट किये। अभिनन्दन-पत्र भी प्रस्तुत किया। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ के प्रधान मन्त्री प० राजेन्द्रकुमारजी न्यायतीर्थ ने सेठ साहब की तुलना इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री लायड जार्ज से की थी, जिन्होंने अपने जन्म स्थान से किये गये अपने सम्मान को बहुत मान दिया था। सेठ साहब का सम्मान भी अपने घर मे, आपने कहा कि, कितना है, यह आज के समारोह से प्रगट है। श्री जौहरीलालजी मित्तल और स्वर्गीय सेठ गोविन्दरामजी सेखसरिया के भी भाषण हुये थे। महाराज तुकोजीराव क्लाथ मार्केट मे सेठजी की संगमरमर की प्रतिमा निर्माण करने का निश्चय किया गया। सीतलामाता बाजार का नाम "हुकमचन्द रोड" रखे जाने की म्युनिसिपैलिटी से मांग की गई। राजा ज्ञाननाथजी ने भी सेठ साहब की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुये संक्षिप्त भाषण दिया और कहा कि दस वर्ष बाद भी हम ऐसा ही उत्सव मनायेंगे। सेठ साहब की सुयोग्य कन्या सौभाग्यवती श्रीमती चन्द्रप्रभादेवी मोदी विशारदा ने कविता मे जो श्रद्धांजलि अर्पित की थी, वह बहुत ही सामयिक और मार्मिक थी।

सेठ साहब ने इसी अवसर पर तीनों भाइयों सेठ हीरालालजी, भैय्यासाहब राजकुमारसिंह और सेठ देवकुमारसिंह को बुला कर सट्टा छोड़ने का उपदेश दिया था। सेठ हीरालालजी ने घोषणा की कि काका साहब के उपदेश को शिरोधार्य करते हुये सदैव के लिये सट्टा छोड़ने की प्रतिज्ञा करता हूं। आपने यह भी कहा कि इस उत्सव द्वारा सेठ साहब ने धर्म साधने का जो आदर्श उपस्थित किया है, वह हमारा मार्ग प्रदर्शक बन कर हमें सदा ही धर्म के मार्ग पर अग्रसर करता रहे और हमारे आत्मकल्याण मे सहायक हो।

इस वर्ष सेठ साहब को शेयरों तथा मिलों से लगभग पौन करोड की आय हुई और स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा हो गया। सेठ साहब इसे धर्म-ध्यान और आराधन का ही शुभ परिणाम मानते हैं।

वीर शासन महोत्सव

वीर शासन के २५०० वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य मे कलकत्ता मे सम्वत २००२ मे समस्त जैन समाज की ओर से वीर शासन महोत्सव मनाया गया था। इसी अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी का वार्षिक उत्सव भी किया गया था। सेठ साहब ही दोनो आयोजनो के अध्यक्ष थे। साहु श्री शान्तिप्रसादजी जैन स्वागताध्यक्ष थे। श्री पार्श्वनाथ भगवान का विराट जलूस निकाला गया था। सेठ साहब ने सारथी की बोली ११००० रुपये की बोली और स्वयं रथ की बागडोर संभाली थी। डाक्टर सातकौडी राय की अध्यक्षता मे जैन दर्शन परिषद् और श्री अजितप्रसादजी जैन की अध्यक्षता मे जैनधर्म परिषद् भी हुई थी। स्वयं सेठ साहब ने ग्यारह हजार एक प्रदान किया था और आपके प्रभाव के ही कारण कलकत्ता मे विद्या मन्दिर की स्थापना के लिये दो लाख अठासी हजार और तीर्थयात्री समिति की बैठक मे जैन तीर्थ यात्रियो की सुख-सुविधा के लिये लगभग दो लाख जमा हो गया था।

सीकर मे प्रतिष्ठा

सम्वत् २००४ मे चैत वदी ४ को सीकर मे अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के प्रधानमन्त्री जैनजातिभूषण लाला परसादीलालजी पाटनी द्वारा बिम्ब प्रतिष्ठा करवाई गई थी। तब सेठ साहब अस्वस्थ होते हुए भी वहां पधारे थे। वहां आपको हाथी पर सवार और स्वयं अपने हाथ मे अंकुश लेकर उसको चलाते देख जनता-चकित रह गई। वहां आपने आठ हजार एक सौ एक रुपये के दान की घोषणा की। आपका वहां बडा प्रभाव पडा। रावराजाजी ने आपका सम्मान किया और एक प्रीतिभोज दिया। रावराजाजी के सभापतित्व मे ही आपको सीकर के नागरिको की ओर से मानपत्र दिया गया।

हिन्दूविश्वविद्यालय मे मन्दिरजी का शिलान्यास

सीकर बिम्ब प्रतिष्ठा के महोत्सव से निवृत्त होकर सेठ साहब का बनारस जाने का कार्यक्रम था, जहां कि २० मार्च १९४८ को (सम्वत् २००४ मे) मन्दिरजी और जैन बोर्डिंग हाऊस का शिलान्यास होना था। आपने इनके लिये क्रमशः ५६ हजार और २५ हजार का दान किया था, जो कि १५ हजार से हीरक जयन्ती उत्सव पर ५० हजार और इस अवसर पर ८१ हजार कर दिया गया था। १७ मार्च को सीकर से बिदा होकर आप जयपुर आ गये। जयपुर से "हनुमान विमान" द्वारा आप १९ मार्च को २५ साथियो के साथ बनारस के लिये बिदा हो गये। उसी दिन एक बजे बाबतपुर हवाई अड्डे पर आपका हार्दिक स्वागत किया गया। १८ मील मोटर द्वारा चल कर आप निवास स्थान पर लाये गये। कलकत्ता के सेठ बैजनाथजी सरावगी का इसके लिये विशेष आग्रह था। आपने ही इसके लिये २५ हजार मे एक भूमि नन्दकिशोरजी पुस्तकविक्रेता से खरीदी थी। आप सेठ साहब को लाने के लिये सीकर पहुँच गये थे। भूमि का एक और टुकडा भी ग्यारह हजार मे खरीद लिया था, जिसकी कीमत रॉंची के सेठ चम्पालालजी ने प्रदान की थी। रात्रि को स्याद्वाद विद्यालय भदैनीघाट मे सेठ साहब का अभिनन्दन किया गया। संस्कृत मे मानपत्र भेट किया गया। सेठ साहब ने विद्यालय के ध्रुव फण्ड मे ग्यारह हजार, सेठ बैजनाथजी ने ३१०१ और जयपुर के सेठ रामचन्द्रजी खिंदूका ने ५०१) प्रदान किये। २० मार्च को प्रातः १०-४५ पर शिलान्यास का मुहूर्त था। इसी अवसर पर हुई सार्वजनिक सभा में सेठ साहब, सेठ बैजनाथजी और सेठ रामचन्द्रजी को मानपत्र भेंट किये गये। पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ ने नियत समय पर शिलान्यास विधि विधिवत सम्पन्न करवाई। मन्दिरजी और बोर्डिंग हाऊस का संचालन करने के लिये समिति का नाम "सन्मति ज्ञान प्रचारक मण्डल" और उस स्थान का नाम "सन्मति ज्ञान निकेतन" रखा गया। उसी दिन १ बजे सेठ साहब बनारस से बिदा हो कर ४० मिनिट मे इलाहाबाद पहुँच गये। ६२५० रुपये मे

जहाज जयपुर लौटने के लिये किया गया था। १८०० रुपया अधिक देकर इन्दौर जाना ही तय किया और शाम को ५ बजे इन्दौर पहुंच गये। इन्दौर मे उतरते हुये जहाज जमीन से टकरा कर क्षतिग्रस्त हो गया और चालक की बुद्धिमत्ता से एक भीषण दुर्घटना होते होते बच गई। अन्यथा जहाज मे आग लग कर भीषण काण्ड हो जाने का भय था।

तीर्थयात्रा

सेठ साहब को तीर्थयात्रा और पर्यटन की विशेष रुचि है। लम्बी-लम्बी यात्राये आप कई बार कर चुके है। मोटर पर सुदूर स्थान की यात्रा करने का आपको विशेष शौक है। हवाई जहाज मे भी आपने अनेक लम्बी-लम्बी यात्राये तब की थी, जब कि उन पर चढना बडा भारी जोखम माना जाता था। पहिली लम्बी यात्रा आपने सम्वत् १९६३ में की, जब कि आप एक बडे संघ के साथ दक्षिण मे श्री जैनबद्री और मूलबद्री तक गये थे। आपके साथ जाने वाले भाई आपके प्रेमपूर्ण सहृदय व्यवहार से इतने अधिक प्रभावित हुये कि वे उस यात्रा को आज तक भी याद करते है। आपकी धर्मप्रभावना का भी लोगो पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा। हर भाई की छोटी से छोटी आवश्यकता का भी आप स्वय ध्यान रखते थे। स्वार्थभावना को आप सर्वथा तिलांजलि दे चुके है। सब के ठहरने की समुचित व्यवस्था हो जाने के बाद आप अपने ठहरने की चिन्ता करते थे। गाडी पर सबके सवार हो जाने के बाद आप सवार होते थे। किसी के भी बीमार होने पर स्वय उसकी सुश्रुषा-सेवा करते थे। सम्वत् १९६५ मे भी आपने एक लम्बी यात्रा की। तब दिल्ली दरबार में आपको विशेष रूप से निमन्त्रित किया गया था। आपको विशेष स्थान और मान दिया गया था। दिल्ली से लौटते हुये आप आबू, तारगा, शत्रुंजय और गिरनारजी की यात्रा पर भी गये थे। इस यात्रा मे आपको मास्टर दरयावसिंहजी और उदासीन अमरचन्दजी की सगति का लाभ मिला। वैराग्य की लहर आप म यहा से ही पैदा हुई समझनी चाहिये। भक्ति के जो भाव उस समय आपके हृदय मे जागृत हुये थे, उनकी साक्षी उस समय का चित्र आज तक भी दे रहा है। पर्यूषण पर्व मे मण्डप मे आप स्वयं शास्त्रो का प्रवचन करते रहे हैं। नेमनाथजी की बारहमासा तो ऐसी ओजस्विनी भाषा मे मग्न होकर पढते है कि श्रोता भी वैराग्य की लहर मे झूमने लग जाते है।

सम्वत् १९७४ मे आप बुन्देलखण्ड की यात्रा पर सपरिवार गये थे। दरयावसिंहजी और उदासीन अमरचन्दजी भी आपके साथ थे। तब आप चन्देरी, ललितपुर, नैनागिर, द्रौणगिर, कुण्डलपुर, सोनागिर, गढाकोटा आदि गये थे। सागर मे स्वयंसेवको ने आपका रथ खींचकर आपका जलूस निकाला था। १९८० मे दिल्ली मे बिम्ब प्रतिष्ठा मे सम्मिलित होने के बाद श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा पर गये थे। अन्य यात्राओ का विवरण यथास्थान दिया ही गया है।

विविध दान

सेठानी साहिबा ने १९७३ मे कांजी बारस व्रत का उद्यापन किया था। तब सेठ साहब ने १५ हजार दीतवारियाजी के मन्दिरजी और १६६२१ पारमार्थिक सस्थाओ के लिये दिये। सम्वत् २००१ मे पालीताना शत्रुंजयजी की धर्मशाला के लिये पाँच हजार, खण्डवा मे जैन धर्मशाला बनाने के लिये दस हजार और भरतपुर के ज्ञानचन्द्रिका औषधालय के लिये चार हजार प्रदान किये। सम्वत् २००२ मे क्षुल्लक पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी के सागर के विद्यालय को सत्ताइस हजार पाच सौ प्रदान किये।

सम्वत् २००३ और ४ मे सोनगढ के श्री कुंदकुंद प्रवचन मण्डल को ग्यारह हजार एक, उज्जैन के सिंगपुरा मन्दिरजी के जीर्णोद्धार के लिये ग्यारह हजार, प्रतापगढ के श्री यशकीर्ति दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस को तीन हजार, नागपुर की जैन धर्मशाला को पच्चीस सौ प्रदान किये।

सम्वत् २००४ मे वैशाख बदी ३ को श्री गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेना को पांच हजार एक और आषाढ सुदी ९ को बडनगर के अनाथालय को पांच हजार दो सौ सेठ साहब और सेठानीजी ने दिये।

सम्वत् २००५-६ मे फाल्गुन बदी ३ को मथुरा मे चौरासी दिगम्बर जैन महाविद्यालय को पांच हजार, आषाढ बदी ७ को बम्बई के श्री कानजी स्वामी के अनुयायियो के लिये दिगम्बर जैन मन्दिर के निर्माण के लिये पन्द्रह हजार और आषाढ सुदी ७ को ऋषभ ब्रह्मचर्य आश्रम मथुरा को इक्कीस सौ प्रदान किये।

पारिमार्थिक संस्थायें

सम्वत् १९५९ मे सेठ साहब ने जिन परिमार्थिक संस्थाओ का सूत्रपात किया था और इस समय जिनके ध्रुव फण्ड का रुपया बीस लाख से भी ऊपर का है, उनकी विस्तृत चर्चा पृथक् रूप से विस्तार के साथ की जा रही है। इसीलिये उनकी चर्चा इस प्रकरण मे नही की गई है।

बम्बई मे समारोह

जैन समाज की हितसाधना मे आप किस प्रकार दत्तचित्त रहते है, इसका एक और उदाहरण दिये विना यह प्रकरण अधूरा रह जायगा। बम्बई के सर शान्तिदास आसकरण जैन समाज के अत्यन्त लब्धप्रतिष्ठ नेता हो गये है। आपका पिछले ही दिनो मे स्वर्गवास हुआ है। आप पीछे 'कौंसिल आफ स्टेट' के वर्षों तक सदस्य रहे थे। बम्बई के शैरिफ भी थे। तब मार्च सन् १९४४ म बन्दरगाह मे भीषण विस्फोट हो जानेसे शहर का बडा हिस्सा भस्मसात् हो गया था। वह अभूतपूर्व रोमांचकारी दुर्घटना घटी थी। आपके ही उद्योग से सरकार ने क्षतिग्रस्त लोगो को पूरा मुआवजा देने का निश्चय किया था। लगभग २५ करोड की हानि का अनुमान लगाया गया था। आपकी इस अनुपम सेवा के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिये बम्बई मे एक विराट आयोजन किया गया था, जिसके लिये 'सर शान्तिदास आसकरण सम्मान समिति' का गठन किया गया था। सौ प्रमुख नागरिक इसके सदस्य थे, जिनमे सर कीकाभाई प्रेमचन्द, सर मणिलाल बी० नानावती, सर चुन्नीलाल भाईचन्द महता और हमारे चरित्रनायक सरीखे विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित थे। समारोह का सभापतित्व करने के लिये इन्दौर से हमारे चरित्रनायक को ही निमन्त्रित किया गया था। आप मोटर से बम्बई पहुँचे। आपका भी वहां हार्दिक स्वागत किया गया। १०-१२ हजार की उपस्थिति थी। आपने अपने भाषण मे कहा था कि "सर शान्तिदासजी को अनेक रियासतो के साथ सम्बन्ध है। सरकार मे भी आपको विशेष प्रतिष्ठा है। इसको देखते हुये मुझे जैन समाज के पुराने इतिहास की याद आ जाती है। हमारे देश के सम्राटो के दरबार मे जैन महाजनो को उच्च स्थान प्राप्त था। राज्य के कारोबार और शासन मे सलाहकारो के विशिष्ट स्थान पर वे नियुक्त थे। ठीक वही स्थिति सर शान्तिदासजी ने इस समय प्राप्त की है। आपके प्रयत्न से पशुवध पर रोक लगाने का हुक्म सरकार से जारी हुआ है। राजा और प्रजा का आपके प्रति जो विश्वास है, वह इसी का परिणाम है।" जैन समाज के प्रति आपकी उच्चतम भावना और जैन इतिहास के प्रति गौरव आपके इस भाषण के प्रत्येक शब्द मे झलकता है। परन्तु उसी प्रसंग की एक और घटना से आपकी इस भावना का और भी अधिक उज्ज्वल परिचय मिलता है। आपके सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभी जैनियो अर्थात् श्वेताम्बरो, दिगम्बरो तथा स्थानकवासियो को सामाजिक मामलो मे एक हो जाना चाहिये। अपने अत्यन्त हर्ष के साथ यह सम्मति प्रगट की कि "ये तीनो सदा से ही एक है और एक ही रहेगे। श्वेताम्बरी भाइयो से मेरा निवेदन है कि वे दिगम्बरों को अपना छोटा भाई समझें और उनको गले लगावें। इसी प्रकार आपस का प्रेम और सद्भाव सदा बढता रहेगा। जमाना एकता, संगठन और मिलकर रहने तथा काम करने का है। हमको वास्तव मे ही एक होकर रहना चाहिये।" इसका जैन समाज पर बहुत ही अनुकूल प्रभाव पडा। श्वेताम्बरो ने सेठ साहब का विशेष रूप से

स्वागत किया। स्थान-स्थान पर आपको प्रीतिभोज दिये गये। इसी अवसर पर भोलेश्वर के दिगम्बर जैन मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये प्रयत्न किया गया और आपने अपने पास से सात हजार रुपया प्रदान करके पचहत्तर हजार रुपया उसके लिये जमा करा दिया। सम्वत् १९७३ मे भी आपने इसके लिये दस हजार रुपया प्रदान किया था और अन्य लोगो से भी चन्दा करवाया था। कलकत्ता मे सम्वत् २००१ की मगसर बदी मे जो वीर शासन महोत्सव हुआ था, उसमे भी समस्त जैन समाज सम्मिलित था और उसके अध्यक्ष भी सेठ साहब ही निर्वाचित किये गये थे। दिगम्बरो और श्वेताम्बरो के आपस के झगडो को पंच-पचायत के ढंग पर निपटाकर आपस मे सहृदयता पैदा करने के जो प्रयत्न आपने समय-समय पर और स्थान-स्थान पर किये, उनकी चर्चा यथास्थान की जा चुकी है। जैन समाज मे परस्पर सहृदय सम्बन्ध स्थापित करना आपकी सबसे बडी सेवा है।

सारांश यह है कि धर्म और समाज के लिये जहां भी जब भी कभी आवश्यकता हुई, आपने उदारतापूर्वक देने मे संकोच नही किया। कोई प्रान्त और कोई प्रदेश, कोई प्रवृत्ति और कोई आन्दोलन तथा कोई सस्था और कोई संगठन आपकी उदार वृत्ति से सहज ही मे उपकृत हुये बिना रह नही सकी। कही भी कोई भी प्रश्न या समस्या उपस्थित होने पर आप पीछे रहना जानते ही नही। आपका सदा ही यह प्रयत्न रहता है कि समाज मे वितण्डावाद न फैले, शान्ति स्थापित रहे, मर्यादा का भंग न हो और धर्म तथा समाज का सारा कार्य यथावत् नियम से चलता रहे। धर्म की प्रभावना निरन्तर होती रहे। धर्म और समाज की आपकी सेवा बहुमुखी और व्यापक है। न केवल अपने तन-मन-धन से उसको सम्पन्न किया है, दूसरो को भी प्रेरित करके स्थान-स्थान पर हजारो-लाखो की निधि की व्यवस्था की है। आन्तरिक कलहो को मिटाकर बाहरी आक्रमणो से भी उसकी रक्षा की है। दिगम्बर जैन धर्म तथा समाज के लिये आपने अनेक बार अनेक स्थानो पर ढाल या कवच का काम दिया है। आपने कर्तव्य-भावना से उसकी पूर्ति मे सुख व सन्तोष मानकर ही सेवाधर्म का पालन किया और कभी भी उसके लिये बदले की इच्छा नही की। निःस्वार्थ भाव और निरभिमान हृदय से जो कुछ भी आपसे बना, आपने किया। आपकी वृत्ति तो सदा यही रही है कि:—

> *"स्वय न खादन्ति फलानि वृक्षाः*
> *पिबन्ति नाम्भः स्वयमेव नद्यः।*
> *धाराधरो वर्षति नात्महेतोः*
> *परोपकाराय सता विभूतय॰॥"*

जैन समाज ने भी सेठ साहब के प्रति अपना आदर, श्रद्धा तथा कृतज्ञता प्रकट करने मे कुछ भी उठा नहीं रखा। आपको अनेक सम्मानित पदवियो से विभूषित कर सैकडो स्थानो पर आपके विशाल जलूस निकाले गये और आपको मानपत्र भी भेंट किये गये।

: ८ :

सम्मान व मान्यता

"स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते" की कहावत के अनुसार राजा का सम्मान केवल अपने देश में होता है और विद्वान् का देश-विदेश सभी में। सेठ साहब की स्थिति अपने नगर में राजा के ही समान है। इसलिये उसमें आपका अपूर्व सम्मान हुआ, उस पर किसी को कुछ भी आश्चर्य नहीं होना चाहिये, किन्तु आश्चर्य उस सम्मान के लिये अवश्य है, जो आपने अपने नगर और इन्दौर के बाहर अन्य राज्यों और देशों में सर्वत्र प्राप्त किया। कहते हैं कि कुछ विदेशी व्यापारी आपको देखने के लिये केवल इसलिये आये कि वे उस सफल व्यापारी के दर्शन करना चाहते थे, जिसके हाथों में उस समय देश-विदेश के सभी बाजार खेला करते थे। आपको 'विद्वान्' नहीं कहा जा सकता। अंग्रेजी की आप दो पोथियां भी नहीं पढ़े हैं और हिन्दी में भी आपने ऐसी कोई ऊंची परीक्षा पास नहीं की है। एक ज्योतिषी ने आपके सम्बन्ध में यह ठीक ही भविष्यवाणी की थी कि "विद्याहीनो महाज्ञानी महाभक्ति, प्रचण्डवानशक्तिः कीर्तियोग विशालाक्षी चन्द्रधरमहामुने दैवं भोगावली।" फिर उसने कहा था कि 'देशे विदेशे कीर्तिर्नोविख्यातोभुविमण्डले।" ज्योतिषी की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई है। निस्सन्देह, सेठ साहब ने अपने समय की भावना के अनुसार राजधर्म का यथावत् पालन किया। राजा में अगाध निष्ठा और भक्ति रखने वाले राजभक्तों में आपकी गणना की जाती रही है। यथावसर राजभक्ति का प्रदर्शन भी आप करते ही रहे हैं। लेकिन, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि आप में लोकसेवा और देशसेवा की भावना नहीं है। लोकसेवा का भी कोई अवसर आपने हाथ से जाने नहीं दिया। इसी लिये राज और लोक दोनों ही दृष्टियों से आपने वह सम्मान व मान्यता प्राप्त की, जो किन्हीं असाधारण व्यक्तियों को ही प्राप्त होती है। उसका उपार्जन या सम्पादन भी आपने सहस्र हाथों से किया है। आपका जीवन इस कथन की भी साक्षी है कि—

> *"नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके,*
> *जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः।*
> *इति महति विरोधे वर्तमाने समाने,*
> *नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता॥"*

राजकीय क्षेत्र और जनता में समान स्नेह, आदर एवं सम्मान प्राप्त करके आपने यह सिद्ध कर दिया कि दोनों के हित का सम्पादन समान रूप से किस प्रकार किया जा सकता है? आपकी राजभक्ति का अर्थ झूठी चापलूसी या स्वार्थपूर्ण खुशामद नहीं है। इन्दौर में ऐसे कितने ही अवसर आये, जब अपनी जनता के लिये राज और राजकीय अधिकारियों के साथ भी जूझ गये और राज्य ने जब लोकहित में कुछ ढील की, तब आप स्वयं उसमें जुट गये। राज्य के प्रति "हितं मनोहारी च दुर्लभं वचः" की नीति से काम लेने में भी आपको संकोच नहीं

हुआ। उज्जैन मे सन् १९१० के लगभग दशहरा और मुहर्रम साथ-साथ आ जाने से हिन्दू-मुस्लिम दगा हो गया। हिन्दुओ को स्थानीय अधिकारियो के कारण बहुत नीचा देखना पडा। एक फ्रेंच आर्नेट उस समय सूबा के पद पर नियुक्त थे। ताजिये और हिन्दुओ का जलूस एक ही सडक पर आ निकले। दोनो ओर से कुछ जिद्दा-जिद्दी हुई। हिन्दुओ का जलूस फौज के पहरे मे निकल गया। पर, मुसलमानो के ताजिये कई दिनो तक सडक पर ही पडे रहे। बाद मे कई मुकद्दमे भी चले, जिनमे हिन्दू ही दबाये गये। आपके ही सामने उज्जैन रेलवे स्टेशन पर एक मुसलमान ने एक हिन्दू की नाक की तरफ अपनी जूती का सकेत करते हुये हिन्दुओ की नाक काट लेने का दर्प-पूर्ण प्रदर्शन किया। उसके कुछ ही समय बाद आप ग्वालियर के स्वर्गीय महाराज श्रीमन्त माधवरावजी सिंधिया के शिवपुरी मे अतिथि हुये। रात्रि को ताश का खेल चल रहा था। साथ मे भारत के एक और सुप्रसिद्ध करोडपति उद्योगपति भी उपस्थित थे। खेल समाप्त होने से पहिले सेठ साहब ने उज्जैन के दगे की चर्चा शुरू कर दी और साफ शब्दो मे कह दिया कि आप सरीखे हिन्दू महाराज के राज्य मे हिन्दुओ की नाक कट गई। यह कितनी लज्जा की बात है? महाराज के चेहरे पर एकाएक गंभीरता छा गई। वे चुप रह गये और खेल समाप्त हो गया। सेठ साहब के साथी उद्योगपति ने बाहर आते ही कहा कि आपने यह चर्चा करके ठीक नही किया। महाराज नाराज हो गये है। सेठ साहब ने बात टाल दी। दूसरे दिन सवेरे ही उस दगे के सम्बन्ध मे महाराज द्वारा जारी किये गये सारे आर्डर लेकर उनका खास आदमी सेठ साहब क पास आया। सेठ साहब से उसने निवेदन किया कि महाराज ने आदेश दिया है कि आप उन द्वारा जारी किये गये इन सारे हुक्मो को देखकर यह बताये कि उन्होने कहां क्या भूल की है और उनके किस हुक्म के कारण हिन्दुओ को नीचा देखना पडा है? सेठ साहब ने उन कागजो को देखे बिना ही कह दिया कि इन हुक्मो के साथ यह देखना भी तो आवश्यक है कि इनका पालन किस प्रकार किया गया और सूबा साहब ने इन पर क्या कार्यवाही की? सूबा साहब का दायित्व भी तो अन्त मे महाराज पर ही है। महाराज के पास जैसे ही सेठ साहब की यह बात पहुचाई गई, वैसे ही उन्होंने उज्जैन के सूबा को अपने समस्त कागज-पत्र लेकर शिवपुरी पहुँचने का आदेश दिया और उन्होने देखा कि उनके हुक्मो का यथावत् पालन न करके कैसी मनमानी कार्यवाही की गई है? सूबा तथा अन्य अधिकारियो के विरुद्ध कठोर कार्यवाही की गई। दूसरे दिन सेठ साहब को इन्दौर लौटना था। महाराज से विदाई लेने गये, तो महाराज ने सेठ साहब का आभार मानते हुये कहा कि आपने मुझे अच्छे समय सावधान कर दिया। सूबा ने तो हमारी सारी ही प्रतिष्ठा धूल मे मिला दी थी। सेठ साहब के साथी दग रह गये और आपकी सूझ-बूझ की उन्होने भी बहुत सराहना की।

अन्य अनेक राजाओ तथा महाराजाओ के साथ बीती हुई ऐसी ही अनेक घटनाये यहां दी जा सकती है। इन्दौर मे प्लेग के दिनो मे क्वारण्टीन के मामले पर, दुर्भिक्ष आदि के अवसरो पर, क्लाथ मार्केट तथा सराफा बाजार मे सकट उपस्थित होने पर और मुनिविहार पर लगाये गये प्रतिबन्ध पर सेठ साहब ने जनता के लिये जो कुछ किया, उसकी यहा पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नही है। उदयपुर, ग्वालियर, बडवानी, ब्यावरा तथा सौराष्ट्र के अनेक राज्यो मे और बिहार तथा हैदराबाद आदि मे दिगम्बर जैन समाज पर संकट उपस्थित होने पर सेठ साहब ने अनेक बार अपने प्राणो तक की बाजी लगा देने की घोषणा की और राजकीय अन्याय का प्रतिकार करा कर ही दम लिया। हैदराबाद मे तो आप सत्याग्रह करने के लिये भी जाने को तैयार हो गये थे। इसीलिये तो सेठ साहब की राजभक्ति का अर्थ कोरी चापलूसी या खुशामद ही न था। आप मे स्वाभिमान और आत्मगौरव की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। अपनी जाति, धर्म तथा समाज का अभिमान आपकी रग-रग मे समाया हुआ है। इसीलिये राज और सरकार से जो भी सम्मान तथा मान्यता आपने प्राप्त की है, वह आपकी

उस अपरिमित लोकसेवा का परिणाम है, जिसका आदि और अन्त अक्षरों में नहीं लिखा जा सकता।

इन्दौर राज्य में

इन्दौर राज्य के राजघराने के साथ आपके घराने का कई पीढ़ियों का सम्बन्ध कहा जा सकता है। ग्वालियर, बीकानेर, जोधपुर, मैसूर, बड़ौदा तथा मध्यभारत, राजस्थान और सौराष्ट्र के अनेक राज्यों के साथ भी आपका कई पीढ़ियों का पुराना सम्बन्ध है। इसीलिये इन्दौर, ग्वालियर तथा अन्य राज्यों में भी आपने जो सम्मान तथा मान्यता प्राप्त की, वह सहज और स्वाभाविक थी। श्रीमन्त महाराज सर तुकोजीराव बहादुर के साथ तो आपकी इतनी अधिक घनिष्ठता है कि उनके राज्यसिंहासनासीन होने के समय से अब तक भी आपका उनसे स्नेह और व्यवहार है। महाराज के बीमार होने के समय, विदेश-यात्रा पर जाने अथवा सकुशल लौटने पर और ऐसे ही अन्य अवसरों पर भी आप उनके प्रति अपने स्नेह का प्रदर्शन बराबर किया ही करते थे। वर्तमान महाराज श्रीमन्त यशवन्तराव होलकर के साथ भी आपका वैसा ही स्नेहपूर्ण व्यवहार है। आपके यहां महाराज कितनी ही बार पधारे हैं, आपकी कितनी ही संस्थाओं का उन्होंने उद्‌घाटन अथवा उनका शिलान्यास किया है, विवाह आदि के अनेक शुभ प्रसंगों को अपनी उपस्थिति से सुशोभित किया है और अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में भी अपनी कृपा का परिचय दिया है। परस्पर का यह व्यवहार तब चरम सीमा पर पहुंच गया था, जब बम्बई के बावला-प्रकरण में महाराज तुकोजीराव का हाथ बताकर उनको गद्दी त्यागने अथवा कमीशन के सामने अपनी सफाई पेश करने के लिये कहा गया था। इस अवसर पर इन्दौर की जनता की जो विराट सभा हुई थी, उसके आप ही सभापति थे। उच्चतम अधिकारियों से आप महाराज की ओर से मिले और अन्त में आप कलकत्ता में वायसराय से भी मिलने गये।

कलकत्ता पहुँचने पर वायसराय के मिलिटरी सेक्रेटरी से आपने मिलने का समय मांगा, तो वह समझा गया कि आप महाराज का मामला लेकर मिलने के लिये आये हैं। लेकिन, आपने भेद नहीं दिया और यह प्रगट किया कि वायसराय महोदय इन्दौर में आपके मन्दिर में भी पधारे थे और आप केवल कृतज्ञता प्रगट करने आये हैं। मुलाकात का समय दूसरे दिन ११ बजे का नियत किया गया। वायसराय महोदय ने पहुँचते ही कुशल-क्षेम पूछा, तो आपने सहसा ही कह दिया कि जब महाराज ही कुशल-क्षेम पूर्वक नहीं हैं, तब उनकी प्रजा कैसे कुशल-क्षेम से रह सकती है? आपने महाराज को सर्वथा निर्दोष बताया। परन्तु वायसराय महोदय पहिले ही हुक्म जारी कर चुके थे। इसीलिये उन्होंने कुछ कर सकने में खेद प्रगट किया। पर, सेठ साहब हार मानने वाले नहीं थे। आपने दो वचन तो ले ही लिये। एक तो यह कि आपको सम्मान के साथ गद्दी से अलग किया जाय और दूसरा यह कि जीवन-भरण के लिये अच्छी रकम दी जाय। अपने उत्तराधिकारी के पक्ष में स्वयं राजगद्दी छोड़ने का उनको अवसर दिया गया और पति-वर्ष के लिये जो एक लाख की रकम रखी गई थी, वह छः लाख कर दी गई। सेठ साहब के व्यक्तित्व, प्रभाव और राजभक्ति के अतिरिक्त यह घटना इस बात की भी सूचक है कि आप जनता के भाव-अभियोग उच्चतम अधिकारियों तक किस रूप में पहुंचाया करते हैं। जनमत का प्रतिनिधित्व करने में आप परम प्रवीण हैं। इन्दौर की जनता की सार्वजनिक सभा के सभापति के नाते से ही तो आप कलकत्ता वायसराय के पास गये थे।

ऐसे जन-प्रतिनिधि का इन्दौर राज्य में जितना भी सम्मान हुआ, वह कम ही है। सम्वत १९४२ से ही आपके घराने की राज्य में प्रतिष्ठा या मान्यता थी। तब (२३ जुलाई १८८५ के) एक हुक्म द्वारा तत्कालीन महाराज श्रीमन्त तुकोजीराव द्वितीय ने अबकारी का परवाना देकर आपकी दूकान को सम्मानित किया था। इसका अभिप्राय यह था कि आपकी दूकान के लिये सायर या चुंगी का आधा कर माफ कर दिया गया था। इन्दौर

मे ग्यारह पंच नाम की एक सस्था है, जिसको व्यापारियो की प्रतिनिधि सस्था कहा जाता है। इसके सभी सदस्य राज्य द्वारा नियुक्त किये जाते थे। इसको इन्सालवेंसी कोर्ट के अनेक दीवानी अधिकार प्राप्त थे। सम्वत् १९५० मे सेठ साहब की दूकान को भी इसकी सदस्यता प्राप्त हुई। बाद मे आप इसके अध्यक्ष बनाये गये और वर्षों तक आप इस पद पर प्रतिष्ठित रहे।

सन् १९१६ से आपको राज्य द्वारा व्यक्तिगत सम्मान प्राप्त होना शुरू हुआ। इसी वर्ष महाराज श्रीमन्त तुकोजीराव बहादुर ने अपनी जन्मगाठ पर आपको दरबार मे ऊंची बैठक और हाथी रखने का सम्मान प्रदान किया। १९१८ मे फिर वर्षगाठ पर ही आपको दो सम्मान और दिये गये। एक तो यह कि दीवानी अदालत मे आप वादी, प्रतिवादी तथा गवाह के रूप मे सम्मन द्वारा बुलाये नही जायेगे। काम पडने पर मजिस्ट्रेट आपके यहां जायेगे और वहा ही आवश्यक अदालती कार्यवाही कर ली जायगी। दूसरा यह कि आपके यहां उत्सव और त्यौहार आदि का कार्य पडने पर प्रथम श्रेणी का स्पेशल लवाजमा भेजा जाया करेगा। १९१९ मे अपनी जन्मगाँठ के दरबार मे आपको "राज्यभूषण" की उपाधि से विभूषित किया गया और दशहरा की सवारी मे हाथी की बैठक प्रदान की गई। सन १९२० के दरबार मे आपको पैर मे पहनने के लिये सोने का कडा प्रदान किया गया। राजस्थान और मध्य भारत के देशी राज्यो मे यह सम्मान असाधारण माना जाता है और किसी भाग्यशाली व्यक्ति को ही प्राप्त होता है। आपने इस सम्मान के लिये महाराज के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिये एक थाल मे उन्हे ५७१ तोला सोना और ७१ मोहरे भेट की। सन् १९२४ के दरबार मे आपको सरकारी दरबारो मे सरदारो की श्रेणी मे बैठने का सम्मान दिया गया।

वर्तमान महाराज ने भी सेठ साहब के सम्मान की इस परम्परा को इसी प्रकार कायम रखा। १९२६ के फरवरी मास मे १०६१ संख्या के पत्र से आपको 'रावराजा' की उपाधि देने का महाराज ने विचार प्रगट किया था। १९३० मे आपके उत्तराधिकारी महाराज ने अपने जन्म दिन के दरबार मे आपको इस उपाधि से सम्मानित किया और इसके बाद ही "राज्यरत्न" की उच्चतम उपाधि से भी आप विभूषित किये गये।

इन सब सम्मानों के बाद आपके आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किये जाने और म्यूनिसिपैलिटी तथा लेजिस्लेटिव कमेटी के सदस्य नामजद किये जाने का उल्लेख करना विशेष महत्व नही रखता। परन्तु सम्वत् २००१ मे भी धारासभा का सदस्य नियुक्त किया जाना अवश्य ही उल्लेखनीय है। तब लेजिस्लेटिव कमेटी को धारासभा का रूप दे दिया गया था और जनता की राजनीतिक संस्था प्रजामण्डल द्वारा पहिली बार चुनाव लडे गये थे। बहुत ही कडा मुकाबला था। सेठ साहब ने हवा का रुख देखते हुये चुनाव न लडने का निश्चय किया और उससे सर्वथा उदासीन रहे। लेकिन, आपके अनुभव, विचक्षण बुद्धि तथा व्यापार कौशल से लाभ उठाने के लिये आपको नामजद करना आवश्यक समझा गया और आपके हजार मना करने पर भी आप नामजद कर दिये गये। प्रजामण्डल के उन दिनो के नेता तथा अन्य सज्जन भी धारासभा की कमेटियो तथा अन्य सरकारी कमेटियो मे आपके साथ काम करने का उल्लेख बडे ही गर्व के साथ करते है।

उन दिनो की व्यापारी संस्थायें भी प्रायः अर्धसरकारी ही होती थी। उन सब मे भी आपको विशेष सम्मान प्राप्त होता था। इन्दौर राज्य व्यापारी सघ (चेम्बर आफ कामर्स), मिल मालिक सघ और इन्दौर बैंक के आप वर्षो प्रधान रहे हैं।

अंग्रेजी राज्य में

अन्य देशी राज्यो मे आपको जो सम्मान तथा मान्यता प्राप्त हुई, उसकी चर्चा करने से पहिले अंग्रेजी सरकार द्वारा प्राप्त सम्मान तथा मान्यता का उल्लेख करना ठीक होगा। इन्दौर राज्य के बाहर भी अनेक

संस्थाओं को आपकी उदारता का लाभ मिला था। इन्दौर छावनी भी उस समय अंग्रेजी राज के ही आधीन थी। उस क्षेत्र की सार्वजनिक संस्थाओं के अलावा आपने दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई तथा अन्य स्थानों की सार्वजनिक संस्थाओं को भी बहुत बडी बडी रकमें प्रदान की थीं। सरकार की सबसे बडी सहायता आपने पहिले विश्वव्यापी महायुद्ध मे की थी, जब कि अकेले आपने एक करोड रुपये का युद्ध ऋण लिया था। युद्ध के अन्य चंदों मे भी, जैसे कि 'वार रिलीफ फण्ड', 'एम्बूलैंस कोर' और 'आवर डे' आदि मे भी आपने अच्छी रकमें प्रदान की थीं। इन्दौर मे पहिले महायुद्ध के समय युद्ध-ऋण के लिये टाऊन हाल मे एक सार्वजनिक सभा हुई। लोगों से युद्ध-ऋण के लिये अपील की गई। आपने व्यक्तिगत रूप से पांच लाख का युद्ध-ऋण लेने का निश्चय किया था, किन्तु जनता को असमंजस मे पडी देखकर आप ने यह घोषणा की कि मैं पांच लाख के बजाय दस लाख युद्ध-ऋण लेता हूँ। जनता को इसके लिये कष्ट देने की आवश्यकता नहीं है। एक पन्थ दो काज साधने की सेठ साहब की उदारता और दूरदर्शिता की सब ओर सराहना होने लगी। जनता को राहत मिली और सरकार का भी काम हो गया। इन्दौर के वयोवृद्ध जनसेवक श्री सरवटे साहब भी, जो कि इन्दौर के गान्धी कहे जाते हैं, सेठ साहब की इस उदारता की मुक्तकंठ से सराहना करते सुने गये हैं। एक करोड का युद्ध-ऋण भी आपकी दूरदर्शिता और सूझ-बूझ का सूचक है। यहां वह पत्र अविकल रूप से उद्धृत किया जाता है, जो इसके लिये आपने गवर्नर जनरल के मध्यभारतस्थित तत्कालीन एजेन्ट श्री० ओ० बी० वौसांक्वेट आई० सी० एस०, सी० आई० ई०, आई० एस० आई० को २२ मार्च १९१७ को लिखा था :—

"In reference to your Honour's wishes I have called on you to-day. Your Honour's desire is that I should contribute to the War loan. I therefore explain underneath my intention with regard to my contribution to the War Loan.

I have now purchased 70 Lakhs of 3.1/2% Government paper, mainly with the object of supporting the price of this security. I will now tender for Rs. 47 Lakhs to the 5% war Loan. Against this tender of the 5% War Loan the Government will give me about Rs. 70 Lakhs of Conversion warrants. I will convert my holding of 70 Lakhs of 3.1/2% Government paper with these warrants. As the conversion rate is Rs. 76 for Rs. 100, I will get Rs. 53 Lakhs of 5% war loan to the 47 Lakhs of my 3.1/2% Government paper. Adding these 53 Lakhs of 5% war loan to the 47 Lakhs of 5% War Loan, for which I will tender, I will have altogether Rs. 100 Lakhs of the 5% War Loan. This will be my humble contribution to the war loan."

एक करोड का युद्ध-ऋण लेने मे सेठ साहब ने जिस दूरदर्शिता से काम लिया, वह इस पत्र से स्पष्ट है। सरकारी कागजों के गिरते हुये भाव से आपने लाभ उठाया। सारे देश मे इतनी बडी रकम युद्ध-ऋण मे देने वाले आप अकेले ही थे। जब आपने इतनी बडी रकम युद्ध-ऋण मे लेने का विचार प्रगट किया, तब बम्बई के गवर्नर, मध्यभारत के एजेण्ट और इन्दौर राज्य मे यह कशमकश शुरू हो गई कि आप यह उनके यहां से लें। बम्बई के गवर्नर ने कई सन्देश भिजवाए। अन्त मे आपने अपने यहां इन्दौर से ही लेने का निश्चय किया। निस्सन्देह, सरकार की यह बहुत बडी सहायता थी। इसलिये सरकार की दृष्टि मे आपका सम्मान और मान्यता का बढना स्वाभाविक ही था। १९१५ मे सम्राट् के जन्मदिन पर आपको "रायबहादुर" और १९१९ मे "सर" की उच्चतम

उपाधि से सम्मानित किया गया। चारो ओर से आपपर बधाइयो की वर्षा हुई। वायसराय ने भी आपको २ जुलाई को हार्दिक बधाई का तार दिया। सितम्बर मास मे आपको वायसराय ने शिमला निमत्रित करके 'सर' की उपाधि और 'नाइटहुड' के पदक प्रदान किये। एजेण्ट के यहां आपको विशेष सम्मान सदा ही मिलता था। दिल्ली दरबार मे भी आपको ऊँचा आसन दिया गया था।

आपको 'राजा' की उपाधि से विभूषित करने का भी कई बार विचार किया गया। दतिया के दीवान सर अजीजुद्दीन अहमद ने १० जुलाई १९२५ के अपने पत्र मे लिखा था कि "मै कुछ समय से आपको पत्र लिखने का विचार कर रहा था। आपने सरकार, होलकर महाराज और देशी राज्यो तथा ब्रिटिश भारत मे जनता की भलाई के जो महान कार्य किये है,उनका मै सदा से ही प्रशसक रहा हू। आपको 'सर' और 'रायबहादुर' का सम्मान सर्वथा उचित ही दिया गया है, किन्तु मै तो कहता हू कि आपको 'राजा' के पद से विभूषित किया जाय। अनेक देशी नरेशों ने अपने यहा के लोगो को राजा और नवाब के खिताब दिये है। पटियाला के महाराज ने अभी-अभी अपने दीवान सर दयाकिशन कौल को 'राजा' की पदवी दी है। यह देशी नरेशो के लिये ही शोभास्पद है कि उनकी प्रजा के विशिष्ट व्यक्ति 'राजा' आदि पदवियो से सम्मानित किये जाय। मै चाहूगा कि इन्दौर के महाराज आपको किसी उपयुक्त अवसर पर 'राजा' की पदवी से सम्मानित करे। ब्रिटिश भारत मे अनेक हिन्दू व्यापारियो को इससे सम्मानित किया गया है।"

कलकत्ता के आपके अनेक मित्रो ने वायसराय से आपको 'राजा' की पदवी दिलाने का एक बार आयोजन भी किया था। उस आयोजन का उल्लेख व्यापार-व्यवसाय के प्रकरण मे कलकत्ता मे दूकान खोलने के सिलसिले मे किया जा चुका है। एक राज्य मे दो 'राजा' न रहने की आपकी भावना कितनी सरल थी? 'राव-राजा' की उपाधि प्राप्त कर लेने के बाद आपको 'राजा' की उपाधि मे कुछ भी आकर्षण दीख नही पडा।

१९ नवम्बर १९१९ को एजेण्ट सर बोसक्वेण्ट को सेठ साहब ने विदाई भोज दिया था। तब आपकी प्रशसा करते हुये एजेण्ट महोदय ने कहा था कि "इन्दौर मध्यभारत का प्रमुख औद्योगिक नगर है और सेठ हुकमचन्द इन्दौर के प्रमुख व्यापारी है। सार्वजनिक कार्यो के लिये आपने अपने विपुल धन का सुन्दर विनियोग किया है। युद्ध-ऋण मे आपने एक करोड रुपया प्रदान किया है, जो कि किसी भी व्यक्ति द्वारा दी गई सबसे बडी रकम है। दिल्ली के लेडी हार्डिङ्ग अस्पताल व कालेज को भी आपने बहुत बडी उदार सहायता प्रदान की है। भारतीय महिलाओ की दशा सुधारने के काम मे सदा ही सेठ हुकमचन्द ने सहयोग दिया है। विधवाओ की सहायता और उन्हे स्वावलम्बी बनाने वाली शिक्षा देने के लिये इन्दौर मे आपने एक भवन भी खोला हुआ है। इन्दौर के कनाडियन मिशन को आपने २५ हजार रुपया दिया, जिससे वे अपने कन्या विद्यालय के लिये नया भवन बना सके है। आपकी सार्वजनिक सेवाओ का सम्मान करते हुये सम्राट् ने आपको "नाइटहुड" का जो सम्मान दिया है, उसके लिये आपके मित्रो को बहुत प्रसन्नता हुई है।" अन्य अनेक उच्च सरकारी अधिकारियो और एजेण्टो ने भी आपकी समय-समय पर इसी प्रकार सराहना की है। श्री एच० डाली नाम के एजेण्ट ने, जो बाद म मैसूर के रेजिडेण्ट नियुक्त हुये थे, बगलोर से लिखे गये पत्र मे सेठ साहब की बहुत प्रशसा की थी। ऐसे पत्रो और भाषणो का यहा उल्लेख करना प्राय अनावश्यक ही है।

ग्वालियर मे

इन्दौर के बाहर जिन अन्य राज्यो मे सेठ साहब का सम्मान हुआ अथवा उनको मान्यता प्राप्त हुई, उनमे ग्वालियर का स्थान मुख्य है। स्वर्गीय महाराज श्रीमन्त यशवन्तराव सिंधिया के साथ तो आपका घर का-सा व्यवहार हो गया था। महाराज बहादुर को राज्य की आर्थिक, औद्योगिक तथा व्यावहारिक उन्नति करने का

विशेष शौक था। बिडला बन्धुओ को उन्होने ग्वालियर-मुरार मे कपडा मिल खोलने का निमन्त्रण दिया, तो सेठ साहब को उज्जैन मे मिल खोलने के लिये प्रेरित किया, जिसकी आधारशिला उनके स्वर्गवास के बाद राजमाता द्वारा रखी गई थी। महाराज ने आपको इकोनामिक बोर्ड का सदस्य नियुक्त किया था। २१ नवम्बर १६३५ को जन्म दिवस के दरबार मे ग्वालियर ने आपको पोशाक अता फरमाई थी। महाराज के स्वर्गवास के बाद राज्य की पच्चीस करोड की निधि के ट्रस्ट बोर्ड के आप ट्रस्टी नियुक्त किये गये थे। आप अकेले ही गैरसरकारी सदस्य थे। ट्रस्ट बोर्ड के सम्बन्ध मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना का यहां उल्लेख करना आवश्यक है।

ट्रस्ट बोर्ड की पहिले ही वर्ष की वार्षिक बैठक मे वर्षभर का जमा-खर्च प्रस्तुत हुआ। बैठक के बाद सेठ साहब ने महारानी साहिबा (राजमाता) को वस्तुस्थिति की जानकारी देने के लिये एक पत्र लिखा। उसमे आपने लिखा था कि राज्य के पच्चीस करोड मे से पांच करोड डूब चुके हैं। यही स्थिति रही, तो दो चार वर्षों मे ही राज्य का दिवाला पिट जायगा। पत्र ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। वह तत्कालीन वायसराय के पास पहुंचाया गया। उन्होने सहसा ही इम्पीरियल बैंक के सबसे बडे मैनेजर और रियासत के मन्त्री श्री अकबर अली का एक कमीशन जांच के लिये नियुक्त कर दिया। ट्रस्ट के मैनेजर श्री ऐफ० जी० दीनशा को सफाई पेश करने और सेठ साहब को भी अपने कथन को प्रमाणित करने की सूचना दी गई। बम्बई मे ताजमहल मे कमीशन की बैठक हुई। श्री एफ० जी० दीनशा जामे से बाहर हो गये। उन्होने मानहानि का दावा दायर करने की तय्यारी की। कई नामी नामी बैरिस्टर अपने पक्ष मे खडे कर लिये। सेठ साहब विचित्र परेशानी मे पड गये। चले थे राज्य का भला करने उलटी मुसीबत गले बंध गई। "गये थे रोजा छुडवाने नमाज गले पड गई" वाला हाल हुआ। डाक्टर वारनोफ के आपरेशन के घाव अभी भरे भी नही थे कि आपको अपनी मान-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये एकाएक बम्बई जाना पड गया। कमीशन के सामने आपने सारे कागज-पत्रो की छानबीन करके साढे पांच करोड के डूबने का हिसाब पेश कर दिया। आपकी बात सत्य प्रमाणित हुई। श्री अकबर अली ने वहां कमीशन मे बैठे हुये ही आपके प्रति कृतज्ञता प्रगट की और सर्वत्र यह स्वीकार किया गया कि आपने ग्वालियर राज्य की रक्षा कर ली। महारानी साहिबा का आपके प्रति विश्वास दुगना हो गया और वर्तमान युवा महाराज की श्रद्धा आपके प्रति और अधिक दृढ हो गई। आपके परामर्श पर ही रुपये का विनियोग किया गया। कई करोड का लाभ हुआ।

स्वर्गीय महाराज श्रीमन्त माधवराज सिंधिया के साथ आपके सम्बन्ध कितने गहरे थे, इसको प्रगट करने वाली दो और घटनाओ का यहां देना अप्रासंगिक न होगा। सन् १६२४ की बात है कि महाराज साहब और आपमे किसी बात पर एक-एक कौडी की शर्त लग गई। महाराज शर्त जीत गये। सेठ साहब कौडी भेजना भूल गये, तो महाराज साहब ने भेजने की याद दिलाई। सेठ साहब ने स्वर्ण-मण्डित और हीरा-मोती-पन्ना जडित एक सुन्दर कौडी तय्यार करवा कर महाराज को भेजी। सेठ साहब ने साधारण कौडी का भेजना अपनी और महाराज साहब की शान के प्रतिकूल समझा। इस पर माधोविलास शिवपुरी से २१ जुलाई १६२४ को महाराज ने सेठ साहब को एक पत्र लिखा कि "आपके १७ जुलाई के कृपा पत्र के लिये धन्यवाद है। मुझे तो सादी और सीधी कौडी चाहिये। सोने से मण्डित और कीमती जवाहर से जडित नही। उसको रजिस्टर्ड डाक से भेज दीजिये। इसके लिये मै आपका कृतज्ञ होऊंगा। मुझे आशा है कि आप स्वस्थ-मगल हैं।" इस पत्र के बाद सादी कौडी भेजी गई, तब महाराज ने जय विलास ग्वालियर से १० अगस्त को दूसरे पत्र मे लिखा कि "मेरी जीती हुई बाजी की कौडी भेजने के लिये मै आपका आभारी हूं। सोने की कौडी मै लौटा रहा हूँ। मुझे आशा है यह आपके पास सुरक्षित पहुँच जायेगी। इसकी पहुँच की कृपापूर्वक सूचना दें। आप स्वस्थ होगे।" अंग्रेजी मे दोनो पत्र निम्न प्रकार है'—

(१)

Madho Vilas
Shivapuri 21st July, 1924.

Dear Sir Saheb,

I thank you very much for your kind letter of 17th July.

I want pure and simple' conrie and not covered with gold or expensive stones. Please send it by registered post for which I shall be grateful to you

I hope you are keeping well.

Your Sincerely
M. Scindia

(२)

Jai Vilas,
Gwalior 10th August 1924

Dear Sir Saheb,

I am grateful to you for sending me the promised winning of the bate I have returned the gold one, which I hope will reach you safely and which kindly acknowledge.

I hope you are well.

Your Sinecrely
M Scindia

इससे भी अधिक मनोरंजक एक और घटना है। उज्जैन मे सिंहस्थ का मेला था। महाराज साहब स्वयं सारी व्यवस्था का निरीक्षण करने के लिये पधारे। सेठ साहब को भी याद किया गया। आप शाम के समय मोटर से आते और रात को लौट जाते। एक दिन महाराज साहब ने पूछा कि आपके गले के कण्ठे की कीमत क्या होगी? आपने कहा कि तीन लाख से कम तो नही है। सेठ साहब के बिदा हो जाने के बाद महाराज साहब ने अपने दो-चार साथियो को बुलाया और उनसे कहा कि कल रास्ते मे सेठ साहब का कण्ठा वगैरः लूटना चाहिये और चौबीस घण्टे परेशान करने के बाद लौटा देना चाहिये। सेठजी को लूटने की सारी तैयारी कर ली गई। बनावटी दाढी-मूछ का सामान भी जुटा लिया गया। दूसरे दिन रात को लौटते हुये सेठजी की मोटर पर डाका डालने की निश्चित योजना बना ली गई। दूसरे दिन सेठ साहब और भी अधिक कीमती कण्ठा पहन कर आये। महाराज साहब ने फिर पूछा कि उसकी क्या कीमत होगी? सेठ साहब ने उत्तर दिया कि छ सात लाख के बीच होगी। महाराज ने इस पर कहा कि आप इतने कीमती आभूषण व कपडे पहनकर रात को यहां से अकेले मोटर पर लौटते हैं। मेरी सीमा मे तो मेले के कारण पुलिस व फौज का भी पहरा है, किन्तु क्षिप्रा नदी के पार इन्दौर की सीमा पर कोई लूट-पाट हो जाय, तो उसका आपके पास क्या प्रबन्ध है? सेठ साहब ने सहसा ही बडी दृढता से कहा कि इसका मैने पक्का प्रबन्ध किया हुआ है। बन्दूक और रिवाल्वर वाले दो आदमी मेरे साथ मोटर पर सदैव रहते है। उनको यह आदेश है कि रात को मोटर के पास आकर कोई जरा सी भी गडबड करे, तो उसको तुरन्त गोली से उडा दिया जाय। बाद मे जो होगा, देख लिया जायगा। इस पर महाराज बोले कि हमने तो आज रात आपको लूटने की योजना बनाई थी, तो हम भी गोली से उडा दिये जाते। सेठ साहब ने कहा कि हा,

ऐसा ही होता। विनोदपूर्ण वातावरण में लूटने के षड्यन्त्र का भेद महाराज ने स्वयं ही खोल दिया। संभावित अनर्थकारी दुर्घटना विनोद मे परिणत हो गई।

वर्तमान महाराज श्रीमन्त जियाजीराव सिंधिया सेठ साहब के प्रति स्नेह से अधिक श्रद्धा रखते हैं और आपको 'काका' कह कर आपका सम्मान करते है। पीछे सन् १९४९ मे, जब सेठ साहब बम्बई मे अत्यन्त रुग्ण थे और आपको औषधोपचार के लिये विदेश ले जाने का आग्रह किया जा रहा था, तब श्रीमन्त साहब स्वयं वही आग्रह करने के लिये बम्बई पधारे थे। श्रीमन्त ने इस ग्रन्थ के लिये सेठ साहब के सम्बन्ध मे जो दो शब्द लिख भेजने की कृपा की है, उनसे भी आपके प्रति उनका आदर एवं श्रद्धा ही व्यक्त होती है। सेठ साहब भी स्वर्गीय महाराज के समान वर्तमान महाराज के प्रति भी वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करते है। पीछे सम्राट विक्रमादित्य का द्विसहस्राब्दि-महोत्सव की योजना होने पर आपने पचास हजार रुपया उसके लिये प्रदान किया था। उसके लिये २९ अगस्त १९४३ को पद्म विलास-पूना से एक पत्र लिख कर महाराज साहब ने आपके और भैयासाहब श्री राजकुमारसिंहजी के प्रति कृतज्ञता प्रगट की थी।

बीकानेर में

बीकानेर के स्वर्गीय महाराज सर गंगासिंहजी बहादुर भी सेठ साहब का स्वर्गीय श्रीमन्त माधवरावजी के ही समान सम्मान करते थे। उनके साथ भी आपका घर का-सा व्यवहार था। आपको उन्होने कई बार बीकानेर पधारने का आग्रह किया था। सन् १९२० मे आप पहिली बार बीकानेर गये थे। तब वहाँ से लौट कर आपने महाराज बहादुर को पांच हजार रुपये किसी सार्वजनिक कार्य मे व्यय करने के लिये भेजे थे। बाईजी साहिबा के शुभ विवाह पर भी आपको आग्रहपूर्वक बुलाया गया था। उस समय तो सेठ साहब बीकानेर न जा सके, किन्तु सम्वत् १९८९ मे गंगा नहर के उद्घाटन के समारम्भ मे सेठ साहब सम्मिलित होने के लिये बीकानेर गये थे। महाराज स्वयं स्टेशन पर महाराजकुमार तथा अन्य उच्च अधिकारियों के साथ स्वागत करने के लिये उपस्थित हुये थे। रामपुर, डूंगरपुर, दतिया, नवानगर, झालावाड, राजपिपल्या तथा नरसिंहगढ के नरेशो के अलावा सर अप्पाजीराव शितोले, सर रहमतुल्ला खां और सर रामास्वामी अय्यर सरीखे राजनीतिज्ञो की उपस्थिति मे महाराज बहादुर ने जो भोज ९ मार्च की शाम को दिया, उसमे सेठ साहब के सम्बन्ध मे उन्होने कहा था कि "सेठ हुकमचन्दजी हमारे खास मित्रो मे से है। भारत के ये एक बडे व्यापारी हैं। हमारा इसका व्यवहार बहुत दिनो से चला आ रहा है। राजाओ का-सा इनका भी काम है। इन्होने सन् १९२० मे बीकानेर मे किसी पब्लिक काम मे खर्च करने के लिये पांच हजार रुपये भिजवाये थे। ब्याजसहित ये रुपये पब्लिक थियेटर बनाने मे लगाये गये है। सेठ साहब को इसके लिये धन्यवाद है।"

सेठ साहब जब बिदा होने के लिये महाराज बहादुर के यहां गये, तब उन्होने आपसे अपने साथ दिल्ली चलने का अनुरोध किया अपनी स्पेशल ट्रेन से आपको वे दिल्ली लाये और बीकानेर भवन मे अपने अतिथि के रूप मे आपको ठहराया। दिल्ली से आपने १५०० रुपये में इन्दौर जाने-आने के लिये हवाई जहाज किराये पर किया। उसमे आप इन्दौर पहुंचे, तो हजारो की भीड हवाई जहाज की साहसपूर्ण यात्रा से सकुशल पहुंचने पर आपके स्वागत के लिये उपस्थित थी। लौटती यात्रा मे आपने भैया साहब राजकुमारसिंहजी और सेठ हीरालालजी साहब को उसी हवाई जहाज से दिल्ली भेजा। सन् १९३७ मे अपनी राजगद्दी के हीरक-जयन्ती उत्सव पर भी सेठ साहब को महाराज बहादुर ने बडे ही आग्रह से निमन्त्रित किया था। तब कई दिनो तक आपको अपना अतिथि बनाये रख कर लौटने दिया था।

अन्य राज्यों में

मैसूर राज्य मे श्री गोमटस्वामी महाराज के महामस्तकाभिषेक के महोत्सव पर सेठ साहब सम्वत् १९८२ और १९९६ मे वहां गये थ । इसकी चर्चा यथास्थान की जा चुकी है । इस महोत्सव के व्यय का स्थायी प्रबन्ध सेठ साहब ने कलशो की बोली बोल कर किया था । तब मैसूर नरेश युवराज के साथ पधारे थे और तभी से सेठ साहब का आपके साथ स्नेह-सम्बन्ध कायम हुआ था । दशहरा के अवसर पर महाराज आपको अवश्य ही निमन्त्रित किया करते थे ।

आपको अनेक राज्यो मे छोटा-बडा सम्मान प्राप्त होने के अनेको अवसर आगे । सम्वत् २०००के कार्त्तिक मास मे रतलाम में सेठ डामरजी गिरधारीजी ने अष्टान्हिका महोत्सव का आयोजन किया था । जैनियो की ओर से आपके सभापतित्व मे महाराज साहब को मानपत्र दिया गया था । मानपत्र के बाद महाराज सेठ साहब को अपने साथ ही मोटर पर लिवा ले गये । शहर मे २५-३० स्थानों मे इत्रपान हुआ और दो घण्टो तक महल मे अनेक विषयों पर चर्चा हुई । उसके बाद आपको लज्जन विलास महल के 'गेस्ट हाउस' मे ठहराया गया । अलवर, उदयपुर, धार, बडवानी, झालावाड, देवास, झाबुआ, सीतामऊ, सैलाना, नरसिंहगढ, राजगढ, बांसवाडा, डूंगरगढ आदि दर्जनो राज्यो में आपका विशेष सम्मान हुआ और जहां भी कही आप गये, आप उनके विशेष मेहमान हुये और पूर्ण प्रतिष्ठा के साथ वहां ठहराये गये ।

आपके सुयोग्य पुत्र भैया साहब श्री राजकुमारसिंहजी ने भी आपके ही समान मान-प्रतिष्ठा प्राप्त की है । भारत सरकार ने आपको 'रायबहादुर' की उपाधि प्रदान की, तो इन्दौर राज्य ने 'मशीरे बहादुर' 'राज्य भूषण' की उपाधि से आपको सम्मानित किया । सेठ हीरालालजी काशलीवाल भी इसी प्रकार विविध उपाधियो से सम्मानित हुये । अंग्रेजी सरकार ने आपको भी सम्वत् १९८६ मे ही 'रायबहादुर' की उपाधि प्रदान की, सेना में 'कैप्टेन' का पद भी दिया और इन्दौर सरकार ने 'राज्यभूषण' तथा 'राज्यरत्न' की उपाधि देकर आपको सम्मानित किया । जनता ने भी आप दोनो का ही यथायोग्य सम्मान किया है ।

जनता में

सरकारी क्षेत्रो और देशी राज्यो से भी अधिक आपका सम्मान जनता मे हुआ । स्थान-स्थान पर आपको जो मानपत्र प्राप्त हुए है, उनका सग्रह किया जाय, तो एक बडी पोथी बन जाय । इन मानपत्रो के साथ प्राप्त हुए विविध प्रकार के सोने-चांदी के कास्केट आदि शीशमहल मे कई अलमारियो मे रखे गये है, जिनको कि दर्शक बहुत कौतुक के साथ देखते है । कुछ मानपत्र यथास्थान दिये जायेंगे । ये मानपत्र इतने व्यापक क्षेत्रो से दिये गये है, जितना विस्तृत सेठ साहब का सार्वजनिक जीवन और कार्यक्षेत्र रहा है । कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, अहमदाबाद, कानपुर, बनारस, पटना, जयपुर तथा अजमेर आदि उत्तर भारतीय नगरो से ही नही, किन्तु मैसूर, मद्रास, हैदराबाद, शोलापुर, पूना आदि दक्षिण के नगरो और प्रायः समस्त तीर्थस्थानो से आपको ये मानपत्र विविध व्यापारी, सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओ की ओर से दिये गये है । मानपत्रो मे आपके लिये प्रयुक्त शब्दो से ही आपकी लोकप्रियता का परिचय मिलता है । उनमे आपके लिये वैश्यकुलतिलक, धनकुबेर, धर्मपरायण, समाजशिरोमणि, श्रेष्ठीवर्य, शिक्षाप्रेमी, दानवीर, धर्मवीर, कर्मवीर, वणिकवर, जैनजातिसूर्य, समाजसेवापरायण, व्यापारशिरोमणि, धनिक प्रवर, जिनेन्द्रभक्त तथा उदाराशय आदि शब्दो का प्रयोग किया गया है । जैन समाज, जैनधर्म, जैन मन्दिरो और जैन तीर्थों की आपने जो अनुपम सेवा की है, उसके लिये जैन समाज ने आपको "जैन दिवाकर", "जैन सम्राट्", "दानवीर", 'तीर्थभक्तशिरोमणि' तथा 'श्रीमन्त' आदि पदवियो से विभूषित किया है । भैय्यासाहब राजकुमारसिंहजी और सेठ हीरालालजी काशलीवाल को भी दानवीर,

सर सेठ साहब श्रीमत ग्वालियर महाराज के साथ हर्षमय मुद्रा में।

इन्दौर नरेश श्री यशवतरावजी होल्कर का इत्रपान करते हुये सेठ साहब।

श्रीमत महाराज ग्वालियर और श्रीमत महाराज रतलाम के साथ सेठ साहब ।

भैयासाहब राजकुमारसिंहजी के सुपुत्र श्री राजाबहादुरसिंहजी के शुभ विवाह पर भोज के समय इन्दौर नरेश श्री यशवंतसिंहजी और सेठ साहब ।

सेठ साहब मैसूर के महाराज श्रीमंत श्रीकृष्ण राजेन्द्र वाडियर बहादुर जी.सी.एस.आई.जी.बी.ई. को २६ फरवरी १९३९ को मानपत्र भेंट कर रहे हैं।
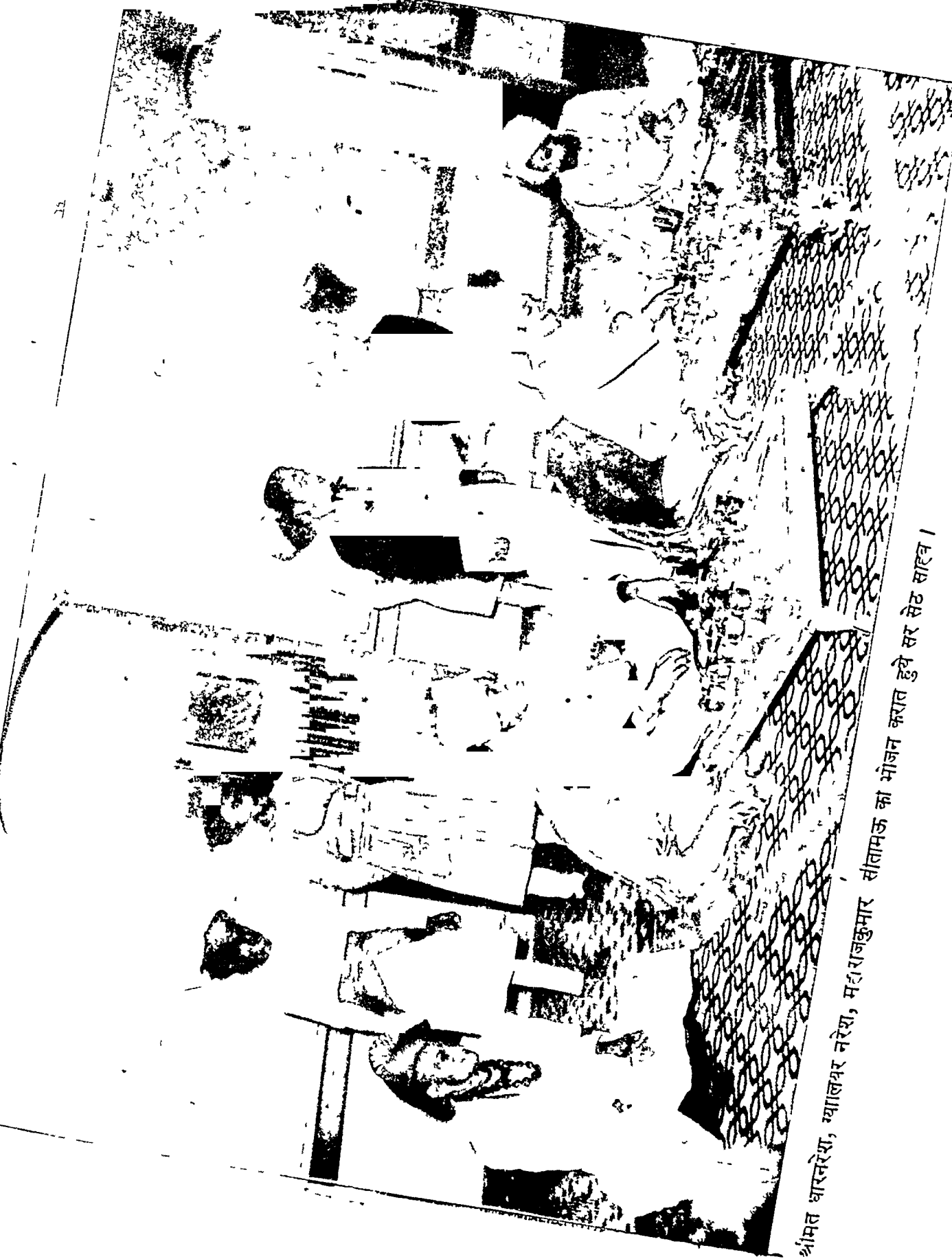
श्रीमत धारनरेश, ग्वालियर नरेश, महाराजकुमार सीतामऊ को भोजन कराते हुये सर सेठ साहब ।

इन्द्रभवन में दिये गये भोज के अवसर पर ग्वालियर नरेश और इन्दौर नरेश सेठ साहब के साथ सेठ लालचंदजी सेठी और भैयासाहब राजकुमारसिंहजी खड़े हैं।

सेठ साहब श्री इन्दौर नरेश के साथ। भैयासाहब राजकुमारसिंहजी पीछे खड़े हैं।

जैनरत्न आदि उपाधियों से सम्मानित किया गया है। सेठानी साहिबा को भी 'दानशीला' की सम्मानास्पद उपाधि प्रदान की गई है। यह असाधारण लोक सम्मान कितने परिवारों को प्राप्त करने का सौभाग्य मिल सका है ?

राजधानी दिल्ली में

भारत की राजधानी दिल्ली में आपका एक बार से अधिक बार जो भव्य स्वागत व सम्मान हुआ, वह उल्लेखनीय है। सम्वत १९९७ में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की प्रबन्धकारिणी की बैठक के लिये जब आप दिल्ली पधारे थे, तब चार घोड़ों की बग्घी पर आपका शानदार जलूस निकाला गया था, जिसकी शोभा दर्शनीय थी। आपको एक भोज भी दिया गया था। श्रावण सम्वत् २००१ में भी आप दिल्ली पधारे थे, तब भी आपके स्वागत का आयोजन किया गया था। अपने पौत्र कुमार महाराजकुमारसिंह के शुभ विवाह के लिये जब आप दिल्ली पधारे थे, तब बरात का जलूस इस शान के साथ निकला था कि चारों ही ओर उसकी धूम मच गई थी। इसी प्रकार कानपुर में भी चार घोड़ों की बग्घी पर आपका शानदार जलूस निकाला गया था। शहर में उस दिन हड़ताल होने पर भी जलूस की शान में अन्तर न आया था। नागरिकों की ओर से भोज भी दिया गया था।

अन्य नगरों में

मथुराजी में चौरासी सिद्धक्षेत्र के मन्दिर के सम्बन्ध में वहां की पंचायत और राजा लक्ष्मणदासजी साहब के घराने में वर्षों से मुकदमा चल रहा था। अन्त में श्रावण २००१ में दोनों पक्षों ने सेठ साहब की प्रेरणा पर राज्यभूषण, दानवीर, रायबहादुर सेठ हीरालालजी साहब को पंच नियुक्त कर दिया और मुकदमेबाजी समाप्त हो कर दोनों पक्षों ने आपका निर्णय स्वीकार कर लिया। मथुरा में शास्त्रार्थ संघ के भवन-निर्माण में आपका भी मुख्य हिस्सा है। इस अवसर पर ७ अगस्त १९४४ को सेठ साहब का विशेष सम्मान किया गया और आपको मान-पत्र भी समर्पित किया गया।

बम्बई, कलकत्ता और नागपुर आदि की अनेक व्यापारी संस्थाओं ने आपको अनेकों मान-पत्र विशेष रूप से भेंट किये हैं। ये मानपत्र हिन्दी के अतिरिक्त मराठी तथा गुजराती आदि में भी दिये गये हैं। जैन तीर्थों में और सामाजिक संस्थाओं के वार्षिक अधिवेशनों में आपका जो सम्मान हुआ है, वह तो 'भूतो न भावी' है।

इन्दौर के आप 'बेताज के बादशाह' ही हैं। अपनी लोकप्रियता से आपने इन्दौर के छोटे-बड़े सभी नागरिकों, सभी जाति, धर्म तथा सम्प्रदाय के लोगों, धनी निर्धन आदि सभी वर्गों तथा श्रेणियों के जन-जन के हृदय में अपना स्थान बनाया हुआ है। अपने शहर की जनता का इतना स्नेह, आदर व श्रद्धा इतनी सहज में किसी असाधारण व्यक्ति को ही प्राप्त होती है। आपको वह कितनी प्रचुर मात्रा में प्राप्त है, इसका परिचय सम्वत् २००४ में सिद्धचक्रविधान और सम्वत २००६ में आपकी आरोग्य कामना के लिये हुये महोत्सवों से भी मिलता है। 'सिद्धचक्रविधान' की चर्चा यथास्थान की जा चुकी है। आरोग्य कामना समारम्भ का विवरण यहां ही देना समुचित इसलिये है कि उससे आपके प्रति जनता के स्नेह, आदर तथा श्रद्धा का अच्छा परिचय मिलता है।

आरोग्य कामना समारम्भ

यह समारम्भ आपके प्रति जनता की श्रद्धा का प्रतीक है। सन् १९४८ के फरवरी मार्च मास में अकस्मात् ही सेठ साहब के आमाशय ने काम करना बन्द कर दिया। न तो भोजन पेट में नीचे उतरता और न उलटी या डकार से बाहर ही निकलता था, बल्कि भीतर ही भीतर बहुत बढ़ जाता। एक सेर का वजन तीन सेर हो जाता था। इससे होने वाली वेदना असह्य हो जाती। आमाशय में नली डालकर सारा भोजन बाहर निकाल दिया जाता। दो माह के अन्तर से ऐसे तीन-चार दौरे आये। इन्दौर में किया गया सब प्रकार का उपचार जब लाभप्रद न हुआ, तब आपको अक्तूबर १९४८ में विशेष हवाई जहाज से सपरिवार बम्बई ले जाया

गया। वहां अनेक ऐक्सरे फोटो लिये गये, मल-मूत्र की परीक्षा की गई और खून भी चढाया गया। सुप्रसिद्ध सर्जनो, चिकित्सा विशारदो और भिन्न भिन्न रोगो के विशेषज्ञो का एक बोर्ड बिठा कर विशेष जॉच-पडताल की गई। सम्मति यह हुई कि भीतर कैंसर आदि सरीखा कोई विकार न हो कर केवल वृद्धावस्था के कारण आमाशय की थैली कमजोर पड गई है। वह अधिक जोर पडने से रुक जाती है। औपधोपचार का एक क्रम बना दिया गया और आप इन्दौर लौट आये। छ मास तक वह क्रम चला परन्तु दौरो का क्रम बढ गया। कभी तो छ-छः सात-सात दिन मे ही दौरा आने लगता। भोजन हर तीसरे घण्टे से नियमित तोल कर दिया जाने लगा। सेठ साहब पर इसका बहुत ही विपरीत असर पडा। शरीर निर्बल पड गया, वजन घट गया और हाथ-पैर चेहरे पर सूजन आ गई। बम्बई मे डाक्टर बुलाये गये और उनकी राय से आपको फिर ३० मार्च १९४९ को बम्बई ले जाया गया। चार-चार पाच-पाच दिन मे खून चढाया जाने लगा। कुछ शान्ति आई और सूजन जाती रही। हर प्रकार की परीक्षा ली गई। विशेषज्ञो से परामर्श किया गया। ऐक्सरे फोटो भेज कर अमेरिका, फ्रास तथा इंग्लैण्ड के डाक्टरो की भी राय मंगाई गई और उनकी हिदायत के अनुसार भी फोटो भेजे गये। धीरे-धीरे सुधार शुरू हुआ। वजन बढने लगा। भोजन की मात्रा भी बढने लगी। शरीर मे स्फूर्ति दीख पडने लगी। जो वजन २४० पौण्ड से घटते घटते केवल ११० पौण्ड रह गया था, वह १२४ पौण्ड हो गया। विलायत के डाक्टरो की राय हुई कि एक छोटा सा आपरेशन करके पेट को सदा के लिये ठीक किया जा सकता हैं। उन डाक्टरो को विलायत से बुलवाया गया।

सेठ साहब यद्यपि स्वस्थ होकर प्रति दिन दुपहर को दो घण्टा धर्म-ध्यान, शास्त्र स्वाध्याय-चर्चा आदि मे बिताने लगे थे, किन्तु घर वालो को सन्तोष नही था। आपको औषधोपचार के लिये विलायत ले जाने की योजना बना ली गई। सेठानी साहिबा, भैय्यासाहब और अन्य सगे-सम्बन्धी भी धरना दे कर बैठ गये। ग्वालियर मे महाराजा और महारानी साहिबा भी आगई। परन्तु सेठ साहब ने किसी की भी न मानी। आपने साफ कह दिया कि "मुझे तो इन्दौर मे ही मरना है। मै कही भी और जाने को तय्यार नही हूँ।" आप इन्दौर लौट आये और यहा आकर औपधोपचार भी बन्द कर दिया। दृढ सकल्प और आत्म विश्वास की अदम्य भावना काम कर गई। आप दिन प्रति दिन स्वस्थ होते चले गये।

बीमारी ने इतना भीषण रूप धारण कर लिया था कि चारो ही ओर चिन्ता व्याप गई थी। आरोग्य कामना के आठ दिन का कार्यक्रम बनाया गया। इन्दौर मे राज्यभूषण-'रावराजा' जैनरत्न लैफ्टिनेण्ट कर्नल,श्रीमन्त सेठ हीरालालजी कासलीवाल के सभापतित्व और समाजसेवी श्री हुकमचन्दजी पाटनी बी० ए० एल० एल० बी०, जैनरत्न श्री गुलाबचन्दजी टोग्या और वयोवृद्ध श्री सेठ भवरलालजी सेठी के सयोजकत्व मे 'श्रीमन्त सेठ हुकम चन्दजी आरोग्य कामना समिति' बनाई गई। छओ गोटो और समस्त दिगम्बर समाज के प्रतिनिधि इसमे लिये गये। इन्दौर मे बैसाख वदी १ से अक्षयतृतीया तदनुसार रविवार २४ अप्रैल १९४९ से आठ दिन तक आरोग्य कामना समारम्भ और समस्त भारतवर्ष मे वैसाख सुदी ३ अक्षय तृतीया को श्री हुकमचन्द आरोग्य कामना दिवस मनाने का निश्चय किया गया। समारम्भ के सफल आयोजन के लिये पूजन विधान, शान्तिजाप्य विधान, पण्डाल, स्वय सेवक, प्रचार तथा कार्यक्रम आदि के लिये अनेक उपसमितियो का गठन कर लिया गया और अलग अलग उनके सयोजक नियुक्त कर दिये गये। जिन सहस्र मण्डल विधान मंडवा सौ-सौ मन्त्रो से पूजन किया गया, सवा लाख का जाप शान्ति के लिये किया गया। प्रत्येक द्रव्य चढा कर इन्दौर के तुकोजीराव अस्पताल, एडवर्ड अस्पताल, मिशन अस्पताल, और बियाबानी के जैन औषधालय आदि प्रायः समस्त औषधालयो के असहाय रोगियो को पथ्य,दूध व मौसम्मी आदि वितरण किये गये। अक्षय तृतीया को असहाय रोगियो व अपाहज

लोगो को मिठाई बांटी गई। दीतवारिया बाजार मे एक विशेष मण्डप का निर्माण किया गया। मथुरा, सागर, दिल्ली आदि से विद्वान पण्डित और संगीतज्ञ बुलाये गये। महिला मण्डल के तत्त्वावधान मे महिलाओ की सभा श्रीमती कमलाबाई किबे के सभापतित्व में हुई। जलयात्रा का दृश्य तो देखते ही बनता था। १०८ कलशों की बोली मे तो होड ही लग गई। रथयात्रा का जलूस भी निकाला गया।

समारम्भ के अन्तिम दिन एक मई की रात्रि को ६ बजे श्रीमन्त महाराज तुकोजीराव होलकर के सभापतित्व मे बीस हजार नागरिको की उपस्थिति मे विराट सभा हुई। आरोग्य कामना के प्रस्ताव पर तत्कालीन उद्योगमन्त्री श्री मिश्रीलालजी गंगवाल, श्री देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य श्री शिवदत्तजी, शुक्ल, वाणिज्यभूषण रायबहादुर सेठ लालचन्दजी सेठी आदि के भाषण हुये। महाराज साहब ने अपने भाषण मे कहा था कि "सर सेठ हुकमचन्दजी की तबीयत ठीक नही है,—यह जान कर मुझे बहुत चिन्ता हुई। उनसे मेरा निकट सम्बन्ध रहा है। अतएव उनकी शुभ कामना मे सम्मिलित होने मे मुझे परम हर्ष है। सेठजी उन महानुभावो मे से है, जिनसे एक बार सम्पर्क हो जाने पर उसे वे कभी नही भूलते। यह कितना महान गुण है। मै इस गुण की बहुत कद्र करता हूं। सेठजी के उद्योग और व्यवसाय की वृद्धि भारत मे सुप्रसिद्ध है। इन्दौर नगर के उद्योग-धन्धो की उन्नति का श्रेय बहुत कुछ उन्ही को है। अन्य सार्वजनिक क्षेत्रो मे भी सेठजी सहयोग देते रहे है। उनके दान से संचालित अनेक संस्थायें प्रजा का हित-साधन कर रही हैं। ऐसे व्यक्ति जितना अधिक हमारे साथ रहते है, उतना ही अधिक जनता का लाभ होता है। अतएव इस आयोजन की मै प्रशसा करता हूँ। आपके साथ ही मै ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सेठजी शीघ्र रोगमुक्त होकर हमारे बीच मे आवे और सुख-शान्ति से रहकर पूर्ववत जनता का हित करते रहे।"

सारे देश मे भी अक्षय तृतीया को 'श्री हुकमचन्द आरोग्य कामना दिवस' अत्यन्त श्रद्धाभक्ति के साथ मनाया गया। सर्वत्र आरोग्य कामना की गई। प्रार्थना, अभिषेक, पूजन तथा शान्ति यज्ञ का विधिवत् आयोजन किया गया। कुछ स्थानो मे वैष्णव मन्दिरो में भी पूजा-पाठ किया गया।

यह देशव्यापी समारम्भ उस स्नेह, आदर तथा श्रद्धा एवं सम्मान व मान्यता का प्रतीक है, जो सेठ साहब को जनता से लोकसेवा के कारण ही प्राप्त हुई है। इन्दौर के समारम्भ मे भैया साहब श्री राजकुमारसिंहजी साहब ने जो दो शब्द कहे थे, वे अपने पूज्य पिताजी के प्रति सुयोग्य पुत्र की श्रद्धा-भक्ति के सूचक है। इसीलिये उनको यहा देने के लोभ का सवरण किया नही जा सकता। आपके उन शब्दो पर जनता गद्‌गद् हो गई थी। आपने कहा था कि '—

"इस इन्दौर की पुण्य पवित्र माता अहिल्याबाई की गद्दी के शासन कर्त्ताओ की चार पीढियो से हमारे घराने पर कृपा रहती आई है और समय समय पर हमारे कुटुम्बियो को हर प्रकार का प्रोत्साहन मिलता रहा है। श्रीमंत महाराजा साहब का तो पूर्ण स्नेह पूज्य पिताजी पर प्रारम्भ से ही रहा है। उनके द्वारा औद्योगिक तथा समाज सेवा के जितने भी साधन स्थापित है, उनमे श्रीमंत की पूर्ण प्रेरणा रही है और श्रीमंत ने उन कार्यों के उत्थान मे समय समय पर पूर्ण सहानुभूति तथा सहायता प्रदान की है।

"आज आठ रोज से मै अनुभव कर रहा हूँ कि इन्दौर की समाज का प्रत्येक व्यक्ति मेरे पूज्य पिताजी सर सेठ हुकमचन्दजी साहब की आरोग्य कामना के निमित्त धार्मिक समारंभ के प्रत्येक कार्यक्रम मे पूर्ण लगन व उत्साह से भाग लेकर हमारे प्रति वात्सल्य भाव प्रगट कर रहा है। इस ही तरह भारतवर्ष के कई स्थानो की जैन संस्थाओ व समाज ने भी धार्मिक आयोजन कर पूज्य पिताजी के लिये मंगल कामना की है। आज इन्दौर के समस्त नागरिक महाशय भी उस ही हेतु को दृष्टि मे रखकर यहां पधारे हुए हैं। जैन व जैनेतर समस्त महानुभावों

के इस वात्सल्य व प्रेम को देखकर मेरा हृदय गदगद् हो रहा है। समझ मे नही आता कि हम आपके इस अभूतपूर्व प्रेम का मूल्यांकन किन शब्दो मे करें। हम यही कहकर संतोष मान लेते हैं कि पूज्य पिताजी व हम सब कुटुम्बीजन आपके चिरऋणी रहेगे। परन्तु इस उपकार का सच्चा बदला अधिक से अधिक समाज सेवा करके ही चुकाया जा सकता है, यह हमारी निश्चित धारणा है।

"पूज्य पिताजी साहब की बीमारी ने हम लोगो को व्याकुल व चिंतित कर दिया था, किन्तु इन विविध आयोजनो से मुझे बल मिला है। मानव की मंगल कामना मानवी सत्ता के अन्तर्गत स्व-प्रभाव से मगल स्थापना कर सकती है। अतएव मुझे दृढ विश्वास है कि इस समय अनेको भाइयों द्वारा नियोजित स्नेहपूर्ण मगल कामनाएं पूज्य पिताजी को अवश्यमेव स्वास्थ्य लाभ करावेगी।

"अन्त मे मेरी जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि मुझे ऐसी बुद्धि, साहस व बल दें कि मै भी आप सब भाइयो का उस ही तरह स्नेह प्राप्त करने के योग्य बन सकू। आशा करता हूँ कि आप मेरे प्रति पूर्ण स्नेह बनाये रखेंगे। पुन श्रीमन्त का व आप सब महानुभावो का हृदय से आभार मानता हू।"

इस प्रकार सरकारी क्षेत्रो और जनता दोनो ही मे सेठ साहब ने जो सम्मान, मान्यता, आदर तथा श्रद्धा प्राप्त की है, वह किसी असाधारण व्यक्ति को ही प्राप्त होती है। यह सब आपकी सहृदयता, उदारता तथा लोक सेवा का ही परिणाम है।

: ६ :

महान सफल व्यक्तित्व

"मैंने कहीं कहा है कि मुझ मे कई परस्पर विरोधी बातें हैं । एक रासायनिक की हैसियत मे मैंने जीवन भर प्रयोग किये हैं । मुझे सबसे अधिक आनन्द अपने प्रिय शिष्यो के साथ प्रयोगशाला के कमरो मे ही मिला है । आज भी यदि दिन के चार पाँच घण्टे में प्रयोगशाला मे अपने शिष्यों के साथ बिता नहीं सकता, तो मैं समझता हूँ कि अपना वह दिन मैने यो ही नष्ट कर दिया । फिर भी मै देश मे नये उद्योग-धन्धो को शुरू करने वालो मे अग्रणी माना जाता हूं । प्राणिशास्त्र के विद्यार्थी खूब भली प्रकार जानते है कि बंगाल का शाही शेर—खुलना प्रदेश का मेरा निकट का पडौसी—और सामान्य बिल्ली एक ही परिवार के माने जाते है । शेर बहुत बडी बिल्ली कहा जाता है । इसी तरह मुझ मे और सर हुकमचन्द मे भी एक रिश्ता है । अन्तर केवल इतना ही है कि सर हुकमचन्द शाही शेर हैं और मै एक घरेलू बिल्ली का बच्चा हूँ ।"

ये शब्द १६२६ के जनवरी मास मे भारत के सुप्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विज्ञानाचार्य श्री प्रफुल्लचन्द्र राय ने इन्दौर मे स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुये कहे थे । इनसे सेठ साहब के महान और सफल व्यक्तित्व पर ऐसा प्रकाश पडता है कि उसके बारे मे कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नही है । किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व जिन गुणो से बनता है, वे सेठ साहब मे कूट-कूट कर भरे हुये है । जीवन की सरलता सादगी, सहृदयता, मिलनसारिता, उदारता, परोपकार वृत्ति अथवा पराई पीर मे अनुभूति तथा समुचित सहायता करने की भावना आदि विशिष्ट गुणो की तो मानो आप साक्षात् प्रतिमा ही हैं । एक बार भी जो आपके सम्पर्क मे आ जाता है, वह आपके सहृदय व्यवहार से सदा के लिये ही प्रभावित हो जाता है । छोटे-बडे सभी के प्रति आपका सहज स्नेह इतना आदरमय होता है कि वह आपका अपना ही बन जाता है । घर के छोटे नौकरो के साथ भी आप नौकरो का-सा व्यवहार नही करते । 'आप' 'साहब' या 'भैया' के बिना कोई वाक्य आपके मुंह से कभी निकलता सुना नहीं गया । किसी को कभी भी अपने यहां से असन्तुष्ट होकर आपने जाने नही दिया । किसी मामले मे यदि कभी आप पंच बनाये गये, तो उसको निपटाये बिना और आपस का झगडा मिटाये बिना आप उठना जानते ही नही । पंचायत मे भी आपका प्रयत्न सबको आपस मे मिलाने का ही रहता है और जाजम को तब तक नही छोडते, जब तक कि सब एकमत नही हो जाते । अपने शान्त स्वभाव से सारे विरोध पर विजय प्राप्त करने मे भी आप अत्यन्त चतुर हैं । आपस के विरोध को मिटाने के लिये समय आने पर अपनी पगडी तक उतार कर दूसरो के पैर मे रखने मे आप संकोच नही करते । दिगम्बर जैन समाज के वर्षों के आपस के झगडो को आपने कितने ही स्थानो पर सफलता के साथ निपटाया है और उसमे एकता कायम करने के लिये कुछ भी उठा नही रखा है । यह सफलता भी आपके विशिष्ट व्यक्तित्व की ही सूचक है । आपका महान् व्यक्तित्व इन्दौर की विभूति, मालव अथवा मध्यभारत का भूषण और जैन समाज के सौभाग्य का तो सिंदूर ही है देश

के व्यापारी जगत् मे आपका व्यक्तित्व देदीप्यमान नक्षत्र है, तो स्वदेशी उद्योग-धन्धो मे पहल करने के कारण औद्योगिक क्षेत्र के लिये उसको अपनी सोलह कलाओ के साथ चमकने वाला चन्द्र कह सकते है। जीवन की इतनी ऊँचाई पर उठ जाने के बाद भी 'अभिमान' आपको कहीं छू भी नही गया है। निरभिमान स्वभाव के कारण ही हृदय इतना स्वच्छ एवं निर्मल बन गया है कि उसमे ईर्ष्या, द्वेष, कलह, वैमनस्य, राग, हिंसा अथवा प्रति-हिंसा के लिये कुछ भी स्थान बाकी नही रहा है। न आपको किसी से द्वेष दीख पडता है और न कोई आपका द्वेषी ही जान पडता है। 'सर्व प्रिय' और 'अजातशत्रु' दोनो शब्द आप पर यथार्थ बैठते है। व्यापारिक प्रति-द्वन्द्विता के कारण भी आपने किसी को अपना दुश्मन नही बनने दिया है। स्वय हानि उठा कर भी दूसरो को प्रसन्न रखना या करना अपना स्वभाव-सा बन गया हैं। नौकरो तक पर कभी कुछ जुर्माना किया जाता है, तो उससे अधिक उनको पुरस्कार मिल जाता है और जुर्माने की रकम भी नौकरो मे ही बाट दी जाती हैं। अपनी भूल को आप अबोध बालक की तरह स्वीकार कर लेते हैं और साधारण से साधारण व्यक्ति के सामने भी उसे कह डालने मे सकोच नही करते। सवेरे कोई भूल हो भी गई तो शाम तक उसका निराकरण हो ही जायगा। क्षमा और पश्चात्ताप भी आपके स्वभाव के अग बन गये है। भूल का खाता उस दिन का उसी दिन चुका दिया जाता है। उधार मे किसी भी भूल को रखना आप जानते नही। इसीलिये दिल मे किसी बात को रखना और भीतर ही भीतर किसी के लिये जहर घोलना भी आप नहीं जानते। कभी तात्कालिक आवेश मे क्षणिक क्रोध आ गया और किसी को आपने कुछ कह भी दिया, तो दूसरे ही क्षण मे क्रोध शान्त हो जायगा और कही हुई बात आप तुरन्त वापिस ले लेंगे। अपराध स्वीकार करते ही मामला समाप्त कर दिया जाता है और बडे से बडा अपराध भी क्षमा कर दिया जाता है। मन मे कषाय का जरा-सा भी अंश रह नही पाता और परिणामो मे वैर-विरोध की सन्तति रहती नही। कषायो मे बाधी हुई परिपाटी-सम्बन्धी कमठ पार्श्वनाथ के भव की और काल-सम्बर प्रद्युम्नकुमारजी की कथाओ को अनेक बार पढते हुये अपने जीवन को तदनकूल बना लेने के कारण किसी के भी प्रति वैर विरोध या कषाय आपके चित्त मे रह नही सकता।

ऐसा सरल, शुद्ध, पवित्र और उदार हृदय पाकर भी आपने मानव को परखने की जो विलक्षण प्रतिमा प्राप्त की है, वह अत्यन्त अद्भुत और विस्मयजनक है। आप जैसा विश्वासी हृदय किसी पर भी अविश्वास नही कर सकता। फिर भी आपको कोई ठग नही सकता। किसी पर भी ठगने का सन्देह हो गया, तो उसको भी मान-सम्मान के साथ ही विदा कर दिया। अधिक ठगने का अवसर नही आने दिया। उदारता के साथ दान देने की प्रवृत्ति होने पर भी आपके दान का दुरुपयोग कर सकना प्राय' असम्भव ही है। कई बार ऐसे अवसर आये है कि किसी काम के लिये स्वीकृति दे देने पर भी आपको उसे केवल इसलिये अस्वीकार कर देना पडा है कि सामने वाले की सचाई पर आपको सन्देह या आशंका हो गई। इसे गुण कहा जाय या अवगुण किन्तु इसी के कारण आपको धोखा दे सकना सम्भव नहीं है। व्यापार मे भी आपने बहुत ही कम धोखा खाया है और अपनी रकम क डूबने का अवसर प्राय. नही आने दिया है। रुपये-पैसे के मामले मे मिथ्या व्यवहार आपके लिये असह्य है। ऐसे मामलो को पुलिस मे देने मे आप जरासा भी सकोच नही करते। जीवन मे नैतिकता को भी आप बहुत ऊंचा स्थान देते हैं। इसीलिये आपका विश्वास प्राप्त करना जितना कठिन है, उससे भी अधिक कठिन है प्राप्त किये हुये विश्वास का खोना। विश्वास के भी आप बहुत बडे धनी है। बम्बई के आपके किसी आदमी की आप पर अनेको शिकायते की गई और बम्बई जाने पर उसके विरुद्ध आपको घेर लिया गया। आपने सहसा ही कह दिया कि मुझे लाखो की आमदनी देने वाले पर मै कैसे अविश्वास करूं ? स्वयं जाँच-पडताल या अनुभव किये बिना किसी की शिकायत करने, बहकाने या उल्टा सीधा कहने पर आप कभी भी भरोसा नही करते

परन्तु जब जान लिया कि किसी में कोई खोट है, तो फिर उसको अलग करने में एक मिनिट का भी समय नहीं लगायेंगे। वर्षों का घरोबा या घनिष्ठ सम्बन्ध तब एक मिनिट में टूट जायगा। विश्वास की क्रिया जितनी प्रबल होती है, अविश्वास की प्रतिक्रिया का भी उतना ही प्रबल होना स्वाभाविक है।

आपके स्वभाव में एक बड़ी विशेषता तुरन्त ही काम को निपटाने की है। कुछ करने की मन में आ गई, तो खर्च की परवाह नहीं की जायगी, वह काम उसी समय किया जायगा, भले ही फोन, तार, मोटर आदि पर कुछ भी खर्च क्यों न हो जाय? कभी उस पर दो-तीन पैसे का कार्ड भी खर्च नहीं किया जायगा, तो कभी पैसा पानी की तरह बहा दिया जायगा। आपके स्वभाव की इस विशेषता को बताने वाली दो घटनाएं यहां देनी आवश्यक हैं। एक बार आप भोजन करने बैठे, तो थाली में कैरी या आम का आचार नहीं परोसा गया। पूछने पर पता चला कि वह समाप्त हो चुका है। भोजन पर बैठे हुये वहीं पर फोन लाया गया और बम्बई को फोन मिलाया गया। मुनीमजी से कहा गया कि पता किया जाय कि क्या कहीं कैरी कच्चा आम मिल सकता है? आम का मौसम निकल चुका था। क्रफोर्ड मार्केट में आम के एक व्यापारी के पास डेढ सौ कैरियां मिलने का समाचार फोन पर ही दिया गया। हुकम हुआ कि खरीद कर आदमी के साथ भेज दी जांय। दूसरे दिन सवेरे ही आदमी पहुँच गया। कैरी काटी गई, आचार डाला गया और सवेरे ही खाने में परोसा गया। दो बार का बम्बई के ट्रंक कॉल का चार्ज, आदमी के आने-जाने का खर्च और मुंह मांगी कीमत डेढ सौ कैरी की दी गई। इतने में इन्दौर में ही कितना आचार खरीदा जा सकता था? पर, नहीं। मन में जो आ गया, सो होना चाहिये। लेकिन, इसको रईसी मिजाज में शामिल करना भूल होगी। रईसी शान में, निस्सन्देह, सेठ साहब राजाओं को भी मात करते हैं। परन्तु मितव्ययिता की भी पराकाष्ठा है। खर्च की एक एक पाई पर कितना कठोर नियन्त्रण रखा जाता है, इसका भी एक मनोरंजक उदाहरण यहां दिया जा रहा है। रसोई का खर्च प्रति दिन सेठ साहब के सामने नियम से पेश किया जाता था। एक दिन हरे धनिये के दो पैसे पर सेठ साहब को सन्देह हो गया। मुनीम जी की पेशी हुई। उन्होंने जिसको सब्जी दी थी, वह पेश किया गया। जांच होते होते छटे नम्बर पर वह व्यक्ति पेश हुआ, जिसने चटनी पीस कर कटोरी में रखी थी। परोसने वाला सेठ साहब की थाली में चटनी परोसना भूल गया था। भूल के लिये चार आने का दण्ड हुआ। कितने गृहस्थ हैं, जो ऐसी पैनी दृष्टि अपनी गृह-व्यवस्था पर रखते हैं? एक नीबू और हरी मिर्च तक सेठ साहब की दृष्टि से बच नहीं सकते। ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। बम्बई में मक्का के भुट्टे मंगाये गये। खाते-खाते आप उठकर कहीं चले गये। दूसरे दिन फिर ध्यान आया, तो पता चला कि भुट्टे तो बांट दिये गये। सभी चार चार आना जुर्माना किया जायगा। नियन्त्रण और अनुशासन तो इसी का नाम है। यदि ऐसा न हो, तो इतने बड़े घर का प्रबन्ध इतना सुन्दर और व्यवस्थित रह न सके।

सेठ साहब की गृह-व्यवस्था आदर्श और अनुकरणीय है। बीकानेर महाराज ने कभी कहा था कि राजाओं का-सा आपका काम है। परन्तु आपका रहन-सहन और व्यवहार कभी राजाओं और रईसों को भी मात करता था। रंग महल का बग्गीखाना, शीशमहल की शान शौकत और इन्द्र भवन की व्यवस्था जिस रईसीपन की द्योतक है, वह अनेक रईसों के यहां भी मिलनी दुर्लभ है। नीति शास्त्रों में कहा गया है कि—

"दानं भोगो नाशस्तिस्रो, गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति॥"

सेठ साहब ने शत हाथों से उपार्जित अपने धन का सहस्रों हाथों से जो दान किया, उसका उल्लेख

यथास्थान किया जा चुका है। अपने धन का भोग तो सेठ साहब ने लाखों हाथों से किया है। दीतवारिया के भव्य मन्दिर, शीशमहल, रंगमहल और मोतीमहल यात्रियों के लिये ऐतिहासिक स्थानों की तरह दर्शनीय बने हुए हैं। प्रतिदिन सैकडों आदमी उन्हे देखने आते है। मन्दिरजी और शीशमहल स्थापत्य कला के उत्कृष्टतम नमूने हैं। मन्दिरजी का विवरण पीछे दिया जा चुका है। शीशमहल पांच तल्ला भव्य और विशाल भवन है। यद्यपि तीस वर्षों से सेठ साहब उसमे रहते नही हैं, फिर भी उसका एक एक कमरा और उनका एक-एक सामान वैसा ही व्यवस्थित और साफ-सुथरा रखा हुआ है, जैसे कि आप स्वयं वहा रहते हो। सोने, आराम करने, भोजन करने के तथा अन्य कमरे और उनके पलग, टेबल, कुर्सी अलमारी, फलश, नाली, मोरी आदि की किसी भी व्यवस्था मे जरा सी भी कमी या ढील कही भी नही है। और, तो और, सबसे ऊपर की मंजिल पर बना हुआ विशाल अखाडा और उसकी मिट्टी तथा डम्बल, मुद्गर आदि सारा सामान ऐसा ही है, जैसे कि प्रतिदिन उसमे कुश्ती और कसरत होती हो। सेठ साहब को व्यायाम का भी खूब शौक रहा है। आज भी उसकी हर व्यवस्था विशेष व्यक्ति के सुपुर्द है। सारी जिम्मेवारी किसी न किसी को सौंप दी गई है। सबसे ऊपर एक मुनीम नियुक्त है। इस कोरी व्यवस्था पर ही सात-आठ हजार रुपया प्रति वर्ष व्यय होता है। रंग महल के बग्घीखाने मे, तीन हाथी, एक ऊंट, छब्बीस घोडे, बीस बग्घिया, दस तांगे और पच्चीस मोटरें आज भी हैं। चादी और सोने की मोटरो की अपनी ही शान है। दो हाथी पिछले ही दिनो मे बेच दिये गये हैं। पहरे-चौकी-हरकारे-हुजूरे के राजसी ठाठबाट का तो कहना ही क्या है? यह सब सामान लोगो को विवाह आदि पर दिया जाता है। सोने-चादी के वर्तन और आभूषण भी दिये जाते है। राजा-महाराजो के यहा भी विवाह आदि पर यह सामान व्यवहार के लिये दिया जाता है।

'इन्द्र भवन' की शोभा और भी अनूठी है। १६३५ मे आचार्य डाक्टर प्रफुल्लचन्द राय ने इन्दौर मे लौटने पर कलकत्ता के अत्यन्त लोकप्रिय और सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय दैनिक पत्र "आनन्द बाजार पत्रिका" मे एक विस्तृत लेख सेठ साहब के इस भवन के सम्बन्ध मे लिखते हुये लिखा था कि "अब इन्दौर के सम्बन्ध मे कुछ कहूंगा। सर सरूपचन्द हुकमचन्द के साथ मेरा पहिले परिचय न था, फिर भी अपने आत्मचरित्र मे दो बार मैंने उनकी चर्चा की है, कारण यह है कि वे कलकत्ते के एक सुप्रसिद्ध उद्योगपति हैं। यहा गंगा तट पर ८० जूट मिलें हैं। उनमे हुकमचन्द जूट मिल सबसे बडा है। इसके सिवा बालीगंज मे हुकमचन्द इलेक्ट्रिकल स्टील वर्क्स नाम से जो लोहे का विशाल कारखाना है, वह भी इनकी ही सृष्टि है। इनकी धनाढ्यता के सम्बन्ध मे इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि गत यूरोपीय महायुद्ध के समय सरकार ने जब-युद्ध-ऋण खोला था, तब हुकमचन्दजी ने अकेले ही एक करोड का ऋण सरकार को दिया था। अस्वस्थता के कारण पहिले तो मैने इन्दौर जाने से इन्कार कर दिया था, परन्तु सर सेठ हुकमचन्द जी तथा अन्य इन्दौर निवासियो ने जब खूब आग्रह किया, तब मैने वहा जाना ही उचित समझा। इन्दौर मे मैंने जो कुछ भी देखा, उससे मैं धन्य हो गया। सेठजी के सम्बन्ध मे मैने जो कुछ जाना, वह हर बगाली को जानना चाहिए। वे अग्रेजी बिलकुल भी नही जानते। फिर भी केवल इन्दौर मे ही इनकी चार कपडे की मिले है। वे जिस इन्द्रपुरी मे रहते हैं, कई मित्रो के साथ मै वहां निमन्त्रित हुआ था। उनका वह प्रासाद देखकर मै विस्मित रह गया। मेरी धारणा थी कि सर सेठ हुकमचन्दजी का घर साधारण बंगालियो अथवा मारवाडियो का-सा देखने मे लम्बा-चौडा और अव्यवस्थित-सा होगा। लेकिन, मेरी यह धारणा मिथ्या सिद्ध हुई। उनका यह भवन एक अति सुन्दर, मनोहर और आकर्षक चित्र का-सा था। मैने हिन्दी मे पूछा कि आपको तो इसके लिये रुपया देकर ही छुट्टी मिल गई होगी। यह तो बताइये कि इसका नकशा बनाने वाला आर्चिटैक्ट कौन था और उसके अनुसार मकान बनानेवाला ठेकेदार कौन था? सेठजी ने मुस्कराकर कहा कि नकशा मैने स्वयं

बनाया और स्वयं ही देशी कारीगरों से उसको बनवाया । सारा मकान देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ और सेठजी की प्रतिभा की दाद दिये बिना मैं न रह सका । सर हुकमचन्द दिगम्बर जैन हैं । जानकारों ने मुझे बताया कि इस मकान के बनाने मे सेठ साहब ने पन्द्रह लाख का खर्च किया है और अपने देव मन्दिर के निर्माण मे भी बारह लाख लगाया हैं । इसके सिवा धर्मशाला, अस्पताल और विविध लोकहित कार्यों मे भी ये बराबर मुक्तहस्त से दान करते रहते हैं । इन्दौर के लोग इन्हे 'दानवीर" कहते हैं । प्रत्येक शिक्षित बंगाली को इस बात पर विचार करना चाहिये कि अंग्रेजी से सर्वथा अनभिज्ञ एक व्यक्ति कितने अच्छे ढंग से अपने कारोबार का संचालन करता हैं और वह भारत का सर्वश्रेष्ठ उद्योगपति है ।"

'इन्द्रभवन' ही क्यो, आपने जितनी भी भव्य इमारते बनवाई हैं, उनके नकशे स्वय ही बनाये और उनका निर्माण भी स्वयं ही करवाया । किसी भी आर्चिटैक्ट, इञ्जिनियर या ठेकेदार की उनके लिये आवश्यकता नही हुई । कहां तो एक-एक पैसे के खर्च पर ध्यान रखा जाता था और कहां पसंद न आने पर बनी-बनाई इमारत को भी गिरा दिया जाता था । काम इच्छा के अनुकूल, सुन्दर और मजबूत होना चाहिये । उसके लिये खर्च का कोई प्रश्न ही नही होता । इसी कारण सारी इमारतें विशाल, भव्य, विस्तीर्ण, मनोहर, आकर्षक और सुदृढ बनी हैं । उनकी साज-संभाल, सफाई, झाड-पोछ आदि की व्यवस्था पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। घडी की सुई पर, चन्द्रमा की गति की तरह, सारा कार्य स्वय ही नियमित रूप से निरन्तर होता रहता है । उसकी कारीगरी का हर काम कलात्मक ढंग से किया गया है । उनकी सजावट भी शृंगार का उत्कृष्ठ नमूना ही होती हैं । फर्नीचर तथा अन्य सारा सामान भी उत्कृष्टतम बनावट का रहता है । 'इन्द्र भवन' का एक-एक कोना इस तरह सजाया गया है कि देखते ही बनता हैं । बगीचे की शोभा और प्रस्तर की मूतियां यदि फ्रांस की रमणीयता की सूचक हैं, तो उसके टाइल्स के कमरो की सजावट मे आधुनिकतम सौन्दर्य का आकर्षण है । ऊपर बना हुआ घण्टाघर सारे शहर मे एक ही है । उनके स्नान, पेशाब और टट्टी तक के कमरे आधुनिक उपकरणों से सजाये गये हैं । फर्नीचर भी इतना बढिया है कि देखते ही बनता है। भोजनशाला भारतीय आतिथ्य का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करती है, जिसमे सेठ साहब स्वयं अतिथि का अत्यन्त आग्रह के साथ सत्कार करते हैं। उसके एक ओर भव्य देवमन्दिर, शास्त्र-चर्चा व धर्म-चर्चा के लिये अत्यन्त शान्त व एकान्त स्थान, अतिथि गृह, जिसम आजकल रात को शास्त्र-चर्चा होती है, आदि बने हुये हैं और पीछे घर की विशाल गोशाला है, जो कि इतनी बडी है कि सरकार की देखरेख और शहर की कमेटियो तथा पचायतो के प्रबन्ध मे भी ऐसी गौशालाये बहुत ही कम होगी । गाय और बैल बहुत ही हृष्ट-पुष्ट हैं । उनकी सेवा के लिये अलग एक महकमा ही कायम है । भिन्न-भिन्न स्थानो से अच्छी नसल की गायें मंगा कर रखी गई है । उनकी सेवा-सुश्रुषा भी खूब लगन के साथ की जाती है। घर का दूध घी दही का सारा खर्च इसी से पूरा किया जाता है । इसमे भी एक अखाडा बनाया गया है । आपका प्रत्येक भवन अपने मे एक पूर्ण संस्था है ।

बम्बई, कलकत्ता, उज्जैन आदि के भवन भी अच्छे शानदार है । कारखानो अथवा मिलो का निर्माण भी आधुनिक ढंग पर ही किया गया है ।

आपके हीरे-जवाहरात पन्ना-मोती आदि के आभूषण भी अपनी ही शान रखते हैं । जवाहिरात का आपको इतना शौक है कि उनकी खरीदी निरन्तर ही होती रहती थी । उनके आप सिद्धहस्त पारखी हैं । उनके खोने या गुम होने का अवसर आने पर भी उनका प्रयोग आपने नही छोडा । अब इधर साधनामय विरक्त जीवन मे लग जाने पर उनका प्रयोग करना आपने छोड दिया है । आपके स्वस्थ, सुडौल, सुन्दर और तेजस्वी वदन पर इन जवाहरात की शोभा सहज मे ही दुगनी हो जाती है । इन जवाहरात से सुशोभित सारे परिवार

की छटा शादी विवाह, त्यौहारों तथा सम्मेलनो आदि के अवसर पर जिनको भी कभी देखने को मिली है, वे ही आपके राजसी ठाठ-बाट की कुछ कल्पना कर सकते हैं। कई बार ऐसे प्रसंग भी आये कि कभी कुछ नुकसान हो गया, किन्तु आपकी पुण्याई के कारण उसकी भरपाई भी सहसा ही हो गई। स्वर्गीया तारामतीबाई के मुकलावे के अवसर पर सेठजी का एक लाख की कीमत का मोती का कण्ठा चोरी चला गया। कई दिनों बाद उसकी याद आई तो आपने विचार किया और सौदागरों के घर जाकर सारा सम्मान ज्यो का त्यो प्राप्त कर लिया गया। इसी प्रकार सम्वत् १९८७ मे सेठजी का पन्ने का कण्ठा डेढ लाख की कीमत का तुकोगंज की सडक पर कहीं गिर गया। दस हजार के इनाम की घोषणा करने पर भी कण्ठा मिला नही। छः महीने बाद काशी का एक जौहरी उसी कण्ठे को कुछ मणियां आपके ही पास बेचने के लिये आ पहुँचा। आप तुरन्त पहचान गये। सारा माल बरामद हो गया। इसी प्रकार का एक किस्सा हुकमचन्द मिल का है। १५-१६ हजार के नोट चोरी चले गये। कुछ भी पता न चला, किन्तु एक मास बाद चोरी करने वाला स्वयं ही उनको लौटा गया। एक बार बडवानी जाते हुये दस हजार मूल्य की हीरे की अंगूठी खुरमपुर डाक बगले के अहाते मे गिर गई। बडवानी जाने पर मोटर वापिस भेजी गई, तो अंगूठी जमीन पर पडी हुई मिल गई। अनेक बार ऐसे प्रसंग आये कि आपको बुन्देलखण्ड, बागीदौरा तथा अन्य यात्राओं मे लूटने का षडयन्त्र रचा गया। परन्तु आप अपने निर्भय स्वभाव और साहसपूर्ण चातुरी से बाल-बाल बच गये। बागीदौरा जाते हुये एक बार रास्ता भटक गये, तो मोटर छोड कर पैदल चलना पडा। साथ मे जो पुलिस वाले थे, वे भी घबरा गये। पर, आपने रिवालवर हाथ मे लिया और आगे आगे चल दिये।

बचपन से ही आपका स्वभाव निर्भीक, साहसी और तेजस्वी है। जैसे आपने व्यापार-व्यवसाय और औद्योगिक क्षेत्र में जोखिम उठाने मे कभी भी सकोच नही किया, वैसे ही जीवन मे भी आप कभी जोखिम उठाने से घबराये नहीं निर्भयता और दृढ संकल्प दोनो आपके स्वाभाविक गुण ही समझने चाहिये। सम्वत् १९६८ (सन् १९११) की इलाहाबाद की सुप्रसिद्ध प्रदर्शनी मे सम्भवतः पहिली बार हमारे देश में आधुनिक युग मे विमान या हवाई जहाज आया था। कोई उस पर चढने का साहस नही करता था। आप आगे बढे, जहाज पर सवार हो गये और सारी प्रदर्शनी की तीन परिक्रमाये लगाई गई। जहाज पर चढ़ते और उतरते हुये आपके कितने ही फोटो लिये गये। समाचार पत्रों मे आपके इस साहस की बहुत सराहना की गई। सम्वत् १९९० में दिल्ली से इन्दौर तक की हवाई यात्रा भी कुछ कम साहसपूर्ण नही थी। इसी प्रकार का एक प्रसग मैसूर का है, जब आप सोने की खदाने देखने गये थे। आप जिस दिन वहां पहुचे, उससे पहले ही दिन लिफ्ट के टूटने और कइयो के उसके शिकार होने की रोमाचकारी दुर्घटना हुई थी। सब ओर आतंक छाया हुआ था। आपको परामर्श दिया गया कि आप खान मे नीचे न उतरे। पर, आप तो लिफ्ट पर सवार हो ही गये और नीचे जाकर सारा कुछ देख आये। इसी प्रकार की एक घटना इन्दौर से ग्वालियर जाने और लौटने की है। भैया साहब राजकुमारसिंहजी के प्रथम पुत्र पैदा होने की खुशिया मनाई जा रही थी। एक भोज का आयोजन आपके किसी सम्बन्धी ने किया था। परन्तु ग्वालियर जाना भी आवश्यक था। आपसे न जाने का अनुरोध किया गया। आपने वायदा किया कि आप भोज के समय तक लौट आयेगे। पाच-पाच हजार की शर्त लग गई। लौटते हुये मोटर ६०-७० मील की रफ्तार से चली आ रही थी। एक स्थान मे पेड से टकरा गई। आपके माथे पर चोट आई और खून बह निकला। फिर भी आपने मोटर को रोका नही। हाथ से माथा पोंछते हुये ड्राइवर को आगे बढने का ही आदेश दिया गया। आप ठीक समय पर इन्दौर लौट आये। आपके साहस पर सभी स्तम्भित रह गये। ऐसी कितनी ही घटनाये यहा दी जा सकती हैं।

भ्रमण का भी आपको विलक्षण शौक है। बहुत लम्बी-लम्बी यात्रायें आपने प्राय. अपनी मोटर पर ही की हैं। इधर स्पेशल हवाई जहाज पर भी आपने अनेक यात्राये की है। मोटर मे छः-सात साथी साथ मे रहते हैं और खान-पान की सम्पूर्ण व्यवस्था भी साथ मे रहती है। रसोइया, नाई, गड़िया, मुनीम और सेक्रेटरी का साथ मे रहना आवश्यक है। सडक पर मोटर रोक कर जंगल मे दाल-बाटी का भोजन बनाने और खाने का भी आपको खूब शौक है। ग्वालियर से इन्दौर आते हुये एक बार आप गुना के पास सडक पर रुक गये और मोटर को सडक पर ही खडी करके दाल-बाटी बननी शुरू हो गई, सूबा साहब घोडे पर टहलते हुये उधर ही आ निकले। सडक पर मोटर खडी देख कर पहिले तो वे कुछ रुष्ट हुये, किन्तु सेठ साहब को देखते ही उनका रोष सहृदयता मे परिणत हो गया। उन्होने सेठ साहब से निवेदन किया कि सडक की धूल-मिट्टी से बच कर किसी पेड के नीचे अथवा मकान मे चल कर भोजन किया जाय, तो अच्छा है। आपने सरल भाव से उत्तर दिया कि पत्तल और आसन के नीचे भी तो मिट्टी ही है, कुछ ऊपर भी आ जायेगी, तो हानि क्या है? जीवन को इतना विनोदमय और बडप्पन के भार से रहित बनाने की कला मे भी आप पारंगत हैं।

अपने भ्रमणशील स्वभाव के कारण सेठ साहब ने दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास की भी कितनी ही यात्रायें की है। कोई ही तीर्थ और देवमन्दिर आपकी यात्रा से बचा होगा। अपनी २५-२६ वर्ष की आयु मे सम्वत् १९७६-७७ मे आप रंगून भी गये थे। श्री नन्दरामजी पाटनी और श्री पूनमचन्दजी काशलीवाल आपके साथी थे बन्दरगाह पर सैकडो हिन्दू-मुसलमान आपके स्वागत के लिये उपस्थित थे। मारवाडी भाई विशेष संख्या मे आये थे। सेठ आदमजी के बंगले पर आप ठहरे थे। बीकानेर के श्री मुलतानचन्दजी नरसिंहदासजी ने आपके भोजन का प्रबन्ध किया था। मोटर मे आपने सारे बर्मा का भ्रमण किया

श्रीलंका तो आप अनेको बार गये है। आधे दर्जन से अधिक बार वहां की आपने यात्रा की है। मोटर पर सारे देश का भ्रमण किया है। दो एक बार तो श्रीमन्त महाराज तुकोजीराव के विलायत से लौटने पर स्वागत सत्कार के लिये भी आप वहां गये थे। एक बार सपरिवार भी गये थे।

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" अथवा "नायमात्माबलहीनेन लभ्य." के मूलमन्त्र की तो आपने बचपन से ही गांठ बांधी हुई है। कमजोर शरीर मे स्वस्थ आत्मा निवास नही कर सकता और रोगी देह से धर्म की साधना नही की जा सकती। इस तथ्य को सामने रख कर आपने अपने स्वास्थ्य का निरन्तर पूरा ध्यान रखा है। मालूम होता है कि अमेरिका के करोडपति राकफेलर का यह कथन आपके भी सामने सदा ही रहा है कि 'लखपति बनने के लिये प्रति दिन दो घण्टा खेलना या व्यायाम करना आवश्यक है। उसके बाद फिर सारा दिन डट कर काम करना चाहिये।" आपके जीवन की सफलता का भी यही रहस्य जान पडता है। जब तक शरीर मे सामर्थ्य रही, आपने व्यायाम नही छोडा। शीश महल के पांचवें तल्ले मे बनाया गया विशाल अखाडा व्यायाम मे आपकी रुचि का प्रबल प्रमाण है। ६० वर्ष की आयु तक आप सौ डेढ सौ दण्ड-बैठक निकालते और मुद्गर भी घुमाया करते थे। शरीर की मालिश भी नियम से होती और पाव भर तेल देह को पिला दिया जाता था। ८-१० मील वायु सेवन के लिये निकल जाना साधारण बात थी। अच्छे-अच्छे नौजवान भी आपके साथ चल नही सकते थे। चार-पांच पहलवानो के साथ आप अखाडे मे उतरते थे और उनका सांस टूट जाने पर भी आपका सांस नहीं टूटता था। अखाडे मे लेट कर पांच-सात आदमियो को ऊपर से अपने ऊपर कुदवाने की भी आपको आदत थी। इस व्यायाम के ही कारण असाधारण पौष्टिक भोजन आप सहज मे ही पचा लेते थे। पाचन शक्ति कमाल की थी। दिमाग और स्मरण शक्ति भी असाधारण थी। आंखो की शक्ति तो अब भी ऐसी है कि बिना चश्मे के छोटे-से-छोटे अक्षर भी आप खूब आसानी से पढ लेते हैं। ६०-६५ वर्ष की आयु तक आप कभी भी अधिक बीमार नहीं

हुये और ७६ वर्ष की आयु में असाध्य बीमारी हो जाने पर भी आपने उसका साहस के साथ सामना कर लिया। शरीराकृति के समान ही आपकी वाणी मे भी तेज है। लाउड स्पीकर के अभाव में भी आप हजारो की उपस्थिति में सिंह गर्जना के समान भाषण दिया करते थे। आपका वजन २५० पौण्ड होने पर भी शरीर सर्वथा सधा या गठा हुआ सुडौल था। मार्च १९४८-४९ में आपको आमाशय के काम न करने की जो भीषण बीमारी हुई और जिससे जैन समाज मे सर्वत्र चिन्ता छा जाने से आपकी आरोग्य कामना के लिये देशव्यापी आयोजन किया गया, उसका विवरण यथास्थान दिया जा चुका है। बम्बई से औषधोपचार के लिये विदेश न जा कर आप इन्दौर लौट आये और यहा आकर आपने औषध का सेवन भी छोड दिया। उससे आपके दृढ संकल्प और आत्म-विश्वास का परिचय मिलता है। केवल आत्म-विश्वास के बल पर आप स्वस्थ हो गये। ७६-७७ वर्ष की दीर्घायु मे पुराना स्वास्थ्य मिल सकना तो संभव नहीं है, फिर भी आपकी देह मे वैसी ही स्फूर्त्ति, चेतना और जीवनी शक्ति विद्यमान है। आत्म साधना मे निरत हो कर मानो देह का मोह आपने कभी का छोड दिया है। इस समय भी आपके साथ कदम बढा कर चलना कठिन है। दिन मे बहुत ही कम सोते हैं और वह भी कभी कभी। सवेरे से रात के १०-११ बजे तक नियमित दिनचर्या चलती है और कभी-कभी तो १२ भी बज जाते हैं।

एक ओर आत्म विश्वास की यह पराकाष्ठा है और दूसरी ओर स्वास्थ्य-साधन की इतनी चिन्ता रहती थी कि आपने फ्रेंच डा० वारनेफ के कायाकल्प आपरेशन का विवरण कलकत्ता के मासिक 'विशाल भारत' में जब पढा, तो उसको फ्रांस से बुलाया गया और एक लाख अस्सी हजार देकर उसका परीक्षण अपने पर कराने मे संकोच नही किया। अपने शरीर और स्वास्थ्य की रक्षा का आपने सदा ही विशेष ध्यान रखा है। धर्ममय प्रवृत्ति होने का यह अर्थ आपने कभी भी नही समझा कि देह सुखा कर कांटा बना दिया जाय।

उदारता की भी आप प्रतिमूर्ति हैं। जहा घर के नौकर चाकर तक आपको अनुशासन तथा नियन्त्रण का भय मानते है, वहां वे आपकी उदारता पर भी मुग्ध है। समय समय पर उनको मुक्तहस्त से इनाम देना और स्वय लाभ होने पर उनको दो-दो तीन-तीन मास का वेतन बांट देना आपके लिये साधारण बात है। सार्वजनिक सस्थाओ को अपने जीवन में ८० लाख का दान दे देना भी आपकी अपार उदारता का ही द्योतक है। लेकिन, इससे बडे उदाहरण आपकी उदारता के वे है, जब कि स्वय हानि उठा कर भी आपने दूसरो को हानि नही होने दी है। अपनी पारमार्थिक सस्थाओ को समय समय पर लाखो की सहायता दे कर उनका फण्ड बीस लाख से ऊपर का बना दिया गया है। उसकी पू जी को अच्छा व्याज कमाने के लिये आपने टाटा आयर्न के प्रिफरेंस शेयरस मे लगा दिया था। तीन लाख पचासी हजार की रकम इनमे लगा दी गई थी। सम्वत् १९७८ मे समय आया कि उनका भाव ४०) ही रह गया। तीन वर्षो तक व्याज बिलकुल भी न आया और संस्थाओ का काम चलाना भी कठिन हो गया। आपने लागत मूल्य पर सारे शेयर अपने नाम कर लिये और सस्थाओ की रकम पूरी कर दी। दो वर्षों से जो व्याज न आया था, वह भी अपने पास से दे दिया। लगभग डेढ लाख की आपको हानि उठानी पडी। सम्वत् १९९६ मे महगाई और महायुद्ध की सभावना के प्रबल होने के कारण व्याज की दर बहुत गिर जाने से सस्थाओ के लिये फिर दुबारा घोर सकट उपस्थित हो गया। उनका भविष्य अन्धकारमय दीख पडने लगा। सस्थाओ के मन्त्री श्री हजारीलालजी जैन ने उनका कार्य आधा कर देने की योजना प्रस्तुत की। सेठ साहब को यह स्वीकार नही हो सकती थी। अपने परिवार के अंग के रूप मे आपने उनको पाला-पोसा है। अन्त मे सम्वत २००० के आषाढ मास मे सिद्धचक्र विधान के अवसर पर आपने संस्थाओ के ध्रुव फण्ड मे पॉच लाख की रकम और देकर उनकी नींव को सुदृढ कर दिया।

यह तो घर की अपनी संस्थाओ की बात है, हाला कि इनका भी ट्रस्ट बोर्ड होने से इनकी सीधी जिम्मे-

दारी आप पर नहीं है। लेकिन, अपने कारबार-व्यापार में भी आप इसी उदारता से काम लेते रहे हैं। राजकुमार मिल्स के शेयरों के भाव बहुत गिर गये। हिस्सेदारों में बेचैनी पैदा हो गई। आपने तुरन्त ही सूचना निकाल दी कि जिसको भी शेयर बेचना हो, पूरे भाव पर बेच डाले। ७-८ लाख के शेयर खरीद लिये गये और लोगों की घबराहट दूर कर दी गई। इसी प्रकार की एक घटना और है। सम्वत १९८७ में रुई के बाजार में बहुत मंदी आ गई। आपने उससे लाभ उठाने के लिये अपनी मिलों के लिये रुई का बहुत बडा स्टाक खरीद लिया। लेकिन, बाजार और भी नीचे गिर गया। लाभ की आशा ग्यारह लाख के घाटे में बदल गई। डाइरेक्टरों में घबराहट हुई, तो आपने यह सारी रकम अपने नाम लिख देने का मिलों को आदेश दे दिया। सब चकित रह गये। औद्योगिक जगत में ऐसी उदारता का दूसरा उदाहरण मिलना मुश्किल है।

बम्बई में सट्टे के बाजार में एक बार बडा ही कडा मुकाबला हुआ। आपकी प्रतिद्वन्दिता में २०-२५ बडे सटोरिये मुंहकी खा गये। सारे बाजार में तहलका मच गया। एक बडा संकट उपस्थित हो गया। दलालों ने आपका मकान घेर लिया, क्योंकि उनका तो धंधा ही डूब गया था। आपने आदेश दिया कि सबके नाम लिख लिये जांय और दूसरे दिन ११ बजे सबको बुलाया जाय। सौ-सौ पचास-पचास के हिसाब से चार-पांच लाख रुपया सबको बांट दिया गया। ऐसी कितनी ही घटनायें दी जा सकती हैं। कोई भी उत्सव, सभा-सम्मेलन तथा आयोजन ऐसा नहीं जाता, ज कि सेठ साहब हजारों-लाखों के दान की घोषणा न करते हों। आपकी उदारता पर यह कथन बिलकुल ठीक बैठता है कि—

"देबो यश को मूल है, यातें देबो ठीक।
पर देबे में जानिये दुःख कबहुं नहीं नीक॥"

इसी प्रकार अतिथि-सेवा भी आपकी अपनी ही विशेषता है। जिस किसी को भी एक बार भी 'इन्द्र भवन' में भोजन करने, ठहरने अथवा किसी यात्रा में आपके साथ जाने का अवसर मिला है, वह आपके आतिथ्य को जन्मभर भूल नहीं सकता। वैसे तो सारी व्यवस्था ही ऐसी है कि अतिथि को बिना मांगे ही सब सामान नियत समय पर मिल जाता है, पर सेठ साहब भी भवन के एक कोने में बैठे-बैठे ऐसी दृष्टि रखते हैं कि कहीं भी कोई चूक हो नहीं सकती। पानी के गिलास तक का आपको बराबर ध्यान रहता है। नौकर-चाकर भी इतने होशियार और सावधान हैं कि पहिले दिन उन्होंने जहां नवान्तुक अतिथि को परख लिया कि फिर कभी कुछ भी मांगने की आवश्यकता नहीं रहती। बिस्तर से उठते ही चाय लेने वाले के लिये सोने से भी उठने से पहिले चाय तय्यार रहती है और नौकर उठाकर चाय दे जाता है। स्नान, धोबी, नाई आदि का ही नहीं, सवारी-गाडी-मोटर आदि का भी पूरा प्रबन्ध रहता है कहे बिना ही सारा प्रबन्ध तुरन्त हो जाता है। एक रियासत से भी अधिक पूर्ण व्यवस्था देखकर चकित रह जाना पडता है।

सादगी और सरलता भी आप में मूर्तिमान हो गई हैं। अभिमान या घमण्ड आपको कहीं छू भी नहीं गया है। बाग-बगीचों आदि में मित्र-मण्डली के साथ रसोई का आपको विशेष शौक रहा है। ऐसे अवसरों पर छोटे बडे का सारा भेदभाव आप सहसा ही भूल जाते हैं। सामाजिक मामलों में आपकी जो सादगी और सरलता दीखने में आती है, वह दुर्लभ है। गरीब से गरीब जातिभाई के यहां भी जीमने जाने में आपको तनिक संकोच नहीं होता। उसके यहां पंक्ति में पत्तल पर बैठकर आप हँसते खेलते जीम आते हैं और उसकी शोभा बढा आते हैं। जाति-बिरादरी के काम में सबसे पहिले पहुँचकर उसको सफल बनाना अपना कर्तव्य समझते हैं। जाति-बिरादरी में आपके इस व्यवहार की काफी सराहना है।

धन जैसे कमाया गया है, वैसे ही उसका दान और भोग भी किया गया है। यही सेठ साहब के जीवन

की सफलता और महानता का मूलमन्त्र है। शील, सयम, चरित्र, आत्म-विश्वास, वात्सल्य-स्नेह, सहृदयता, उदारता, सरलता, उत्साह, धैर्य, साहस, पौरुष, निर्दयता, विवेक-बुद्धि, समयसूचकता, निरभिमान स्वभाव, परोपकार परायण वृत्ति, दीन सेवा, सामाजिक भावना और सार्वजनिक प्रवृत्ति आदि जिन गुणो से मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होकर उसका जीवन सफल होता है, उन सब गुणो के समुच्चय से ही मानो सेठ साहब का निर्माण हुआ है। सत्संग, शास्त्रचर्चा तथा दान, धर्म, भक्ति, भजन, स्वाध्याय, सचाई-ईमानदारी-नेकनीयती और जाति सेवा के अक्षय पुण्य का भी आपने विपुल संचय किया है। सैंकडो हजारों के बीच एकाएक आप पर ही हर किसी की दृष्टि जाती है। जिधर भी आप निकल जाते है, लोग सहसा आपकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। ऊँचा सुडौल डीलडौल, कान्तिमय मुखमण्डल, उन्नत ललाट, हंसता हुआ दीप्तिमय चेहरा, मखमल की सफेद शुभ्र पोशाक, देशी ढंग की विशिष्ट पगडी, गले मे हीरे पन्ने के कंठे और अन्य जवाहरात आदि सब मिलकर आपके असाधारण तेजस्वी व्यक्तित्व को प्रकट करते हैं। सभा मण्डप आपकी उपस्थिति से चमक उठता है और व्याख्यान की ध्वनि से गूंज उठता है। ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व के निर्माण का रहस्य एक महान् पुरुष के इस कथन मे है कि "धन जिनका गुलाम है, वे बडभागी हैं और जो धन के गुलाम हैं, वे बडे अभागे हैं।" इससे भी अधिक बडा सच यह है कि—

"नासौ जयी जितो येन नक्रव्यालमृगाधिपाः।
जित तेनैव येनेह दान्तोमारस्त्रिलोकजित्॥"

"घडियाल, सर्प और सिंह पर विजय प्राप्त करने वाला ही विजयी नहीं है, किन्तु सच्चा विजयी तो वह है, जिसने त्रिलोक को जीतने वाले कामदेव को अपने वश मे कर लिया है।" षोडश वर्ष की ही आयु मे सब व्यसनो का परित्याग कर स्वय अपना कायाकल्प कर लेने वाले हमारे चरित्रनायक ने साठ वर्ष की आयु मे चारित्र-चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी के समक्ष त्रिलोकचन्द जैन हाई स्कूल मे पूर्ण ब्रह्मचर्य का नियम लेकर उसको पूरी सचाई और ईमानदारी के साथ निभाया है। मनोरजन के लिये दो चार साथियो के साथ कभी ताश खेल लेने के सिवाय कोई भी और व्यसन आप मे नाममात्र को भी नही है। आपके विश्वासपात्र साथी आपके "मन्त्री" नाम से प्रसिद्ध लाला हजारीलालजी साहब ने आपके सम्बन्ध मे यह ठीक ही लिखा है कि "यद्यपि सेठ साहब राजसी ठाठबाठ म रहते हुए अपने पुण्योदय से प्रायः अपार लक्ष्मी का यथेष्ट उपभोग करते है, किन्तु कठिन से कठिन अवसर प्राप्त होने पर भी श्रीमान ने अपने शीलव्रत पर कभी भी आघात नही पहुचने दिया है।" इसी प्रकार इन्दौर की लोकसेविका सौभाग्यवती कमलाबाई किबे ने भी एक बार लिखा था कि "एक धनिक व्यक्ति की मृत्यु के सम्मुख खडे रहने की तैयारी देखकर आश्चर्य प्रतीत हुआ। मृत्यु को सामने देखकर जो व्यक्ति डरता नही, वही सच्चा व्यक्ति है। अपार लक्ष्मी के भोगसाधन रहते हुये भी उनका लक्ष्य धर्म की ओर अचल है। जैन समाज के लिये यह बात भूषणावह है। उनका सारा, वैभव, कीर्ति व नागरिकत्व स्वयं निर्मित है। उनकी धन्यता मानव जनता भूल नही सकती।"

मध्यभारत के अर्थमन्त्री जैनजातिभूषण जैनवीर श्री मिश्रीलालजी गंगवाल ने भी कभी ठीक ही लिखा था कि "सेठ साहब ने धनोपार्जन किया और लोकसेवा की। उनके दान से कई सस्थायें खडी है। उनके व्यक्तित्व से उन संस्थाओ को बल मिलता रहता है। उनकी सी व्यवस्थापक शक्ति बहुत कम लोगो मे पाई जाती है। उनके प्रत्येक कार्य मे उनके व्यक्तित्व की छाप पाई जाती है। सेठ साहब के पास बडे से बडा संचय है। पर, उनके मन पर उसका कुछ भी असर नहीं पडा। मैने जब भी उनको देखा, उनमें एक विशेष प्रतिभा के दर्शन किये। उनके व्यक्तित्व मे एक शक्ति है। उसमे कुछ देने की क्षमता है। वे शिक्षित नहीं, फिर भी उनके कारखाने

व्यवस्था-शक्ति के प्रतीक हैं। जितने व्यापक रूप मे पैसे को सेठ साहब ने छोड़ा है, क्या किसी अन्य ने छोड़ा है? उन्होने पैसे को छोड़ा ही नहीं, अपि तु उसे अच्छी तरह बोया भी है। उसे उन्होंने तालाब या कुये मे नहीं डाला, खेत मे डाला है। एक एक दाने से हजार दाने उगते हैं।"

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज ने तो आपको 'पंचम काल का 'चक्रवर्ती' कह कर संबोधित किया है।

इस पर भी आप में विनय और नम्रता की भावना कैसे घर किये हुये है, इसका परिचय उन उद्‌गारों से मिलता है, जो आपने आरोग्य कामना के लिये आभार मानते हुये प्रगट किये थे। आपने कहा था कि"मैं जैन समाज और सर्वसाधारण के यानी मानवमात्र के चरणो का एक लघु सेवक हूँ। मैंने जनता से ही सम्पत्ति कमाई और बहुत कम जनता की सेवा मे लगाई। फिर भी आप मुझे बडी-बडी पदवियो से सम्मानित करते आये हैं। मेरा शरीर, जिसे मैं अपना कहता आया हूं, वह मेरा अपना नहीं है। वह आपकी सेवा मे लगे, यही भावना मेरी सदा रही है। यह शरीर समाज की और धर्म की सेवा मे काम आवे और आप मुझ से अन्त तक काम ले। इसी मे मै अपना अहोभाग्य मानता हूँ। इसी मे क्षण नश्वर जीवन की सार्थकता है। मै सच कहता हूँ कि मुझे सामाजिक, धार्मिक और जनसेवा का कार्य करने में बडा आनन्द आता है।" इस सेवा भावना से ही आपका जीवन और व्यक्तित्व इतना खिल उठा है कि उसको महान और सफल कहने मे कुछ भी सन्देह नहीं किया जा सकता।

: १० :

साधनामय विरक्त जीवन

"प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति॥"

"मै यह जानता हूं कि शायद ७० वें वर्ष मे यह शरीर रहे या न रहे। कोई ज्योतिषी मेरी आयु के तीन वर्ष या पांच वर्ष बताते हैं। परन्तु मुझको इस बारे मे कतई चिन्ता नहीं है। यह शरीर दो वर्ष रहे या दो दिन ही रहे। संसार मे जो यह मनुष्य देह मिली हैं, उससे दूध मे से मक्खन की तरह जितना भी धर्म और पुण्य साधा जा सके, उतना साधना यही मेरा सदा से ध्येय रहा है। परन्तु मैं ऐसी कोई बात नहीं करूँगा, जिससे कि पीछे मेरी हसी हो। मै जो भी पांव बढाऊंगा, वह बहुत सोच-समझकर बढाऊँगा और जो पांव एक बार आगे बढाया जायगा, वह फिर आगे ही बढता जायगा, पीछे नहीं हटेगा। मै पहिले से ज्यादा समय धर्मध्यान मे लगाऊंगा। उस दिन को मै परम भाग्यशाली समझूंगा, जिस दिन आत्मा मे लीन हो जाऊंगा और अपनी आत्मा का उद्धार कर मनुष्य जीवन सफल बनाऊगा। परन्तु अभी मैं नियम करलूं और बाद मे वह भग हो जाय,— यह अच्छा नहीं। ऐसी जगहंसाई मैं कभी नही करूंगा। आप सब समझते है कि मैं बडा आदमी हूँ। मेरे पास धन है और इज्जत है; किन्तु सच पूछा जाय, तो मै उजाड गाव मे कुमार मेहता जैसा हूँ।"

ये शब्द सम्वत् २००० सन् १९४३ जुलाई के आषाढ मास में इन्दौर में मनाये गये "शान्ति मंगल विधान" अथवा "अष्टाह्निका पर्व" के बाद श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन इन्दौर के तत्कालीन प्राइम मिनिस्टर राजा ज्ञाननाथजी के सभापतित्व मे दिये गये मानपत्र के उत्तर मे लगभग तीस हजार नर-नारियो की उपस्थिति मे कहे गये थे। इसी प्रकार सम्वत् २००६ मे मनाये गये आरोग्य कामना समारंभ के लिये आभार प्रदर्शित करते हुये सेठ साहब ने बम्बई से लिखा था कि "मुझे जैनधर्म मे प्रगाढ श्रद्धा है। मैं किशोर अवस्था से ही ऐसे ढांचे मे ढला हूं कि मेरे इस विश्वास मे थोडा-सा भी परिवर्तन हो नहीं सकता। जैन शास्त्रो के स्वाध्याय, त्यागियो तथा विद्वानो के सत्संग और अपने साधर्मी मित्रो की गोष्ठी ने मुझे ऊंचा उठाया है। यह मै जानता हूं कि मुझे अब कोई सासारिक काम करना बाकी नहीं रहा है। सब तरह साधन, आनन्द तथा योग्य उत्तराधिकारी पाकर अब कुछ भी करने की इच्छा नही है। यह शरीर, जो कि स्वभाव से प्रतिक्षण क्षीण होता जा रहा है, अब ज्यादा टिक नही सकता। मेरी वृद्ध अवस्था है। यह मेरा जो शरीर-रोग है, वह उसका वजन बढ जाने या साता का अनुभव हो जाने से शायद बिलकुल दूर हो जाने से पूर्ण स्वास्थ लाभ हो सकता है। यह भी मानने को मै तैयार नही हूँ। मै यहां बम्बई मे आया हूं। यह भी कुटुम्ब-प्रेरणा से और व्यवहार साधने के लिये। मेरा दिल तो यही कह रहा है कि इन्दौर पहुँचकर अपना पूर्ण समय आत्म-कल्याण मे लगाऊं और परम समाधि द्वारा उस नित्य और शुद्ध दशा को प्राप्त कर लूं। मेरा विश्वास है कि मेरा होनहार अच्छा है और मै इस दृढ निश्चय को
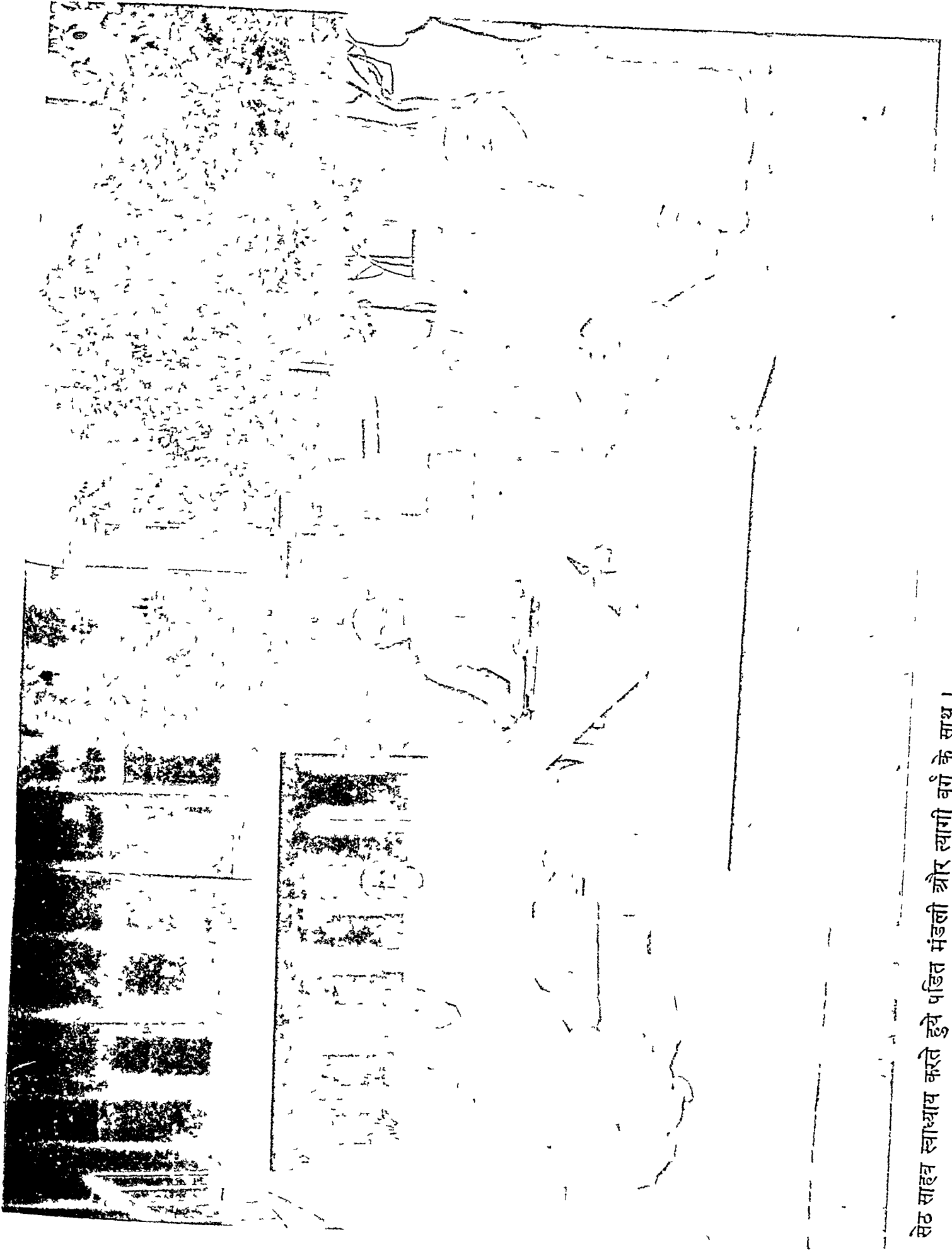
सेठ साहब स्वाध्याय करते हुये पंडित मंडली और त्यागी वर्ग के साथ।
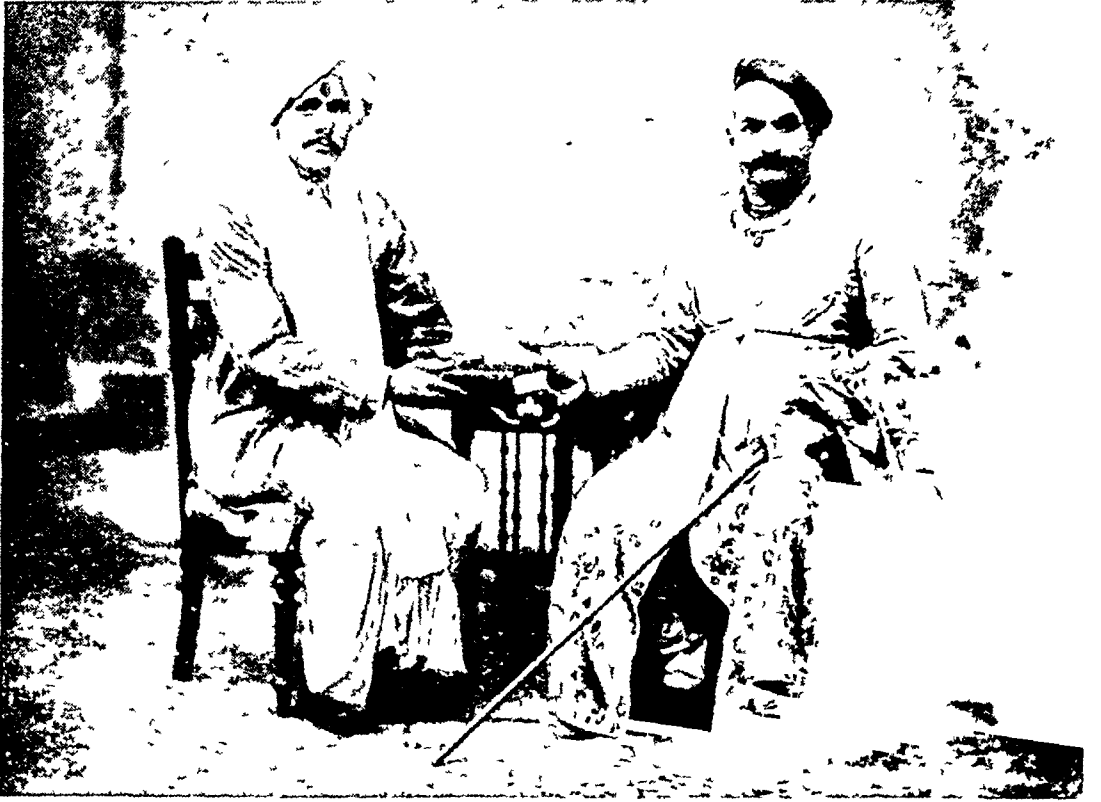
स्वर्गीय मास्टर दरयावसिहजी के साथ सर सेठ हुकमचंद जी ।

आचार्य श्री सूर्यसगार जी महाराज के शास्त्र प्रवचन मे सेठ साहब पंडित मडली और त्यागीवर्ग ।
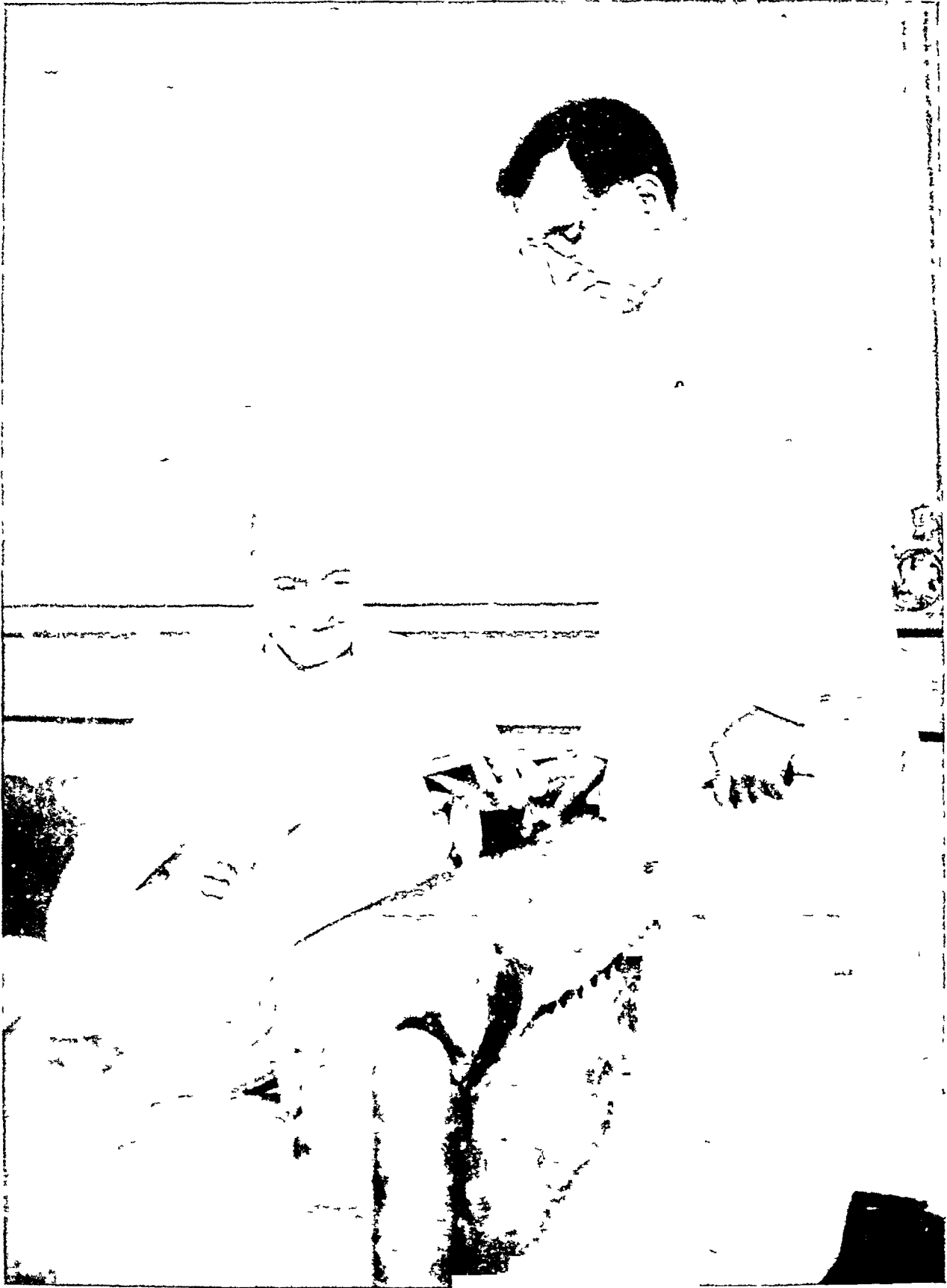
सेठ साहब के साथ-जीवन परिचय के लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार। ३१ मार्च १९५१ के दिन लिया गया चित्र।

पूरा कर इस पर्याय को सफल बनाऊंगा।"

इसी प्रकार आपने गत वर्ष सम्वत २००७ वैशाख वदी १४ अप्रैल १६ सन् १६५० को जैन समाज की ओर से अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा द्वारा नई दिल्ली मे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी का स्वतन्त्र प्रजातन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति चुने जाने पर जो भव्य स्वागत-समारोह हुआ था, उसमे सेठ साहब से भी पधारने के लिये अनुरोध किया गया था। तब आपने महासभा के महामन्त्री लाला परसादीलालजी पाटनी को लिखा था कि "राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी के स्वागत-समारोह के सम्बन्ध मे निमन्त्रण पत्र और तार मिले। पढकर बहुत खुशी हुई। हम यहां बैठे हुये ही आपके इस राष्ट्रपति-सम्मान-समारोह की सफलता की कामना करते है। मैंने सभी सांसारिक कार्यों मे भाग लेना छोड दिया है और विरक्त-सा जीवन व्यतीत करता हूँ। इसलिये विशेष आग्रह न करे और मुझे अपने कल्याण के पथ पर जाने दे।"

इन तीनो उद्धरणों से यह प्रगट है कि सम्वत् २००० मे सेठ साहब मे साधनामय विरक्त जीवन विताने की भावना विशेष रूप से जागृत हुई और वह उत्तरोत्तर बढती ही गई। वास्तविकता तो यह है कि ये संस्कार आपने अपने पूज्य पिताजी से ही ग्रहण किये थे। पिताजी इतनी आस्तिक बुद्धि और धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे कि उनका समाधिमरण ही हुआ था। जीवन के अन्तिम दिनो मे उन्होने चारो प्रकार के आहार का परित्याग कर और सम्पूर्ण परिग्रह का भी परित्याग कर दिगम्बर मुद्रा धारण कर ली थी। णमोकार मन्त्र का उच्चारण करते हुये ही देह का त्याग किया था। सेठ साहब का स्वयं भी कहना है कि १६-१७ वर्ष मे आप मे एक बार तो वैराग्य भावना इतनी प्रबल हो उठी थी कि आपने घरबार छोड कर मुनिव्रत धारण कर लेने का निश्चय कर लिया था। यही कारण था कि आपने बडे भैय्यासाहब राज्यभूषण हीरालालजी काशलीवाल को इतनी जल्दी गोद ले लिया था और उनको सब प्रकार से योग्य बनाने का प्रयत्न किया था। आपकी जन्मकुण्डली बनाने और आपका भविष्य लिखने वालो ने तो यह पहिले ही लिख दिया था कि आप अवश्य ही आत्मदीक्षा ग्रहण करेंगे। "श्री रणवीरज्योतिर्महानिबंध." नाम का एक पुराना ज्योतिष ग्रन्थ है। इसे हस्तलिखित रूप मे किसी काश्मीरी पण्डित से इन्दौर महाराज ने पच्चीस हजार रुपये मे प्राप्त किया था और उसकी कुछ ही प्रतियां अपने व्यय से मुद्रित कराईं थीं। उसकी एक प्रति सेठ साहब के पास भी सुरक्षित है। उसके निम्न श्लोक चरित्रनायक के जीवन पर अच्छा प्रकाश डालते हैं:—

"जन्माधिपः सूर्यसुतेन दृष्टः शेषैरदृष्टः पुरुषस्य सुतौ।
आत्मीयदीक्षां कुरुते ह्यवश्यं पूर्वोक्तमत्रापि विचारणीयम् ॥"

अर्थात् "जिनके जन्म लग्न का स्वामी शनि कर्के देख्या होवे और शेष और कोई ग्रह नहीं देखता होवे, तब तिस पुरुष को आत्मदीक्षा मे अवश्य युक्त कर्ता है और पूर्वोक्त लक्षण जिसमे विचारने योग्य हैं—गृहस्थ व वानप्रस्थ इत्यादि।"

कठोरव्रतनिरता दिगम्बरा. श्वेतभिक्षवो ये च।
तेषामधिपतिरार्किः श्रावकलम्बिनः सुदुस्तापसाः ॥"

अर्थात् "और कठोर व्रत मे जो स्थित हैं और दिगम्बर जो हैं, नग्न व्रत के धारण करने वाले और श्रावक मत मे स्थित होने वाले और बडे कठिन तप के करने वाले जो तपस्वी हैं, तिनका स्वामी सूर्य का पुत्र जो शनि है, सो कहा है।"

"अकथित मुनियोगे राजयोगो यदि स्यादशुभफलविपाकसर्वमून्मील्यपश्चात्।
जनयति पृथवीशं दीक्षितं साधुशीलं प्रणतं नृपशिरोभिर्घृष्टपादाब्जपुण्यम् ॥"

अर्थात् "और कहते हैं कि यह मुनियोग है। इनमे जब राजयोग होवे तब सम्पूर्ण अशुभ फल को दूर करके पीछे मे बडे प्रताप करके युक्त राजा होता है। कैसा राजा होता है ? दीक्षा करके युक्त और साधु स्वभाव करके युक्त और बडे बडे राजा जिसके कमलरूपी चरणो को अपने शिरो करके नम्र होय कर रगडते है।"

यह भाषा अविकल रूप से उसी ग्रन्थ मे ही दे दी गई है। इसी प्रकार के अन्य अनेक ग्रन्थ भी सेठ साहब के पास हैं। वैष्णव दृष्टिकोण से विचारने और लिखने वालो का तो कहना यह है कि योगभ्रष्ट देवता की-सी सेठ साहब की स्थिति है और इसी जन्म म आपको वैकुण्ठ प्राप्त हो जाने वाला है। सेठानी साहिबा के सम्बन्ध मे भी ऐसा ही लिखा गया है। वह लिखना सत्य हो या मिथ्या,—इसमे तो लेशमात्र भी सन्देह नही है कि सेठ साहब ने उन लोगों के लिये एक उच्चतम आदर्श उपस्थित कर दिया है, जो जीवन के अन्तिम काल मे भी धन, दारा और सुत के मोह या मायाजाल मे उलझे रहते हैं और जिन्हें तब भी धर्म-ध्यान, दान-पुण्य, स्वाध्याय और आत्मोन्नति का ध्यान नही आता। सेठ साहब ने आत्म-कल्याण का यह मार्ग किसी क्षणिक भावावेश मे आ कर यो ही स्वीकार नही कर लिया है। यह आपके चिर चिन्तन, निरन्तर स्वाध्याय, अविरत सत्समागम, आजीवन की गई गुरु-तीर्थ-भक्ति तथा देवपूजन और उत्तरोत्तर जागृत की गई धार्मिक वृत्ति का ही शुभ परिणाम है। आपने यत्नपूर्वक अपने जीवन मे इन सबका सम्यक् प्रकार से सम्पादन किया है। इस प्रकरण के आरम्भ मे ऊपर दिये गये उद्धरण में आपने स्वयं ही इस तथ्य को स्वीकार किया है। लगभग साठ वर्षों से नियमित रूप से चलने वाली शास्त्र-चर्चा, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्यनिष्ठा, अध्यात्मवृत्ति, उदासीन त्यागियो तथा विद्वानो के सत्समागम से अपनी आत्मा को सुसंस्कृत बना कर पारलौकिक सुख के हेतु आप मनुष्य पर्याय के अन्तिम भाग को पूर्ण सफल बनाने मे संलग्न है। अन्यथा, चक्रवर्ती सरीखी सम्पदा और इन्द्र सरीखा भोग छोड कर आज की-सी साधनामय विरक्त वृत्ति को स्वीकार कर सकना इतना सहज नही था।

धार्मिक प्रकरण मे आपकी धार्मिक वृत्ति, मुनिराज सेवा, तीर्थभक्ति और सात्विक प्रवृत्ति की काफी चर्चा की जा चुकी है। सत्समागम का तो यह हाल रहा है कि तीर्थयात्रा मे भी आप अपने साथ कुछ विद्वानो को अवश्य ले जाते है और मार्ग का मुख्य कार्यक्रम प्रायः धर्म चर्चा, शका समाधान और स्वाध्याय तथा प्रवचन ही रहता रहा है। अपने चारों ओर आप स्वाध्यायमण्डल ही बनाये रखते है। मास्टर दरयावसिहजी सोधिया आपके पुराने स्वाध्याय मण्डली है और वे अन्त तक आपके ही साथ रहे। स्वर्गीय उदासीन पण्डित पन्नालालजी गोधा का नाम भी इस प्रसग मे उल्लेखनीय है। इस समय भी एक अच्छी मण्डली के साथ शास्त्र-चर्चा और स्वाध्याय होता ही रहता है। सवेरे और रात्रि मे नियमित रूप मे शास्त्र-चर्चा और स्वाध्याय होता है। इनमे पं० खूबचन्दजी शास्त्री, प० बशीधरजी न्यायालकार, प० देवकीनन्दनजी शास्त्री, पं० जीवधरजी न्यायतीर्थ, पं० लालबहादुरजी शास्त्री और प० नाथूलालजी शास्त्री के नाम सम्मान के साथ लिये जाने चाहिये। आप सरीखे विद्वानो का सत्संग सेठ साहब की आत्मसाधना मे विशेष सहायक हुआ और हो रहा है। विद्या का आपने कोई विशेष अभ्यास नही किया है, किंतु आत्मसाधना के लिये अधिकतर ज्ञान का सम्पादन किया है। इस लिये ज्ञानवृद्धि चरित्रनिर्माण मे सहायक होकर आत्मसाधना मे प्रेरित करने वाली सिद्ध हुई है। छोटी अवस्था मे एक बार हरिवंशपुराण मे अर्जुन आदि विशिष्ट पुरुषो के चरित्र का वर्णन सुन आपने सहसा ही अपने को वैसा सच्चरित्र और तेजस्वी पुरुष बनाने की अभिलाषा प्रगट की। अपने को ऊंचा उठाने की यह अभिलाषा और प्रवृत्ति आपके प्राय सारे जीवन मे व्यापक दीख पडती है। देवपूजन मे आपकी श्रद्धा का यह परिणाम है कि इन्दौर मे दीतवारिया बाजार मे, नशियाजी मे और इन्द्र भवन मे तीन विशाल जिनालयों का निर्माण हुआ है और इन्दौर मे धार्मिक महोत्सवो की जब-तब धूम मची रहती है। मन्दिरजी मे पूजन, दर्शन और चर्चा आपके

जीवन के नैत्यिक कर्म रहे हैं। उनमें यथासंभव नागा नहीं होने दिया गया है। मुनिराज सेवा का भी आपने आदर्श उपस्थित कर दिया है। जिनवाणी में आपकी श्रद्धा निर्विवाद है। आपका यह कहना अक्षरशः सत्य है कि "मुझे जैनधर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा है। मैं किशोर अवस्था में ही ऐसे ढांचे में ढला हूं कि मेरे इस विश्वास में थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं हो सकता।" इस श्रद्धा और विश्वास की ही तो प्रतिमूर्ति आपका धार्मिक जीवन है और विरक्त जीवन की साधना का अंकुर इसी श्रद्धा और विश्वास में से प्रस्फुटित हुआ है।

आत्मरत होने की इसी प्रबल भावना से प्रेरित हो कर सेठ साहब सन् १९३० में योगिराज श्री अरविन्द के दर्शन करने के लिये पाण्डीचेरी गये थे और सन् १९३४ में आपने रमणऋषि के दर्शन भी उनके आश्रम में जाकर किये थे। आत्मज्ञान की पिपासा की पूर्ति में रत मानव की हालत उस पोत के कप्तान की सी हो जाती है, जो प्रकाशस्तम्भ की खोज में लगा होता है और जिस ओर भी प्रकाश दीखता है, उसी ओर चल पड़ता है। लेकिन, इस समय तो सेठ साहब की स्थिति आत्मरत उस महान व्यक्ति के समान हो गई दीखती है, जिसके चित्त पर नियमरूपेण मोक्षमार्ग रूप रत्नत्रय का महत्व अंकित हो जाता है और जो सेठ साहब के अपने शब्दों में परमपुरुषार्थ मोक्ष की साधना में अपने को लगा कर मनुष्य पर्याय के अन्तिम भाग को पूर्ण सफल बनाने में लग जाता है। इस प्रकार हम मानवी जीवों के लिये आप अपने जीवन के अन्तिम भाग में भी सराहनीय एवं अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर जाना चाहते हैं।

वंश-परिचय

धर्म-दिगम्बर जैन, जाति खण्डेलवाल, गोत्र-काशलीवाल

पहिली पीढी—सेठ पूसाजी के दो पुत्र सेठ कुशालजी और सेठ श्यामाजी।

दूसरी पीढी—सेठ श्यामाजी के पुत्र सेठ माणिकचन्दजी।

तीसरी पीढी—सेठ माणिकचन्द के पुत्र सेठ मगनीरामजी, सेठ सरूपचन्दजी, सेठ मन्नालालजी, सेठ ओंकारजी और सेठ तिलोकचन्दजी।

चौथी पीढी— १. सेठ सरूपचन्दजी के पुत्र चरित्रनायक *सेठ हुकमचन्दजी।*

२. सेठ ओंकारजी के गोद आये सेठ कस्तूरचन्दजी।

३. सेठ त्रिलोकचन्दजी के गोद आये सेठ कल्याणमलजी।

पाचवी पीढी—१. चरित्रनायक ने गोद लिया सेठ हीरालालजी को और दानशीला श्रीमती कंचनबाई से जन्म लिया भैय्यासाहब राजकुमारसिंहजी ने।

२. सेठ कल्याणमलजी के गोद गये सेठ हीरालालजी।

३. सेठ कस्तूरचन्दजी के गोद आये सेठ देवकुमारसिंहजी।

छठी पीढी—१. भैय्यासाहब राजकुमारसिंहजी के पांच सुपुत्र—श्री राजाबहादुरसिंह, श्री महाराजबहादुरसिंह, श्री जम्बूकुमारसिंह, श्री चन्द्रकुमारसिंह और श्री यशकुमारसिंह।

२ सेठ हीरालालजी के दो सुपुत्र श्री नरेन्द्रकुमारसिंहजी और श्री राजेन्द्रकुमारसिंहजी।

३. सेठ देवकुमारसिंहजी के दो सुपुत्र

सातवीं पीढी—१. श्री राजाबहादुरसिंह के एक कन्यारत्न।

२. श्री नरेन्द्रकुमारसिंह के चि० अशोककुमार, चि० महेन्द्रकुमार, चि० सुरेशकुमार और चि० दिलीपकुमार। श्री राजेन्द्रकुमारसिंह के एक पुत्र आयु ७-८ मास।

सेठ साहब की चौथी कन्या श्रीमती सेठ राजाबाई का शुभविवाह सेठ फतेहचन्दजी साहब के सुपुत्र श्री राजमलजी साहब सेठी के साथ हुआ। भैय्यासाहब के सुपुत्र श्री राजाबहादुरसिंह का शुभ विवाह दिल्ली में लाला गुलाबचन्दजी साहब केले वालों के यहा हुआ। सेठ हीरालालजी के सुपुत्र श्री राजेन्द्रकुमारसिंह का शुभ विवाह अलीगढ में लाला दामोदरदासजी के यहां हुआ। जीवन परिचय मे इतना परिचय देना रह गया है।

---

२२ फरवरी १९४६ को सोनगढ़ में सौराष्ट्र के ५६ स्थानों की ओर से सेठ साहब का अभिनंदन किया जा रहा है।
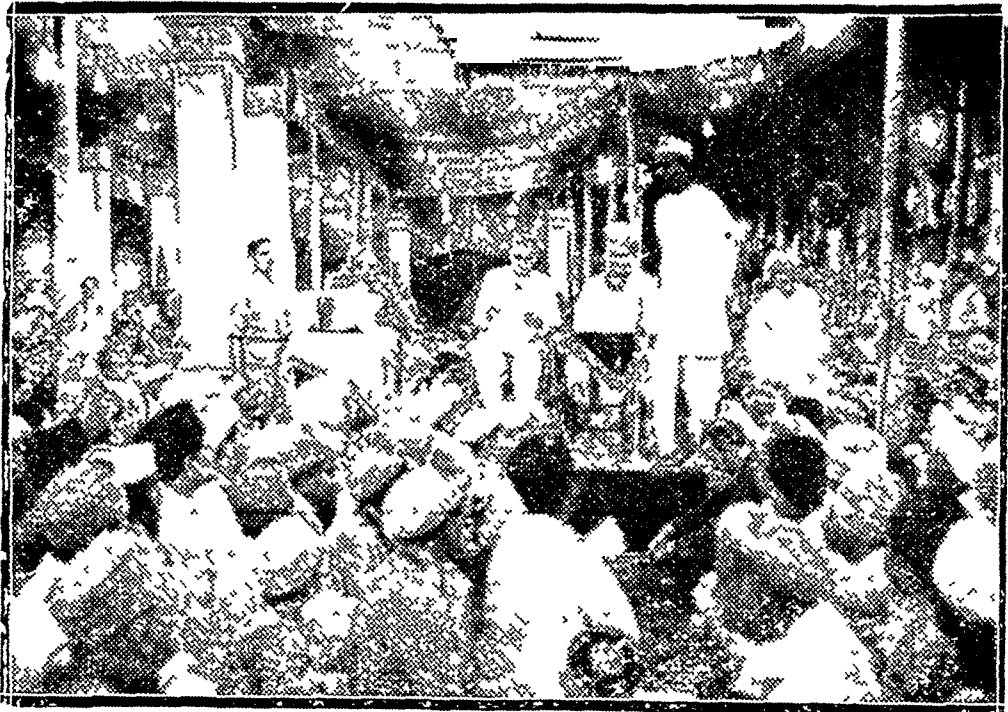
जुलाई १९४३ में शान्ति विधान महोत्सव के बाद इन्दौर के तत्कालीन प्रधान मन्त्री राजा ज्ञाननाथ की अध्यक्षता में सेठ साहब को मानपत्र दिया जा रहा है. जब कि आपने छ: लाख के दान की घोषणा की थी।

वे विविध कास्केट, जिनमे सेठ साहब को विविध स्थानों और प्रसंगों पर अनेक मानपत्र भेंट किए गये। शीशमहल मे कई आलमारियो मे ये दर्शनीय वस्तुओं की तरह सुरक्षित रखे गये है।

(२)
पारमार्थिक संस्थाएं
दान-भाषण व
मानपत्र

पारमार्थिक संस्थाओं की स्थापना, उनके संगठन और संचालन का जो रूप है, यह एक आदर्श है, जिसका अनुकरण देश के अन्य धनी मानी सज्जनों को भी निश्चय ही करना चाहिए। सेठ साहब ने उनकी स्थापना पूज्या मातु:श्री की अक्षय स्मृति के रूप मे की है और उनका लालन-पालन अपनी सबसे अधिक प्यारी सन्तान की तरह किया है। तभी तो बट के बीज के रूप मे प्रारम्भ किया गया यह सत्कार्य आज फल-फूल कर विशाल वृक्ष का रूप धारण किये हुए है, जिसकी शीतल छाया मे थका मादा मानव न केवल शारिरिक, किन्तु बौद्धिक, मानसिक और आत्मिक एव अध्यात्मिक सुख-समृद्धि भी प्राप्त कर परम सन्तोष अनुभव करता है। विश्रान्ति गृह, महाविद्यालय तथा बोर्डिंग हाऊस और जिनालय के एक स्थान मे निर्माण से यह स्थान मानव के तन-मन व आत्मा तीनों के परम कल्याण के लिए एक केन्द्र भी बन गया है जो कि कालान्तर मे 'तीर्थ' का-सा महत्व भी प्राप्त कर सकता है। जैसे पिता संकट मे सन्तान की रक्षा कर उसे धन-धान्य से समृद्ध देखना चाहता है, वैसे ही सेठ साहब ने शेयरों के भाव गिरने पर घाटे का सारा भार अपने ऊपर लेकर ध्रुव फण्ड की राशि को समय समय पर उदार सहायता देते हुए बीस लाख से भी ऊपर पहुंचा दियाहै।

देश के धनी-मानी सज्जनों द्वारा कायम किये गये लोकोपकारी ट्रष्टों में इन संस्थाओं का यह ट्रष्ट निश्चय ही प्रमुख है।

गत चालीस वर्ष का आँकड़ा संक्षेप मे निम्न प्रकार है:—

आय		व्यय	
१८,६६,१२१≈)	श्रीमत सेठजी के दान से	६,७१,६३८।।≡)।।।२	संस्थाओं की इमारतों की लागत
१,१८,०६२-)२	चालू खातों की बचत जो इमारतों में लगी	१३ ५६ ५७७≡)।।	ध्रुवफंड की इमारते, जिनके किराये की आमदनी से संस्थाओं का खर्च चलता है
३८,६६१।।)	ट्रस्टडीड के नियमानुसार ५) सैकड़ा से ध्रुव फड में बढ़ाये	२६,७७४।≈)।।।	जबरीबाग प्रिंटिंग प्रेस की तरफ लेना
१,८७,६६३।≡)।।।	श्रीमत सेठजी की दूकान का चालू खाते देना	२,०६,७५१।।।)।।	प्रिंस यशवन्तराव आयुर्वेद औषधालय के केमिकल वर्क्स की तरफ लेना
१८,७७१)।।	उदरत खाते जमा नांव काटकर देना बाकी	७,८६७)।।।	शिलक बाकी
२२,७२,६०६≈)। २		२२,७२'६०६≡)।२	

: १ :

पारमार्थिक संस्थायें

सम्वत् १६५६ मे सेठ साहब की उन पारमार्थिक संस्थाओ की नीव पडी समझनी चाहिये, जिनका जाल इस समय इन्दौर शहर मे बिछा हुआ है और जो विविध प्रकार की लोकसेवा का निमित्त बनी हुई हैं। शहर और छावनी के बीच की एक लाख वर्गफीट भूमि सेठ साहब ने सरकार से खरीदी। सबसे पहिले मध्य मे श्री पार्श्वनाथ भगवान के भव्य जिनालय का निर्माण किया गया। बाद मे यात्रियो के ठहरने आदि के लिये एक सौ कोठरियां बनाई गईं। इसी वर्ष मन्दिरजी की पंचकल्याणक श्री बिम्बप्रतिष्ठा बडे समारोह के साथ की गई। श्री दिगम्बर जैन मालवा प्रान्तिक सभा की नीव भी इसी समय दृढ की गई। वह आपके सभापतित्व मे निरन्तर उन्नति कर रही है। मन्दिर निर्माण, बिम्ब प्रतिष्ठा तथा आस-पास की इमारतो के निर्माण मे सेठ साहब ने दो लाख रुपया लगा दिया। अब तो यह स्थान अनेक संस्थाओ का केन्द्र बन गया है। पूजनीय मातुश्री के नाम पर इसका नाम "जबरी बाग' रखा गया है। महाविद्यालय, बोर्डिङ्ग हाऊस, विश्रान्ति भवन आदि संस्थाये इसी स्थान पर स्थापित हैं, जो जनकल्याण का सराहनीय कार्य कर रही है। २०६६१४०॥≡) का इनका इस समय ध्रुव फण्ड है, जो एक ट्रस्ट के आधीन है। सम्बत् १६६२ मे इन्दौर मे एक जैन बोर्डिङ्ग हाउस की आवश्यकता अनुभव की गई थी, जिसमे मालवा के विविध स्थानो से आने वाले विद्यार्थी विद्याध्ययन करते हुये सुविधापूर्वक रह सकें और निश्चिन्त होकर अपने अध्ययन मे लग सकें। एक सौ रुपया मासिक के खर्च से नशियाजी (जबरी बाग) मे जैन बोर्डिंग हाउस और पाठशाला का काम शुरू कर दिया गया। ये ही संस्थाये कालान्तर मे पारमार्थिक संस्थाओ को जन्म देने वाली सिद्ध हुईं। लोककल्याण की सद्भावना से शुरू किया गया छोटा-सा काम भी कितना विशाल रूप धारण कर लेता है, इसी का जीवित उदाहरण इन पारमार्थिक सस्थाओ का आज का रूप है। सम्वत् १६६५ मे दानवीर स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजी और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी के इन्दौर मे शुभागमन से इन सस्थाओ को और भी प्रोत्साहन मिला। बोर्डिङ्ग हाऊस की सुव्यवस्था देख कर दोनो महानुभाव बहुत अधिक प्रभावित हुये। उनकी प्रेरणा से उस निधि की नीव डाली गई, जो इस समय २० लाख से भी ऊपर पहुँच गई है। मन्दिरजी के खर्च के लिये नौ हजार और धर्मशाला के खर्च के के लिये चौदह हजार पांच सौ रुपया अलग निकलवा कर फण्ड कायम कर दिया गया। नशियांजी का आधा हिस्सा धर्मशाला के लिये अलग करके संस्थाओ का सारा कार्य नियमबद्ध तथा व्यवस्थित कर दिया गया। जैनजातिभूषण हजारीलालजी जैन प्रायः उसी समय से संस्थाओ के मन्त्रिपद का कार्य संभाले हुये है और लगभग बयालीस वर्षों से पारमार्थिक संस्थाये उनके नियन्त्रण मे लोकसेवा का कार्य करती हुई विकास, प्रगति तथा उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही हैं। वे 'मन्त्री' नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

अधिकांश संस्थाओ की स्थापना का विवरण यथास्थान दिया जा चुका है। यहां केवल उनका संक्षिप्त

परिचय दिया जा रहा है —

(१) श्री दिगम्बर जैन मन्दिरजी

यहां पूजन, शास्त्र सभा, मंडल विधानादि धार्मिक कृत्य नियमित रूप से होते रहते हैं। इसके सरस्वती भंडार में ६८७ धार्मिक ग्रंथ इस समय विद्यमान हैं। हिसाब के अन्तिम वर्ष सम्वत् २००६ मे कुल आय १७४७।-) हुई और लगभग इतना ही खर्च हुआ।

(२) विश्रांति भवन

विश्रांति भवन की पिछली बचत से सम्वत् २००४ मे दुकानों की दूसरी मंजिल तैयार कराई गई, जिससे किराये की आमदनी वर्ष में सात आठ सौ बढ गई। अन्तिम वर्ष सम्वत् २००६ मे आय ७६६३ रुपये हुई और इतना ही खर्च हुआ। यात्रियों की संख्या ५८००० रही।

(३) संस्कृत महाविद्यालय

सम्वत २००६ मे छात्रों की संख्या २६ रही और अंग्रेजी विभाग के धर्मशास्त्रों का अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या ६० पर पहुँच गई। छात्रों को अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के परीक्षा बोर्ड तथा संस्था की ओर से पारितोषिक दिया जाता है। इसके पुस्तकालय मे २५६३ हिन्दी और १०४५ अंग्रेजी की पुस्तके हैं। सम्वत् २००६ का बजट ५७६६) स्वीकार हुआ था और खर्च हुआ ६७६६)।

(४) दिगम्बर जैन बोर्डिङ्ग हाउस

संस्कृत महाविद्यालय तथा स्कूल और कालिजों में पढने वाले छात्र इसमें रहते हैं। इनके खान-पान रहन-सहन आदि का सारा प्रबन्ध संस्था की ओर से समान रूप से किया जाता है। बोर्डिङ्ग हाउस मे यूनिवर्सिटी के नियम के अनुसार कालेज और हाईस्कूल के छात्र इकट्ठे नही रह सकते। इसलिये सेठ साहब ने सम्बत् २००४ मे ३८००० रुपये प्रदान करके हाईस्कूल के छात्रों के रहने के लिये एक पृथक् बोर्डिङ्ग हाउस बनवा दिया और २६ दिसम्बर १९४६ को इन्दौर के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री एन० सी० महता से उसका उद्घाटन करवाया गया। छात्रों में धार्मिक भावना पैदा करने के लिये उन्हे देवदर्शन, पूजन तथा अन्य धार्मिक क्रिया कलाप यथाशक्ति करवाया जाता है। सम्वत् २००६ मे इसका बजट २९७४६॥।-) था।

(५) सौ० कन्चनबाई दिगम्बर जैन श्राविकाश्रम

सम्वत २००६ मे इसका बजट ८९५१३ रु०३आ०था। छात्राओं की एक पाक्षिक सभा होती है। उनका अपना पुस्तकालय है, जिसमे ९४० ग्रन्थ हैं। छात्राओं की संख्या इस वर्ष ३३ रही।

(६) प्रिंस यशवंतराव आयुर्वेदिक जैन औषधालय

यह औषधालय बियाबानी मे कायम है। इसकी एक शाखा संयोगिता गंज मे खोली गई है। एक वृहद् रसायनशाला भी साथ मे चालू है। इसमे लगभग ५०००० खर्च हो चुका है। कफ मूत्रादि की परीक्षा और आपरेशन आदि का प्रबन्ध है। सम्वत् २००६ मे इसका बजट २९५५५) था, जिसमें से २१५४२) से अधिक आयुर्वेद की काष्ठौषधियो पर और २५०७) सिद्धौषधियो पर खर्च हुआ।

(७) दिगम्बर जैन असहाय विधवा सहायता फण्ड व भोजनशाला

इसकी स्थापना का विवरण पीछे दिया जा चुका है। सम्वत २००६ मे ४९विधवाओं को सहायता दी गई। भोजनशाला मे १६६ व्यक्तियो ने भोजन किया, जिनकी हाजिरी ५६४८ रही। बजट ७९१०॥।-) था।

(८) सौ० दानशीला कंचनबाई प्रसूतिगृह व शिशुस्वास्थ्य रक्षा संस्था

सम्वत २००६ मे ६५२ प्रसव हुये। इनमे दो मुसलमान थे। आउट डोर डिस्पेंसरी से २०६०७ ने

लाभ उठाया, जिनमे ३९७१ नये बीमार थे। बजट १६७३३ ।।।≈) का मंजूर किया गया था। स्थापना का विवरण पहिले दिया जा चुका है।

(७) श्री राजकुमारसिंह आयुर्वैदिक कालेज

इसकी स्थापना का विवरण भी विस्तार के साथ पीछे दिया जा चुका है। संवत् २००६में कुल छात्रो की संख्या १०७ रही। कालिज का संबंध उत्तर प्रदेश के बोर्ड आफ इंडियन मेडीसन के साथ है। उसी की ओर से परीक्षाओ का प्रबंध किया जाता है। औषध निर्माण और शवपरीक्षा की शिक्षा भी विद्यार्थियो को दी जाती है। छात्रसंघ और क्रीडाविभाग भी कालेज मे कायम है। संवत् २००६ मे लगभग १५५००) का बजट मंजूर किया गया था।

(१०) सौ० दानशीला कंचनबाई दिगंबर जैन कन्यापाठशाला

इसकी स्थापना सेठ साहब की ७५ वी वर्ष गांठ के शुभ अवसर पर आषाढ शुक्ला १ संवत २००५ मे की गई। संवत् २००६ मे छात्राओ की संख्या ४३ रही, जिनमे से परीक्षा मे ४१ पास हुईं।

(११) प्रबंध विभाग

इन सब संस्थाओं का प्रबंध एक ट्रस्ट और प्रबंधकारिणी कमेटी के आधीन है। इसीके आधीन एक छापाखाना भी चलता है। दिगंबर जैन खंडेलवाल बन्धु सहायक फण्ड भी इसीके आधीन है। सहायक मंत्री का काम बाबू बसंतीलालजी कोरिया करत है।

———:०:———

: २ :

दान की सूची

सेठ साहब द्वारा किये गये दान तथा धर्म कार्य मे खर्च की हुई ८० लाख की रकम का ब्यौरा इस प्रकार है:—

१९३७	बडवानी सिद्धक्षेत्र पर मंदिर बनवाने व प्रतिष्ठा के भाग मे दिये	१०,०००)
१९५५	कछाल्या ग्राम मे मंदिर बनवाने व प्रतिष्ठा कराने के लिये	१५,०००)
१९५७	मारवाडी मंदिर शक्कर बाजार पर कलश चढाने मे तीनो भाइयो ने खर्च किये	२५,०००)
१९५९	नसिया की इमारत व मंदिर बनाने और बिम्ब प्रतिष्ठा कराने मे खर्च किये	२,००,०००)
१९६३	जैनबद्री मूडबद्री की यात्रार्थ जाने मे खर्च किये	१०,०००)
१९६३	नसियाजी मे बोर्डिंग १००) मासिक से शुरू किया, सात वर्ष तक चलता रहा	८,४००)
१९६५	प्लेग के समय गरीबो के झोपड़े बनवाने के लिये	१,०००)
१९६६ से १९७२	असहाय जैनियो के लिये एक चौका शक्कर बाजार में खुदवाया, जिसमे १००) मासिक खर्च किया जाता था	७,२००)
१९६६	शिखरजी के पर्वत रक्षा फण्ड में इन्दौर से २५,०००) करवा दिये, जिसमें आपके	५,०००)
१९६६	शिखरजी पर महासभा के प्रबंध खाते मे दिये, जिसके ब्याज से अब तक प्रबंध खाते का काम चल रहा है	१०,०००)
	उक्त जगह जाने आने मे लगे	४,०००)

१९६८	श्रीमंत महाराजा साहब के कारोनेशन के समय पब्लिक कार्य के लिये दिये	२१,०००)
१९६८	दिल्ली दरबार से गिरनागरजी की यात्रार्थ गये जिसमे खर्च	७,०००)
१९७०	मथुरा महासभा के अधिवेशन के समय चालू खाते मे दिये	२,५००)
	सफर खर्च	५००)
१९७०	पालीताना मे बम्बई प्रान्तिक सभा के अधिवेशन के समय दान दिया, जिसमे ४ लाख जवरी बाग मे महाविद्यालय, बोर्डिंग हाऊस, धर्मशाला, कंचनबाई श्राविकाश्रम आदि सस्थाओमे लगे। इसी मे १००००) उदासीनाश्रम मे लगे	४,००,०००)
१९७०	बडवानी सिद्धक्षेत्र पर जीर्णोद्धार के लिये	२,१००)
,,	श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम को दिये मध्ये १६५००) के	१०,०००)
,,	बम्बई भोलेश्वर के मदिर के लिये दिये पानडी मे	१०,०००)
१९७०	श्रीमंत महाराजा साहब विलायत से सानद पधारे इस खुशी मे	३४,०००)
,,	महाराज तुकोजीराव हास्पिटल मे नरसेज इस्टीट्यूशन मे लगे	२०,०००)
,,	बडनगर मे बिम्बप्रतिष्ठा के समय दि जैन मालवा प्रान्तिक सभा को	३,६००)
१९७१	दीतवारिया मे मंदिरजी बनवाने मे कुल खर्च सवा पांच लाख हुआ, जिसमे १ लाख दोनों भाइयो ने दिया, शेष १९८८ तक लगे	५,२५,०००)
१९१७	छावनी के वाररिलीफ फड के चंदे मे दिये	८,०००)
,,	श्रीमत महाराजा साहब की तबियत ठीक होने की खुशी मे गरीबो को कपडा बांटा	५००)
,,	किग एडवर्ड हास्पिटल छावनी मे वार्ड बनवाने को दिये	४०,०००)
	लेडी ओडवायर गर्ल्स स्कूल छावनी के स्थाई फंड मे	१०,०००)
,,	दीतवारिया बाजार मे जाति की रसोई के लिये भोजनशाला बनवाने मे लगे	९७,०००)
,,	४२ वी जन्मगाठ के समय जवरी बाग बोर्डिंग के कर्मचारी लोगो के लिये मकान बनवाने मे दिये	३०,०००)
,,	स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्दजी की शोक सभा के समय ५०००) जवरी बाग लायब्रेरी के लिये और १०००) स्मारक फण्ड मे	६,०००)
,,	हिंदू विश्वविद्यालय बनारस मे जैन मंदिर बनवाने को तीनो भाइयो ने मिलकर १५०००) दिये, जिनमे सेठ साहिब के	५,०००)
,,	स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस को दिये	१,०००)
,,	अष्टम हिंदी साहित्य सम्मेलन को दिये, जिसमे २००२) स्वागतकारिणी के लिये, १००००) हिन्दी साहित्य के कोष के लिये और ७५१) इन्दौर की उन्नति के लिये	१२,७५३)
१९७१	छावनी मे मेडिकल स्कूल की बिल्डिग खरीदकर अस्पाल को दे दी	२५,०००)
१९७२	कान्यकुब्ज महासभा अधिवेशन मे सहायता	१,०००)
१९७२	इन्दौर कृष्णपुरा की जनरल लायब्रेरी को	१,०००)
१९७३	भय्यासाहब हीरालालजी के विवाह मे धार्मिक संस्थाओ को	५,०००)
,,	श्रीमती सौ सेठानीजी व्रत-उद्यापन के समय दिया गया, जिसमे १००००) दीतवारिया मदिर मे, १६६२१) पारमार्थिक संस्थाओ और शेष मन्दिरो को ५०००)	१३,६२१)
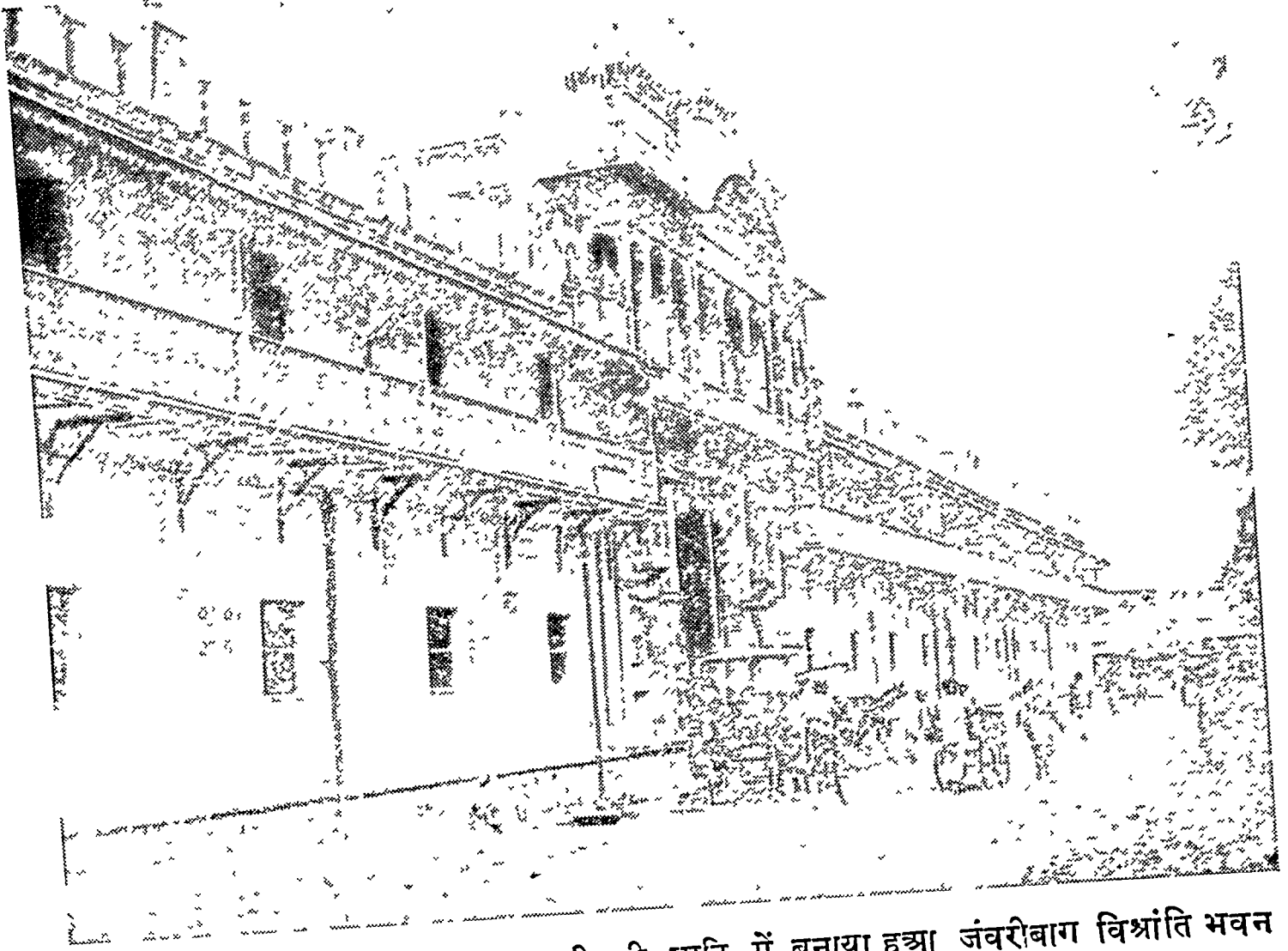
श्रीमंत सर सेठ साहब की पूज्य माताजी की स्मृति में बनाया हुआ जंवरीबाग विश्रांति भवन जिसे नसियां भी कहते है।
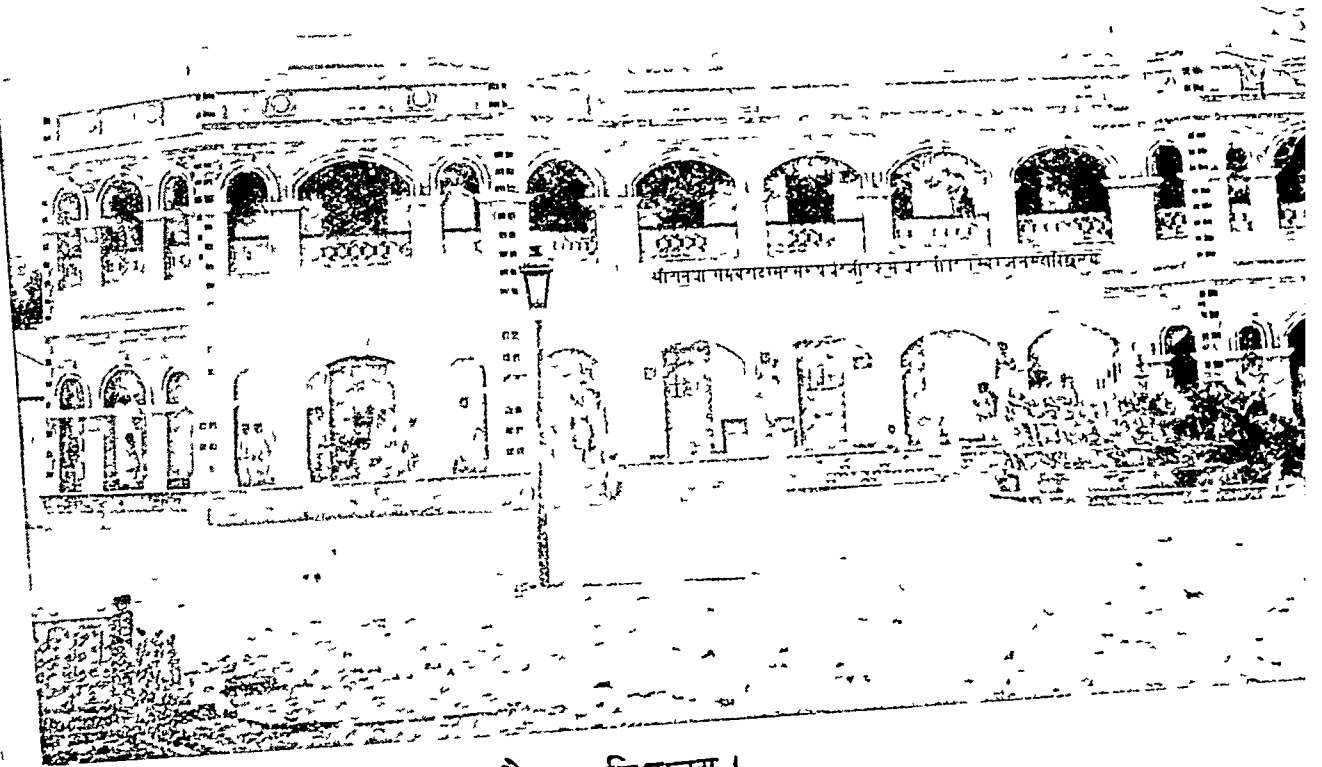
नवेरी बाग नखियाजी में दिगम्बर जैन महाविद्यालय।
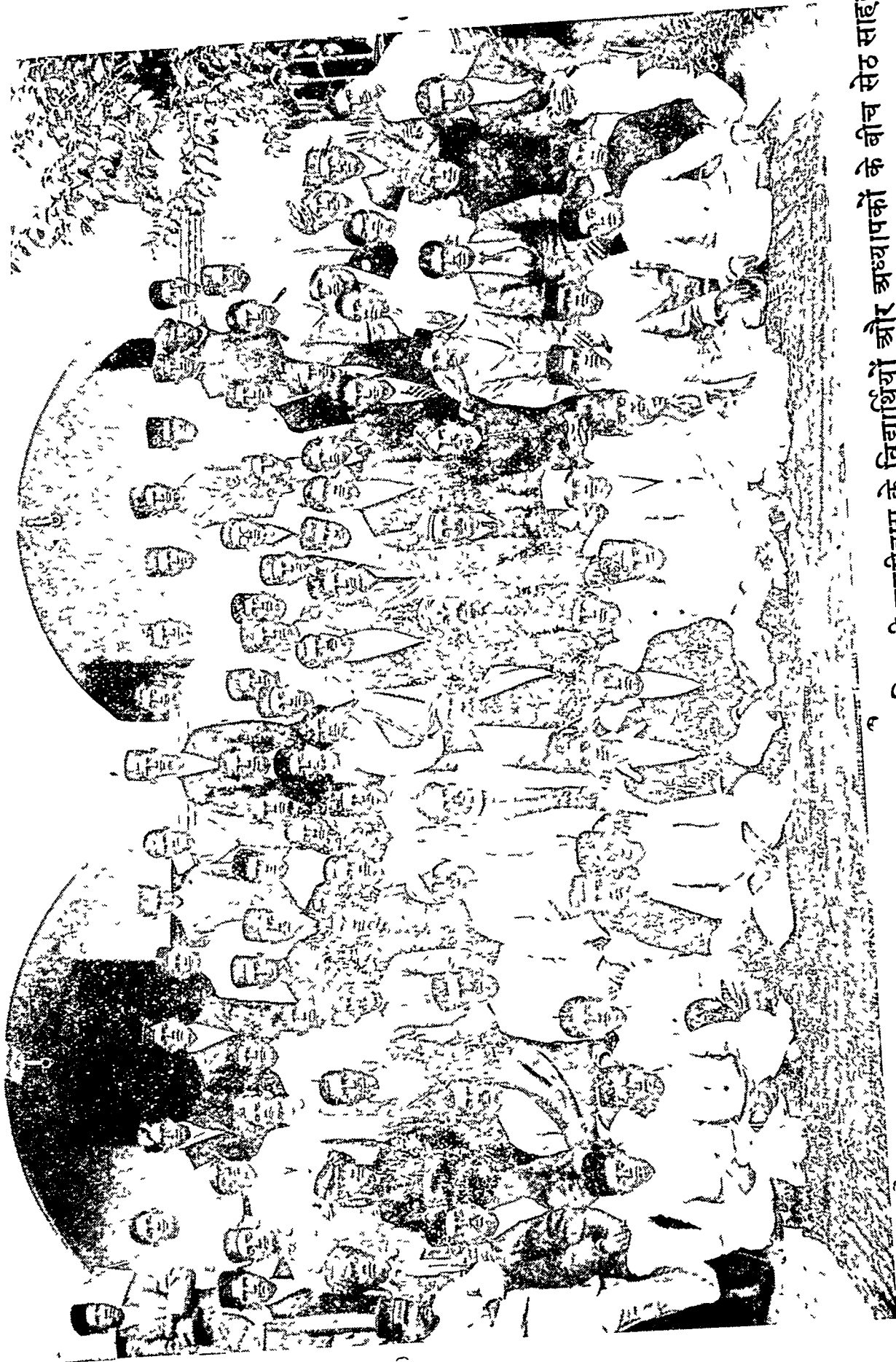
सर सेठ सरूपचन्द हुकमचन्द दिगंबर जैन बोर्डिंग हाऊस नशियाजी जवरीबाग के विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच सेठ साहब
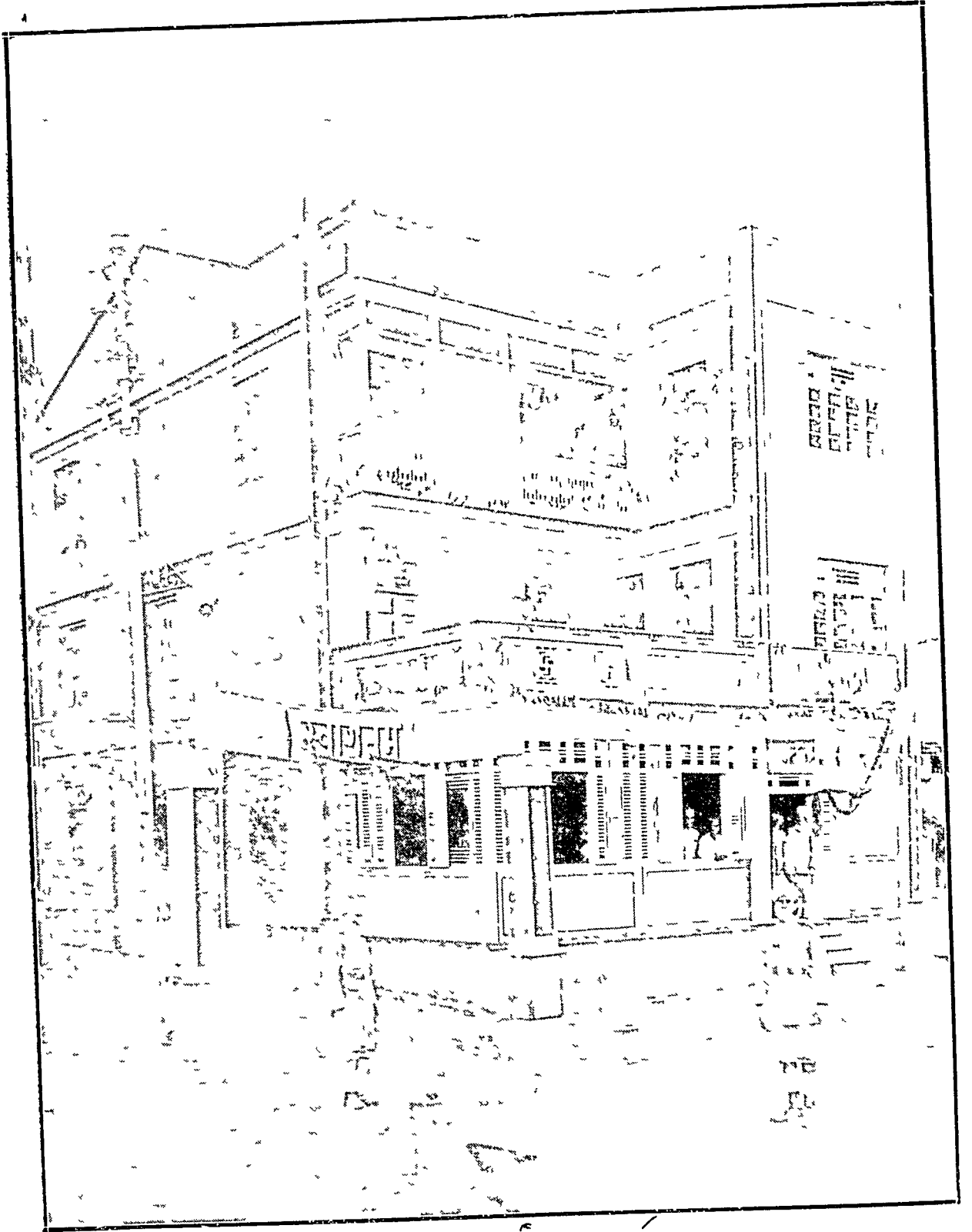
श्री राजकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज का भवन।
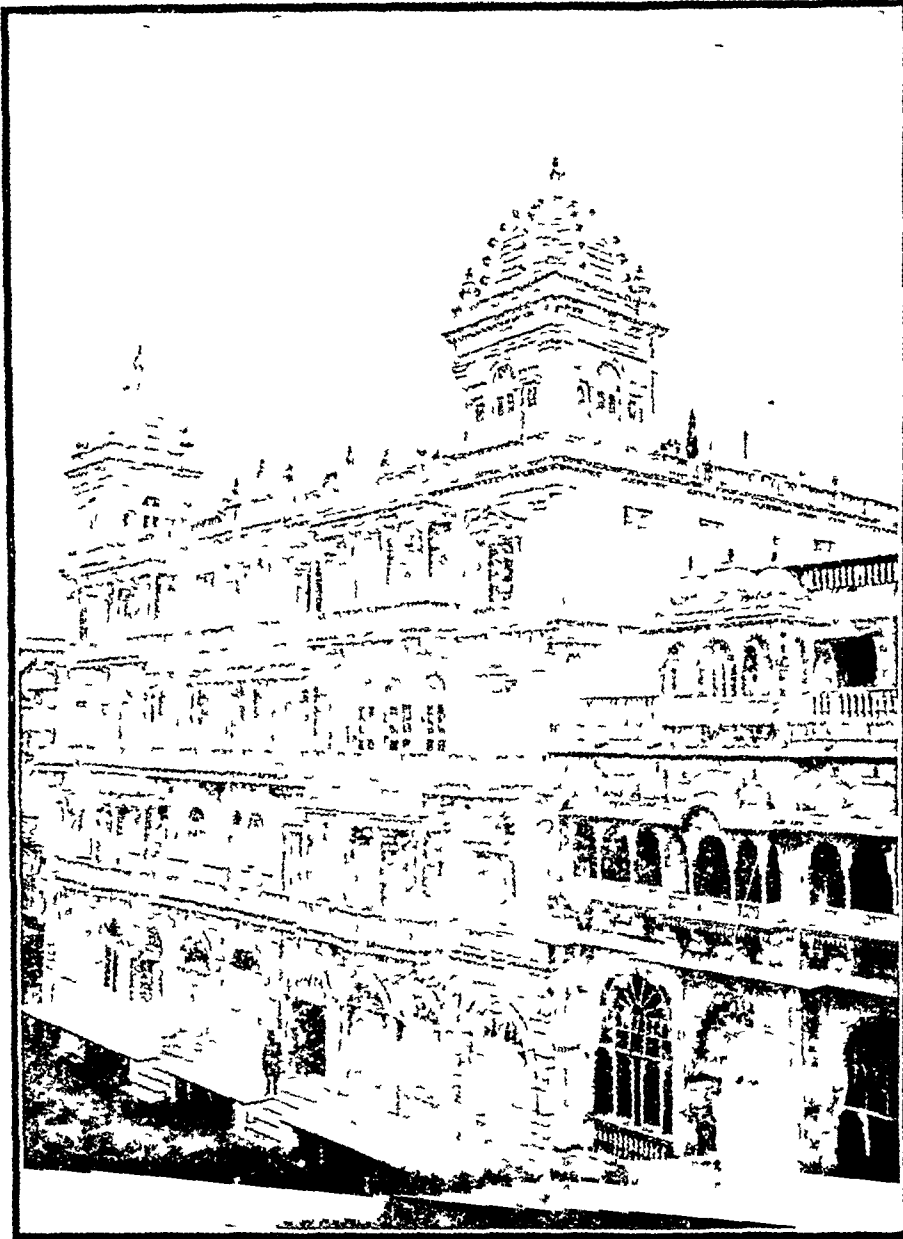
शीशमहल

दानशीला कंचनबाई
प्रसूतिगृह की
विशाल इमारत।
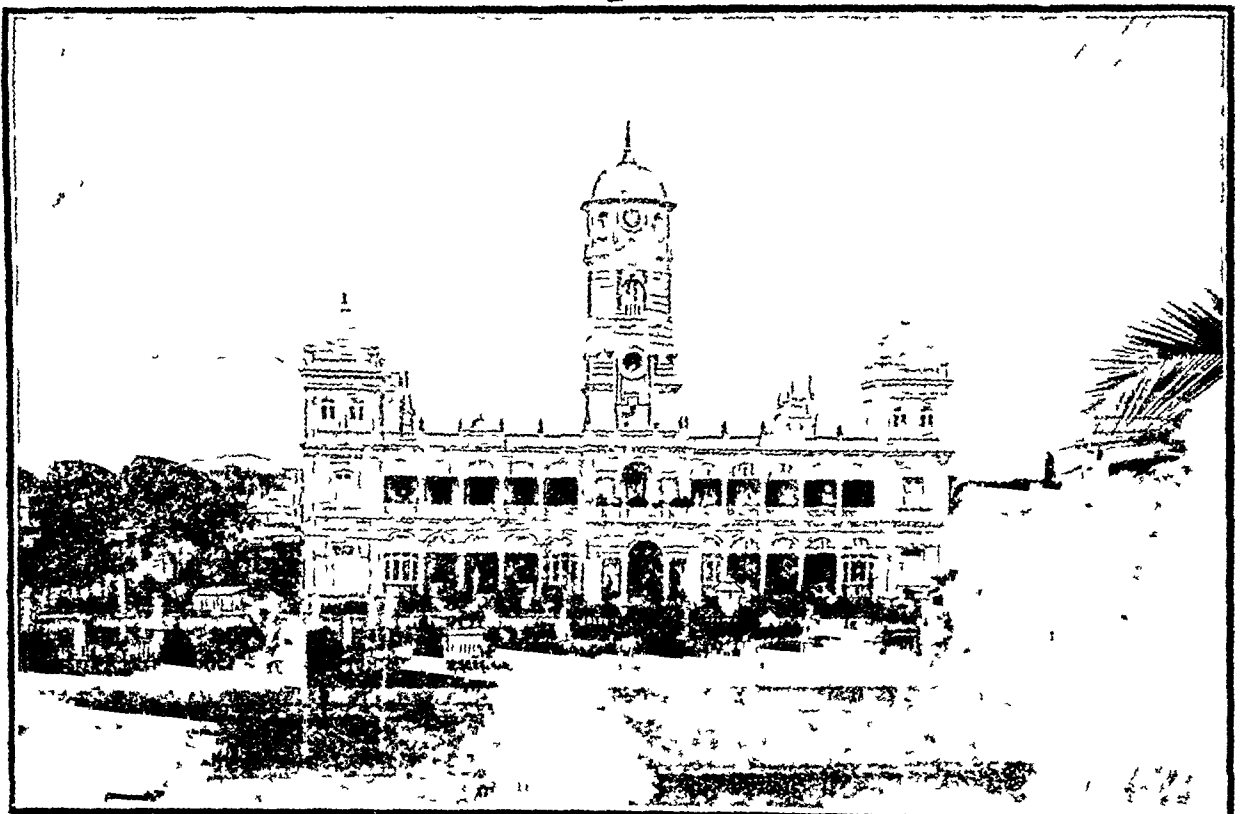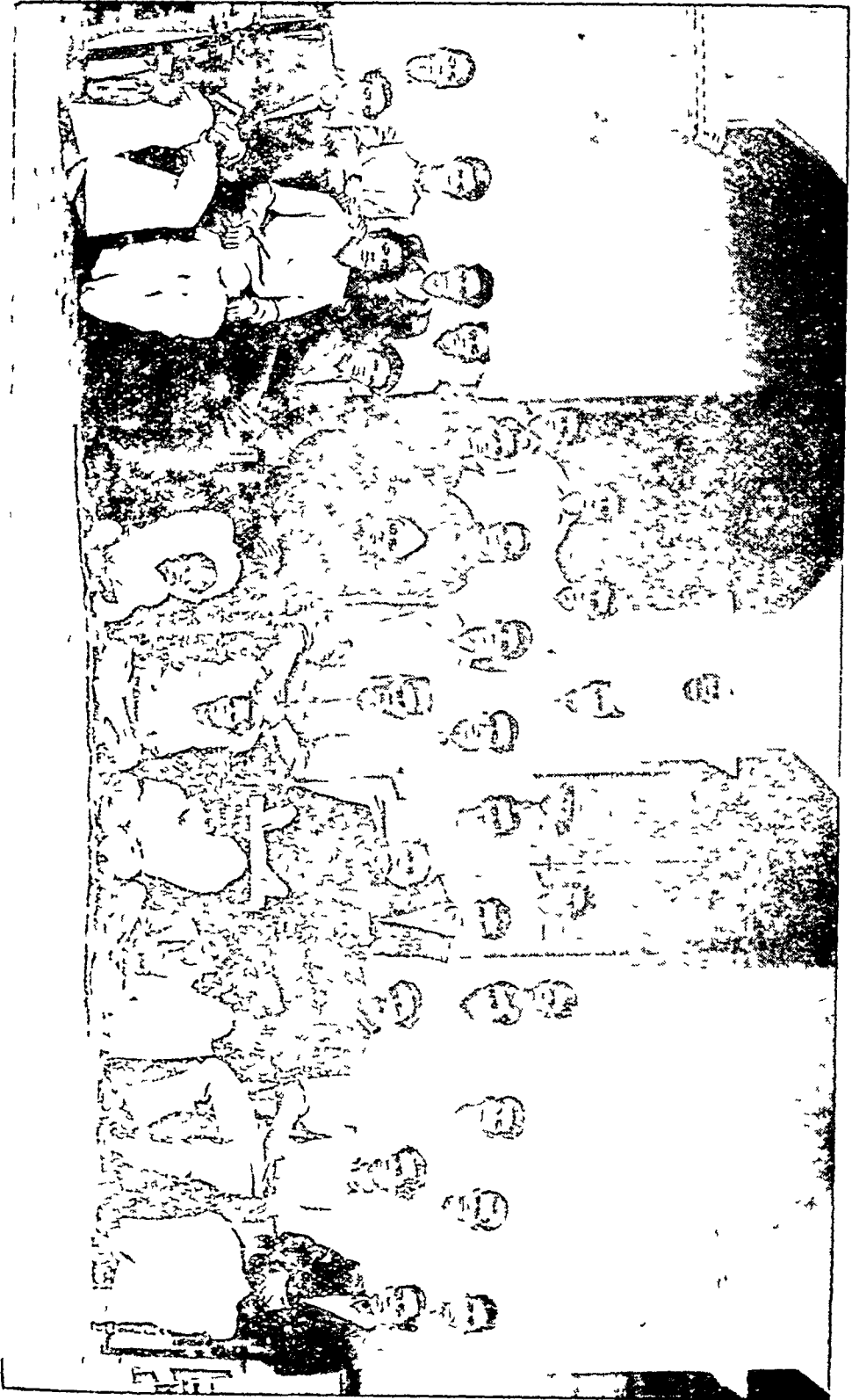
सरूपचंद हुकमचंद दिगंबर जैन महाविद्यालय के अध्यापकों और छात्रों का ग्रूप।
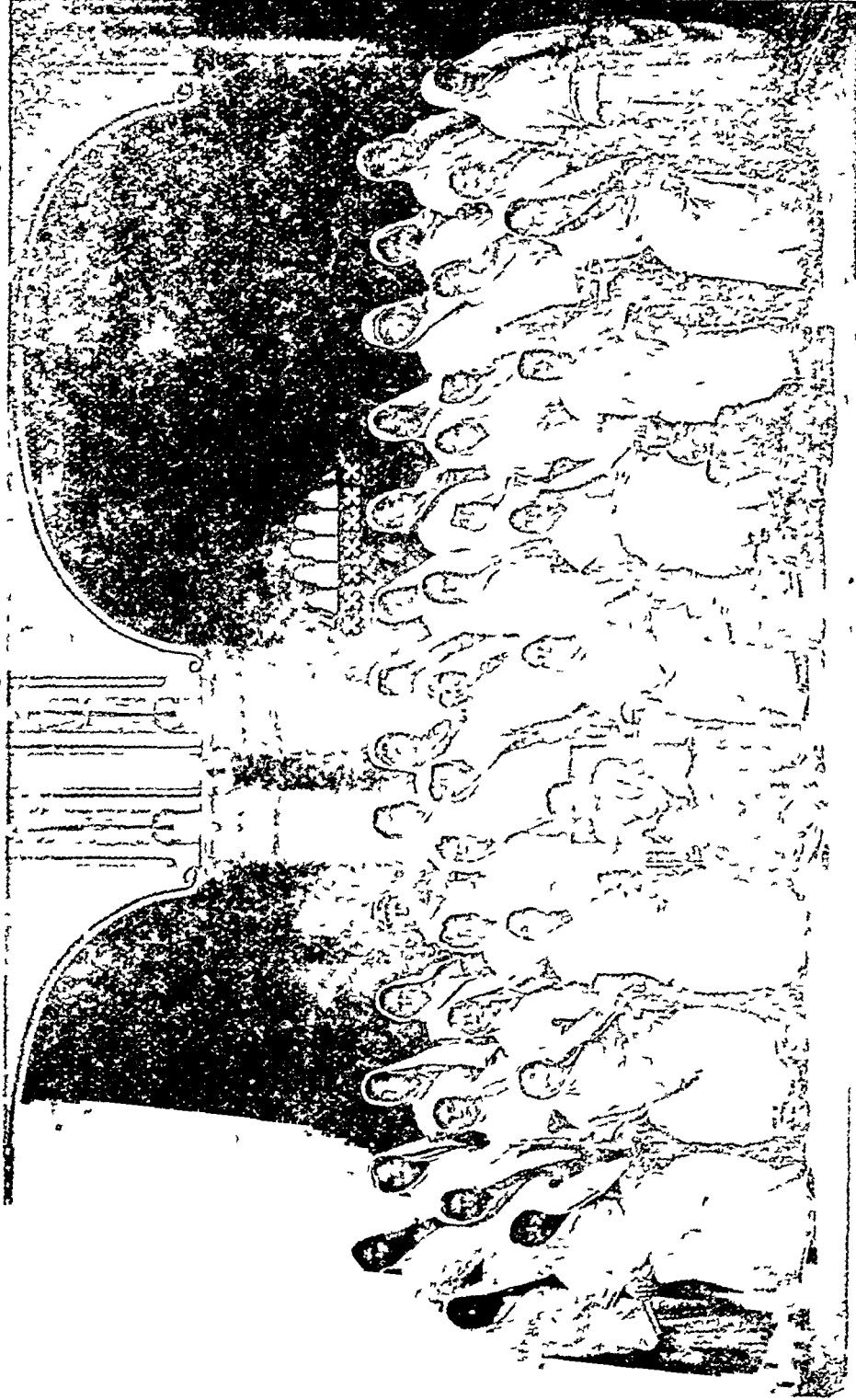
सौभाग्यवती दानशीला कंचनबाई श्राविकाश्रम की महिलाओं का ग्रूप।

विंयावानी के प्रिंस यशवन्तराव आयुर्वेदिक औषधालय का एक भाग।

१९७३	बुन्देलखंड की यात्रा मे खर्च	५,०००)
	चारलोन एक करोड का किया, उस समय आवरडे फण्ड मे १०००) और चीफ कमिश्नर की मार्फत गरीबो के लिये ५००)	१,५००)
,,	गरीब प्रजा के लिये सस्ते भाव का तौल गेहूं का लगाया, उसमे घाटा उठाया	७५,०००)
१९७४	दिल्ली मे लेडी हार्डिंग मेडिकल हास्पिटल मे वार्ड बनवाने को	४,००,०००)
,,	मिशन गर्ल स्कूल छावनी की बिल्डिंग की खरीद कर दी	२५,०००)
,,	इन्दौर मे आयुर्वेदीय औषधालय बनाने के लिये	१,५०,०००)
,,	दि० जैन विधवा सहायता व असहाय भोजनशाला खोलने को दिये, जो भोजनालय १००) मासिक पर चल रहा था, वह भी इसमे मिला दिया गया	१,००,७००)
१९७५	बम्बई चेम्बर आफ कामर्स को	२५,०००)
१९७६	दक्षिण फीमेल एज्यूकेशन सोसायटी पूना को	१,०००)
१९७६	श्रीमंत महाराजा साहब के पास यशवंत क्लब के लिये	५०,०००)
,,	यशवत क्लब का काम अधूरा रह जाने से और जरूरत होने से सेठ साहब ने फिर दिये	२५,०००)
,,	जाली क्लब की उद्योगशाला को	२,१००)
,,	औषधालय व अनाथालय बडनगर	६०१)
,,	छावनी मे जैन मंदिरजी की पानडी मे दिये	७०१)
१९७६	पब्लिक लाभार्थ मार्फत ग्वालियर महाराज के	११,०००)
१९७७	सर नाइट के इन्वेस्टीचर मे जैन धर्मशाला शिमला को	१,५०१)
,,	बीकानेर मे पब्लिक काम के लिये मार्फत बीकानेर महाराज	५,०००)
१९७६	श्रीमती तारादेवीजी के विवाह मे संस्थाओ को	२६,०००)
१९७४	प्रिन्स यशवन्तराव आयुर्वेदीय जैन औषधालय की ओपनिंग सेरेमनी के समय, औषधालय ६००००), प्रबन्ध विभाग ४००००)	१,००,०००)
,,	अहिल्या माता गोशाला पींजरापोल की पानडी मे	३,१०१)
१९७८	दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र शिखरजी के तीर्थ रक्षा फण्ड मे	११,०००)
,,	पारमार्थिक संस्थाओ के शेअर घरू रखकर घाटा उठाया	३,००,०००)
,,	तिलक स्वराज्य फण्ड मे	२,५०१)
१९७८	इन्दौर मे मोदीजी की नसियां मे जीर्णोद्धार के वास्ते	२,५००)
,,	श्रीमती इन्द्राबाई महाराणी साहिबा के नाम से स्त्रियोपयोगी नर्सों के लिये संस्था की बिल्डिंग बनाने को दिये	२५,०००)
,,	बडवानी मे धर्मशाला बनवाने को ४०००) और मूर्ति जीर्णोद्धार के लिये १०००)	५,०००)
,,	दिल्ली प्रतिष्ठा के समय	५१,०००)
,,	श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा मे जगह-जगह पर धर्मशाला व जीर्णोद्धार व मन्दिर वगैरा बनवाने को दिये	३७,५००)
१९८०	श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा का खर्च	१५,०००)

१६८०	अभिनन्दन पत्रों के ग्रहण करने के बाद पुन: पारमार्थिक संस्थाओं के लिये	१,००,०००)
१६८१	श्री जैनबद्री महामस्तकाभिषेक के समय यात्रार्थ खर्च और कलश वगैरह के लिये	१३,०००)
,,	मक्सीजी मे मुकद्दमे खर्च व धर्मशाला जीर्णोद्धार क लिये	२,५००)
,,	सागवाडा पाठशाला को	१,०००)
१६८३	जवरी बाग मे संस्थाओ को द्वादशवर्षीय महोत्सव पर	१०,०००)
१६८४	तीनो विवाहो के उपलक्ष मे	३१,०००)
,,	शिखरजी की यात्रार्थ जाने आने व दान धर्म मे	५,०००)
१६८४	शिखरजी पर भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थ कमेटी के स्थायी फंड मे	५,१००)
१६८५	डेली कॉलेज	२५,०००)
,,	इन्दौर के खेतीबाडी महक्मे मे स्कालरशिप के वास्ते और औद्योगिक शिक्षा वास्ते	४,०००)
,,	श्रीमती सौ. सेठानीजी के सफलतापूर्वक आपरेशन की खुशी मे नेत्र अस्पताल को	६१,०००)
,,	प्रसूतिगृह मे वार्ड बनवाने को	६,०००)
,,	गरीबो को अन्न-वस्त्र	५००)
१६८६	श्रीमती सौ ताराबाई के मृत्यु समय एम. ए. एल-एल. बी. वार्ड के लिये	५,०००)
१६८६	अन्न-वस्त्र बाटा गया	१,०००)
,,	स्याद्वाद महाविद्यालय काशी को सालाना तथा फुटकर	४,०००)
,,	जैनबद्री, मूडबिद्री की यात्रा मे	६,५००)
,,	न्कथे गिवींग फंड मे	१,०००)
,,	जैन सिद्धांत विद्यालय मोरेना को ५ साल तक ६००) साल और सात साल तक ३००)	५,१००)
१६८८	पौत्र के जन्मोत्सव के समय संस्थाओ को दान	१,२५१)
१६६०	छोटी रकमे १००) से १०००) तक, जो समय समय पर दी गई	४,००,०००)
१६८६	व्रत उद्यापन के समय दान व उत्सव खर्च	१,३५,०००)
१६६०	श्रीमन्त महाराजा साहब के मार्फत किसानो को रिलीफ वास्ते दिये	२,००,०००)
१६६१-६८	विविध दान	५,००,०००)
१६६६	श्री भारतवर्षीय खण्डेलवाल दि. जैन महासभा को किशनगढ़ मे और इन्दौर में	१२००२)
,,	तुकोगंज के मन्दिरजी मे	२५००)
,,	कल्याण भवन के मन्दिरजी को	२५००)
२०००	जवरी बाग की संस्थाओ को	६४५३०॥≡)
,,	श्री मक्सी जी की पानडी में	५१००)
,,	उज्जैन मे	५००००)
,,	उदासीनाश्रम	३१००)
२००१	राजकुमारसिह आयुर्वेद कालेज को	१०००००)
,,	पालीताना शत्रुञ्जयजी की धर्मशाला को	५००१)
,,	युवराज श्री यशवंतराव के जन्म दिवस मे गरीबो को सहायतार्थ	७०००१)
,,	भानुपुरा ज्ञानचन्द्रिका औषधालय मे	४०००)

२००१	खण्डवा की दिगम्बर जैन धर्मशाला की पानडी मे	१०००१)
२००२	लाडी की पानडी मे	७१००)
,,	कलकत्ता मे वीर शासन महोत्सव मे	११००१)
,,	महासभा के उज्जैन अधिवेशन मे	३५००)
,,	महासभा की पानडी मे	७०००)
,,	ग्वालियर युवराज के नामकरण महोत्सव मे	२१०००)
,,	उज्जैन मे टी० बी० का अस्पताल बनाने मे	४०००००)
,,	बम्बई के टी० बी० अस्पताल को	२१०००)
,,	सोनगढ मे स्वाध्याय मन्दिर बनवाने को	२६००३)
,,	माण्टेसरी स्कूल बनने को	८२००)
,,	मान्टेसरी स्कूल मे सेठानी साहब की तरफ से	४१००)
,,	श्री १०८ आचार्य कुन्थुसागरजी की स्मृति मे	३५००)
	श्री कुन्द-कुन्द प्रवचन मण्डल सोनगढ को	११००१)
,,	स्वामी वत्सल को	५०१)
२००३	टी० बी० अस्पताल को	२०००००)
,,	उज्जैन के नरसिंगपुरा मन्दिरजी के जीर्णोद्धार मे	११०००)
,,	राजकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज को	१०००००)
२००४	इन्दौर राज प्रजामण्डल की सहायता	२१०१)
,,	प्रतापगढ के यशकीर्ति दि० जैन छात्रावास को	३०००)
,,	नागपुर मे जैन धर्मशाला को	२५००)
,,	सोनगढ के स्वाध्याय भवन को	३५१०६)
,,	बीछीया के स्वाध्याय मन्दिरजी को	५००१)
,,	अ० भा० देशीराज लोक परिषद् ग्वालियर को	५०००)
,,	जवरी बाग के स्कूल तथा बोर्डिंग बनाने को	५००००)
,,	संयोगितागंज के गर्ल्स स्कूल को	२१०१)
,,	श्री वर्णी विद्यालय सागर को	२७५००)
,,	बम्बई मेमोरियल फण्ड मे	२०००)
,,	पंजाब शरणार्थी रिलीफ मे	२५००)
,,	उज्जैन के महिला मण्डल को महारानी जी द्वारा	५०००)
२००५	मध्यभारत देशी राज लोक परिषद् को	३१००)
,,	सीकर में	८१०१)
,,	बनारस दि० जैन स्याद्वाद विद्यालय को	१०००१)
,,	श्री गोपाल दि० जैन विद्यालय मोरेना को	५०००१)
,,	गान्धी मेमोरियल फण्ड	१०००१)
,,	कांग्रेस कमेटी को	२०००)

२००५	बडनगर अनाथालय को सेठजी और सेठानी सा० की ओर से	५२०२)
२००६	अ० भा० महिला कान्फ्रेंस को	५२०२)
,,	दि० जैन चौरासी मथुरा को	५०००)
,,	बम्बई में दि० जैन मंदिर की पायडी म	१५०००)
,,	श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम मथुरा को	२१००)
,,	विविध छोटी मोटी संस्थाओं का जोड	१००००००)
		कुल ८० लाख

: ३ :

मानपत्र

सेठ साहब को अनेक अवसरों और अनेक स्थानों पर विविध संस्थाओं की ओर से अनेक भाषाओं में दिये गये मानपत्रों का संग्रह भी एक बडा ग्रन्थ बन सकता है। इन मानपत्रों में आपके सर्वप्रिय स्वरूप और व्यापक लोकप्रियता पर प्रकाश पडने के साथ-साथ आपकी विविध प्रवृत्तियों और आपके स्वभाव पर भी अच्छा प्रकाश पडता है। इसीलिये उनका अध्ययन रुचिकर और उपयोगी भी है। हीरक जयन्ती के अवसर पर ही सम्वत् १९९४ में आपको लगभग तीन दर्जन मानपत्र दिये गये थे, जिनमें गुजराती, महाराष्ट्र, बोहरा आदि सभी समाजों, वर्गों, व्यापारियों, संस्थाओं आदि का समावेश था। यहा कुछ थोडे से ही मानपत्र केवल नमूने के रूप में दिये जा सकते हैं।

(१)

हिन्दी साहित्य समिति की ओर से

श्रीमन्,

आज हम इन्दौर-निवासियों के लिए वह गौरवान्वित सुअवसर प्राप्त हुआ है, जिसके कारण हमारी अन्तरात्मा आनन्द के समुद्र में हिलोरें ले रही है। यह अवसर श्रीमान् की दानवीरता, परोपकारिता और उदारता ने ही उपस्थित किया है। देशहित के लिए श्रीमान् का आजतक १३५००००) का दान और ११०००००) की युद्ध-ऋण में सहायता करना हो उपर्युक्त सद्गुणों के प्रशंसनीय उदाहरण हैं। यही कारण है कि श्रीमान् का गौरव उत्तरोत्तर बढता जाता है। भारत के प्रमुख समाचार पत्र "टाइम्स-आफ-इण्डिया" ने सन् १९१० में आप को "मर्चेंट-प्रिन्स-आफ-मालवा" अर्थात् "मालवे के वणिग्राज" कहकर आप की प्रशंसा की थी। सन् १९१५ में भारत सरकार ने आप को "रायबहादुर" की उपाधि से भूषित किया, सन् १९१६ में इस पुण्यधरा के परमकृपालु अधिपति श्रीमन्महाराजाधिराज राजराजेश्वर सवाई तुकोजीराव होलकर सरकार ने अपने वर्षग्रन्थि-महोत्सव के दरबार में आपको योग्य आसन से सम्मानित किया और एक उत्तम सजा हुआ हाथी सदैव उपयोग के लिए प्रदान किया। आप को इस प्रकार परम गौरव-पात्र जानकर भारत सरकार की दृष्टि फिर आप की ओर आकर्षित हुई और इसका दृश्य फल यह हुआ कि भारत सम्राट् श्री पंचम जार्ज के गत वर्ष-ग्रन्थि-महोत्सव पर आप "नाइटहुड" की उच्च उपाधि से विभूषित किए गए। आपके इस नूतन गौरव के उपलक्ष्य में आज हम मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति के पदाधिकारी तथा सभासद-गण आप को बधाई देने के लिए यहां एकत्रित हुए हैं। आप को बधाई देने में हमे सविशेष हर्ष है। कारण, आप का हिन्दी भाषा में परम अनुराग है। वह मध्य-

भारत-हिन्दी साहित्य-समिति आप की अध्यक्षता में प्रतिदिन सफलता की ओर बढ रही है। समस्त जैन ग्रन्थों का हिन्दी मे अनुवाद करने का प्रबन्ध करने मे भी आपका हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त इस वर्ष के अखिल भारतवर्षीय अष्टम-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागत-कारिणी-समिति के सभापति का उच्च पद आपने किस योग्यता के साथ भूषित किया, यह आप के राष्ट्र-भाषा-हिन्दी के प्रति परम श्रद्धास्पद अनुराग का परम प्रकाशमान प्रमाण है। भविष्य मे राष्ट्र-भाषा हिन्दी की कीर्तिपताका समस्त भारतवर्ष मे उडाने के प्रचण्ड सग्राम मे आप अपने नूतन "नाइटहुड" का परम वीरता से परिचय देगे :—ऐसी हमे पूर्ण आशा है। अब हम आपका अभिनन्दन करते हुए यही शुभकामना प्रदर्शित करते है कि आप निशिदिन परोपकार करते रहे और उत्तमोत्तम गौरवास्पद पदवियो से भूषित होते रहे।

भवदीय,

२८ जुलाई १९१८। मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति
के
पदाधिकारी तथा सभासद-गण

(२)

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा द्वारा हीरक जयंती पर समर्पित मानपत्र

श्रीमन्

यह देखकर अत्यन्त हर्ष होता है कि इन्दौर की समाज ने आपकी हीरक-जयन्ती का उत्सव मनाने की आदर्श योजना करके न केवल कृतज्ञता का ही प्रकाशन किया है, बल्कि समाज के सामने धर्म और समाज की सेवा करने वालो का किस तरह बहुमान होना चाहिये, इस बात का उदाहरण भी उपस्थित किया है। इस महोत्सव मे सम्मिलित होकर श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा को भी आपका अभिनन्दन करते हुए अत्यन्त हर्ष होता है।

सौभाग्यशालिन्

केवल दृढ, शुभ, सुन्दर, तेजस्वी और चारुलक्षण शरीर, अनेक गुणवती पतिभक्तिपरायणा धर्मपत्नी, विनीत, शिक्षित, सुन्दर कार्यपटु पुत्र, तथाविध होनहार पौत्र, गुणशीला पुत्रियां, सर्वथा अनुकूल बन्धुबान्धव, भोगोपभोग, अतुल वैभव और सत्संगति आदि ही नहीं; समाजमान्यता, जातिमान्यता, राज्यमान्यता और साम्राज्य मान्यता भी आपके पूर्वसंचित महान पुण्य के उदय से प्राप्त अनुपम सौभाग्य के प्रदर्शक है, जिससे हमारी सम्पूर्ण समाज अत्यन्त गौरव का अनुभव करती है।

विवेकशालिन्

समाज, जाति, राज्य और साम्राज्य द्वारा आपकी मान्यता के कारण वे गुण है, जो कि अत्यन्त दुर्लभ हैं। निःसन्देह आपने वैभव और गुणो का सग्रह करने मे एकान्तवाद का किन्तु इनका उपयोग करने मे मानो विरोधी धर्मों को आत्मसात् करने वाली स्याद्वादनीति का ही आश्रय लिया है। क्योकि उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और दृढ अध्यवसाय के द्वारा जिस तरह आपने अपार सम्पत्ति का उपार्जन किया है, उसी तरह कला-कौशल्य, वाक् चातुर्य, दूरदर्शित्व, सत्यप्रियता, परहितपरायणता, क्षमाशीलता, निरभिमानता, सरलता, उदारता और नीतिपरायणता आदि अनेक गुणो का भी उपार्जन किया है। शास्त्रो मे मेघेश्वर जयकुमार का नाम ब्रह्मचर्य और परिग्रहपरिमाणव्रत के लिये प्रसिद्ध है। किन्तु आपने आजीवन गृहस्थोचित अखड ब्रह्मचर्य का पालन करके और हाल ही मे परिग्रहपरिमाणव्रत को भी लेकर इस युग मे भी मानो उक्त जयकुमार के स्वरूप

को प्रत्यक्ष करके बता दिया है । इस तरह अनेक गुणो का आपने जहां संग्रह किया है, वहां स्वभुजोपार्जित लक्ष्मी का दान और भोगोपभोग मे यथेष्ट व्यय भी किया है । प्रसन्नता का विषय यह है कि परस्पर मे विरोधी सरीखे दीखने वाले भी दोनो ही आपके कार्य लक्ष्मी का त्याग और गुणो का अत्याग दिगम्बर जैन समाज के लिए असाधारण है और प्राचीन महान सद्गुणी श्रीमानो का स्मरण दिलाते है ।

परोपकारिन्

आपने केवल द्रव्य का दान करके ही नही, शारीरिक, मानसिक और वाचिक आदि शक्तियो के दान द्वारा भी समाज का अब तक महान् उपकार किया है । सदा ही पचायती के झगडे मिटाकर उनमे शान्ति और प्रेम को व्यवस्थित रक्खा है, अनेकानेक संस्थाओ का संचालन किया है तथा अन्य रूपो मे भी हितमय उपदेश सम्मति आदि देकर समाज का महान् हितसाधन किया है ।

दानवीर

आपकी विवेकपूर्ण उदारता और दानवीरता का उल्लेख करना तो मानो सूर्य को दीपक बताने की चेष्टा करना है । जर्मन युद्ध के समय सरकार को सहायतार्थ एक करोड से भी अधिक का वार लोन, इन्दौर मे आई हास्पिटल और पारमार्थिक संस्थाओ का उद्घाटन तथा इन्दौर और उसके बाहर की ओर भी अनेक जैन अजैन संस्थाओ को दिया हुआ हजारो लाखो रुपये का दान, आपके इस स्वाभाविक महान गुण को स्वयं स्पष्ट कर रहा है, जिसको कि वह कभी भुला नही सकती, क्योंकि इसके कारण ही आपने अनेक बार दी हुई सहायताओ के अतिरिक्त दस हजार की एकमुश्त सहायता देकर महासभा के प्रबन्ध विभाग की जड को सदा के लिये स्थिर बना दिया है ।

तीर्थभक्त शिरोमणि

सचमुच मे आपकी तीर्थभक्ति अनुपम है, क्योकि आपने सदा और हर तरह से न केवल आर्थिक सहायता ही देकर, किन्तु मन, वचन और काय से अश्रान्त परिश्रम भी उठाकर शिखरजी, गिरनारजी, पावापुरजी, ऋषभदेवजी, मक्सीजी, पावागिरिजी आदि प्राय सभी तीर्थों की रक्षा के लिए असाधारण भक्ति का परिचय दिया है । केवल अचेतन तीर्थों का नही, मुनिविहार रुकावट के समय अपूर्व स्वार्थत्याग करके तथा महान् लोकोपयोगी, अत्यन्त दृढ और प्राय सभी आवश्यक विषयो से सम्बन्ध रखने वाली पारमार्थिक संस्थाओ के निर्माण द्वारा धार्मिक एव लौकिक विद्वानो की सृष्टि उत्पन्न करके तथा असमर्थ सधर्मियो को साहाय्य करके सचेतन तीर्थों की भी रक्षा की है, जो कि आपके स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना अग को प्रकाशित करती है ।

महासन्मान्य

आपकी दानशूरता देखकर महासभा ने आपको दानवीर के पद से तथा अतुल तीर्थभक्ति को देखकर दि० जैन मालवा प्रान्तिक सभाने तीर्थभक्तशिरोमणि के पद से अलकृत किया है । इसके सिवाय कोई एक जाति ही नही, सभी जातिया आपको सपूर्ण समाज का शिरोमणि समझती है । अपने उपर्युक्त अनेको गुणों के कारण आप अनेको राज्यो से भी सम्मान्य हैं। जिस तरह बीकानेर के महाराज ने आपकी प्रशसा कर सन्मानित किया है, उससे कही अधिक ग्वालियर सरकार से भी आप सम्मानित रहे है । हाल मे ही श्रीमत आलीजा बहादुर महाराजा साहिब ग्वालियर ने आपको अत्यन्त सन्मान के साथ खिल्लत अता फरमाई है । इन्दौर महाराजा साहिब को तो "राज्यभूषण" "रावराजा" का पद और अनेक सम्मानपूर्ण अधिकार देकर भी सतोष नही हुआ, तो हाल मे अपनी इस वर्षगांठ के अवसर पर "राज्यरत्न" के महान् पद से आपको पुन विभूषित किया है । ब्रिटिश सरकार ने भी रायबहादुर और सर नाईट जैसे असाधारण पद और सम्मान देकर आपको अलंकृत किया है ।

आपके इस गौरव को यह श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा भी आदर के साथ देखती हुई अत्यन्त हर्ष प्रकट करती है और इस बात का अनुभव करती है कि आपने अपने इस हीरक जीवन मे जो २ धार्मिक सामाजिक एवं देश की या राज्य की सेवाओ के महान कार्य किये हैं, उनसे न केवल समाज उपकृत ही हुई है, बल्कि उसका गौरव, प्रताप और प्रभाव भी वृद्धि को प्राप्त हुआ है। आपके निमित्त से प्राप्त हुए समाज के इस महान गौरव को ध्यान मे रखकर महासभा इस गौरव की सदातन स्मृति के लिये आपको "जैन दिवाकर" के पद से पुन.विभूषित करने मे अत्यन्त हर्ष का अनुभव करती है।

जैनदिवाकर

अन्त मे हमारी यही भावना है कि आपके इसी तरह के अनेक महोत्सव सदा देखने को प्राप्त होते रहे। और आप—

वृषभा अजितोत्साहाः, शान्तिश्रेयोऽभिनन्दनाः। चन्द्रप्रभमुखा नित्यं वर्धमानसमृद्धयः ॥
सुमतय शुभशीतलभावना, विनयकृद्वसुपूज्यगुणान्विताः। विमलधर्मप्रभावनभास्वरा विनतिहर्षितसन्मुनिसुव्रताः॥
अनन्तयशसा युक्ताः पुत्रपौत्रादिभिः सह। तीर्थेश इव भूयासुः सुखिनश्चिरजीविन ॥

श्री. भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्म–संरक्षिणी महासभा की ओरसे

विनीत

भागचन्द सोनी, रा ब. एम. एल. ए सभापति महासभा

(३)

इन्दौर के ग्यारह पंच औद्योगिक तथा व्यापारी समाज की तरफ से हीरक जयंति पर भेंट

श्रीमन्!

हमारे आदरणीय नरेश श्रीमन्त महाराजाधिराज राजराजेश्वर सवाई श्री यशवन्तराव होलकर बहादुर जी. सी. आई. ई ने श्रीमान् की राज्य, नगर, प्रजा और समाज की उदारतापूर्ण सेवा व सहायता से प्रसन्न होकर श्रीमन्त की २८ वी वर्षगाठ के शुभ अवसर पर आपको "राज्यरत्न" की उच्च उपाधि से विभूषित कर जो सम्मान प्रदान किया है, उसे हम अपनी व्यापारी समाज का ही सम्मान और आदर समझते हैं और आपका हृदय से अभिनन्दन करते हुए अपने हृदय के भावो को व्यक्त करने के लिये यह अभिनन्दन–पत्र समर्पित करते हैं।

मरचेंट प्रिंस ऑफ मालवा!

आपने केवल १६ वर्ष की अवस्था से ही व्यापार-क्षेत्र मे प्रविष्ट होकर जिस प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति की है और इन्दौर को व्यापार का प्रमुख केन्द्र बनाने मे जैसा प्रयत्न किया है, वह सबको विदित ही है। कलकत्ते मे ज्यूट मिल, स्टील का कारखाना, बीमा कम्पनी आदि बडे-बडे व्यवसाय खोलना, भारतवर्ष मे नही वरन् विदेशो मे भी व्यापार द्वारा अपने नाम की छाप जमाना और करोडो की सम्पत्ति उपार्जन करना, इसी प्रकार मालवा के कई नगरो मे रुई के जीन प्रेस, उज्जैन मे आदर्श हीरा मील और खास इन्दौर मे कपडों की बडी-बडी मीलें आदि आपके साहस, उद्योग, धैर्य तथा दूरदर्शिता के उदाहरण है। इनके साथ ही साथ व्यापारिक कुशलता और अनुभव आपका इतना बडा चढा है कि आपने वायदे के सौदो मे भारतवर्ष मे ही नही, किन्तु विदेशो मे भी अपना आतङ्क जमा रखा है। पर, हमे यह देखकर आश्चर्य होता है कि आप उसकी अस्थिरता को भी अच्छी तरह समझते हैं,जैसा कि आपने अग्रवाल-महासभा के इन्दौर-अधिवेशन मे सट्टे के विरोध का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए अपने भाषण मे कहा था।

आपकी औद्योगिक और व्यापारिक कुशलताओ को देखकर यदि सुप्रसिद्ध अंग्रेजी समाचार पत्र 'टाइम्स

आफ इ डिया ' आपको 'Merchant Prince of Malwa' घोषित करे, तो उसे हम उचित ही समझते है और इसमें अपना गौरव एव सौभाग्य समझते हैं कि हमारे मालवा प्रान्त के व्यापारी समाज की आप सरीखे प्रतिभा-सम्पन्न नर-रत्न शोभा बढा रहे हैं। आपके सम्बन्ध मे आचार्य सर पी सी. राय ने आपकी सर्वश्रेष्ठ व्यापारियो मे गणना कर जो उद्गार प्रगट किये हैं, उससे आपका गौरव तो बढता ही है, पर हम भी उसे अपना गौरव समझते हैं।

राज्य-रत्न !

आप न केवल अपने ही व्यापार का किन्तु राज्य के अनेक प्रकार के व्यापार तथा व्यापारी वर्ग का ध्यान रखते है और उन्हे सुसंगठित बनाने तथा उनकी कठनाइयो को दूर करने मे भी सदा प्रयत्नशील रहते हैं। इसी प्रकार राज्य की ओर से जब किसी व्यापारी समूह को कोई विशेष सुविधा दिलाने की आवश्यकता होती है, तब आप उसके अगुआ का भार ग्रहण कर अपने प्रभाव, राजमान्यता और चातुर्य से उसमे सफलता प्राप्त कर हमे विस्मयविमुग्ध कर देते है। आपकी इन अमूल्य सहायताओ को हम कभी नही भूल सकते। कॉटन मार्केट–कमेटी, सोना चाँदी सराफ एसोशिएशन, तुकोजीराव क्लाथ मार्केट, मिल ओनर्स एसोसियेशन आदि की स्थापना मे प्रमुख भाग लेकर इन व्यापारो और उद्योगो को सुसंगठित करने के साथ ही साथ इन्हे सरकार से जो अनेक प्रकार की सुविधाए दिलाई हैं, वे इन व्यापारो और संस्थाओ के इतिहास मे सदा आदर की दृष्टि से देखी जायेगी और श्रीमान् की सम्यक् सहायताओ के लिए हम आपके सदा कृतज्ञ बने रहेंगे।

राज्यभूषण !

इतने धनीमानी, प्रतिभाशाली एव प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हुए भी आपकी नम्रता, आपका सौजन्य, आपकी सरलता एवं आपकी मिलनसारिता अद्वितीय है। आपकी हर्ष एव विषाद दोनो मे सम भावना योगियो के सदृश्य है। जो व्यक्ति आपसे एक बार मिल जाता है, वह आपके उक्त गुणो से प्रभावान्वित होकर सदा के लिए आपका प्रेमी बन जाता है। यही कारण है कि नरेश, वॉइसराय, गव्हर्नर्स, रईस, देशनेता, पडित, बाबू, गरीब और अमीर आदि सभी श्रेणी के व्यक्ति आपसे मैत्री एवं प्रेम रखते हुए आपको अपना ही समझते हैं और आपकी मुक्त कंठ से प्रशसा करते हैं।

दानवीर !

आप न केवल सम्पत्ति उपार्जन करना ही जानते हैं, किन्तु उसका सुचारु रूप से उपभोग करने मे आप अनुकरणीय है। जहाँ आपके वैभव को प्रगट करने वाली राजसी ठाठ की अनेक इमारतें इन्दौर नगर की शोभा बढ़ा रही है, वही आपके द्वारा लाखो रुपयो के दान से स्थापित महाविद्यालय, प्रिंस यशवंतराव जैन औषधालय, प्रसूतिगृह, जंवरीबाग विश्राति भवन, श्राविकाश्रम, अनाथालय, बोर्डिङ्ग आदि उपयोगी सस्थाएं आपके उदार हृदय एव दानवीरता का परिचय देती हैं। इसी प्रकार लेडी हार्डिङ्ग हास्पिटल, सर हुकमचन्द आई हास्पिटल, किंग एडवर्ड हास्पिटल, कृषक फण्ड आदि संस्थाएं आपके लाखो रुपयो के दान से जनता को सदा के लिए कृतज्ञता की पाश मे बाध लेती हैं और धनीमानियो के सन्मुख त्याग और उदारता का अद्वितीय एवं ज्वलत उदाहरण उपस्थित करती है।

रावराजा !

आप न केवल धन-धान्य से ही परिपूर्ण है, किन्तु शरीर सगठन, पुत्र-पौत्र आदि सातो सुखो से भी आप पूर्ण रूपेण सुखी हैं। ऐसा सौभाग्य बहुत कम व्यक्तियो को प्राप्त होता है। साथ ही आपके पुत्र भी उच्च शिक्षा से सुशिक्षित, उदार एवम् समस्त जनता के प्रिय बन रहे है। इस तरह सभी प्रकार की वैभव विभूतियो

ये श्रीमान को विभूषित देखकर श्रीमंत होलकर नरेश ने जो 'रावराजा' की उपाधि प्रदान की है, वह उचित ही है।

सर सेठ साहब !

यद्यपि आपकी कृपा से अनेक सामाजिक, धार्मिक और व्यापारिक संस्थाएं संस्थापित है और सुचारु रूप से चल रही हैं, तो भी हमें इस समय एक सुसंगठित 'चेंबर आफ कामर्स' की आवश्यकता प्रतीत होती है। हमें पूर्ण आशा है कि यह भी कमी आपके सहयोग से बहुत शीघ्र पूर्ण होगी और देश की प्रमुख चेंबर आफ कामर्स संस्थाओं के साथ हम भी अपनी संस्था के द्वारा सहयोग देकर अपने व्यापार उद्योग धन्धों की विशेष उन्नति कर सकेंगे।

अन्त मे हम फिर आपका हृदय से अभिनंदन करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि आप सकुटुम्ब चिरायु होकर धन-धान्य, सुख समृद्धि, मान सम्मान आदि मे उत्तरोत्तर वृद्धिगत हो और आपके द्वारा सदैव समाज, देश, धर्म, राज्य तथा नगर की प्रगति उत्तरोत्तर उन्नति की ओर परिचालित होती रहे।

आपके इन्दौर के
ग्यारह पंच औद्योगिक तथा व्यापारी वर्ग

(४)

सौराष्ट्र की जनता की ओर से

यहां विराजमान आत्मस्वरूपस्थ सद्गुरु श्री कानजी स्वामी, सदुपदेश द्वारा वीतराग विज्ञानता का प्रचार करने मे सतत प्रयत्न कर रहे है। यह बात आपको मालूम होते ही आप धर्मप्रेमी के नाते सहकुटुम्ब संवत् २००१ मे पधार कर, सद्गुरुदेव श्री के प्रवचन श्रवण का लाभ लेकर प्रमुदित होते हुए उत्साहित होकर उसी समय आपने रु० १२५०१), आपकी सौ० धर्मपत्नी ने १२५०१), आपके स्वर्गस्थ बन्धु सेठ कल्याणमलजी साहब को धर्मपत्नी ने रु० ५००१) तथा साथ पधारे हुए माननीय सेठ फतहचन्दजी सेठी ने ५०१) प्रदानकर उदारता दिखाई और धर्म भावना मे वृद्धि की।

एक विशाल प्रवचन मंडप १००×५० फीट का बनाने का निर्णय करके आपको शिलान्यास करने को यहां पधारने का आमन्त्रण दिया गया और आपने सहर्ष स्वीकार कर यहां पधारने का कष्ट कर शिलान्यास विधि की, उस मांगलिक प्रसंग पर भी आपने ११००१) रु० देकर धर्म-प्रेम प्रदर्शित किया। उसके बाद आप श्री सद्-गुरु देव के, यहां के जिज्ञासुओं के और यहां से फैलते हुए सत्य धर्म के प्रति सतत सद्भावना रखते है। आपको इन्ही गुणों से आकर्षित हो 'भगवान श्री कुन्द-कुन्द प्रवचन मंडप' के उद्घाटन करने को आमन्त्रण दिया गया और उसे सहर्ष स्वीकार कर, वृद्धावस्था और अस्वस्थ होते हुए भी, बहुत दूर से आपने व श्रीमान् रायबहादुर राजकुमारसिंहजी साहब, आपके समस्त कुटुम्ब और मित्र वर्ग ने यहां पधारने का कष्ट किया तथा कल आपने रु० ७००१), ७००१) आपकी धर्मपत्नी सौ० दा शी कंचनबाईजी ने, ७००१) श्री राजकुमारसिंहजी ने, ७००१) आपके पौत्र राजाबहादुरसिंहजी ने, ७००१) आपकी पुत्रवधू सौ० प्रेमकुमारीदेवीजी ने प्रदान कर उदारता दिखाई। इससे हम सब आपका हृदय से उपकार मानते है।

आपने अपनी यात्रा को (सोनगढ यात्रा) नाम देकर सफल किया है और सोनगढ (सुवर्णपुर) को तीर्थ स्थान के समान प्रसिद्ध कर दिया है।

आप सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति निरन्तर हार्दिक भक्ति दर्शा रहे है और साथ ही आहारदान, शास्त्र-

दान, अन्नदान, औषधिदान मे लाखो रुपया दे संस्थाओ की स्थापनाकर पुण्य कार्य कर रहे हैं, जो कि प्रसिद्ध है। विशेष क्या कहा जाय, आप इस समय पचहत्तर लाख रुपये से अधिकका राजाशाही बृहद्दान करके जैनधर्म की कीर्ति की ध्वजा फहरा रहे हैं।

अन्त मे आप सदृश उदारचित्त सद्धर्मप्रेमी श्रीमान् की, श्री राजकुमारसिंहजी और आपके समस्त कुटुम्ब की सद्धर्म विषयक अभिरुचि तथा धर्म प्रभाव के कार्यों के करने की अभिलाषाये दिन प्रतिदिन वृद्धिंगत होती हैं, इसी हार्दिक शुभ कामना से फूल पांखडी रूप अभिनन्दन पत्र आपके कर कमलो मे अर्पण करते है।

हम हैं आपके गुणानुरागी

सोनगढ स्वर्णपुरी — *दोशीरामजी माणेकचन्द तथा अन्य लोग*

(५)

नागपुर के रुई व्यापारियो की ओर से

मान्यवर,

आप प्रथम बार हमारे नगर मे पधारे है, यह हम अपना सौभाग्य समझते है। आप भारत के प्रमुख ही नहीं, चोटी के व्यवसाइयो मे से है। अत. हमारे यहां आगमन से हमे परम आनन्द हो रहा है।

भारतीय व्यवसाय मे आपका क्या स्थान रहा है, यह इस देश मे ही नहीं, बाहर भी विख्यात है। आप जिस वक्त क्रियात्मक रूप मे काटन व्यवसाय मे थे, "काटन किंग" इस नाम से विख्यात थे। किंवदंति प्रसिद्ध है कि उस वक्त "आज का भाव तो यह है, कल का भाव सेठ हुकमचन्द जाने" ऐसा लिखा जाता था। किसी व्यापारी के गौरव शिखर की इससे बडी क्या महिमा हो सकती है।

आप व्यवसाय मे ही नही, उद्योग क्षेत्र मे भी अगुआ है। जिस वक्त कलकत्ते मे सारे उद्योग प्रायः अंग्रेजो के हाथ मे थे, उस वक्त आप भारतीय व्यापारियो मे से प्रमुख रूप से उद्योग क्षेत्र मे उतरे। इन्दौर राज्य के आप सबसे बडे उद्योगपति है। यह भी आपका महान् गौरव है।

सबसे प्रचण्ड व्यवसाय रहते हुये भी आपने यह प्रतिज्ञा भी की कि रुई का सट्टा कभी नही करेंगे। आपका यह उज्ज्वल उदाहरण सट्टेवालो के लिये अनुकरणीय है।

आपने जिस प्रकार अटूट धन सम्पत्ति अर्जित की, उसी प्रकार मुक्त हस्त से दान भी दिया। जैनधर्म एवं अन्य सार्वजनिक संस्थाओ को लाखो का अगणित दान उदारता का साक्षात् प्रतीक है।

आपमे अनेक गुण व विशेषताएं है जिनसे सभी भारतीय व्यापारी परिचित है। इस छोटी सी जगह म उन सबका वर्णन सभव नही है।

आपके प्रति अपने आंतरिक आदर के साथ हम पत्र पुष्पाजलि आपकी सेवा मे अर्पित करते हैं।

हम है आपके विनम्र

नागपुर के रुई व्यापारी

(६)

सीकर की जनता की ओर से

महानुभाव,

आज श्रीमान् लाला परसादीलालजी पाटनी द्वारा सुसम्पादित इस दिगम्बर जैन पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव मे समुपस्थित आपको पाकर हम समस्त सीकरनिवासियो को परम हर्ष हुआ है। हम आपके गुणपुंजो की एक लम्बे समय से प्रशंसा सुनते थे और चाहते थे कि आपका कुछ सम्पर्क प्राप्त करें।

अनेकों उपाधिविभूषित आपको जैनसमाज, इन्दौर राज्य तथा बडी सरकार ने भी अनेकानेक उच्चत्तम उपाधियो से विभूषित कर अपनी गुणज्ञता और कृतज्ञता का परिचय दिया है, जिसका प्रत्येक मानव क अभिमान है।

इस समय आपकी अवस्था वृद्धत्व की ओर समुपस्थित है और इसी ने हमे आपका अभिनन्दन करने के लिये भी विवश किया है।

आपकी योग्यता और प्रतिभा इस वृद्ध वय मे भी इतनी है कि आप अपने तत्संपन्न व्यक्तित्व से गहन से गहन कार्यों को सुलझा देने की शक्ति रखते है। जहाँ तक हम समझते हैं, आपके इन गुणो से ही आपकी असाधारण लोकप्रियता है।

महानुभाव,

यद्यपि आपने जैन समाज मे जन्म पाया है और आप जैन कुल को ही अलंकृत करते हैं, परन्तु आप अपने सुन्दर गुणो से सभी समाजो के आदरणीय और प्रेमास्पद पुरुषोत्तम है। आपने जैन संस्थाओ मे तो शिक्षा, स्वाध्याय, धर्म आदि के प्रसार के लिये लाखो रुपयो का दान दिया है। परन्तु हिन्दू विश्वविद्यालय आदि महान संस्थाओ मे भी अपनी महान् सम्पत्ति का उपयोग कर सभी मे अपनी असाधारण लोकप्रियता का परिचय दिया है।

हम आपने मे जो उत्साह और लगन देखी, उससे विदित होता है कि आप परोपकार और सामाजिक धार्मिक कार्यों मे एक युवा से भी बढकर सहयोग देने वाले व्यक्ति है।

आपकी निरभिमानता व सरलता आदि गुणो का प्रभाव सम्पर्क मे रहने से पडे बिना नहीं रहता। वास्तव मे हम सभी लोग परम्परा से विश्रुत आपके गुणो से पर्याप्त प्रभावित हुए है।

हमारी भगवान् से प्रार्थना है कि आप निरोग स्वस्थ रहते हुये शतायु हो और प्रत्येक दिशा मे अधिक समुन्नति करते हुए दश के गौरव को और भी अधिक बढावें।

१६ मार्च १९४८ ईस्वी,

हम हैं आपके
समस्त सीकर निवासी

: ४ :

सार्वजनिक भाषण

सेठ साहब के विचारो का वास्तविक परिचय आपके सार्वजनिक भाषणो से मिलता है। आपके सार्वजनिक भाषण भी इतने अधिक है कि उनका संग्रह भी एक सुन्दर ग्रन्थ का रूप धारण कर सकता है। सेठ साहब की सार्वजनिक प्रवृत्तियो का क्षेत्र कितना व्यापक और विस्तृत था,—यह यहां दिये जाने वाले भाषणो से भी प्रगट है। यहां केवल नमूने के रूप मे चुने हुये कुछ थोडे से ही भाषण दिये जा सके हैं।

(१)
स्वदेशी धर्म

जनवरी १९२३ मे इन्दौर मे विशाल स्वदेशी प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने उसका उद्घाटन किया था। तब सेठ साहब ने स्वागताध्यक्ष के नाते जो महत्वपूर्ण भाषण दिया था, वह यह है:—

हमारे इस नगर के लिए मै इसे बडे आनन्द और अभिमान की बात समझता हूँ कि स्वदेशी और स्वदेशी प्रदर्शिनी की जो एक जबरदस्त लहर इस देश मे आई है, उसके कुछ हिस्से के भागीदार हम इन्दौरवासी भी हो रहे है। इन्दौर मध्यभारत का तथा आसपास के देशी राज्यो का केन्द्र है। विद्या और व्यापार के लिए भी यहा अनेक अनुकूलतायें और साधन है। यहा के लोग शिक्षित और कुछ आगे बढे हुए होने के कारण लोग स्वदेशी क महत्व को समझते है और अपने इन भावो को वाणी और आचार मे लाने की कुछ कोशिश भी करते हैं। इसलिये भारतवर्ष के स्वदेशी व्यापार के यहा भी आकर्षित होने की बहुत भारी संभावना है। इन्दौर राज्य मे और मध्यभारत मे कच्चे माल का बहुत बडा खजाना है और हमारे आगे बहुत उज्ज्वल भविष्य मुसकुरा रहा है। मुझे आशा है कि यहा के नरेश, अधिकारी लोग, धनिक और जनता के अगुआ इस बात की ओर जरूर ध्यान देगे कि कच्चे मालरूपी इस अखूट साधनसम्पति का किस तरह अच्छे से अच्छा उपयोग किया जाय।

केवल भारतवर्ष ही नही, सारे संसार के लोग आज इस स्वदेशी की धुन मे लगे हुए है। पर, उनकी 'स्वदेशी' की कल्पना मे और हमारे स्वदेशी धर्म मे बडा अन्तर है। वहा भी अनाज और अनेक प्रकार का कच्चा माल खूब पैदा होता है। इतना पैदा होता कि जिसकी उन्हे जरूरत नहीं। इस कच्चे माल की अनेक तरह की चीजे वे अपने कारखानों मे बनाते है और फिर उन तैयार चीजो को और अपनी जरूरते पूरी करने पर बचे हुए कच्चे माल को बेचने के लिये नये-नये बाजार ढूंढते है। इस पर उनमे चढा-ऊपरी होती है और कई बार लडाई तक की नौबत आ पहुँचती हैं। पर कारखानो के इस युग मे जहा बहुत से आदमियो का काम अकेली एक मशीन कर लेती है और जहा सारी दुनिया पैसे के पीछे पडी हुई है, माल की खूब पैदावार होने पर भी बहुत से लोगो को पेटभर खाना और तन पर कपडा भी नही मिलता। ये चीजे खरीदने के लिए उनके पास पैसा नही रहता। इस कारण पश्चिम के बहुत देशो मे दिन ब दिन बेकारी बढती जा रही है। लाखो लोग भूखो मर रहे हैं,जिनके पेट भरने की समस्या वहा के अधिकारियो को उलझाये हुए है। ससार की आर्थिक अवस्था डांवाडोल हो रही है। जिसके कारण समय समय पर सिक्के की कीमत भी बदलती रहती है। जिसके असर से व्यापार को गहरी हानि पहुँचती है। आज पश्चिम के अर्थशास्त्री और राजनितिज्ञ इन जटिल समस्याओ के सुलझाने मे लगे हुए हैं।

हालत तो हमारे देश के व्यापार की भी ऐसी ही है। बाहर की परिस्थिति का कुछ असर तो है ही, परन्तु हमारे घर की समस्या उसे अधिक जटिल बना रही है। व्यापार और खेती की हालत गिर रही है। फी लदी करोब सत्तर आदमी खेती मे लगे हुए हैं। इससे उस पर बहुत बोझा पड रहा है। फिर हमारे खेती करने के ढंग और औजार इतने पुराने है कि किसान को अपनी और अपने परिवार वालो की मजदूरी का मुआवजा तक नही मिल सकता। बेचारा यह नहीं जानता कि सालभर दो बार भरपेट खाना और तन पर पूरा कपडा पहनना कैसा होता है। ऐसा जीवन बिताने के लिये भी उसे कर्ज करना पडता है। अज्ञान और दुबले किसान की खेती पूजी और शास्त्रीय ज्ञान के अभाव मे कैसे फूले फलेगी? ऐसी हालत मे बहुत से लोग रोजी के लिए शहरो मे बसते जा रहे है और गाव उजड रहे है।

पहले जमाने मे प्राय हरएक गाव अपनी मामूली जरूरत की चीजे खुद ही पैदा कर लेता था। उनकी जरूरतें भी बहुत थोडी थी। इससे गावो का पैसा बाहर नही जाता था। अब तो गावो मे सारी चीजें बाहर से आती है। खेती की उपज सीधी राज के घर मे जाती है। इसलिए अनाज, लगान, कर्ज और दूसरी चीजें खरीदने मे किसान का घर धुल जाता है। एक पैसा नही बच पाता।

मध्यवर्ग के लोगो की हालत भी अच्छी नही। पटवारा, बकालत, मास्टरी और डाक्टरी के सिवाय कोई धन्धा उनके लिए खुला नही है। इन धन्धो मे भी "माग से ज्यादह माल" वाली कहावत चरितार्थ हो रही है।

बेकारी बेहद बढ रही है। सर विश्वेश्वरैया का अन्दाज है कि भारतवर्ष मे चार करोड लोग बेकार हैं। पता नही इसमे उन्होने उन वैरागी और भीख मांगने वाले लोगो को भी शरीक किया है या नहीं, जिनके अन्दर काम करने की ताकत होने पर भी जो काम नहीं करते।

एक ओर देश मे कच्चे माल का अखूट खजाना है और दूसरी ओर देखिए इस हृदयद्रावक बेकारी को, जो देश मे फैली हुई है। फिर भी बाजारो मे दुकानो पर विदेशी माल बेहद भरा पडा है और धडाधड बिक रहा है, जिसकी वजह से करोडो रुपये दूसरे देशो मे जा रहे हैं। साठ करोड रुपये केवल कपडे के पीछे हम विदेशो मे भेज देते हैं। दस बारह करोड रुपये की विदेशी चीनी हम मगाते है। इनके अलावा मशीनें, मोटरे, रग, खिलौने, दवाये, रासायनिक चीजे और अन्य खाने के पदार्थों के पीछे करोडो रुपये का धन हम हर साल बाहर भेज देते है, जिसकी वजह से व्यापार के लिये पूंजी की हमेशा बडी तंगी रहती है। यहां के लोगो को काम न मिलने के कारण बेकारी तो रहती ही है, जिसकी वजह से संसार के और देशो की अपेक्षा यहां के लोगो की रहन-सहन बहुत नीची है। ऐसी हालत मे भारतवर्ष का यह दारिद्रय और बेकारी हटाने का एकमात्र उपाय स्वदेशी ही है। यह आर्थिक सवाल है और बिना स्वदेशी का जोर-शोर से प्रचार किये कभी हल नही हो सकता। इसमे राजनीति की कोई बात नही। राजनैतिक आन्दोलन से उसका सम्बन्ध लगाने के कारण खामोख्वाह उसे राजनैतिक स्वरूप मिल जाता है। आज देश के सामने जीवन मरण की जंगी और जटिल समस्या खडी है। उसी का यह प्रत्यक्ष आर्थिक स्वरूप है। यह प्रदर्शिनी आज खुल रही है। उसे आप सब खूब ध्यान के साथ देखिये। इसके देखने से आपके ख्याल मे आयेगा कि शास्त्रीय ज्ञान और नये-नये साधनों की सहायता से पहिले कच्चे माल की पैदायश मे तरक्की होना चाहिये। ऊचे दरजे की कपास, बढिया गन्ना, आला दरजे की तम्बाखू, खूब बडे-बडे आलू, मनमाना तेल देनेवाली मूंगफली पैदा करना जरूरी है। फिर इस कच्चे माल की अखूट संपत्ति का उपयोग करके तरह-तरह की चीजे बनाने मे हमे तरक्की करनी चाहिये। हिन्दुस्थान के लोग जग उठे है। मगर अभी वैज्ञानिक साधनो का अच्छी तरह प्रचार यहां नही हो पाया है। जितने बडे पैमाने पर पूंजी और शास्त्रीय ज्ञान का सहयोग होना हमारे देश के लिये जरूरी है, उसकी अभी बहुत कमी है। विदेशी बैंक और इन्शुरेन्स कम्पनियां हमारे देश की गाढी कमाई को खीच कर अपने व्यापार को पुष्ट कर रही है। इस तरफ भी हमे ध्यान देना चाहिये। मै आशा करता हूँ कि इन बातो का शास्त्रीय ज्ञान बढाने वाली योजनाए अब से ज्यादा बडे पैमाने पर काम म लाई जायंगी। दिन ब दिन ज्यादा इन्शुरेन्स कम्पनियां खुलेगी और वे देशी पूंजी द्वारा देशके उद्योगधन्धो मे नई जान डालेगी। पूंजी वाले अपने देश भाइयो के शास्त्रीय ज्ञान से पूरा लाभ उठावेगे, उनकी कद्र करेंगे, उन्हे आगे बढावेंगे, पूंजी और शास्त्रीय ज्ञान का सहयोग दिन ब दिन बढता जायगा। यहां की कृषि सम्पत्ति और वन सम्पत्ति का हम अपने ही देशमे उपयोग करने लगेगे और फिर चंद ही बरसो मे हमारा यह प्यारा देश केवल स्वावलम्बी ही नही, बरन सुसम्पन्न भी बन जायगा।

खादी के बारे मे मैं क्या कहूँ? उसका रहस्य तो आचार्य राय साहब की मूर्ति को देख लेने भर से ही आप जान सकते है। मै तो एक मोटी सी बात जानता हूँ और उसे खास तौर पर आपसे कह देना चाहता हूँ। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि खादी इस देश का प्राण है। गांवों के लोगो के लिये अपने खाली समय का उपयोग करके दो पैसे दूसरे देशो को जाने देने से रोकने और अपनी अधूरी नाकाफी कमाई मे मदत पहुँचाने वाला ऐसा कोई दूसरा साधन नही। यही एक ऐसा उपाय है, जो दिन ब दिन उजड़ने वाले गावो की रक्षा कर सकता है और करोडो भूखो मरने वाले उनके निवासियो को बचा सकता है। मालूम होता है कि इसीलिये देश के बडे-बडे नेताओ ने इसे अपने कार्य मे ऐसा प्रधान स्थान दे रखा है। इसीलिये खादी का ज्यादा से ज्यादा प्रचार

होना अत्यत आवश्यक समझता हूँ ।

इससे स्वदेशी मिल के कपडे को दूर करना और मिलो को हानि पहुचाना ऐसा मतलब नहीं है। हिंदुस्थान की कपडे की मांग देशमे पूरी होती नही । साठ करोड का कपडा बाहर से आता है और बिकता है । हमारे देश की रुई का बना हुआ सूत और उसका कपडा हमारे मिलो में बनता है । यह शुद्ध स्वदेशी है । इसे आम लोगों ने वापरना चाहिये और मील के उद्योग को बढाना चाहिये ।

सिर्फ एक बात और कहके मै अपने भाषण को समाप्त करू गा । प्रदर्शिनी करना जनता मे एक तरह का स्टीम भरना है । प्रदर्शिनी देखने से लोगो के दिलो में स्वदेशी वस्तुओ का प्रेम और अभिमान पैदा होता है । अपने ही देश की बनी हुई चीजे खरीदने की प्रेरणा थोडी ही देर के लिये ही क्यो न हो; लेकिन, पैदा अवश्य होती है । स्वदेशी वस्तुए पैदा करने के विचार भी दिमाग मे चक्कर खाने लगते हैं । पर, ये विचार भी थोडी ही देर तक कायम रहेगे । इनको स्थिर करने के लिये व्यवस्थित प्रचार और आन्दोलनरूपी खुराक की सबसे बडी जरुरत है । मध्यभारत स्वदेशी सघ इसी कार्य के लिये स्थापित हुआ है और मुझे विश्वास है कि वह बहुत जल्दी इन्दौर की तरह मध्यभारत के दूसरे पडोसी राज्यों मे भी अपना जीवनदायी कार्य फैलावेगा । इसको इन्दौर में स्थायीरूप देने के लिये यहा पर स्वदेशी चीजो का म्यूजियम (सग्रहालय) और स्वदेशी चीजें मगाने के लिये स्वदेशी एजन्सी जैसी सस्था भी इसी सिलसिले में निर्माण होनी चाहिए और वह जरूरी होगी ही, ऐसी मुझे आशा है ।

अत मे मुझे हमारे कार्यकर्ता मित्रो के संतोष के लिये यह घोषित कर देना जरूरी मालूम होता है कि अब मै आगे अपने घर मे जहां तक बन सकेगा, वहा तक देशी ही चीजे काम मे लाउगा । इस बात का मै हमेशा पूरा ध्यान रखूंगा ।

ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि यह प्रदर्शिनी सफल हो और हमारी इस मातृभूमि मे स्वदेशी धर्म की विजय हो ।

(२)

महासभा के मच पर से

सन् १६३६ मे अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा के देवगढ अधिवेशन के सभापति पद से सेठ साहब ने निम्न लिखित महत्वपूर्ण भाषण दिया था :—

धर्म एक ऐसी वस्तु है, जिसमें जीवनमात्र के उद्धार करने की शक्ति निहित है । असल मे धर्म का 'धर्म' नाम इसी कारण पडा है कि वह समस्त ससारी जीवो को दु ख समुद्र से निकाल कर उन्हे उत्तम सुख मे धरता है। लेकिन, संसार की परिस्थिति आज बडी विकट हो गई है । 'धर्म' से लोगो को उपेक्षा होती जा रही है । धर्म विरोधी साहित्य का भी निर्माण और प्रचार आज साहित्य-संसार मे बडी तेजी से हो रहा है । जीव और ईश्वर के अस्तित्व तक को मेटने के लिए साहित्य की सृष्टि हो रही है । धर्माचरण की ओर लोगो की रुचि मन्द पडती जा रही है । पाप प्रवृतिया प्रबल रूप धारण करती जा रही हैं और वे यहा तक बढ रही हैं कि उनका करना-कराना आज एक साधारण बात गिनी जाने लगी है ।

कुछ समय पूर्व जहां पर लोग धर्मायतनो और धर्म-मूलक संस्थाओ के निर्माण मे ही अपनी संपत्ति और मन वचन काया की शक्ति का सदुपयोग किया करते थे, आज वहाँ अधर्मायतनो और धर्म-विरोधिनी सस्थाओ के निर्माण करने कराने मे अपनी विभूति और वियोग का दुरुपयोग करते नजर आ रहे है । इन बडी हुई पाप-प्रवृत्तियो के प्रभाव से भविष्य अन्धकारमय प्रतीत हो रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि दुष्षमा दुष्षमा काल

की प्रवृत्तियाँ अभी हाल में ही होना चाहती है। शास्त्र-आज्ञा के अनुसार तथा अपने अनुभवों के आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि पाप-प्रवृत्तियों का परिणाम कभी भी सुन्दर नहीं निकल सकता। उभय लोक हानिकारक इस विपरीत प्रवृत्ति का कारण यदि आप सोचेंगे, तो आपको प्रतीत हो जायगा कि इसके कारण दो हैं। एक तो धार्मिक ज्ञानशून्य कोरा शिक्षण और दूसरा धार्मिक संस्थाओं का शैथिल्य। समाज को चाहिये कि अपनी संतान को धार्मिक शिक्षा से शिक्षित करे और धर्मप्रचारक संस्थाओं के द्वारा धर्म का बड़ी तेजी से प्रचार करे। तभी अधर्म का प्रवाह रुक सकेगा।

धर्म शब्द को रूढिवाद मानने वाले और धर्म पर विश्वास न करने वाले बन्धु वास्तव में यह नहीं जान पाये हैं कि वे जिन जिन सामाजिक या राष्ट्रीय उन्नतियों की आकांक्षा रखते हैं, उन सबके उपाय 'धर्म' शब्द की व्याख्या में निहित है। मैं उन्हें दृढतापूर्वक विश्वास दिलाना चाहता हूं कि धार्मिक तत्वों की रचना इतनी विशाल पैमाने पर की गई है कि उसके अनुसार मनुष्य वर्ग यदि प्रवृत्ति करता चला जाय, तो उसे किसी भी काल में किसी भी अभाव का अनुभव न होगा। क्या सांसारिक और क्या पारमार्थिक सारी सुख-संपत्तियों के साधन धर्म प्रक्रिया में मौजूद हैं।

जीवमात्र जो सुख चाहता है, वह उसे केवल धर्माचरण करके ही प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार पांच पाप अपय और अवद्य-कारक होने के अतिरिक्त दुःख रूप भी है, उसी प्रकार धर्माचरण निःश्रेयसाभ्युदय का कारण और निर्दोष होता हुआ सुखस्वरूप भी है। इसलिए प्राणीमात्र को धर्माचरण करने में कभी भी पीछे न रहना चाहिये।

इस बढे हुए पापवेग के प्रभाव को रोकने और समाज की धर्माचरण में प्रवृत्ति कायम रखने के लिये ही इस "भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा' की स्थापना आज से ४६ वर्ष पूर्व समाज के अनुभवी हितचिन्तकों ने की थी। इसी बात को उद्योत करने के लिये इस संस्था के नाम में 'धर्म-संरक्षिणी' शब्द का विशेषण लगा हुआ है। इस महान उद्देश्य को सामने रखने के कारण तथा महान् पुरुषों द्वारा संसेवित होने के कारण 'महाव्रतों' के नाम की भांति इस संस्था के नाम में 'महा' शब्द का विशेषण भी लगा हुआ है।

यदि हम यह जानते और मानते हैं कि 'धर्म' "सुखस्य हेतु" है, तो महासभा को हमें विशेष कर्त्तव्य-शील करना चाहिए। अन्य धर्मायतनों की भांति यह भी एक सक्रिय धर्मायतन है। इसको सजग रखना जैनधर्म का जयघोष है और इसको शक्तिशाली बनाना जैन समाज को धर्माभिमुख करना है। वर्त्तमान में महासभा के विभागीय कार्यों को चलाने के लिए द्रव्य की बहुत कमी है और कार्यकर्त्ताओं की भी कमी है। अगर यही हालत रहेगी, तो महासभा से जो लाभ समा को पहुंचना था, उस से समाज वंचित रहेगी। इसलिए समाज को इस कमी की पूर्त्ति का विचार करना चाहिए।

महासभा के मुख्य विभाग महाविद्यालय, जैन गजट, उपदेशक विभाग है। इनका खास विचार किया जाना आवश्यक है।

महाविद्यालय

करीब १६ वर्ष से व्यावर में चल रहा था, वहाँ की समाज के प्रमुख श्रीमान् रायबहादुर सेठ चंपालालजी, रामस्वरूपजी तथा व्यावर दिगम्बर जैन पंचायत ने अब तक बराबर उसका संरक्षण किया। श्री रा० सा० सेठ मोतीलालजी तोतालालजी साहब ने कार्य संभाला; परन्तु कई विशेष परिस्थितियों के कारण उन्होंने वैसाख से उसका कार्य-भार स्वीकार नहीं किया है। अत तभी से कार्य बन्द सरीखा ही है। आप महानुभावों को उसके स्थान का और कार्य चलाने के लिए द्रव्य का प्रबन्ध करना चाहिए।

जैन गजट

इसके बाबत भी विचार करना आवश्यक है। इसकी ग्राहक संख्या अधिक कैसे होवे और यह पत्र अपनी नीति पर दृढ़ रहता हुआ समाजप्रिय एवं विशेषोपयोगी कैसे बन सकता है, इसका विचार करें। यदि इसकी ग्राहक संख्या बढ़ जावे, तो इसमें घाटा नहीं रह सकता है और स्थाई चलता रह सकता है।

उपदेशक विभाग

इस विभाग द्वारा अच्छे अच्छे विद्वानों, उपदेशकों का भारत के प्रत्येक प्रांत में गांव-गांव में भ्रमण करा कर धर्म का प्रचार करने की ज़रूरत है। इस विभाग को आर्थिक सहायता मिले, तो इसकी पूर्ति होती रहे।

प्रबंध विभाग

इसके कार्य संचालक मुख्य प्रधान मंत्री होते हैं। इसलिये आप महानुभाव इस समय एक अच्छे प्रधान मंत्री का चुनाव करें।

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए यह बात मुझे अवश्य कहनी पड़ती है कि महासभा के नाम के अनुसार उसकी व्यापकता अभी नहीं है। उसके "महा" शब्द की सार्थकता तभी हो सकती है, जब कि स्थानीय, प्रान्तीय और जातीय सम्पूर्ण सभाओं का संबंध महासभा से रहे। अब तक जिन सभाओं का संबंध महासभा से नहीं है, उन्हें उससे संबंध करना चाहिए और अभी तक जो प्रांत प्रांतीय सभाओं से खाली हैं, उन्हें उनकी पूर्ति करनी चाहिए। जिस प्रान्त में महासभा का यह ४२–४३ वां अधिवेशन हो रहा है, उस प्रांत की प्रांतिक सभा स्थगित पड़ी हुई है। उस सभा के कार्य को चालू करने का उक्त प्रांत के प्रतिनिधियों को प्रयत्न करना चाहिए।

दो बातें विशेष रूप से आपसे कहना चाहता हूं। यह बात निर्विवाद है कि गृहदेवियों का सद्व्यवहार ही गृहस्थ जीवन को समुज्वल और समुन्नत बना सकता है। जिन घरों में सुशील एवं विवेक रखने वाली स्त्रियां हैं, उन्हीं में पात्र दान, उत्तम आचार विचार, मर्यादित शुद्ध भोजन, मितव्ययिता, कुल मर्यादा आदि बातें पायी जाती हैं। जहाँ स्त्रियों में विवेक नहीं है, वहाँ उपर्युक्त सभी बातों में हीनता पाई जाती है। इसलिए स्त्रियों को सुशिक्षित बनाने की बड़ी जरूरत है। सुशिक्षित माताएं सन्तान को सुशिक्षित एवं होनहार आदर्श बना सकती हैं। मुझे भरोसा है कि स्त्री यदि समाज में फैली हुई कुरीतियों को दूर करने का पूरा प्रयत्न करें, तो उनका नाम शेष भी न रहे। मिथ्यात्व सेवन, बालविवाह, कन्या विक्रय ये बातें भी ऐसी हैं, जिनका संबंध स्त्रियों से अधिक है। यदि वे इन भयानक कुरीतियों को न होने देने का दृढ़ संकल्प कर लें, तो समाज से ये कुरीतियां जल्दी दूर हो सकती हैं।

यह बड़ी खुशी की बात है कि आज जैन समाज में स्त्री शिक्षा की तरफ लोगों की दृष्टि पहुंची हुई है। बड़े बड़े स्थानों में स्त्री शिक्षालय और श्राविकाश्रम कार्य कर रहे हैं। महिला परिषद् व महिला मण्डलों ने स्थापित होकर स्त्रियों में शिक्षा की जागृति पैदा कर दी है। हमें आशा है कि इन संस्थाओं का संबन्ध भी महासभा से होकर और भी इनका कार्य समुन्नत हो सकेगा।

मैं अपने नवयुवकों को उन के हित की एक बात और समझाऊंगा। मुझे उन से शिकायत है कि आजकल पाश्चात्य शिक्षा में रंगे हुए युवक अपने सच्चे धर्म की श्रद्धा और धार्मिक मर्यादा को ढीला कर रहे हैं। जैन जनता, जिसे आज मैं इस वृहत अधिवेशन में देख रहा हूँ, भारत की अग्रवाल, खण्डेलवाल आदि अनेक जातियों का समुदाय है। इन सब जातियों का पारस्परिक व्यवहार जुदा जुदा है। इस प्रकार व्यवहार भेद होने पर भी सबका एक प्लेटफार्म पर एकत्रित होना किसी असाधारण विशेषता का सूचक है। इन सब जातियों में यह असा-

धारण विशेषता क्या है ? वह है जैन धर्म, जो सब जातियों मे व्यापक है और जिसने सब जातियों को एक सूत्र मे बांध रक्खा है । उसी जैन धर्म की श्रद्धा और चरित्र को ढीला करके आप अपने समाज के बंधन को ढीला कर रहे हैं । जो हमारे जैनियों के मोटे चिन्ह हैं, जैसे देव दर्शन, रात्रि भोजन त्याग, छना जल पान,—इन्हे पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होकर कुछ लोग फिजूल समझने लगे हैं । एक ओर हम पाश्चात्य शिक्षा के अवगुण दिखाते हैं, दूसरी ओर उसके प्रवाह मे बह रहे हैं । यह एक दुःख की बात है । मै अपने नवयुवकों को अनुभव से सलाह देता हूँ कि वे आर्य-प्रणीत जैन-धर्म पर श्रद्धान दृढ रखें । नित्य प्रति जैन मन्दिर जावें, खान-पान;—शुद्ध रखें, संयमी बनें, अपने व्यापार व व्यवहार में सचाई रखें। इन बातों मे बडा रहस्य है और जैनियों का गौरव है। इनको फिजूल न समझें । इस छोटे से भाषण मे इस सबंध मे विशेष बतलाने के लिए मुझे अवसर नही है ।

सज्जनो ! बहुत सा द्रव्य अनावश्यक और अनुपयुक्त वस्त्रो आदि आडंबरो मे स्वाहा कर दिया जाता है । आजकल समय की गति, वस्तुओं की मॅहगाई, शिक्षादि कार्यों की आवश्यकता हमे ऐसे फिजूल के धन व्यय से सहसा रोकती है । हम लोग व्यापारोन्नति से वणिक कहलाते हैं । परन्तु फिजूलखर्चियो के देखने से कहना पडता है कि वास्तव मे हम वणिक पद्धति से बिलकुल दूर हैं । ऐसे जल संग्रह से क्या लाभ होगा, जो अनावश्यक द्वार से प्रवाहित हो रहा हो । व्यापार की उथलपुथल मे जब धनवृद्धि का मार्ग रुकता जा रहा है, ऐसे समयमे मितव्ययी पुरुष ही अपनी रक्षा कर सकता है । फिजूलखर्ची और धनोपार्जन के मार्ग को देखकर मुझे यह भी कहते हुए संकोच नहीं होता कि ऐसे व्यर्थ व्ययो के बढ जाने से आज द्रव्योपार्जन का मार्ग अनीतिपरायण हो गया है । समय की आवश्यकता और देश की दशा हमे पाठ पढाती है कि अब हम बहुत दिनो से उपयोग मे आई हुई चटकमटक को छोडकर सादी जिंदगी बितावे । छलकपट-रहित और आडम्बर-शून्य सादे जीवन का महत्व बहुत बडा है । अब फैशन के रोग से हमे जितना जल्दी हो सके, मुक्त हो जाना चाहिए ।

मै आप लोगो का अधिक समय न लेकर अन्तमे पुनः इतना कहकर अपना स्थान ग्रहण करूंगा कि आप इस धर्ममूलक पुरानी संस्था को तन मन धन की पूर्ण सहायता देकर इसको बलशाली बनाइये । मै आशा करता हूं कि आप श्रीमान् अपने धन से, धीमान् अपने ज्ञान बल से और कार्यकुशल व्यक्ति अपनी कर्तृत्व शक्ति से इसका भडार भरेगे ।

(२)

आत्मसाधना का संकल्प

जुलाई १९४३ मे शान्ति विधान महोत्सव की समाप्ति पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री राजा ज्ञाननाथजी के सभापतित्व मे हुई तीस हजार नरनारियो की विराट सभा मे निम्न भाषण दिया था :—

इस उत्सव पर पधारे हुए आप सब सज्जन गण यह जानने के लिए उत्सुक होगे कि सेठ साहब संसार छोडकर मुनिव्रत धारण करना क्यो चाहते है ? इस सबंध मे कई तरह की बातें उडी हैं, वे बिना पाए की नहीं हैं । वास्तविक परिस्थिति क्या है, यह मै आपके सामने रखता हूं । मेरी आयु के बारे मे ज्योतिषी लोग कुछ का कुछ कहते हैं । मै खुद भी ज्योतिष देखने वाला हूं । परन्तु आयु के पूरे दिन तो भगवान ही जान सकते हैं । ज्योतिषी तो अन्दाजा लगाता है । उसपर पूरा विश्वास नही किया जा सकता । यह मै जानता हूं कि शायद ७० वें वर्ष मे यह शरीर रहे या न रहे । कोई ज्योतिषी मेरी आयु के ३ वर्ष या ४ वर्ष बताते है. किन्तु मेरे को इस बारे मे कतई चिन्ता नही है । यह शरीर दो वर्ष रहे, दो महीने रहे या दो दिन ही रहे । संसार मे जो मनुष्य देह मिली है, जिस तरह दूध से मक्खन निकाला जाता है उसी तरह इससे जितना पुण्य या धर्म कार्य बन सके, उतना करना यही मेरा सदा ध्येय रहा है । परन्तु मै ऐसी कोई बात नही करूंगा, जिससे पीछे मेरी हंसी हो । मैं जो पांच

बढाऊंगा, वह बहुत सोच-समझ कर बढाऊंगा और एक बार जो पैर आगे बढाया, वह फिर आगे बढता जायगा; पीछे नही हटेगा। मै पहले से ज्यादा समय धर्मध्यान मे लगाऊगा। छापे मे भी मैने ऐसा ही लिखा है, जिससे लोगों मे गलतफहमी पैदा न हो। उस दिन को मैं परम भाग्यशाली समझूंगा, जिस दिन आत्मा मे लीन हो जाऊंगा और अपनी आत्मा का उद्धार कर मनुष्य जीवन सफल बनाऊंगा। किन्तु अभी मै नियम कर लूं और बाद मे वह भग हो जाय, यह अच्छा नहीं। ऐसी जग हँसाई मैं कभी नहीं करूंगा।

आप सब समझते है कि मै बडा आदमी हू, मेरे पास धन है, इज्जत है, किन्तु पूछा जाय तो मैं उजाडगाँव में कुमार मेहता जैसा हू। अगर हम दूसरे समाज की ओर ध्यान दे, तो उसके मुकाबले में हमारे समाज मे कोई नही हैं। हमारा समाज दूसरे समाजो के सामने बहुत पीछे है। मै तो जाति का, इन्दौर शहर का और सारे देश का सेवकमात्र हूं और इनकी सेवा करना यही मेरा व्रत है। मेरे संसार छोडने के बारे मे इन्दौर के भूतपूर्व प्राइम मिनिस्टर सर एस एम बापना साहब का तार मुझे मिला। आपने लिखा कि 'मै प्रार्थना करता हू कि आप ससार का त्याग न करें। ससार मे रहकर आप अपना और लोगो का भला कर सकते हैं।' जिसके जबाब मे मैने तार दिया कि आपके समान हितचिंतक लोग इसी तरह की सलाह दे रहे हैं। जालसाहब, भैयासाहब और सेठानी साहिबा भी यही सलाह देते हैं। इन सलाहो को ध्यान मे रखकर मै ऐसा कोई काम नही करूगा, जिससे ससार के प्राणियो की सेवा न हो सके। मै धर्म कार्य में ज्यादा समय खर्च करूंगा। अभी सौभाग्य सपत तो लूंगा नही। यद्यपि मै आपकी सेवा मे ही रहूगा और जितनी बन सकेगी, उतनी आपकी, समाज की तथा देश की सेवा करता रहूंगा, तथापि थोड़ा बहुत दान हो जाय तो ठीक है। मौके मौके पर दान करते रहना यह अपना कर्तव्य है। इसीलिये मै इस समय छ: लाख रुपये का दान करता हूँ।

ब्याज की दर कम हो जाने से मेरी सस्थाओ [श्री स हु. दि जैन पारमार्थिक सस्था से इन्दौर] का पाया हिलने लगा तथा खर्च तकलीफ पडने लगी। इस तकलीफ को मिटाने के लिये मै पाच लाख रुपये इन सस्थाओं के जनरल फड मे देता हूँ। इसका ब्याज जिधर खर्च मे कमी पडती होगी, उधर लगाया जायगा। मै पहले २५०००) रु० जॅवरीबाग मे जगह की कमी पडने से जगह बनाने के लिये दे चुका हूँ। इसका अभी ब्याज आता है। बाद मे ट्रस्टी उस रकम से मकान बनवा सकते हैं। पाच लाख रुपये के ब्याज मे से १०००) प्रतिवर्ष उन खंडेलवाल दि० जैन भाइयो को १००) प्रति व्यक्ति के हिसाब से दिये जायंगे, जो इन्दौर मे व्यापार के धंधे के लिये आवें, परन्तु उनके पास साधन की कमी हो। इन रुपयो के देने की व्यवस्था संस्था के सभापति और मन्त्रीजी के हाथ मे रहेगी। शेष आमदनी मेरी चालू संस्थाओ के खर्च मे लगेगी।

इन्दौर में एक आयुर्वेदीय कालेज नलिया बाखल मे मेरे नोहरे मे कई साल से चलता है। इस कालेज के पास कोई स्थाई फण्ड नही है, जिसके कारण इसके कार्यकर्ताओ को सदा चिन्ता बनी रहती है। उनकी इस चिन्ता को मिटाने के लिये मै इस कालेज को २५०००) का दान देता हूं। इस रकम मे से १००००) मे मेरे बियावानी दवाखाने के पास एक जगह ली है। इस जगह के पीछे बोहरे मुसलमानो के लिये बार्ड की व्यवस्था रहेगी व आगे कालेज के लिये जगह रहेगी, जिसमे ७५–८० विद्यार्थी पढ सके। बाकी १५०००) का ब्याज बिजली, नौकरो की पगार, विद्यार्थियो के लिये कागज पेसिल आदि के लिए काम मे लाया जायगा। कालेज अभी जिस नाम से चल रहा है, उसी नाम से आगे भी चलता रहेगा। कालेज का काम कभी न चल सका, तो यह फंड औषधालय को दे दिया जायगा।

मै ५०००) जैन संघ मथुरा को, १०००) उदासीनाश्रम इन्दौर को देता हूँ। इसके अलावा बाकी बची हुई रकम सेठानी साहब व भैया साहब की सलाह से खर्च की जायगी।

हमारे तीनो भैया साहब से मेरा यह कहना है कि आप लोगो को सट्टे का त्याग कर देना चाहिए और होशियारी से अपना कारोबार सम्हालना चाहिए।

(४)

हिन्दी प्रेमी के रूप में

११-१२ जून १९४४ को बागली मे हुये मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन के सभापति के पद से सेठ साहब ने निम्न भाषण दिया था:—

मैं साहित्यज्ञ नहीं हूँ, विद्वान् नहीं हूँ, लेखक नही हूँ, केवल हिंदी-प्रेमी हूं, इस नाते मै आज इस समय यहाँ उपस्थित हूँ। पहली बार जब मुझे इस पद के ग्रहण करने के लिए प्रोफेसर सिहल साहब व मेरे कतिपय अन्य मित्र आये थे, मैने इस पद के भार ग्रहण करने से इन्कार कर दिया था। परन्तु जब मेरे सहयोगी श्रद्धेय किबे साहब, पं० ख्यालीरामजी वैद्य, प० रामनाथजी शर्मा और मेरे संबंधी सेठ कस्तूरचन्दजी टोग्या ने आकर मुझसे आग्रह किया व बहुत जोर दिया, तो मैने इस भार को विवशतावश उठाना स्वीकार कर लिया।

आपको विदित ही है कि यह मेरी वृद्धावस्था है और मै सांसारिक कार्यों से एक प्रकार से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा हूँ। फिर भी हिंदी के हितो के संरक्षण का प्रश्न मेरे सामने जब-जब आता है, मै अपनी इस उदासीन वृत्ति को भूल जाता हूँ और आज भी उन्ही भावों से प्रेरित होकर यहाँ आपके समक्ष मै उपस्थित हूं। मेरे सुहृद मित्र हिंदी-प्रेमी मुझे अपने इस कार्य मे निभा लेगे, ऐसी मेरी पूर्ण आशा है।

मध्य-भारत को गौरव है कि यहाँ दो बार अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन हो चुके है। जहाँ इन अधिवेशनो मे तप व त्याग की प्रतिमूर्ति उपस्थित थी, वहाँ राजकीय वैभव व राज्याश्रय भी पूर्ण मात्रा मे कार्यकर्ताओ को प्रोत्साहन दे रहा था। इन दोनो सम्मेलनो के आयोजन मे जो थोडी बहुत सेवा मुझसे हो सकी थी, वह की थी और मध्यभारतीय-साहित्य-सम्मेलन की भी स्थापना से अब तक मैं उसका समर्थक व सहायक रहा हूँ और आज भी उस पवित्र नाते को निबाहना मैने अपना कर्तव्य समझा है।

हिंदी का मार्ग अब तक कंटकाकीर्ण बना हुआ है। जहाँ तहाँ उसका विरोध होता है। उसकी प्रतिद्वन्द्विता होती है। यह बात अब भारत के कोने-कोने से मानी जा चुकी है कि देश की यदि कोई राष्ट्र-भाषा हो सकती है, तो वह हिंदी ही है। जब बंगाल, मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात इत्यादि देशो के विद्वानो को हम यह कहते सुनते है कि हिंदी ही देश की सर्वव्यापक भाषा हो सकती है, तब हम लोगो को, जिनकी मातृ-भाषा हिंदी है, स्वभावत: हर्ष होता है और हम अपनी मातृ-भाषा हिंदी पर गर्व करने लगते है। परन्तु हमे यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि हम चाहते है कि हिंदी-भाषा राष्ट्र भाषा के उच्च आसन पर आसीन हो, तो उसके लिये शतशः नही सहस्रों नि.स्वार्थ त्यागमूर्ति कार्यकर्ताओ की व प्रचारकों की आवश्यकता है। पंजाब, काश्मीर इत्यादि प्रान्तो मे जो उपेक्षा हिंदी की हो रही है,वह तो समाचार पत्रो की बात है,परन्तु उस प्रांत मे जहाँ हिंदुओ के सब पवित्र क्षेत्र है और जहाँ हिंदी भाषाभाषियो की सब से अधिक सख्या है, वहाँ भी हिंदी के हितो का पूर्ण रूप से संरक्षण नही हो रहा है।

जिस प्रान्त मे कि हम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का यह अधिवेशन मना रहे हैं, यह वह पवित्र भूमि है, जिसके कण-कण से प्राचीन संस्कृति की ध्वनि आती है। यह वही देश है, जिसने संसार के सब से बडे साहित्यिको, विद्वानो व अमर कलाकारो को जन्म दिया। यह वही भूमि है, जिसने भारत व भारत के साम्राज्य के दिन देखे। अवन्तिका, दशपुर, विदिशा के नाम आज भी भारतीय इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे अंकित है। जिसके छोटे-से-छोटे

ग्रामो मे भी आज भी सास्कृतिक शब्दो का प्रयोग होता है, उसी मालवा देश में हम यदि हिन्दी की सेवा नही कर सके, तो यह बात हमारे लिये एक बडे लाछन की होगी।

मै कोई उपदेश देने के लिये यहाँ प्रस्तुत नही हुआ हूं। मेरा उद्देश्य केवल सकेत करने का है। हम यदि चाहते है कि मालवा मे विशुद्ध हिन्दी का प्रचार हो और हिन्दी के सार्वजनिक हितो का संरक्षण हो सके, तो मै अत्यन्त विनीत व नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि हम सब पारस्परिक वैमनस्य व द्वेष के भावो से अपने आपको बचावें। और प्रेमपूर्ण वातावरण उत्पन्न करके अपनी सारी शक्तिया नि स्वार्थ भाव से हिन्दी के हितो मे लगावें। मेरी आत्मा को तब ही पूर्ण सतोष होगा और मेरी आत्मा पूर्ण सुखी होगी। प्रत्येक काम मे विचारशैली भिन्न हो सकती है, इष्ट सिद्धि के उपाय भी भिन्न भिन्न हो सकते है, परन्तु हमे यह ध्यान मे रखना चाहिये कि बहुमत की उपेक्षा न करे और संगठन की शक्ति का ह्रास न होने दे।

हिन्दी की बहुत-सी आवश्यकताये हैं। हिन्दी मे इस समय तक विज्ञान, व्यवसाय, कलाकौशल, इतिहास-भूगोल की सर्वांग पूर्ण पुस्तकों की बडी आवश्यकता है। इसकी ओर विद्वानों को ध्यान देना चाहिये। बंगाली, मरहठी, गुजराती का साहित्य बहुत बढा-चढा है। उनकी अच्छी पुस्तको का भाषातर हिन्दी मे जिस प्रमाण मे होना चाहिये, अब तक नही हुआ। उसी प्रकार हिन्दी की उत्तम पुस्तको का बगाली, गुजराती व अन्य लिपियो मे भी प्रकाशित हो जाना आवश्यक है। इस आदान-प्रदान से हिन्दी का सम्बन्ध इन प्रान्तीय भाषाओ से अधिक स्थिर हो जावेगा।

हिन्दी सम्मेलनो की सफलता के लिये मेरा यह भी एक सुझाव है कि जिस-जिस प्रान्त मे अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हो या प्रान्तीय सम्मेलन हो, वहाँ बंगाली, मराठी, गुजराती विद्वानो को अवश्य निमन्त्रित किया जावे। इससे जो कही-कही हिन्दी मे व प्रान्तीय भाषाओ मे विरोध दृष्टिगोचर होता है, वह सहज ही मे दूर हो जावेगा।

लेखो द्वारा, कोषो द्वारा व अन्य उपायो से हमे यह सिद्ध करने की आवश्यकता है कि हिन्दी व अन्य प्रान्तीक भाषायें एक ही जननी की पुत्रियाँ है और इनमे सहोदर भगिनियो जैसा वात्सल्य व प्रेम होना चाहिये। इसके लिये प्रत्येक प्रान्त मे ऐसी स्थायी समितिया बनाई जावे, जो हिन्दी व प्रान्तीय भाषाओ मे एकता स्थापित करने का सतत् प्रयत्न करे।

मै इस समय एक बात और भी कह देना चाहता हूं। वह यह है कि हम उन प्रान्तो मे भी जहा की भाषा हिन्दी ही मानी जाती है, वहाँ उसका स्वरूप निश्चित करले और उसके अनुसार उसी भाषा के स्वरूप का प्रचार करे। यदि हमने हिन्दी प्रान्तो मे ही भाषा का स्टेण्डर्ड (माप दण्ड) निर्धारित नही किया, तो हम किस मुँह से प्रान्तीय भाषाओ को हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लेने के लिये विवश कर सकते है।

आपको मुझसे किसी पाण्डित्य पूर्ण लम्बे चौडे भाषण की आशा नहीं रखनी चाहिये। मैने जो कुछ कहा है, वह मेरे अल्प अनुभव की बाते कही है और वह भी संकेत मे कही हैं। मै समझता हूँ कि यदि हम अब क्रियात्मक जीवन मे उतर आवे, तो स्वयं प्रत्येक कार्यकर्ता को अपना रास्ता स्पष्ट प्रतीत होने लगेगा। मै अब आप लोगो का अधिक समय न लूँगा और केवल यह कह कर अपना भाषण समाप्त करूँगा कि जिस प्रकार श्रीमन्त महाराज साहब ग्वालियर और महाराजा साहब होल्कर अपने राज्यो मे वहाँ की प्राचीन संस्कृति, इतिहास व भाषा का सरक्षण कर रहे हैं, उसी प्रकार हमारे अन्य राजे महाराजे भी इन आवश्यक कार्यों को हाथ मे ले ले, तो देश के भव्य प्राचीन इतिहास की बहुत सी सामग्री अब भी इन प्राचीन खडहरो से मिल सकती है। संसार केवल आदर्शवाद के आधार पर नही चल रहा है। हमे सक्रिय होना चाहिए और सक्रिय भी उचित मार्ग मे।

(५)

वीर शासन का महत्व

नवम्बर १९४४ मे श्री वीर शासन महोत्सव कलकत्ता में समस्त जैन समाज की ओर से मनाया गया था। उसके सभापति पद से सेठ साहब ने जो भाषण दिया है, वह निम्न प्रकार है:—

श्री वीर भगवान्, जिनके दूसरे नाम "महावीर" "सम्मति" और "वर्धमान" भी हैं, विहार प्रान्तीय कुन्डलपुर के महाराजा सिद्धार्थ के पुत्र महारानी प्रियकारिणी अपर नाम त्रिशलादेवी के नन्द थे। आपके जन्म से क्षत्रिय की लिच्छवि जाति पवित्र हुई। आपने पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये तीस वर्ष की अवस्था मे अपना और लोक का साधन करने के लिये जिन दीक्षा धारण की। बारह वर्ष के घोर तपश्चरण और कडी योग साधना के बाद ४२ वर्ष की अवस्था मे जब श्री वीर प्रभु को जृम्भिका ग्राम के बाहर ऋजू कूला नदी के तट पर वैशाख सुदी दशमी को उपरान्ह के समय केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई, तब आपके उपदेश के लिये समवशरण नाम की महती सभा जुडी, परन्तु वाणी के बीज पदों की यथार्थ व्याख्या करने मे समर्थ योग्य गणधर के अभाव के कारण आपकी वाणी नहीं खिरी। इसलिये आपने पुन. मौनपूर्वक विहार किया। इस तरह ६६ दिन बीत जाने पर आप राजग्रह (राजगिरि) के विपुलाचल पर्वत पर स्थित थे, तब प्रधान गणधर पद के योग्य गौतम नाम का तत्कालीन महान् पण्डित ब्राह्मण अपने ५०० शिष्यो के साथ आपका शिष्य बन गया था। आपके सामने जिन दीक्षा लेकर महती क्षपयोशम लब्धि के बल पर बीज बुद्धि आदि ऋद्धियो का स्वामी हो गया था। तब श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को तत्कालीन समवशरण मे सूर्योदय के समय अभिजित नक्षत्र मे आपको वह दिव्य वाणी पहिले पहल खिरी और उससे वह कल्याणकारिणी अमृत वृष्टि हुई, जिसकी ओर पीडित, पतित तथा मार्गच्युत जनता बहुत समय से चातक की तरह मुँह उठाये देख रही थी। इस वाणी खिरने के साथ ही आपके शासन की वह तीर्थधारा प्रवाहित हुई है, जिसमे स्नान करके आज तक असंख्य जीवो का कल्याण हुआ है। वीर शासन के अवतार का यह समय वीर निर्वाण से तीस वर्ष से तीन महिने पूर्व का है। इसलिये वीर शासन को प्रवर्तित हुए २५०० वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। इसी की यादगार मे गत श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को राजगृह (राजगिरि) मे विपुलाचल पर एक उत्सव मनाया गया था।

वीर शासन का उपकार

वीर शासन मे जन्म लेकर आपने इस २५०० वर्ष के जीवन काल मे जगत के जीवो का जो अनन्त उपकार किया है, वह वर्णनातीत है। संक्षेप मे इतना ही कहा जा सकता है कि यह स्वामी समन्तभद्र के शब्दो में सर्वोदय तीर्थ है। सभी भव्य जीवो के अभ्युदय-उत्थान और आत्मा के परम आकर्ष अथवा पूर्ण विकास का साधक है। इसने भूले भटके प्राणियो को उनके हित का वह संदेश सुनाया है, जिससे उन्हे दुःखो से छूटने का मार्ग मिला और उन्हे यह स्पष्ट प्रतिभासित होने लगा कि सच्चा सुख अहिंसा और अनेकात दृष्टि को अपनाने मे है, समता को अपने जीवन का अग बनाने मे है अथवा बन्धन से परतन्त्रता से छुटने में है। साथ ही इस शासन ने सब आत्माओ को द्रव्य दृष्टि से समान बतलाते हुए आत्म विकास का सीधा तथा सरल उपाय सुझाया और यह स्पष्ट घोषित किया कि अपना उत्थान और पतन अपने ही साथ मे है। इसके सिवाय हिंसात्मक यज्ञो मे होने वाले क्रूर बलिदानो का, जीवित प्राणियो को निर्दयतापूर्वक छुरी के घाट उतारने अथवा होम के बहाने धधकती हुई आग गिरा देने जैसे कुदृश्यो का जो अन्त हुआ और जिसमे मनुष्य समाज कुछ ऊँचा उठा, वह सब इस शासन की खास देन है। उसी से लोकमान्य तिलक जैसे धुरन्धर पण्डितो और महात्मा गांधी जैसे सन्त पुरुषो ने खुले शब्दो मे वीर भगवान के अहिंसा धर्म (जैन धर्म) की हिन्दू धर्म पर अमिट छाप का होना स्वीकार किया है।

वीर शासन की विशेषताएं

वीर शासन ने अपने " अहिंसा " सिद्धान्त से संसार को सदा निर्भय और निर्वैर रह कर शांति के साथ स्वयं जीना तथा दूसरों को जीने देना सिखलाया है। समता सिद्धान्त से राग, द्वेष, अहंकार तथा अन्याय पर विजय प्राप्त करने और अनुचित भेदभाव को त्यागने की शिक्षा दी है। अनेकांत अथवा स्याद्वाद सिद्धान्त से जनता को समन्वय समाधान की दृष्टि प्रदान की है। विचार सहिष्णुता सिखलाई है तथा सत्य के निर्णय एवं विरोध के परिहार का समीचीन मार्ग सुझाया है और कर्म सिद्धान्त से सम्पूर्ण जगत को यह पाठ पढाया है कि जीवों का अपना कर्म ही उनके सुख दुःख का प्रधान कारण है। अनेक उत्थान पतन का मूल साधन है। इसीलिये कर्म करने मे उन्हे सदा सावधान रहना चाहिये। भूल कर भी अन्याय, अत्याचार, कुविचार तथा दुराचार, परपीडन को लिये हुए ऐसा कोई कुत्सित कार्य न करना चाहिये, जो आत्मा के पतन का कारण बने। सदा ही शुभ संकल्प को लिये हुये प्रशांत कार्यों के करने मे तत्पर रहना चाहिये। स्वामी समन्त भद्र ने अपने युक्त्यानुशासन की एक कारिका में वीर भगवान के शासन को नये प्रमाण से वस्तु तत्व को बिलकुल स्पष्ट करने वाला और सम्पूर्ण प्रवादियो से द्वारा अबाध्य प्रगट किया है। साथ ही दया अहिंसा), क्षमा (संयम) त्याग और समाधि की तत्परता को लिये हुये बतलाया है और अपनी इन विशेषताओं के कारण ही असाधारण ठहराया है। इन विशेषताओं मे दया का पहला स्थान दिया गया है और वह ठीक ही है। जब तक दया और अहिंसा की भावना नहीं और जब तक संयम मे प्रवृत्ति नही होती,तब तक त्याग नही बनता और जब तक त्याग नही, तब तक समाधि नहीं बनती। इसलिये धर्म मे दया को पहला स्थान प्राप्त है। आत्मोद्धार अथवा आत्म-विकास के लिये अहिंसा की बहुत बडी जरूरत है और वह वीरता का चिन्ह है। कायरता का नही और इसीलिये महावीर के धर्म मे उसे प्रधान स्थान प्राप्त है। जो लोग अहिंसा पर कायरता का कलक लगाते है, उन्होने वास्तव में अहिंसा के रहस्य को समझा ही नही। वे अपनी निर्बलता और आत्म विस्मृति के कारण कषायो से अभिभूत हुये कायरता को वीरता और आत्मा के क्रोधादिक रूप पतन को उसका उत्थान समझ बैठे हैं। ऐसे लोगो की स्थिति निस्सन्देह बडी हीकरुणाजनक है।

वीर शासन का प्रभाव

वीर शासन की इस सब विशेषताओ और सुव्यवस्थाओ के कारण ही बडे बडे साधु संतो, ऋषि महर्षियो, महाविद्वानो, धन कुवेरो और राजा महाराजादिको नें इस शासन के आगे सिर झुकाया है। राजा श्रेणिक (बिम्बसार) महावीर की समवसरण सभाओ मे बराबर उपस्थित रहे हैं और वे इस शासन के परम भक्त थे। खारवेल और सम्पति जैसे महाराजा उनके खास उपासक रहे है। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने तो राज्यलक्ष्मी को भी लात मार कर शासन के मुनि धर्म की शरण ली है। राष्ट्रकूट महाराज अमोघवर्ष प्रथम ही राज्य छोडकर शरण मे आया है। इसके राज्यकाल मे जैन धर्म को खूब राजाश्रय मिला है। वीरसेन और जिनसेन जैसे महान आचार्यो ने इसी के राज्याश्रय मे धवल और जयधवल जैसे सिद्धान्त ग्रन्थो की रचना की है। गगवश तो वीरशासन का बहुत बडा ऋणी रहा है। वीर शासन के उपासक सिंहनन्दी आचार्य ने इस राजवश की प्रतिष्ठा मे सहायता की है और इसीलिये गंगवंशी राजा इस शासन के बहुत बडे उपासक रहे है, जिनके कारनामो और इस शासन की सेवाओ के अनेक शिलालेख भरे पडे है। आबू पहाड पर वस्तुपाल और तेजपाल नामक राजमंत्रियो के बनवाये हुए करोडो की जगह के जो अपूर्व मन्दिर है, वे राजनिष्ठा और राजनीति के साथ साथ धार्मिक निष्ठा और धर्म नीति की सुसंगति को दिनकर प्रकाश की तरह व्यक्त करते हैं।

वीर शासन अथवा जैन धर्म की नीति राजकार्यों मे बाधक नही है। उल्टा राज को सुचारु रूप से

चलाने मे बहुत बडी साधक है । ऐसी हालत में कौन कह सकता है कि वीर के शासन से विश्व को शासन नहीं हो सकता अथवा जैन धर्म विश्व का धर्म नही बन सकता । विश्व को यदि सुख शांति की जरूरत है, आत्म कल्याण की इच्छा है, तो उसे वीर शासन की जैन धर्म की शरण लेनी होगी और उसके सुनहरे सिद्धांतो को आज नहीं तो कल अपनाना ही होगा; चाहे वह किसी भी रूप मे उन्हे क्यों न अपनाये । इसके बिना यथेष्ट रूपमे सुख शान्ति का मिलना दुर्लभ है ।

(६)

आत्मरत जीवन

अप्रैल १६४६ मे मनाये गये 'आरोग्य कामना समारम्भ' पर सेठ साहब ने एक पत्र मे अपने निम्न लिखित हार्दिक उद्गार प्रगट करते हुये आत्म-रत होने की इच्छा प्रगट की थीः—

"लगभग आठ माह से मैं बीमार हूं। इस बीच मे एक बार पहिले इलाज के लिये बम्बई आया था । आप सबकी शुभ कामना से नीरोग हो कर लौट गया । मेरी पेट की बीमारी की जड उस समय भी नहीं मिटी थी । इसलिये फिर से वह उठ गई और दूसरी बार मुझे बम्बई आना पडा । अभी मैं यहां एक माह से उपचार करा रहा हूँ । इन्दौर की जैन समाज और तमाम भारतवर्ष मे बहुत से स्थानो की जैन समाज ने मेरे प्रति वात्सल्य भाव रख कर मेरी आरोग्य कामना के लिये धार्मिक समारम्भ किये है। यह सब मेरी आत्मा और मन पर आत्मज्ञान को जागृत करने के लिये गहरा असर डाल रहे है । मैं समझ रहा हूँ कि मुझे अब आत्मरत होने मे जरा भी देर नही करनी चाहिये । मेरे लिए यह पूरी पूरी चेतावनी है । आप सब की तो यह अभिलाषा है कि मै दीर्घायु याने कई वर्षों तक इस पार्थिव शरीर से जीवित रह कर आपकी सेवा करता रहूँ । मेरा यह शुभोदय है कि आप सब का मेरे प्रति इतना अधिक धर्म प्रेम है और इस बदलते हुए वातावरण मे भी मेरे लिए हृदय मे पूरा पूरा आदर रखते हैं । आपने मेरी कमियो पर ध्यान न देकर केवल गुणो को ढूंढा और छोटी छोटी बातो को महत्व दिया । उसका परिणाम यह है कि आप सबने मिल कर यह आठ दिन का समारम्भ कर मेरे लिये मंगल कामना की । मै जैन समाज के और सर्व साधारण याने मानवमात्र के चरणो का एक लघु सेवक हूं । मैंने जनता से ही सम्पत्ति कमाई और बहुत कम जनता की सेवा मे लगाई । फिर भी आप मुझे बडी बडी पदवियो से सम्मानित करते आये है । मेरा शरीर जिसे मैं मेरा कहता हूं, वह मेरा यानी आत्मा का नहीं है । यह आपकी सेवा मे लगे, यही भावना मेरी सदा रही है । यह शरार, समाज की और धर्म की सेवा मे काम आवे और आप मुझसे अंत तक काम ले, इसे मै अपना अहोभाग्य मानता हूँ । इस क्षण नश्वर जीवन की सार्थकता इसी मे है । मै आपसे सच कहता हूँ कि मुझे सामाजिक, धार्मिक और जनसेवा का कार्य करने मे बडा आनन्द आता है। मुझे दुःख है कि मै आपसे इतना दूर हूं और अशक्त हू कि आप सबकी प्रत्यक्ष सेवा नही कर पा रहा हूँ। इन्दौर के मडप मे बैठ कर समारोह के पहले आनन्दो की कल्पनाये मेरे हृदय मे हिलोरे ले रही है ।

मुझे जैन धर्म मे प्रगाढ श्रद्धा है । मै किशोर अवस्था से ही ऐसे ढांचे मे ढला हूँ कि मेरे इस विश्वास मे थोडा भी परिवर्तन नहीं हो सकता । जैन शास्त्रो के स्वाध्याय, त्यागियो और विद्वानो के सत्संग और मेरे कुछ साधर्मी मित्रो की गोष्ठी ने मुझे ऊँचा ही उठाया है । मै यह जानता हूं कि मुझे अब कोई सांसारिक काम करना बाकी नहीं रहा है । सब तरह का साधन और आनन्द तथा योग्य उत्तराधिकारी प्राप्त कर अब कुछ भी करने की इच्छा नहीं रही और यह शरीर,जो कि स्वभाव से प्रत्येक क्षण जीर्ण होता जा रहा है,अब ज्यादा टिक नही सकता । मेरी वृद्ध अवस्था है । यह जो मेरा शरीर रोग है, शरीर का वजन बढ जाने या साता का अनुभव हो जाने से शायद बिलकुल दूर होकर पूर्ण स्वास्थ्य लाभ हो जायगा, इसे भी मै मानने को तैयार नही । मैं यहां बम्बई आया हूं, यह

भी कुटुम्ब प्रेरणा से और व्यवहार साधने के लिए। मेरा दिल तो यही कह रहा है कि मैं इन्दौर पहुँच कर अपना पूरा समय आत्मकल्याण में लगाऊं और परम समाधि से उस निश्चय और शुद्ध दशा को प्राप्त कर लूं। मुझे विश्वास है कि मेरा होनहार अच्छा है और मैं इस दृढ निश्चय को पूरा कर इस पर्याय को सफल बनाऊंगा।

मैं इन्दौर की जैन समाज, समस्त पंचायतों एवं समस्त भाइयों और बहिनों का तथा समस्त जनता का मेरे प्रति किये गये प्रेम प्रदर्शन और महान कष्ट के हेतु हृदय से आभार मानता हूँ।"
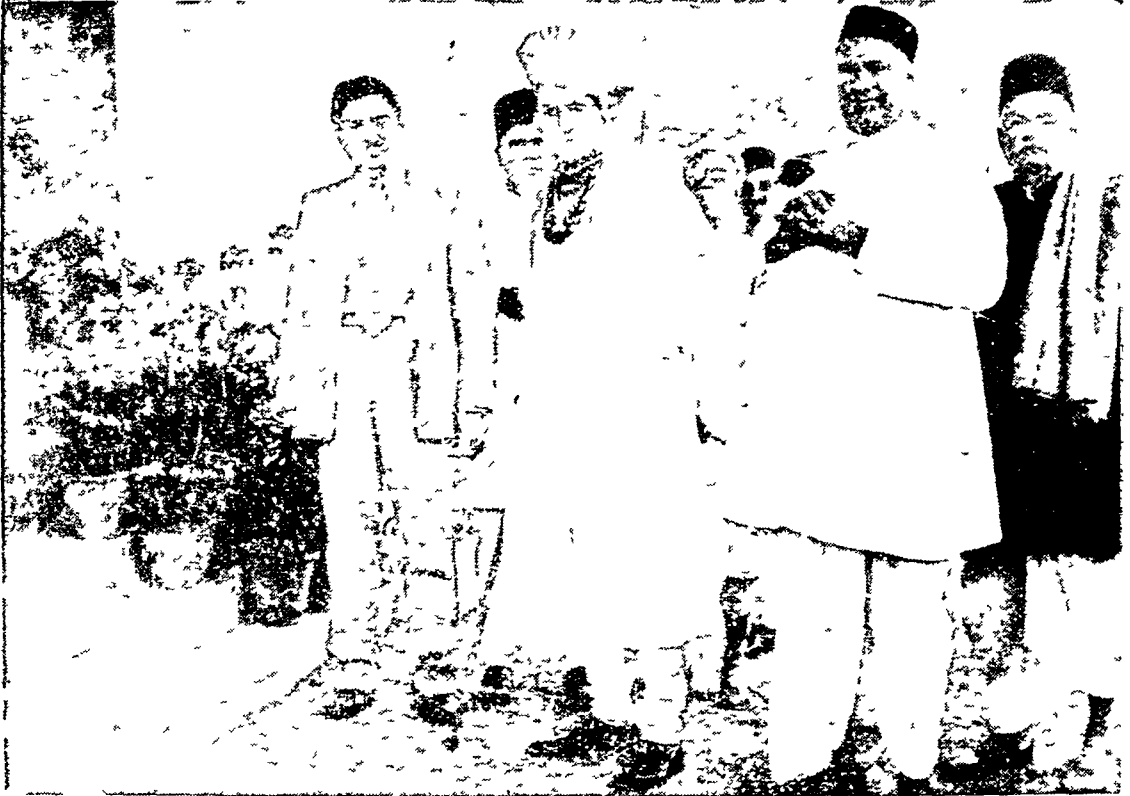
देवास कम्पाउण्ड के राजकुमारसिंह पार्क में राज टाकीज के भवन के उद्घाटन के अवसर पर। इस भवन की आमदनी पारमार्थिक संस्थाओं को दी जाती है।

(७)

सन् १९०४ में तीस बर्ष की अवस्था।

सन् १९१० मे श्री सम्मेदशिखरजी मे भा० दि० जैन महासभा के १४वे अधिवेशन के सभापति ।
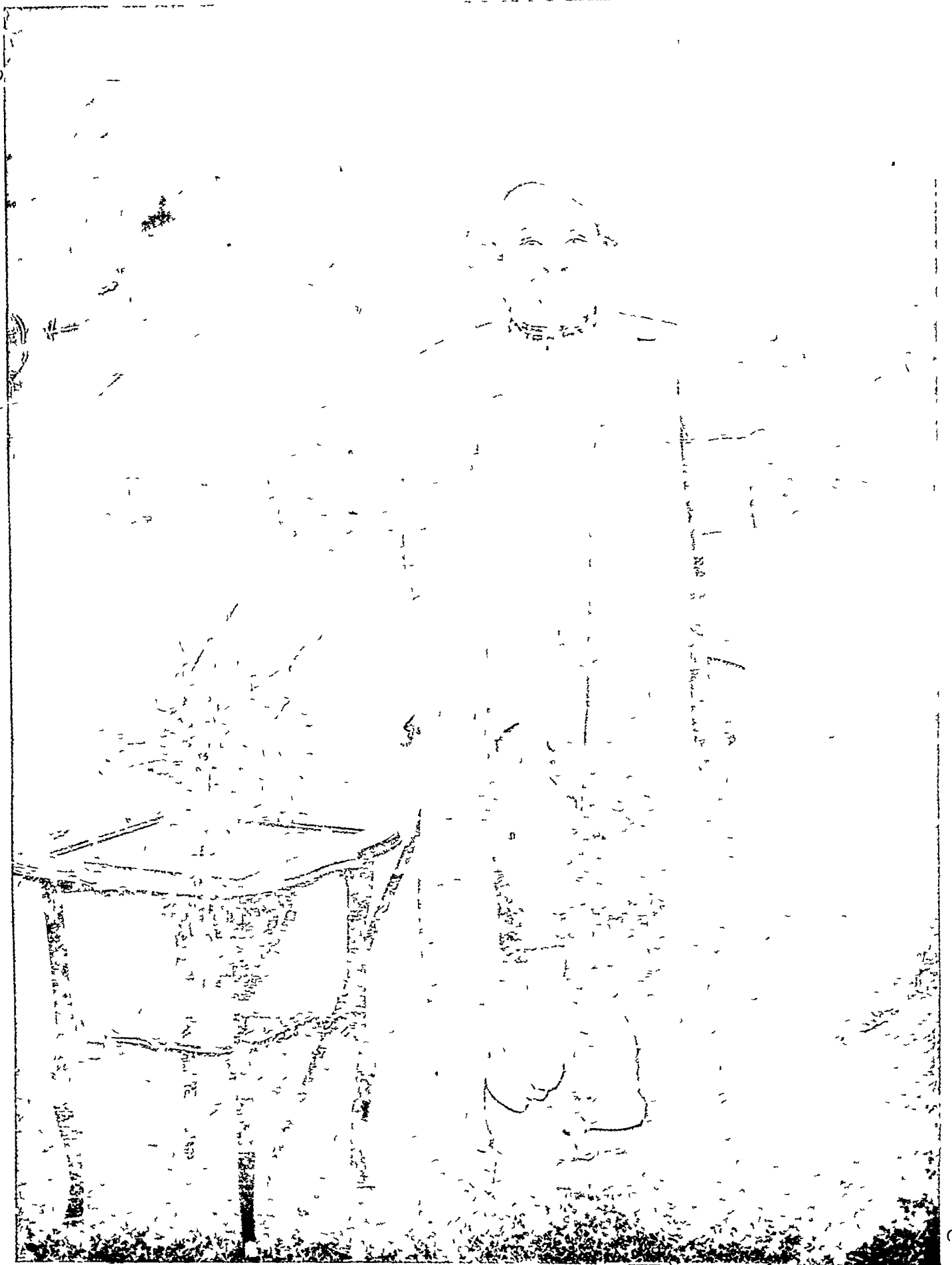
सन् १६१४ में मथुरा में भा०दि० जैन महासभा के उन्नीसवें अधिवेशन के सभापति।

सन् १६१६ मे इन्दौर नरेश ने आपको 'राज्य भूषण' और भारत सरकार ने 'सर' की उपाधि मे सम्मानित किया

सन् १९२३ में देहली मे हुई विम्ब प्रतिष्ठा के अवसर पर।

सन् १६२४ मे स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर।
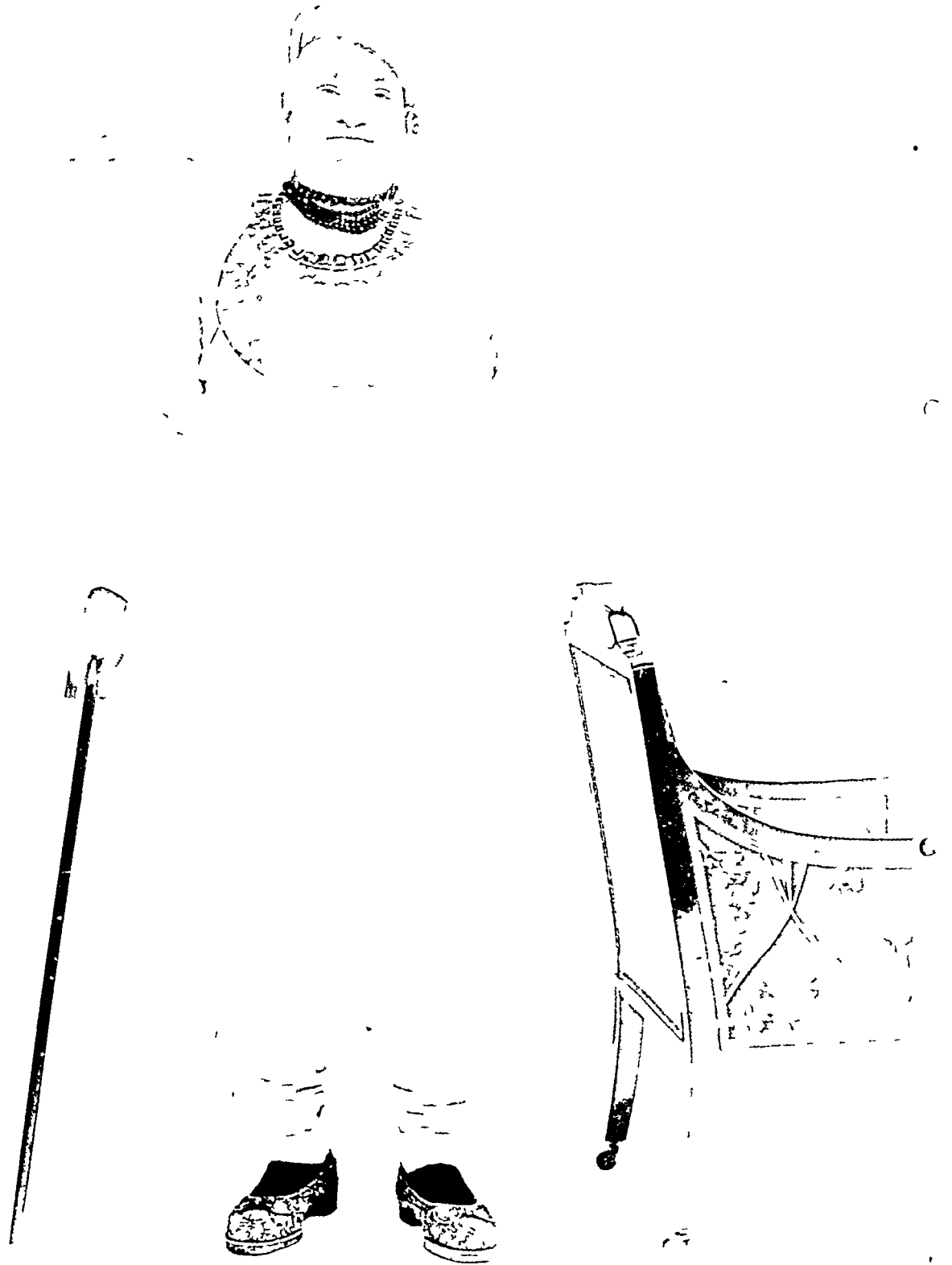
सन् १६२६ मे सट्टे से विराग।

सन् १६०८ मे ग्वालियर महाराना के हाथों उज्जैन मे हीरा मिल के उद्घाटन के अवसर पर।

सन् १९३० मे इन्दौर नरेश द्वारा "रावराजा" की पदवी से सम्मानित किए जाने के अवसर पर।

सन् १९३५ मे हीरक जयन्ती के अवसर पर।

सन् १९३८ मे बनेड़िया जी मे भा० दि० जैन महासभा के १४ वे अधिवेशन के सभापति ।

सन् १९४४ मे उज्जैन मे भा० दि० जैन महासभा के अधिवेशन पर।

सन् १९४८ मे सीकर में हुई बिम्ब प्रतिष्ठा के अवसर पर।

सन् १९४९ मे ७९ वर्ष की आयु मे (आरोग्य कामना के अवसर पर।)

सन् १६५० मे विरक्त जीवन।

विरक्त जीवन की साधना ३१ मार्च १९५१ ।

३
श्रद्धांजली व संस्मरण
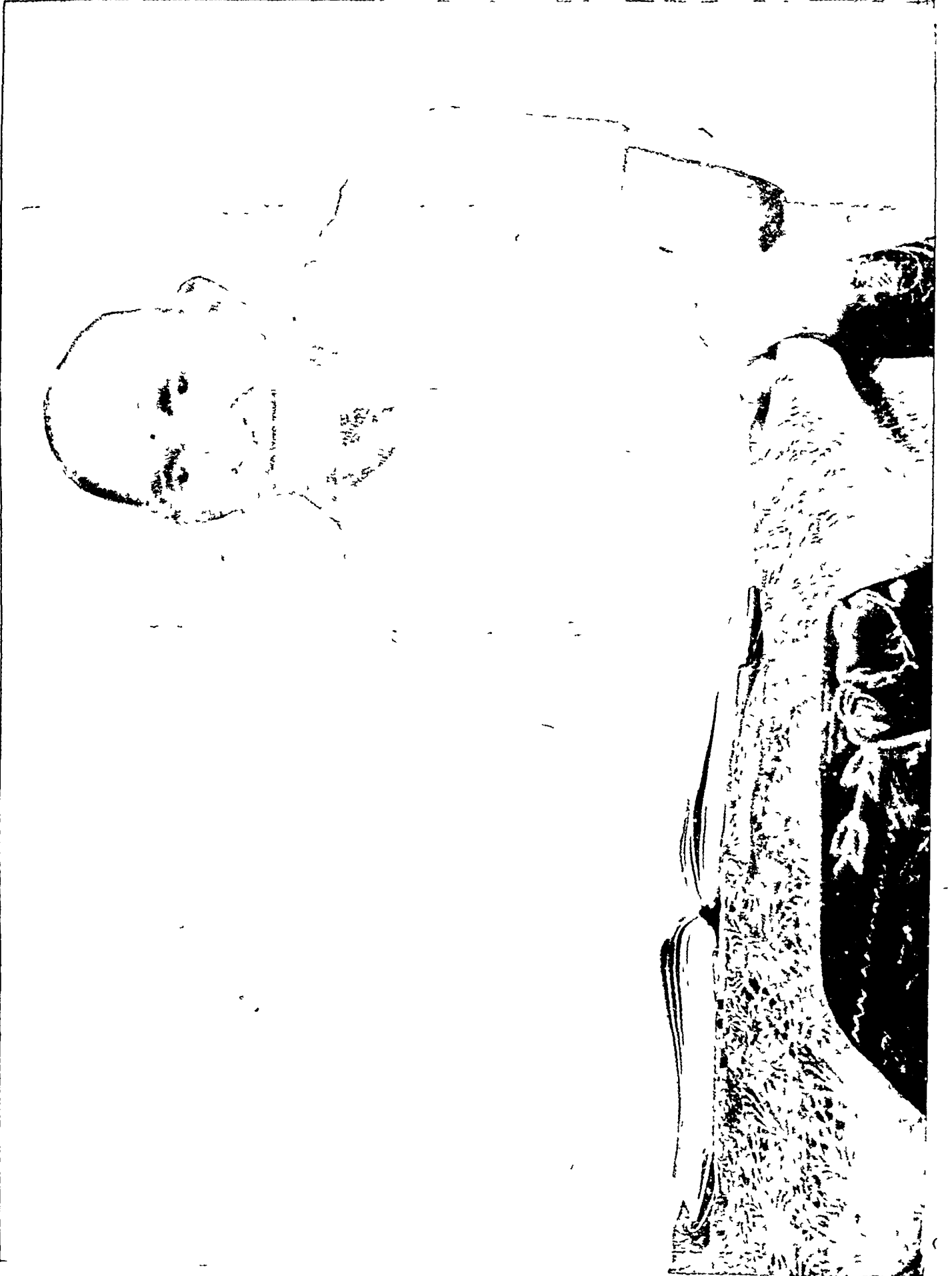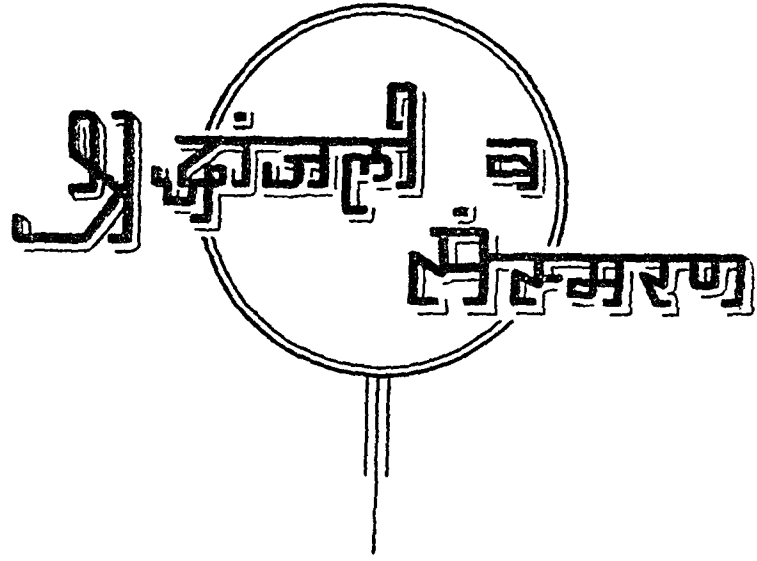
किसी भी व्यक्ति की लोकप्रियता का परिचय उसके प्रति दूसरों के विचार तथा उनकी भावना से ही मिल सकता है। निस्सन्देह,श्रद्धा तथा आदर के भावावेश में आकर सामान्य तौर पर विशिष्ट व्यक्तियों के लिये अत्युक्ति से काम लिया जाता है। इस ग्रन्थ के इस प्रकरण के लिए प्राप्त श्रद्धांजलियों में भी कुछ भावुक महानुभावों ने ऐसा ही किया हो, तो आश्चर्य क्या है ? परन्तु उनके सम्पादन में ऐसे शब्द तथा वाक्यों को न देने का ही प्रयत्न किया गया है। उन श्रद्धांजलियों तथा सस्मरणों को देने का वास्तविक अभिप्राय तो यही है कि भिन्न भिन्न दृष्टिकोण और अनुभव के आधार पर सेठ साहब के व्यक्तित्व, चरित्र, जीवन और विशिष्ट गुणों पर कुछ विशेष प्रकाश डाला जाय । इसीलिए इन मे कांट-छाट भी काफी करनी पड़ गई है। कुछ काट-छाट स्थान और समय के सीमित होने के कारण भी की गई है। उसके लिए क्षमा-याचना है।

संस्मरण लिखने की प्रथा हिन्दी मे प्राय. नहीं के ही समान है। सस्मरणात्मक साहित्य ही वस्तुत' किसी के चरित्र पर प्रकाश डालता है। इसीलिए श्रद्धांजलियों को भी संस्मरण-प्रधान बनाने का प्रयत्न किया गया है। जैसी चाहिये थी,वैसी सम्भवत. वे नहीं बन सकी हैं। फिर भी उनमे सेठ साहब के व्यक्तित्व, चरित्र, जीवन और विशिष्ट गुणों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। सम्भवत' इस ग्रन्थ की यह अपनी ही विशेषता है और यह पाठकों के लिए विशेष रुचिकर और मनोरंजक होगी।

जय विलास,
ग्वालियर,
दिनांक ३० मार्च, १९५१.

"दानवीर सेठ हुकुमचन्द अभिनन्दन ग्रंथ" के हेतु अपनी शुभ कामनायें प्रेषित करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है.

सेठ जी का व्यापारिक क्षेत्र में तो विशेष स्थान रहा ही है, साथ ही साथ उन्होंने राष्ट्र के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाने तथा मानव समाज की सेवा के लिये जो हित कर कार्य किये हैं वे वर्तमान व भविष्य की परिस्थितियों में भी आदर की भावना से स्मर्ण किये जावेंगे. इन्दौर नगर के निर्माण में और उसको औद्योगिक प्रधान प्रदेश बनाने में उनका बहुत बड़ा हाथ रहा है, अतएव आज मध्य भारत की जनता व्दारा उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना उचित ही है. वे हमारे प्रदेश के सब से वयोवृध्द उद्योगपति, समाज सेवी और राष्ट्र सेवी हैं. मेरे परिवार से तो उनके बहुत पुराने सम्बन्ध रहे हैं, उनकी सौजन्यता, स्नेह और उदारता का मैं सदैव कायल रहा हूं.

परमेश्वर उन्हें चिरायु करे और वे अपना अवशेष जीवन शांति पूर्वक मोक्ष प्राप्त करने के हेतु व्यतीत करते रहें यही मेरी इस अवसर पर हार्दिक कामना है.
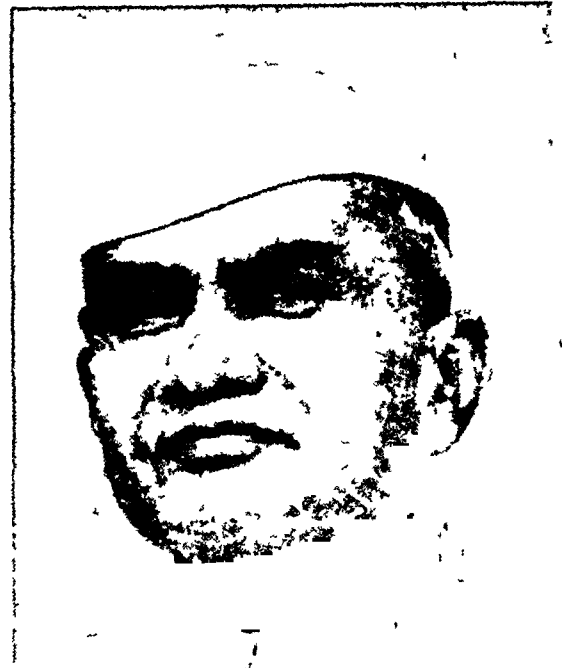
"A HOUSEHOLD NAME."

His Excellency Dr. Kailash Nath Katju,
Governor of West Bengal.

As a resident of Jaora I know the great place which Seth Hukumchandji has occupied in the life of the people of Malwa, nd tcularly of the city of Indore by his philanthrophy and a long life devoted to the social, economic and moral uplift of the comunity He has endeared himself to all who have come into contact with him, and his name is household word not only in Indore, but the whole of Malwa On this birthday anniversary of his greetings and good wishes will go to him from the whole of Malwa that he might have many more years of rest and happiness.

महामहिम डा० कैलाशनाथ काटजू राज्यपाल-पश्चिमी बंगाल लिखते है कि "जावरा का निवासी होने से मैं यह जानता हूं कि सेठ हुकमचन्दजी ने मालवा के लोकजीवन विशेषतः इन्दौर शहर में अपना कितना बड़ा स्थान बनाया हुआ है। इसका कारण आपकी उदारता और वहां की जनता के सामाजिक, आर्थिक और नैतिक जीवन के उत्थान मे अपने महान जीवन का उत्सर्ग करना है। जो भी कोई उनके सम्पर्क मे आया है, उसके हृदय मे उन्होंने अपना स्थान बना लिया है और उनका नाम न केवल इन्दौर मे, अपितु समस्त मालवा मे घर-घर मे सर्वविदित है। इस जन्म गांठ पर समस्त मालवा से ही उन पर बधाइयो और शुभ कामनाओ की वर्षा होगी कि उन्हे सुख-आराम और प्रसन्नता के और अनेको वर्ष प्राप्त हो।"

शुभ कामना

राजा महाराजसिंहजी, राज्यपाल बम्बई

सेठ साहब के अस्सीवे जन्म-दिवस पर अभिनन्दन के लिये मैं भी अपनी शुभ कामना भेजता हूँ।

"A MERCHANT KING"

Hon. Syt K. S. Firodia,
Speaker Bombay Lagislative Assembly.

I must confess that I had not many occasions of coming in close contacts with Sheth Hukumchand. Still I was fortunate in meeting him about twice or thrice and the short and the small contacts which I had had created a very pleasant and lasting impressions in my mind about his personality. He has been very rightly described as a Merchant King He has led commercial activities for a very long time Besides being a commercial and Industrial magnet his charities are magnenimous and very extensive

His name has become famous not only in India, but throughout the World On this auspicious occasion I wish him long life and excellent health.

भारत के 'रुई राजा'

श्री तख्तमलजी जैन,

मुख्य मन्त्री मध्यभारत

सर सेठ हुकमचन्दजी का नाम मध्यभारत मे सभी जानते है। सेठ साहब यद्यपि पुरानी पीढी के प्रतिनिधि हैं, फिर भी उनका सार्वजनिक कार्य का उत्साह आज भी सर्वविदित है। अच्छे सफल उद्योगपति के नाते उन्होने मध्यभारत मे ही नही, किन्तु सम्पूर्ण देश मे विशेष स्थान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की है। उनके मार्गदर्शन मे चलने वाले कितने ही उद्योग मध्यभारत मे फैले हुये है। इसी कारण एक समय उन्हें Cotton Prince of India 'भारत के रुई राजा' की उपाधि से समाचारपत्र गौरयान्वित किया करते थे।

आज सेठ साहब वृद्ध हो चुके है। पर, उनकी प्रतिभा आज भी कई प्रकार से प्रकट हुई दीखती है। उन्होने खूब धन कमाया और उसका उपयोग सार्वजनिक हित के कार्यों मे भी किया है। मेरी यही कामना है कि मध्यभारत के इस सर्वश्रेष्ठ वाणिज्य-व्यवसायी को भगवान अधिकाधिक आयु तथा आरोग्य प्रदान करें।

वाञ्छनीय अभिनन्दन

श्री ईश्वरदासजी जालान, अध्यक्ष-पश्चिमी बंगाल-धारासभा

"सेठ हुकमचन्द से मिलने का पहले-पहल अवसर मुझे १९४३ मे मिला, जबकि मैं इन्दौर गया था। उस समय भी काम करने की जो शक्ति मैंने उनमे देखी, उसे देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। जाडे के महीनो मे भी केवल कुर्ता पहन कर रहना, राजसी ठाट-बाट के साथ-साथ सादगी का होना, मिलनसारी और अभिमानशून्यता मैंने उनमे पायी। सेठ साहब ने सार्वजनिक कार्यों मे लाखो रुपये दान किए हैं। सार्वजनिक संस्थाओ मे भी आपकी काफी दिलचस्पी रही है। व्यापार क्षेत्र में भी आपका एक विशिष्ट स्थान है। इस समय सांसारिक झझटो से पृथक् होकर धर्मसाधना मे लगे रहते हैं। ऐसे सज्जन का अभिनन्दन वांछनीय है।"

समाज का हितैषी

श्री घनश्यामसिह गुप्त, अध्यक्ष-धारासभा मध्यप्रदेश

मैंने जो कुछ सुना है, उससे यह मालूम होता है कि उनके जीवन और उनकी कमाई का बडा भाग समाज के हित मे व्यय हुआ है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह उन्हे चिरायु बनाये, ताकि समाज की वे और भी अधिक सेवा कर सके।

राज संन्यासी

श्री श्यामलालजी पाण्डवीय, उद्योगमन्त्री-मध्यभारत

सर सेठ हुकमचन्दजी भारत के सुप्रसिद्ध व्यवसायी एवं बडे समाज-सेवी हैं। शुरू में उनकी स्थिति बहुत साधारण थी। लेकिन, अपने अनेक सर्वोत्तम गुणों के कारण आज वे इतने धनीमानी तथा प्रसिद्ध व्यक्ति बन गये हैं।

सेठ साहब स्वभाव के अत्यन्त सरल, रहन सहन मे रईस पर सादे और दिल के धनी हैं। उनका एक विशिष्ट गुण, जिससे लोग बहुत कुछ सीख सकते हैं, वह उनका शुद्ध और निर्मल चरित्र है। उनके पास इतना वैभव और धन-सम्पत्ति होते हुए भी उनमे अमीरो जैसी बुरी आदतें नही हैं। वे सुरा और सुन्दरी से सदैव दूर रहे, जो ऐसे धनीमानी रईसो के लिये बडा कठिन है। उन्होंने धन कमाने के साथ साथ सबसे बडी जो दूसरी चीज कमाई, वह है उनका सुडौल व स्वस्थ शरीर। वे इसके लिये सदैव नियमित व्यायाम करते रहे है। उन्हे मरदानगी के खेलो मे बडी रुचि है। यहां तक कि इसके लिये उन्होने अपने भवन की पांचवी छत पर एक अखाडा भी बनवाया था। पहलवानो का बडा मान-सम्मान करते और उन्हे समय-समय पर काफी सहायता देकर प्रोत्साहन दिया करते। सेठ साहब की लोकप्रियता के यो तो कई कारण हैं, पर एक विशेष कारण यह है कि वे इतने बडे होने पर भी स्वभाव मे सरल हैं। उन्हे अभिमान तो बिलकुल भी नही है। वे छोटे बडे रईसो, राजे महाराजो, नेताओं, कार्यकर्ताओ अथवा साधारण जनो सभी से बडे प्रेम और समान भाव से मिलते हैं। जहां बडे-बडे रईस, सरदार, जागीरदार व अनेक छोटे बडे रजवाडे सेठ साहब का काफी आदर करते है और नेता व कार्यकर्ता उन्हे अपना हितैषी समझकर उनका मान करते हैं, वहां व्यापारी वर्ग भी उनका काफी आदर करता है। बम्बई जैसे नगर मे तो एक समय उनकी ऐसी धाक थी कि वहां का बाजार उनके नाम से ही खुलता और बन्द होता था। इसका मुख्य कारण है सेठ साहब की कार्यकुशलता, लगन और कठिन परिश्रम। इनके बल पर ही उन्होने करोडो रुपये पैदा किये। धन के साथ-साथ अपने इस जीवन मे नाम भी खूब कमाया। इसमे खूबी यह है कि वे केवल रुपया पैदा ही नही करते रहे, बल्कि उसका आपने सदुपयोग भी किया। अपनी कमाई का एक बहुत बडा अंश यानी ८० लाख उन्होने दान मे व्यय किये। यह दान जैन संस्थाओ के अतिरिक्त अन्य सस्थाओ को भी बिना भेदभाव के दिया गया और इसीके फलस्वरूप लोग आज उन्हे "दानवीर" कहकर पुकारते है। इस दान का जहां एक बडा भाग जैन मन्दिरो व संस्थाओ पर व्यय हुआ है, वहां महात्मा गांधीजी की प्रेरणा से हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा मालवीयजी की आकांक्षा से हिन्दू विश्वविद्यालय को भी काफी दिया गया है। सेठजी ने तो विश्वविद्यालय मे अपने यहां की एक सीट भी सुरक्षित कराई है, जो उनकी एक सराहनीय कृति है।

वे स्वदेशी के अनन्य भक्त है। उन्होने स्वदेशी का आरम्भ सबसे पहले किया, जब कि स्वदेशी कपड़ा उद्योग के लिए इन्दौर मे कपडे की मिल खोली। व्यापार जगत मे तो सेठ साहब ने एक जादू-सा चमत्कार किया। उन्होने इन्दौर जैसे नगर मे ऐसे कठिन समय मे कपडे के उद्योग-धन्धे को पनपाया, जब किसी हिन्दुस्तानी का अंग्रेज शासको व व्यापारियो के सामने टिकना आसान न था। लेकिन, सेठ साहब ने अपनी कार्यकुशलता, चतुरता, कठिन परिश्रम और लगन से वह कठिन कार्य भी सुगम बना दिया। अपितु आज के कपडे के व्यापारियो के लिये भी उन्होने मार्ग प्रदर्शित किया। यह तो उनकी एक सच्ची देशसेवा है। कपड़े के उद्योग के अतिरिक्त सेठ साहब ने फियूचर व गेहूँ आदि के व्यापार से भी लाखो करोडो पैदा किये और आज वे मध्य-भारत के ही नही, बल्कि देश के बडे-बडे धन-कुवेरो मे गिने जाते हैं।

मेरा व सेठ साहब का परिचय नया नहीं है। हम दोनो समाज सेवा के अनेक कार्यों मे बराबर मिलते रहे हैं और आज भी उसी प्रकार मिलते हैं। जैसे-जैसे मै उनके सम्पर्क मे आया, उनके गुणो की वैसे-वैसे मुझ पर छाप पडी। सेठ साहब की सूझ-बूझ गजब की है और उनका निर्णय प्राय बहुत सही हुआ करता है। उसकी सफलता का सबसे बडा गुण तुरन्त निर्णय पर पहुँचने की शक्ति और निर्णय के अनुसार तुरन्त उस पर अमल करने की वृत्ति है। वे शीघ्र ही यह फैसला कर लेते है कि क्या करना है और फिर उसको तुरन्त अमल मे ले आते हैं। यही उनका बहुत बडा गुण है।

दूसरे वे बडे व्यावहारिक है और उनके हर निर्णय मे बडी व्यावहारिकता होती है। इसी गुण ने उनको इतना बडा बनाया है।

तीसरा गुण उनमे यह है कि प्रत्येक आदमी से काम निकालना खूब जानते हैं। किससे किस प्रकार काम निकाला जा सकता है इस कला मे बडे प्रवीण हैं। किसको किस समय मित्र बनाना चाहिए और किस समय उससे बिगाड करना चाहिए, इसे भी वे खूब जानते है। इन्हीं सब गुणों के कारण वे महान व्यक्ति बने है। लेकिन, आज सेठ साहब बाहरी दुनिया से अलग होकर केवल अपनी कोठी मे ही रहते है। यह सब कुछ होते हुये भी विशेष बात यह है कि उनका वह पुराना टेलीफून, जो जीवन की सुनहली घडियो मे सदैव उनकी छाती से लगा रहा,आज भी उसी प्रेमभाव से लोकसेवा के लिये उनका साथी है। उन्होने उसका मोह अभी भी नही छोडा। आशा है वह भी छूट जायेगा और वैभवशाली धनीमानी को हम निकट भविष्य मे ही सच्चे राजसंन्यासी के रूप मे भी देख पायेगे।

शुद्ध भारती आदर्श

श्री बलवतसिह महता, उद्योग तथा व्यवसायमत्री राजस्थान

मैं सर सेठ हुकमचन्दजी के नाम को अपने बचपन यानी ४० वर्ष पूर्व से सुनता आ रहा हूं। राजस्थान और मध्यभारत ही मे नही, बल्कि सारे भारतवर्ष मे आपकी दान शीलता, सुन्दर स्वास्थ्य तथा औद्योगिक एव व्यापारिक प्रतिभा की चर्चा किसी समय आम जनता का विषय रहा है। अन्तिम आयु मे आपने अपना जीवन आत्म साधना मे लगा कर शुद्ध भारतीय आदर्श उपस्थित किया है। इस अवसर पर आपको बधाई देता हुआ परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि आपको दीर्घायु बना देश के और भी पुण्यवान बनादे।

मध्यभारत को अभिमान

सैयद हामिदअली साहब, उपमत्री मध्यभारत

दानवीर सर सेठ हुकमचन्दजी मध्यभारत के सुप्रसिद्ध सफल व्यापारी हैं। स्वदेशी उद्योग-धन्धो, सोने-चादी तथा रुई के व्यापार और उनके भावो के दाव-पेच मे आपने विदेश मे भी काफी ख्याति प्राप्त की है। इस दिशा मे मध्यभारत को आप पर अभिमान होना स्वाभाविक है। सेठ साहव का सच्चरित्र और व्यवहार कुशलता प्रसिद्ध है। गृहस्थी के मामूली से मामूली काम और बडे-से-बडे उद्योगधन्धो मे आपकी अहतियात, दूरदर्शिता और मामलेबन्दी व्यापारी वर्ग के लिये शिक्षाप्रद रही है। जहां सेठ साहब अपने असाधारण गुणो से काफी धन कमाते रहे, वहां अब तक आपने सार्वजनिक सस्थाओ और कार्यों मे ७५ लाख रुपये से अधिक दान दिया है। मेल-जोल में आपका व्यवहार मनोरंजक और सरल है मुझे कई बार सेठ साहब से मिलने का अवसर मिला, इस ८० वर्ष की आयु मे भी सेठ साहब मे काफी जोश और संजीदगी है। हर बात आप सोच-विचार करके करते हैं। आजकल

हिजहाइनेस महाराजा साहब बहादुर तुकोजीराव होल्कर इन्दौर में हुकमचद मिल का शिलान्यास करते हुये।
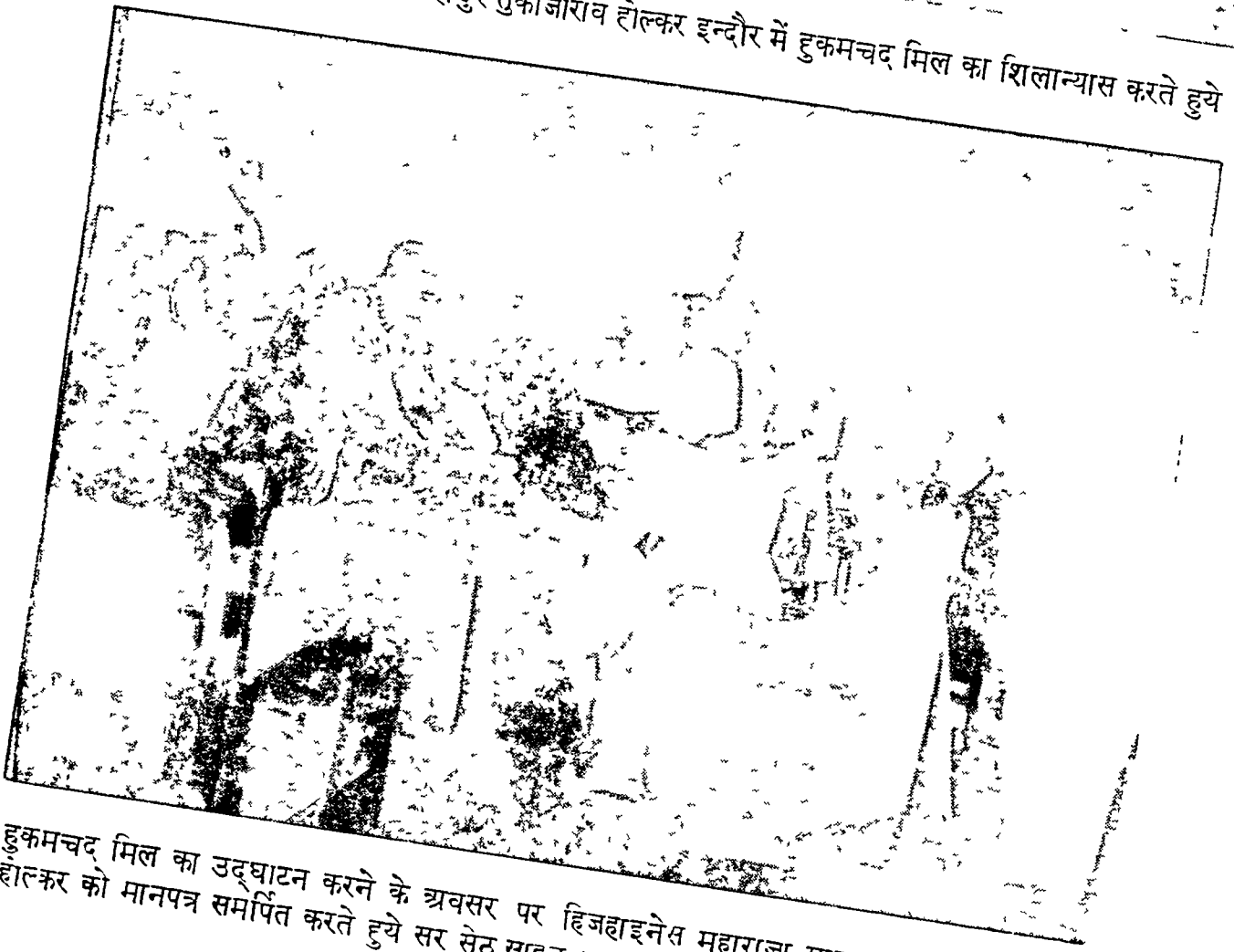
हुकमचद मिल का उद्घाटन करने के अवसर पर हिजहाइनेस महाराजा साहब बहादुर तुकोजीराव होल्कर को मानपत्र समर्पित करते हुये सर सेठ साहब।
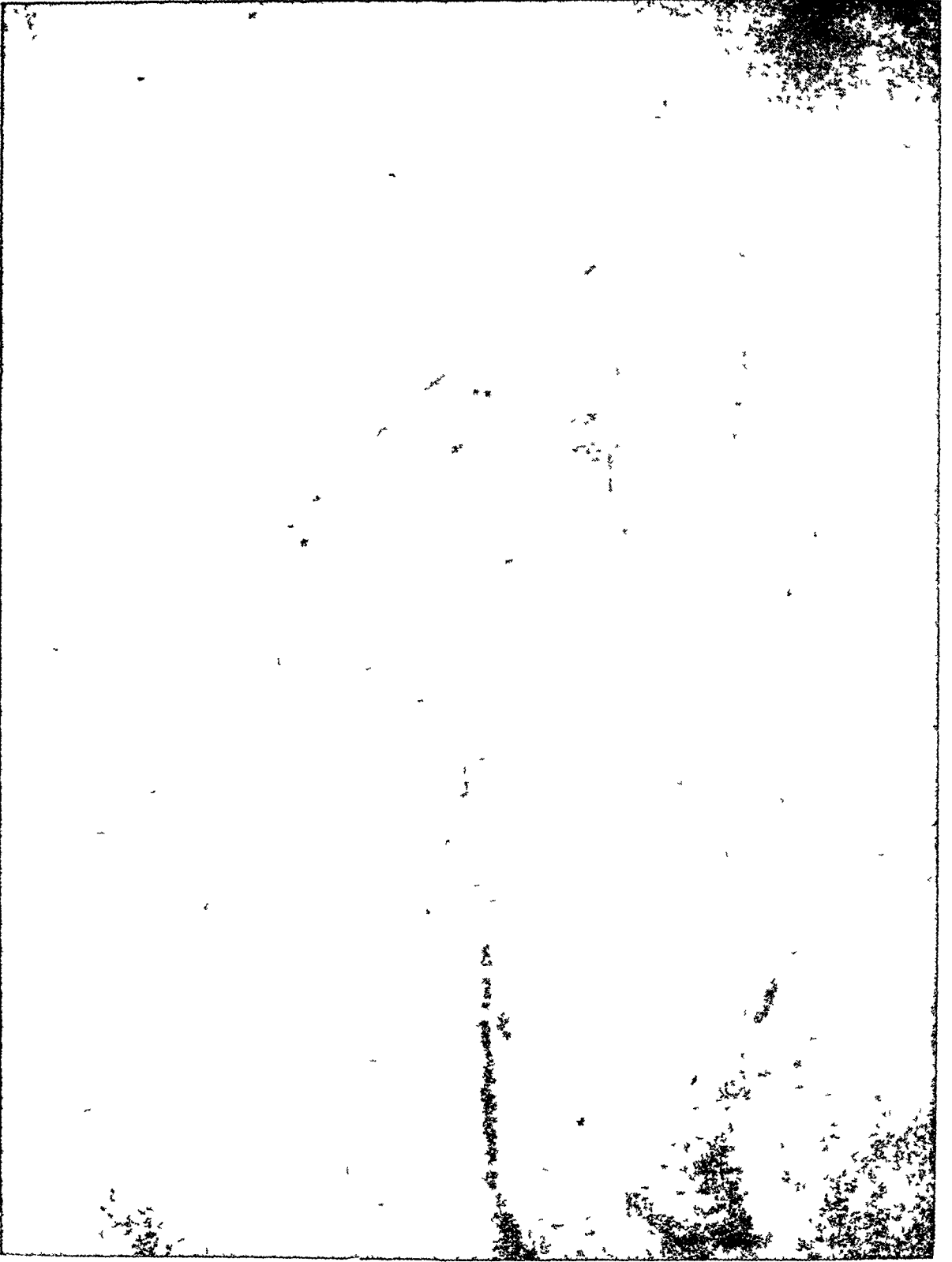
हिजहाइनेस महाराजा साहब बहादुर तुकोजीराव होल्कर।

आप सांसारिक वैभव से विरक्त होकर एकान्त धर्म साधना मे समय व्यतीत करते है। मेरे मन मे उनके लिये जो आदर है, उसे प्रकट करते हुये हर्ष महसूस करता हूँ।

अनुकरणीय साधुवृत्ति

श्री सुन्नूलालजी, उपमन्त्री-मध्यभारत

श्रीमान् सेठ साहब ने अनेक शैक्षणिक तथा जनहितकारी संस्थाओ को समय-समय पर आर्थिक सहायता देकर अपनी दानवीरता के साथ जनहित की भावना का जो परिचय दिया है, वह सराहनीय है। उद्योग क्षेत्र मे भी लगन व तत्परता से कार्य करके प्रगति की है। इतना वैभव संपादन करने पर भी आपने सब वैभव एवं कारबार छोड कर विरक्ति भाव से जो साधुवृत्ति से शेष जीवन बिताने का सकल्प किया हैं, जिसके अनुसार आप जीवन यापन भी कर रहे हैं, वह अनुकरणीय है।

कृतज्ञता का प्रतीक

माननीय श्री फूलचन्दजी, आरोग्य-मन्त्री हैदराबाद

केवल धनवान होने के कारण कोई किसी का अभिनन्दन नही करता। पर, समाज के कल्याण के लिये, धर्म, शिक्षा तथा राष्ट्र के हित के लिये जो धनिक धन का व्यय करता है, वह अभिनन्दन के योग्य है। ऐसे धनवान का अभिनन्दन न करना उचित न होगा। इस कृतज्ञता के प्रतीक के रूप मे अभिनन्दन-ग्रन्थ अर्पण करने का प्रबन्ध समयोचित है। इस समय पर मेरी शुभ कामनाए भेजने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ, यह मेरा सद्भाग्य समझता हूँ और सेठ हुकमचन्दजी के लिये दीर्घायुष्य की और उनमे समाज और राष्ट्रकल्याण का कार्य अधिक से अधिक होता रहे, यह शुभ कामना प्रकट करता हूँ।

इन्दौर राज्य के भूषण

श्रीमन्त महाराज साहब तुकोजीराव होलकर इन्दौर

हमारा सर हुकमचन्दजी से परिचय बहुत ही दीर्घकाल से है और हम उनके श्रेष्ठ गुणो से पूर्ण रूप से परिचित है। इन्दौर राज्य के व्यापारिक और आर्थिक उन्नति की तरफ सर हुकमचन्दजी की भावना व प्रयत्न देखकर हमारे दिल मे हमेशा उनके लिये आदर रहा है। इन्हीं गुणो के कारण इन्दौर राज्य से अनेक प्रसंगो पर उनका गौरव भी होता रहा है। इन्दौर राज्य के व्यापारिक व औद्योगिक उन्नति के आधारस्तम्भ माने हुए जो थोडे से व्यक्ति है, उनमे से सर हुकमचन्दजी का स्थान श्रेष्ठ है। जिस प्रकार सर हुकमचन्दजी अपने कार्यक्षेत्र द्वारा इन्दौर राज्य के भूषण साबित हुए, वैसे ही मध्यभारत राज्य के भी भूषण वह होगे—ऐसा हमे पूर्ण विश्वास है। इन्दौर राज्य के अतिरिक्त भारत सरकार मे भी सर हुकमचन्दजी का गौरव होता आ रहा है। हमे अभिमान है कि हमारे यहां के एक सुयोग्य व्यक्ति बाहर सब जगह गौरव के पात्र साबित हुए है। उनका गौरव किया जा रहा है उसके लिये वे पूर्णरूप से सुयोग्य है।

सराहनीय सेवा

श्रीमन्त महाराणा साहब बहादुर-बडवानी

मध्यभारत ही नही, किन्तु सारे देश मे सर सेठ हुकमचन्द जी की सामाजिक और देशभक्तिपूर्ण सेवाओ का जाल बिछा हुआ है। उन्होने बडे श्रम और लगन से उपार्जित धन का बडा भाग इन सेवाओ मे लगाया है। निस्सन्देह ये सेवाये सराहनीय है। राज्य की राजधानी के समीप ही बावनगजाजी का सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक तीर्थक्षेत्र है। इस क्षेत्र को अपना पुराना गौरव प्रदान कराने मे रावराजा साहब ने जो प्रयत्न किया

है, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोडी है। इसकी प्रसिद्धि का सारा श्रेय सेठ साहब को ही है।

महाराज धांगध्रा

अस्सीवां जन्मदिवस मनाने के अवसर पर मैं सेठ साहब को अपनी शुभ कामनायें बहुत प्रसन्नता के साथ अर्पित करता हूं। मध्यभारत की औद्योगिक प्रगति में उसका सहयोग सराहनीय है। जनता की शिक्षा और स्वास्थ्य रक्षा के लिये भी उन्होंने उदारता पूर्वक दान दिया है। अब उन्होंने संसार के सुख-वैभव का परित्याग कर विरक्त जीवन विताना शुरू किया है। मेरी शुभ कामनाये हैं कि वे दीर्घजीवी हों और आत्मसाधना मे सफल हो।

महाराज मैसूर

इस शुभ अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभ कामनाये सेठ हुकमचन्दजी के लिये भेजता हूँ। मै आशा करता हू कि मध्यभारत का यह महान् उदार देशभक्त अवश्य ही दीर्घायु प्राप्त करेगा, जिससे उसकी अनुकरणीय लोकसेवा और सराहनीय उदारता का लाभ देश के महान् कार्यों को मिलता रहे।

"GEREATEST PHILANTHROFIST AND BENEFACTOR"

Col Dinanath, Ex-Prime Minister-Holkar State.

I have known Raoraja Sir Seth Hukamchand Ji for the last 36 years During this long period I came into intimate contact with Sethji as a Minister and lastly as a Prime Minister of Holkar State and I have not come across a greater philanthrofist and benefactor not only in Indore, but in the whole of India than Sethji It is due to him that Indore occupies such an important industrial and comercial Centre in Madhya Bharat. He is a Merchant Prince of the highest order, whose purse strings were always open for the cause of poor and needy He is the founder and benefactor of many charitable and educational institutions in Indore and outside. I consider it a privilege and a pleasure to congratulate Sethji on his 80th Birthday wishing him many more years of religious study and meditation

चालीस वर्ष के साथी

सर सिरेमलजी बापना, इंदौर के भूतपूर्व प्रधानमंत्री

मै सेठ साहब को चालीस वर्षों से बहुत समीप से जानता हूँ। मेरी उनके सम्बन्ध में बहुत ऊंची राय है। उनकी उदारता सुप्रसिद्ध है। समाज और विशेषतया जैन समाज के लिये उनकी सेवाये अत्यन्त सराहनीय है। अनेक संस्थाएं इन द्वारा संस्थापित या संपोषित हुई चल रही हे। अब ये विरक्त जीवन बिता रहे है और अपना समय स्वाध्याय और ध्यान मे ही बिताते है।

तीर्थङ्करो का आशीर्वाद

दानवीर सेठ जुगलकिशोरजी बिडला

सर हुकमचन्दजी देश के इनेगिने उन प्रतिष्ठित बडे व्यापारियों मे से हैं, जो धन उपार्जन के साथ समाज सेवा तथा धर्मोपार्जन भी करते रहे है और अब तो वह त्यागमय संन्यास आश्रम मे प्रवेश कर गए है। इस समय उनकी अस्सी वर्ष की जयन्ती मनाने का जो आयोजन अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा कर रही है, उसे जानकर प्रसन्नता हुई। उन्हे परमानंद पद प्राप्त होने मे तीर्थङ्करो का आशीर्वाद प्राप्त हो।

वाणिज्येन्द्र

मनस्वी सेठ रामगोपालजी मोहता, बीकानेर

(गीता के प्रवक्ता, मनीषी और सुप्रसिद्ध व्यवसायी)

देश के सुप्रसिद्ध और स्वनामधन्य श्रेष्ठि रावराजा सर श्री हुकमचन्दजी के प्रति अभिनन्दनात्मक भाव प्रगट करने मे मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। वे मेरे घनिष्ठ मित्र है। इसलिये बहुत अधिक क्या लिखू ? उनकी विशेषताओ और महिमा से अधिकांश देशवासी अपरिचित नही है। उन्होने देश की अनेक उपयोगी सस्थाओ को लाखो रुपया दान दिया है। ऐसा दान और भी अनेक उदारवृत्ति के धनिक देते रहे है। मुझे उनकी जो विशेषता अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होती रही है, वह है उनके वैभव की उपभोग प्रणाली। उनको देख कर अनेक प्राचीन जगत सेठो के वैभव और कीर्ति का स्मरण हो जाता है। कहते है कि भगवान बुद्ध के प्रसिद्ध अनुयायी अनाथपिण्डक महाश्रेष्ठि ने बौद्धो के निवास स्थान के लिये समस्त विहार भूमि पर सोने की मोहरे बिछा दी थी। इन्दौर मे उनके बनाये हुये देदीप्यमान जैन मदिर (शीश मंदिर) की जगमगाहट देखकर आज भी वही भावना सेठ हुकमचन्द जी मे मूर्तिमान दिखाई देती है।

धन अनेको के पास होता है। लेकिन, अपने धन मे देश के अत्यन्त कुशल शिल्पकारो, मूर्तिकारो, संगीतज्ञो, सुवर्णकारो, हीर, पन्ने, मणि माणिक, मोतियो के रत्न-भूषण शिल्पियो का उपयोग करके लक्ष्मी की विभूति का सम्पूर्ण राजसी वैभव प्रदर्शन देखकर यह प्रतीत होता है कि इनकी 'राजरत्न' उपाधि सर्वथा सार्थक है।

सेठ हुकमचन्दजी की गिनती देश के बहुत बडे धनिको मे है। परन्तु यह धन भी उन्होने अपनी विलक्षण प्रतिभा से ही उपार्जित किया है। जिन दिनो ये अपने व्यापार का स्वयं संचालन करते थे, तो इनके धुंआधार व्यापार की धाक केवल भारत मे ही नही, बल्कि चीन, ब्रिटेन और अमेरिका के संसार प्रसिद्ध वाणिज्य केन्द्रो पर भी जमी हुई थी। विश्व वाणिज्य का नेतृत्व करने वालो मे इनकी ख्याति भारत के 'वाणिज्येन्द्र' "Merchant Prince" के रूप मे विख्यात हो गई।

उत्तम स्वास्थ, सुन्दर स्वरूप, लक्ष्मी की परम कृपा, सफल व्यापारिक प्रतिभा, उदार और रसिक हृदय आदि अनेक दुर्लभ वस्तुओ का इनको सहज सुयोग रहा है। अब इनमे वानप्रस्थ अवस्था का समय है। सफल जीवन के संध्याकाल मे समस्त वैभव से वृत्ति खीच कर अब वे उदासीन व सजग भाव से अत्यन्त सादगी की विरक्त जीवनचर्या अपना कर चित्त की शांति के लिये प्रयत्नशील हो रहे हैं। मेरी शुभ कामना है कि इस मे भी इनको सफलता प्राप्त होवे।

"A PERSON OF GREAT MAGNANIMITY."

Seth Kasturbhai Lalbhai.

I know Sir Hukam Chand for the last twenty years and over as a person of great magnanimity, keen intellect and a prominent industrialist. During his career he has established many industries, as also donated much amount to works of public utility for which he deserves well of his country.

I wish Sir Hukam Chand a quiet and peaceful life particularly when he is retired from business and is devoting himself to meditation.

मध्यभारत के निर्माता

श्रीमत प्रताप सेठ, खानदेश के सुप्रसिद्ध उद्योगपति

रावराजा सर सेठ हुकमचन्द सुविख्यात दानी और समाजसेवी है। स्वकर्तृत्वसे कमाये धन का विनियोग आपने बडे औदार्य से और कुशलता से औद्योगिक उन्नति के लिये और सामाजिक विकास के लिये किया है। आपके दान का एक विशेष गुण यह है कि आपने जो सामाजिक सस्थाये निर्माण की हैं या जिन सस्थाओ को आर्थिक साहाय्य किया है, उनको स्वावलम्बी और पूर्ण बनाया है और आप स्वय उन सस्थाओ से विरक्तभाव से रहे है। सेठ साहब आधुनिक मध्यभारत के निर्माता है, इसमे कुछ भी सन्देह नही।

असाधारण व्यक्ति

सेठ गुलाबचद हीराचद सुप्रसिद्ध उद्योगपति

सेठ हुकमचन्दजी असाधारण व्यक्ति है। वे जैन समाज के द्वारा सर्व प्रकार की प्रशसा और सन्मान के पात्र है।

अनुकरणीय आदर्श

धर्मप्राण गोभक्त सेठ चिरजीलालजी लोयलका, बम्बई

मै सर सेठ हुकमचन्दजी को वर्षो से जानता हूँ। आप बम्बई या मध्यभारत के ही नही, हिन्दुस्तान के बहुत बडे और प्रथम कोटि के करोडपति व्यापारी और उद्योगपति है। आपने अपनी आयु का बडा भाग व्यापार-व्यवसाय और उद्योग-धन्धो मे बिताते हुये भी धर्म को कभी भी अपनी दृष्टि से ओझल नही होने दिया। धर्ममय जीवन आपके महान जीवन की अनुकरणीय विशेषता है। आप मिलनसार, सरल, सहृदय और धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति है। आपकी उदार दानशीलता भी अत्यन्त सराहनीय है। जो धनी-मानी लोग अपने जीवन की अन्तिम घडी मे भी धन-पुत्र-कलत्र की मोहमाया के जाल मे उलझे रहते है, उनके सामने आपने एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर दिया है। आप उन थोडे से लोगो मे से है, जिन्होने धन के साथ धर्म का भी सम्पादन किया है और जीवन का अन्तिम भाग सम्पूर्ण रूप से धर्म-कर्म मे ही व्यतीत कर रहे है। मै चाहता हू कि दूसरे धनीमानी व्यापारी भी आपका अनुकरण करे। आप शतायु हो और आपका आदर्श प्रकाशस्तम्भ की तरह हमारे सामने बना रहे।

समाज की विभूति

सेठ रामदेव आनदीलाल पोद्दार—बम्बई के सुप्रसिद्ध शिक्षाप्रेमी उद्योगपति

सर सेठ हुकमचन्दजी से मेरा वर्षो का परिचय है। आप खास घराने के व्यक्ति होते हुये भी प्रारम्भ मे साधारण व्यापारी थे। आप मे अपूर्व साहस था। इसी कारण से आपने व्यापार मे काफी मात्रा मे धनोपार्जन किया। अच्छी मात्रा मे धनोपार्जन कर लेने के बाद आपने औद्योगिक क्षेत्र मे भी विकास किया और कई उद्योग कायम किये और उनमे भी खूब द्रव्योपार्जन किया। वह धन समाज के उपयोगी कार्यो मे आपने काफी मात्रा मे लगाया। आपने सामाजिक सेवाये भी बहुत-सी की। वह भी सराहनीय हैं। इस तरह सर्वाङ्गीण कार्यो मे अटूट साहस से सदैव सहयोगी बने रहने के कारण आपने काफी गौरव प्राप्त किया है। आप मिलनसार प्रकृति के है। ऊंचे स्टैंडर्ड से रहते हुये भी व्यक्तिगत रूप से आपकी सादगी ने सोने मे सुगन्ध का काम किया है। आप देश के खास व्यक्तियो मे गिने जाते है। ऐसे आदमी बहुत कम होते है, जो इस तरह समाज की पचमुखी सेवाये करते है। मेरी सदैव आपके प्रति श्रद्धा रही है। आप समाज की एक विभूति है।

सर्वप्रिय उद्योगपति

सेठ रामनारायणजी रुइया, बम्बई के सुप्रसिद्ध व्यवसायी

यदि आपको आधुनिक इन्दौर का विधाता कहा जाय, तो अतिशयोक्ति न होगी। यद्यपि आपका मध्यभारत के औद्योगिक और आर्थिक विकास मे बहुत बडा हाथ रहा है, तो भी आपका व्यवसाय इसी प्रदेश तक सीमित नही है, अपितु समस्त भारतभूमि पर विस्तृत है। मैने सेठ हुकमचन्दजी को भारत के उद्योग-धन्धो को पूर्ण करने मे गतिशील ही पाया है। व्यावसायिक जीवन म अधिक व्यस्त होते हुये भी देश की अन्य प्रवृत्तियो मे भी आप पूर्णरूप से सहयोग देते आये है। आपकी महान सेवाओ मे यह देश अपरिचित नही है। यह हमारा सौभाग्य है कि भारतवर्ष मे सेठ हुकमचन्दजी जैसे उद्योगपति, धर्मवीर, समाजसेवी तथा साहित्यप्रेमी आज भी मौजूद है। मेरी यह शुभ कामना है कि आप दीर्घायु हो और हम लोगो का मार्ग दर्शन करते रहे।

वे दीर्घजीवी हो

सर श्रीराम, दिल्ली क्लाथ मिल, नईदिल्ली

मुझे यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि पुराने उद्योगपति सर हुकमचन्द अपनी आयु के ८० वर्ष पूरे कर रहे हैं। वे बहुत ही सफल व्यापारी और अनेक सार्वजनिक संस्थाओ को बहुत उदारता के साथ दान देने वाले हैं। भारत के ऐसे अनेक महापुरुषो की आवश्यकता है। उनका महान जीवन दीर्घजीवी हो।

बिगड़ी को बनावे उसका नाम वानिया

राज्यभूषण, रायसाहब राज्यरत्न सेठ जगन्नाथजी, इन्दौर

मेरे साथ श्रीमन्त रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी का सम्बन्ध लगभग पचास वर्षों से अधिक से है। यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढता ही रहा है। इन्दौर के व्यापारिक समाज मे जब भी कभी व्यापारिक कठिनाइयां उत्पन्न हुई, तब सर सेठ साहब की सम्मति व सहयोगसे सहज ही सरकार व ग्यारह पंचों मे निबटती रही। आपका साहस, धैर्य व समयोपयोगी सलाह सदैव सफलीभूत रही है। आपका मेरे व कुटुम्ब के प्रति अगाढ घरोबा व प्रेम है। वैसे ही वह सम्बन्ध भी ऐसे है कि समय-समय पर हर प्रकार से सर सेठ साहब का जो सहयोग व सद्भावना मिलती, वह हमारे लिये चिरस्मरणीय रहेगी। मैने अपने जीवन व अनुभव मे कभी ऐसा सत्पुरुष नही देखा, जो वैभव व ऐश्वर्य मे किसी राजा से व प्रेम व नम्रता मे किसी महापुरुष से कम नही है। साज-बाज व खानपान के शौकीन ऐसे पुरुष वैश्य जाति मे कम देखने मे आए है।

मेरे सन्मुख कई ऐसे भी प्रसंग उपस्थित हुए जब सेठ साहब के धैर्य्य व गाम्भीर्य को देखकर मै आश्चर्य मे पड गया। "बिगडी को बनावे उसका नाम वानिया' यह लक्षण सेठ साहब मे पूर्ण रूप से विद्यमान है और बिगडी को बनाने मे उनका हर प्रकार से सहयोग रहा है।

सर सेठ साहब के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा व स्नेह है और आयुष्य मे मेरे बराबर होते हुए भी मेरे हृदय में आपके प्रति सदैव पुनीत भावनाएं जगमगा रही हैं। अन्त:करण से अपने हृदय के उद्गार श्रद्धाञ्जलि रूप मे आपके प्रति व्यक्त करता हूँ। परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह ऐसे परोपकारी एवं दयालु सज्जन को शतायु दें, जिससे वे जनता एवं व्यापारी समाज का और अधिक उपकार करते रहे।

आदर्श जीवन

श्री सेठ गजाधरजी सोमानी, बम्बई के प्रसिद्ध उद्योगपति और समाजसेवी

इस देश के औद्योगिक व आर्थिक क्षेत्र मे शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने सर सेठ हुकमचन्दजी

जी का नाम सुना न हो। आपने अपने दीर्घ जीवन मे व्यवसाय और औद्योगिक क्षेत्र मे बहुत ही ऊंचा स्थान प्राप्त किया है। आपकी औद्योगिक और व्यापारिक प्रतिभा सुप्रसिद्ध है। मध्य भारत मे आपके व्यवसाय का केन्द्र होते हुये भी आपका नाम सारे भारत के व्यापारिक क्षेत्र मे बडे आदर के साथ लिया जाता है। व्यापारिक प्रशस्ति के साथ-साथ आप मे बडी उदारता भी है, जिसका आपके द्वारा स्थापित तथा पोषित अनेक सार्वजनिक सस्थाये ज्वलन्त प्रमाण हैं। आप बडे ही मिलनसार मधुर प्रकृति के सज्जन है। छोटे-से-छोटे व्यक्ति के साथ भी आपको प्रेमपूर्वक मिलने मे कभी संकोच नही होता। यह आपके विशाल हृदय का परिचायक है। अभी कुछ वर्षों से आप व्यापारिक प्रवृत्तियो से निवृत्त होकर एकान्त एव सरल जीवन व्यतीत कर रहे है। इसमे सन्देह नही कि आपके आदर्श जीवन से व्यापारिक जगत लाभ उठायेगा।

प्रमुख व्यापारी

श्री दुर्गाप्रसादजी मडेलिया, जीवाजीराव बिडला काटन मिल-मुरार-ग्वालियर

रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी साहब का स्थान मध्यभारत के ही नहीं, हिन्दुस्तान के उद्योगपतियो र व्यापारियो मे प्रमुख है। इन्दौर की व्यापारिक और औद्योगिक उन्नति का तो प्राय सारा श्रेय सेठ साहब को ही है। सेठ साहब के अभिनन्दन क इस शुभ अवसर पर मै उनकी दीर्घायु के लिये अपनी शुभ कामनाये अर्पित करता हूँ।

जीवन की अमिट स्मृतियां

लाला रामरतनजी गुप्ता, सुप्रसिद्ध उद्योगपति, कानपुर

जीवन के ८० कर्मठ वर्ष पार करके सर सेठ हुकमचन्दजी ने कर्म संन्यास ग्रहण किया है और वे अब वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश कर गये है। जो जन्म से साधु प्रवृत्ति का हो, जिसका जीवन सदैव परोपकार तथा समाज सेवा मे बीता हो तथा जिसने कभी किसी का बुरा न सोचा हो, उस के लिये कर्म-संन्यास सदैव रहा है और रहेगा। उन्होने जो कुछ किया, स्वान्त सुखाय किया। यश, ख्याति, मान तथा कीर्ति की उन्होने कभी भी परवाह नही की। अपने निश्चित मार्ग पर चलते जाना तथा निन्दा या स्तुति की बिना परवाह किये अपना कर्तव्य निभाना उनकी परिपाटी रही है और इस परिपाटी को स्वभावत. निभाने वाले पुराने कुलीन लोगो की गिनी गिनी सख्या मे से एक वे भी है।

मै उनकी प्रशसा मे कुछ लिखू तो असगत होगा। वे मेरे पिता के मित्र थे। अतएव मुझे भी अपने बच्चे के बराबर समझते है। मैने जीवन मे उनका आशीर्वाद पाया है। उनकी छाया मे हमारे ऐसे को उत्साह तथा सकल्प मिला है। कई बार वे हमारे निवासस्थान पर अतिथि रह चुके है और मै भी उनका अतिथि रह चुका हूं। निकट सम्पर्क के दो चार मौके मेरे जीवन की अमिट स्मृतिया है। जितना बृहत् उनका भोजन है, उतना ही बृहत् उनका पेट भी है। यानी उस मे इतनी गम्भीरता है कि हरेक का दु ख सुख उसमे आसानी से समाया रहता है और वे किसी की समस्या को कभी भूलते ही नहीं।

धन के साथ सेवा की जो मर्यादा सेठजी ने कायम की है, वह हम सबके लिये आदर्श है। जितनी आत्मीयता वे सरलस्वभाव से सबको प्रदान करते है, वही आज के जमाने मे अप्राप्य वस्तु है।

अक्षय आयु की कामना

श्री आर० सी० जाल, मैनेजिग डायरैक्टर हुकमचद मिल्स, इंदौर

यो तो मुझे अपने जीवन मे देश के कई महान् व उच्चकोटि के व्यवसायी और उद्योगपतियो से सपर्क

मे आने का प्रसंग आया है, परन्तु गत तीस वर्षों के अविरत संसर्ग से जो विशेषताएं मैंने श्रीमन्त सेठ साहब मे पाई, वे इस कोटि के धनिकों मे दुर्लभ ही है। आपने अपने जीवन से यह सत्य करके दिखा दिया है कि लगन-पूर्वक परिश्रम ही उन्नति का मूलमन्त्र है। लगातार रातदिन के अथक परिश्रम के पश्चात् भरपूर नींद से जगाकर भी यदि आप सेठ साहब से व्यापार या उद्योग सम्बन्धी सलाह चाहेंगे, तो भी आपको उनसे वही शान्तिपूर्वक सुलझी हुई बातें मिलेंगी। झुंझलाहट, चिडचिडापन व क्रोध, जो इस परिस्थिति मे स्वाभाविक है, उसका सेठ साहब मे अभाव मिलेगा। कठिन परिस्थिति व विकट समस्या के उपस्थित होने पर भी आपके चेहरे पर हतोत्साह के भाव कभी भी दिखाई नही पडेंगे। विपत्ति का साहस व साधना के साथ सामना करना तथा उसमे से सफलतापूर्वक निकलना सेठ साहब के लिये सहज है। किसी भी नवीन उद्योग मे हाथ डालना व साहस के साथ जोखिम उठा सलग्नतापूर्वक निभा ले जाना सेठ साहब के लिये साधारण सी बात है।

सेठ साहब अपनी धुनके धनी है,परन्तु त्रुटि ज्ञात होने पर बिना किसी हिचकिचाहट के उसे स्वीकार करने तथा उसी क्षण सुधार करने मे विलंब भी नही करते। दुराग्रह तो आपके कोष मे कोई शब्द ही नही है। अपने सम्पूर्ण कार्यभार मे सेठ साहब अनुशासन के बडे कायल है। यही कारण है कि वे हमेशा सामयिक शासनकर्ताओ को पूर्ण मानसन्मान की दृष्टि से देखते रहे है।

कपडे की मिले, ज्यूट की मिले, स्टील व बिजली के कारखाने, तेल शक्कर व रुई के बडे-बडे कारखाने, बैंक, इन्शोरन्स कम्पनी आदि संस्थाएं देश के सभी महत्त्वपूर्ण उद्योग व व्यापार मे सेठ साहब का प्रमुख हाथ रहा है। अतुल सम्पदा को स्वय के प्रयत्नो द्वारा उपलब्ध कर उसका जो सदुपयोग सेठ साहब ने किया है, वह किसी से छिपा नही है।

अपने धर्म के पक्के श्रद्धानी होने हुए भी आपने अन्य धर्मों मे अच्छाई ही देखी है। आपकी धार्मिक सहिष्णुता अद्वितीय है।

धन दुर्व्यसनो का एक प्रमुख कारण माना जाता है। परन्तु सेठ साहब का चारित्र बल महा प्रबल है। दुर्व्यसनो से सेठ साहब सदा दूर रहे हैं। यही आपके हृदय की दृढता तथा विशालता का द्योतक है। आपका उच्च रहन सहन, परन्तु सादगी के साथ मिलनसारिता देखकर शत्रु भी बैर भाव भूल जाता है। आज सारा समाज सेठ साहब के इन गुणो का कायल है। अतः न केवल मध्यभारत, अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष के समस्त व्यापारी व व्यवसायी के स्वर मे स्वर मिलता हुआ मै भी अपने इस वयोवृद्ध तपस्वी की अक्षय आयु की कामना करता हूँ।

आध्यात्मिक जीवन की ज्योति

देशभक्त सेठ अचलसिहजी, आगरा

वैसे तो मै पत्रो द्वारा श्री सेठ साहब की सार्वजनिक संस्थाओ और अन्य कार्यों मे दान की महिमा बहुत कुछ सुनता व पढता रहता हूँ, पर आज से चन्द वर्ष पूर्व मुझे एक बार जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के दर्शनार्थ इन्दौर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, तब मै वहां राज्यभूषण रायबहादुर सेठ कन्हैयालालजी भडारी के यहा ठहरा था। उस समय मेरी यह हार्दिक इच्छा हुई कि मै सेठ हुकमचन्दजी के दर्शन करू। मै सेठ साहब से उनके निवास स्थान पर मिला। सेठ साहब मुझसे इस प्रेम और बन्धु भाव से मिले और बातचीत करने लगे, जैसे कि वह मेरे से पहिले ही से और काफी परिचित हैं। करीब आध घण्टे बातचीत होती रही। मुझे ऐसा स्मरण आता है कि उस समय सेठ साहब के भतीजे को इन्दौर महाराज की तरफ से कोई पदवी प्रदान की गई थी और सेठ साहब बडे प्रसन्नचित्त थे। आपका भव्य और सुन्दर शरीर था। आप एक सफेद

अगरखा, गले मे पन्नो का कण्ठा और सिर पर पगडी पहिने हुये थे। आपसे बातचीत करने पर चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। आपका नाम, वैभव, गौरव और प्रतिष्ठा अद्वितीय रही है। अब सेठ साहब ने दुनिया के काम-धन्धो को छोडकर आत्म सिद्धि करने मे अपना जीवन व समय लगा दिया है। यही दुनिया में आने का मनुष्य जीवन का सार है। मेरी यह भावना व इच्छा है कि सेठ साहब चिरकाल तक जीवित रहे और जैन समाज को आध्यात्मिक जीवन की ज्योति प्रदान करते रहे।

उदार हृदय

श्रीकेशवदानजी पौराणिक, भूतपूर्व मैनेजर हुकमचन्द मिल, इन्दौर

मेरा श्रीमान् सर सेठ साहब से लगभग पचास वर्ष से सबध रहा है। मालवा यूनाइटेड मिल जब इन्दौर मे चालू करने का प्रसंग आया, तब वहा पांच वर्ष नौकरी करने पर जब मेरे वहा से कार्यनिवृत्त होने का समय आया, तब सेठ साहब ने हुकमचन्द मिल के नाम से बनने वाली काटन मील का कार्यभार मुझे सौंपा और मुझ सरीखे अकिंचन व्यक्ति पर विश्वास रख कर व पूर्ण अधिकार देकर एक जवाबदारी पूर्ण कार्य सौंपा और १५०) मासिक से कार्य शुरू करने वाले व्यक्ति को बारह वर्षों मे १०००) रुपये मासिक तक तरक्की देकर उत्साहित किया। इतना ही नही, किसी राजा महाराजा की तरह आपने अपने आधीन अधिकारियो को कार्य कुशलता व ईमानदारी पर खुश होकर इनाम भी दिये। मुझे श्रीहुकमचन्द मील के १०० फुल्ली पेडअप शेयर, जिनकी कीमत उस समय पचास हजार रुपये की थीं, इनाम मे देने की कृपा की। जब मैने सेवा निवृत होने की इच्छा प्रगट की, तो उस पर श्री सर साहब ने प्रेमपूर्वक मुझे कार्यभार चलाने को प्रेरित किया। ऐसे उदार हृदय के कई प्रसंग आये, जिनको वर्णित करना ग्रन्थमाला तय्यार करना है।

कार्य निवृत होने के पश्चात् भी सर साहब का आज तक मेरे साथ अत्यन्त प्रेमपूर्वक व्यवहार है और उनके यहा के समस्त प्रसगो पर मुझे स्मरण किया जाता है।

उनका आशीर्वाद

बरारकेसरी श्री बिजलालजी बियाणी

सेठ साहब का अभिनदन मेरी दृष्टि मे राजस्थान के उन सुपुत्रो का अभिनदन है, जिन्होने अपने अध्यवसाय श्रम, लगन और प्रतिभा से भारतमाता का मस्तक गौरव से उन्नत किया है। एक समय था, जब स्वराज्य की लडाई का प्रारम्भ आर्थिक क्षेत्र मे स्वदेशी के नाम से किया गया था। वह १९०५ का बग-भग का समय था। उस समय मे राजस्थान के जिन सुपुत्रो ने अग्रेजो के आर्थिक साम्राज्य को चुनौती दी थी और औद्योगिक क्षेत्र मे उनके एकाधिकार पर सफल हमला बोला था, उनमे उस समय के स्वदेशी-आदोलन के आचार्य डा० प्रफुल्लचन्द राय ने भी सेठ हुकमचन्दजी को अगुआ माना है और उनकी भूरि भूरि प्रशसा की है। लेकिन, देश की राजनीति मे अपने को सर्वथा अलिप्त रखकर सेठ साहब सरीखो ने अपने इस महान प्रयत्न का वह लाभ नही उठाया, जो उन्हे उठाना चाहिये था। उनके इस सत्प्रयत्न को शोषण का ही नाम दिया गया और प्राय ईर्ष्या से ही देखा गया। उस भूल का प्रायश्चित अब इस रूप मे किया जाना चाहिये कि राजस्थानी भाई राजनीति मे दुगने उत्साह से भाग ले और गतकाल की कमी को भी पूरा करें। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि सेठ साहब इतने वृद्ध न हो गये होते और उन्होने अपने को धर्म-ध्यान मे न लगाया होता, तो वे आज राजनीतिक क्षेत्र मे भी अगुआ होते। फिर भी उनका आशीर्वाद तो आज के युवको को प्राप्त होना ही चाहिये।

सेठ साहब और सेठानी साहिबा ।

सेठ राजमलजी सेठी और उनका परिवार

बाबू देवकुमारसिंहजी एम. ए. और उनका परिवार

सौभाग्यवती दानशीला सेठानी कंचनबाईजी साहिबा

श्रीमान् रायबहादुर जैनरत्न मशीरबहादुर भैयासाहब राजकुमारसिंहजी और उनका परिवार।
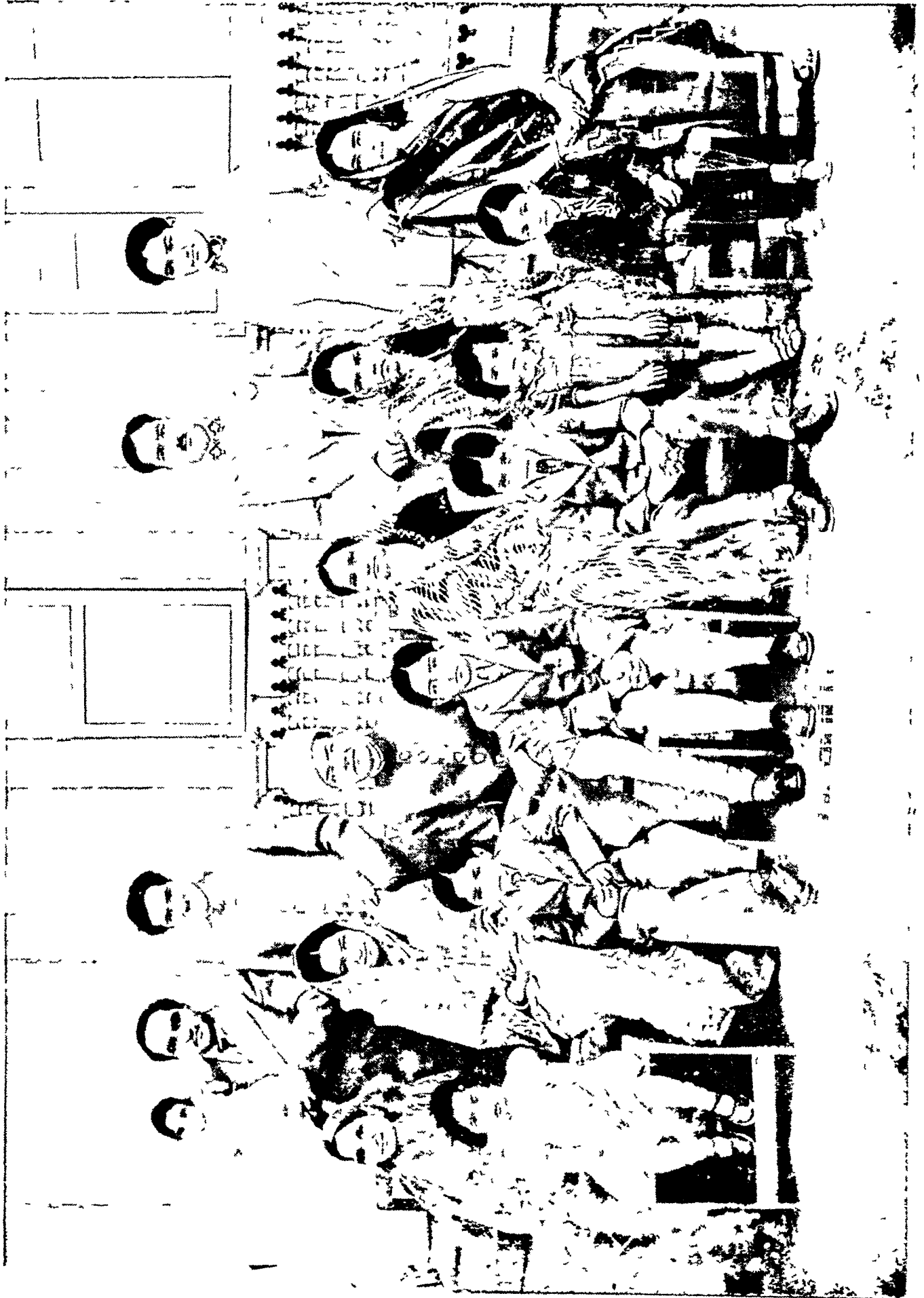
श्रीमान् रायबहादुर राज्यरत्न रावराजा श्रीमन्त सेठ हीरालालजी साहब और उनका परिवार।
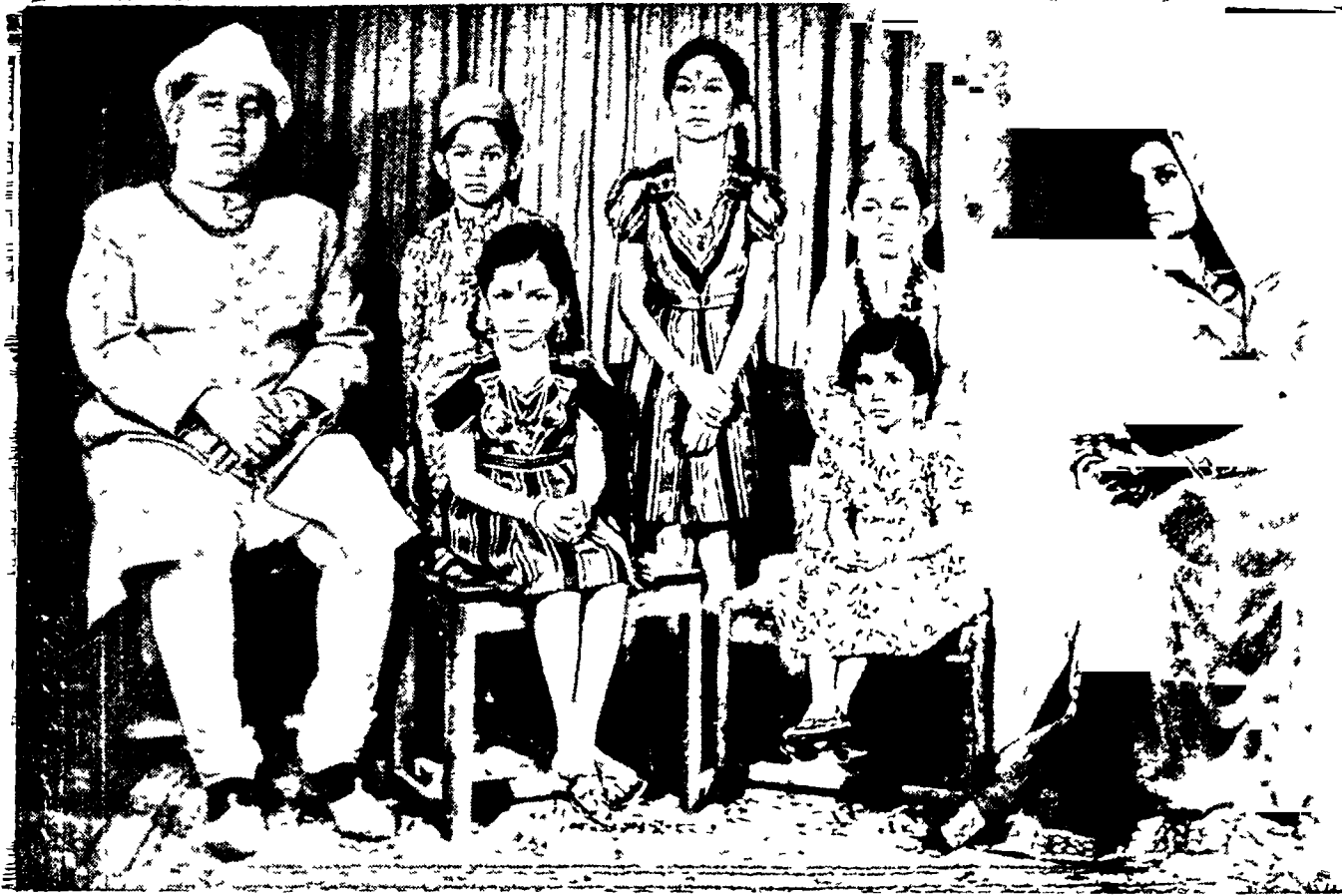
बाबू रतनलालजी मोदी और उनका परिवार।

रायबहादुर राजकुमारसिंहजी की पौत्री जिसका कुछ दिन पूर्व जन्म हुआ है
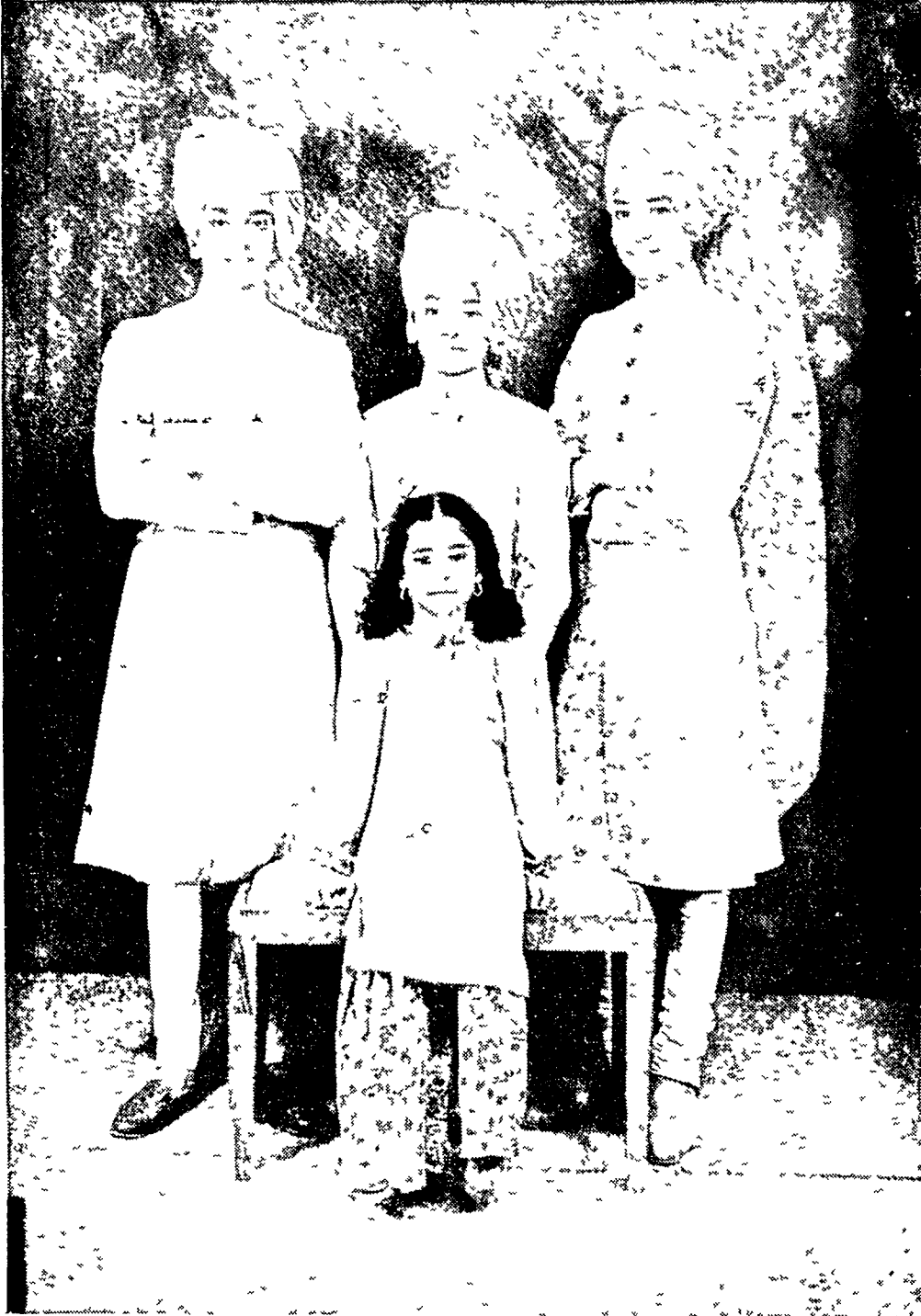
सर सेठ भागचन्द जी सोनी के सुपुत्र श्री कुंवर प्रभाचन्द जी, सुशीलचन्द जी सोनी, निर्मलचन्द जी सोनी अपनी बहन के साथ

श्रीमान् रायबहादुर वाणिज्यभूषण सेठ लालचन्द जी सेठी और उनका परिवार ।

मालवाके धनकुबेर

श्रीत्र्यम्बक दामोदर पुस्तके, मध्यभारत के प्रमुख वयोवृद्ध नेता

सेठ हुकमचन्दजी मालवा के सबसे बडे धनिक व कारखानदार है। इन्दौर मे इनकी व इनके रिश्तेदारो की तीन मिले है, जो 'हुकमचन्द ग्रुप' नाम से कही जाती है। इनके व्यापार का विस्तार भारत मे ही नही, विदेशो मे भी फैला हुआ है। वे मालवा के धन कुवेर है। जैनो के प्रायः सभी पवित्र स्थानो मे आपके तरफ से दान धर्म चलता रहता है। आपने कई धर्मशालाये व मन्दिर बनाये है व सैकडो का जीर्णोद्धार किया है। इन्दौर मे "नसिया" इस नाम की आपकी बनाई हुई धर्मशाला प्रसिद्ध है। आपका बनाया हुवा शीशमहल इन्दौर देखने वालो के लिये एक स्थान है। आपकी आयुर्वेद पर बहुत श्रद्धा है। हिन्दू विश्वविद्यालय मे आयुर्वेद शिक्षण के लिये आपने एक बहुत बडी रकम दी है। इन्दौर मे एक बहुत बडा आयुर्वेद अस्पताल आपकी तरफ से चल रहा है। आयुर्वेद की कीमती व शुद्ध दवाइयां आपके यहां हर किसी को लागत खर्च से मिलती है, जो अन्य कही मिलनी दुर्लभ हैं। आपकी राज्य मे तो मान्यता है ही, जनता भी आपका बहुत आदर करती है। आप सच्चरित्र व्यक्ति है। धार्मिक कार्यो मे आपका बहुत रस है। सार्वजनिक कार्यों मे भी आप भाग लेते रहते हैं। सन् १९३३-३४ मे सर पी० सी० राय की अध्यक्षता मे इन्दौर मे बहुत बडा स्वदेशी वस्तु प्रदर्शन व सम्मेलन हुआ। उसके आप स्वागताध्यक्ष थे। सन् १९३५ मे पूज्य महात्मा जी अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिये इन्दौर आये। उस समय उनके स्वागत मे भी आपने काफी हिस्सा लिया। उस समय एक विशाल खादी प्रदर्शिनी की गई थी, जिसका मुख्य दरवाजा आपके नाम से ही बना था।

अखिल भारत देशी राज्य लोक परिषद का वार्षिक अधिवेशन १९४७ मे लश्कर मे हुआ। उसके लिये आर्थिक सहायता प्राप्त करने के हेतु लेखक कुछ अन्य मित्रो सहित आपके पास उपस्थित हुआ था। आपने बडी श्रद्धा से एक काफी बडी रकम इस कार्य के लिये दी। इन तीनो प्रसंगो पर सेठ साहब के संपर्क मे आने का लेखक को अवसर मिला तथा गत चालीस वर्ष से उज्जैन मे रहने के कारण सेठ साहब की गतिविधि का निरीक्षण करने का अवसर भी मिला। उनके व्यवहार चातुर्य, व्यापार कुशलता व चारित्र्य का लेखक पर बहुत प्रभाव पडा है। आज कल वृद्धावस्था के कारण सेठ साहब धर्मध्यान मे ही अधिकतर समय व्यतीत करते है।

वैभव और उदारता की मूर्ति

ज्योतिषाचार्य प० सूर्यनारायणजी व्यास उज्जैन

सेठजी मध्यभारत की शोभा है। उनके जीवन मे वैभव ने उन्हे उदार होकर वरण किया है। परन्तु सेठ साहब ने उसी उदारता से उसका उपभोग किया है। इन्दौर मे प्रमाणस्वरूप प्रत्यक्ष ऐसी अनेक जनोपयोगी संस्थाएं विद्यमान हैं, जिनका निर्माण सेठजी की अर्जित सम्पत्ति से हुआ है। उनकी दी हुई दान-राशि भी विपुल है। मुक्त हस्त हो बिना भेदभाव के उन्होने वैभव वितरण किया है। अनेक संस्थाएं उनकी उदारता से पोषित और विकसित हुई है। मध्यभारत के ही नही, देश के वैभवशालियो मे सेठजी अग्रणीय है। राजसी ऐश्वर्य को प्राप्त करने मे भी सेठजी का चरित्र आदर्श रहा है। धार्मिक आस्था सुदृढ रही है। इस जीर्ण अवस्था मे भी उनका युवक समान श्रमशील शरीर वर्तमान युग के तारुण्य को चुनौती देने वाला है। वे लक्ष्मी के कृपापात्र होकर भी सरस्वती के भक्त और विद्वज्जनो के आराधक है। सेठ साहब को प्राप्त करके मध्यभारत अपने को

धनी मानता है। वास्तव मे सेठ साहब इस प्रदेश की शोभा हैं। हमारी यह शोभा चिरकाल बनी रहे, यही सभी की सद्‌भावना है।

दुर्लभ नररत्न

वयोवृद्ध वैद्य ख्यालीरामजी द्विवेदी, इन्दौर

श्रीमन्त रावराजा सर सेठ हुकमचन्द का सम्बन्ध, मेरे स्वर्गीय पिताजी क समय से इनके कौटुम्बिक औषधोपचार के कारण चला आ रहा है। श्रीमन्त और श्रीमन्त के वर्तमान कुटुम्ब मे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जिसका मेरे द्वारा औषधोपचार न हुआ हो। मेरा और सेठ साहब का घनिष्ठ संबन्ध भी है। इसी प्रकार वे मेरे कथन का आदर भी करते आये है। श्रीमन्त सेठ साहब से चि० सौ० रतनप्रभादेवी के बाल्यकालीन औषधोपचार के समय से ही जब जब मेरा पारस्परिक वार्तालाप हुआ, मैने सदा ही यह सुझाव रक्खा कि आपके द्वारा किसी ऐसे आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय की स्थापना होनी चाहिये, जो सर्वथा जैन धर्म व संस्कृति के अनुकूल हो एवं जिससे समस्त नागरिक जनता की औषधोपचार द्वारा सेवा की जा सके। मेरे व सर सेठ साहब के बीच इसी प्रकार की चर्चा होती रही। अन्त मे सेठ साहब ने मेरे कथन का आदर किया। इसी के फलस्वरूप शीघ्र ही प्रिन्स यशवन्तराव आयुर्वेदिक जैन धर्मार्थ औषधालय की स्थापना हुई। श्री राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक कालेज मे सेठ साहब ने मेरा सहयोग रक्खा। नगर मे और भी बहुत से सार्वजनिक कार्यों मे सेठ साहब का मेरे साथ पूरा सहयोग रहा। हिन्दी साहित्य सम्मेलन मे जो कि इन्दौर मे सर्वप्रथम हुआ था और जिसका सभापतित्व महात्मा गाँधी ने किया, १९३५ मे महात्माजी द्वारा उद्‌घाटित अखिल भारतीय ग्रामोद्योग प्रदर्शनी, ३१ मार्च १९२० को होने वाले अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन मे और भारतीय ज्योतिष सम्मेलन मे भी सेठ साहब ने पूर्ण सहयोग दिया। इसी प्रकार इन्दौर मे वर्तमान हिन्दू महासभा, जिसका मै सभापति था और जिसकी ओर से श्रीमन्त महाराजाधिराज राजराजेश्वर श्री सवाई तुकोजीराव होल्कर बहादुर के करकमलो मे नगर क प्रमुख पुरुषो द्वारा अभिनन्दन पत्र भेट किया गया था, उसमे भी सेठ साहब का सबसे ःमुख हाथ रहा।

स्थानीय सरकारी बगीखाना मे सम्पन्न हुई खद्दर प्रदर्शनी, जिसका मै स्वागताध्यक्ष था और जिसका उद्‌घाटन स्वर्गीय देशभक्त सेठ जमनालालजी बजाज द्वारा सम्पन्न हुआ था, उसमे भी सर सेठ साहब ने अच्छा सहयोग दिया।

इसी प्रकार मनीलेण्डर्स विरोधिनी सभा, व्हेजीटेबिल घी विरोधिनी सभा तथा वर्णाश्रम धर्म संरक्षिणी सभा-आदि मे भी मेरे साथ पूरा हाथ बटाया। आपका इन सबके लिये मै अत्यन्त आभारी हूँ।

सेठ साहब इन्दौर तथा मध्यभारत के ही नही, अपितु समस्त भारत मे देदीप्यमान व उज्वल गौरव रत्न है। ऐसे महान, उदार, पवित्र नेता, पवित्र विचारक, सब सामाजिक सत्कार्यो मे निःस्वार्थ सहयोग देने वाले सज्जन नररत्न दुर्लभ है। आपके उदारता, धर्मनिष्ठा आदि सद्‌गुणो का मुझे जो प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है, उनका वर्णन करना असम्भव सरीखा है। मै हृदय से आपके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

वे एक नरसिंह हैं

श्री कन्हैयालालजी प्रभाकर सपादक "विकास" और नया जीवन"

देश मे ऐसा शायद ही कोई शिक्षित हो, जिसने रावराजा सर सेठ हुकमचन्द का नाम न सुना हो। मेरे पिताजीने भी बचपन मे उनकी बाते मुझे सुनाई थी और यो मै भी उनके नाम से परिचित था। कलकत्ता की वीर शासन जयन्ती के वे प्रधान सभापति चुने गये थे। मै भी वहा गया था। वहा ही पहली बार मैने उन्हे देखा।

सिर पर महाराष्ट्रियन ढंग की किश्तीनुमा लाल विशाल पगडी, गले मे पन्नो का बहुमूल्य कण्ठा, सफेद अंगरखा, विशाल देह और तेजस्वी मुख मुद्रा । वे सबसे मिलते, सबको नमस्कार करते, हँसते पण्डाल मे आए। उनकी भव्यता की पहली छाप मुझ पर पडी ।

वे आसन पर बैठे, कार्यवाही आरम्भ हुई । स्वागताध्यक्ष साहू श्री शांतिप्रसादजी भाषण पढ रहे थे। तो एक प्रतिष्ठित मनुष्य सर साहब के कान मे कुछ कहने लगे । उन्होने उन्हे हाथ से अभी ठहरने को कहा और उंगली से साहूजी की तरफ इशारा किया । तीन बार ऐसा हुआ, तीनो ही बहुत प्रतिष्ठित आदमी थे । उनकी यह वृत्ति देखकर मैने अपने नोट्स मे लिखा—"सर सेठ को दूसरो की सुविधा का ध्यान रहता है और इसका अर्थ यह हुआ कि उनमे 'स्व' के साथ 'पर' की वृत्ति मूलरूप मे विद्यमान है । यही वृत्ति है, जिसने उनके द्वारा सार्वजनिक जीवन मे इतना काम कराया है ।"

स्वागताध्यक्ष के बाद उनका भाषण आरम्भ हुआ । भाषण छपा हुआ था। वे पढने लगे । पढने की गति मन्द थी। लाग मे कुलबुली हुई । कोई १४-२० मिनट बाद किसी ने उनसे कहा—"लाइये, आपका भाषण किसी और से पढवा दे।"

सर सेठ ने कहा—"नही।" इस नही मे शान्त धीरता थी। ५-७ मिनट भाषण और चला, तो कुलबुली अकुलाहट का रूप लेने लगी । तब फिर उनसे कहा गया कि लाइये, भाषण किसी और से पढवा दें।

उत्तर मिला—"नही-नही !" इस डबल नही मे बूढे आदमी की गम्भीरता ही नही, तरुण की हु कार भी थी ।

मेरे मन ने भीतर ही भीतर दोहराया—"सर सेठ सचमुच नर-सिह हैं।"

साहूजी दूसरो की मनोवृत्ति समझने मे आचार्य है । उन्होने उठकर धीरे से सर सेठ को समझाया कि काम बहुत है । समय कम है । इसलिये भाषण को जल्दी जल्दी राजकुमारजी (सर सेठ के पुत्र) से पढवा दें, तो थोडा समय बच जायेगा ।

सर सेठ साहब मान गये और भाषण राजकुमारजी को देते हुए बोले—"मै थका नहीं हूँ, पर हॉ जलसे का फायदा है, तो दूसरी बात है ।"

मैने अपने नोटस मे लिखा—"सर साहब की "नहीं-नही' मे उनके जीवन की वह अडिगता है, जिसने उन्हे जीवनभर सफलता दी और परिस्थितियॉ कैसी भी हो, वे थक नही सकते, ऊब नही सकते । सचमुच वे नरसिंह है ।

दूसरे दिन दोपहर को दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की बैठक थी । वे उसके बहुत वर्षों से सभापति है और सभापति क्या वे ही तीर्थ क्षेत्र कमेटी है । कमेटी का इतिहास उनका जीवन चरित्र है और उनका जीवन चरित्र ही उसका इतिहास है ।"

इस कमेटी मे वे घण्टों बोले और बताते रहे कि कैसे किस मुकद्दमे मे सफलता मिली, कैसे किसमे कहॉ क्या किया, कहां क्या हुआ ?

जो बातें उन्होने वहां खुले आम कही, उन्हें इस तरह कहना हरेक के लिये सम्भव न था। मैने अपने नोट्स मे लिखा—"सर सेठ की कार्यनीति यह है कि विजय मिले, इसके लिये वे सीधे भी मोर्चे पर बढ सकते है और जरूरत हो, तो व्यूह रचना भी कर सकते हैं । पर व्यूहरचना के पण्डित होकर भी वे निजी जीवन मे सरल हैं । यही नही कि वे अपनो मे विश्वास चाहते है, अपनो का विश्वास भी करते हैं । अपनी युद्धनीति मे वे

विरोधी को पुचकारना भी जानते हैं, घेरना भी और पूरी ताकत से एक साथ झपट्टा मारना भी।'

उसी दिन शाम को बाबू छोटेलालजी के घर हम सब निमन्त्रितो का भोजन था। सर साहब समय से पहले आए और बाद तक बैठे—सबके बाद की पक्ति मे उन्होने भोजन किया।

पण्डित राजेन्द्रकुमारजी ने मेरा उनसे परिचय कराया और पिछले १५-२० वर्षों मे मेरा जैन समाज और जैन साहित्य के साथ जो सम्पर्क रहा है, उससे उन्हे परिचित कराया। बडे प्रसन्न हुए और पूरे जोर से मेरी कमर ही नही थपथपाई, मुझे लगभग गोद मे खीच लिया। बहुत देर तक बातें करते रहे और अन्त मे कहा—"खूब काम करो और कभी कोई काम हमारे लायक हो, तो हमे कह दो।"

मैने अपने नोटस मे लिखा—"सर सेठ मे सिंह का व्यक्तित्व ही नही, पिता का हृदय भी है। वे विरोधियो को परास्त करने मे ही कुशल नही, अपनो को छाती से लगाने मे भी प्रवीण है और यहीं वे अपने मे पूर्ण हैं।"

नरसिह—नरो मे सिह, सर सेठ हुकमचन्द,जिसमे सचमुच 'हुक्म' की कठोरता और 'चन्द' की शीतलता है। बस, मै उन्हे इतना ही जान पाया।

मध्यभारत के दैदीप्यमान रत्न

श्री कालिकाप्रसादजी दीक्षित, सम्पादक 'जयहिंद' जबलपुर

मुझे इन्दौर मे लगभग १७ साल रहने का सुअवसर 'वीणा' के प्रधान सपादक के नाते प्राप्त हुआ। जिस मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति की ओर से 'वीणा' प्रकाशित होती थी, उसके अध्यक्ष राज्यरत्न रावराजा सर सेठ हुकमचन्द थे। सेठ साहब की समिति के कार्यो से विशेष रुचि थी और उसको हर प्रकार का सहयोग दिया करते थे। प्रत्येक सार्वजनिक कार्य मे आगे रहना आपकी विशेषता थी। कहा तो यह जा सकता है कि सेठ साहब से इन्दौर ही नही, समस्त मध्यभारत के गौरव मे वृद्धि हुई है। आपने उस प्रान्त की केवल औद्योगिक प्रगति मे ही सहयोग नही दिया, उसके सार्वजनिक जीवन को भी प्रगति प्रदान की।

अनेक अवसरो पर सेठ साहब का सहयोग आज भी याद आता है। जब इन्दौर मे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, तब सेठ साहब के नाम पर ही 'हुकमचन्द नगर' बसाया गया था। हिन्दी विश्वविद्यालय का प्रश्न उपस्थित होने पर भी आपने उसमे योग दिया और मध्यभारतीय साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के, जो मऊ मे हुआ था, आप ही उद्घाटनकर्ता थे।

आपके कारण ही महामना मदनमोहन मालवीय को ज्योतिष सम्मेलन के अवसर पर अस्वस्थ होते हुए भी इन्दौर आना पडा। महात्मा गाधी आपका आतिथ्य स्वीकार कर आप के निवास स्थान 'इन्द्र भवन' मे पधारे। सेठ साहब का प्रत्येक कार्य निजी हो या सार्वजनिक पूर्ण वैभव से अलंकृत रहता है। सत्य बात तो यह है कि आपने जीवन मे वैभव को अपनाया और उसे केवल अपने लिए ही सीमित नही रखा। उसको जनता मे भी वितरित किया। आज वे केवल जैन समाज के ही नही, पूरे मध्य भारत के दैदीप्यमान रत्न हैं।

धनिको के सम्बन्ध मे चरित्र सम्बन्धी अनेक शिकायते सुनी जाती हैं। परन्तु सेठ साहब के सम्बन्ध मे इस ओर कोई अगुली नही उठा सकता। उनका जीवन सदा व्यवस्थित और ऊँचा रहा। यही कारण है कि आज समाज मे उनका इतना महत्वपूर्ण गौरवमय स्थान है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह ऐसे महान व्यक्ति को दीर्घजीवी बनावे।

मारवाड़ के दो उद्योग-महारथी

पं० सम्पतकुमार मिश्र, लछमनगढ़

पवनपुत्र हनुमानजी के दो कन्धों में से जैसे एक का प्यार भक्तवत्सल राम को और दूसरे का यतिराज लक्ष्मण को प्राप्त था, ठीक उसी प्रकार विशाल राजस्थान की भूमि-माता की गौरवमयी गोद के दो पार्श्वों मे से एक का दुलार राजस्थान के रणवीरो को मिला है, तो दूसरे का उद्योगवीरो किंवा दानवीरो को सुलभ हुआ है। दूसरे शब्दो मे इसे यों कहा जा सकता है कि राजस्थान का अतीत यदि रणवीर क्षत्रियो को प्रकट करने की सामर्थ्य रखता है, तो उसका वर्तमान उद्योगवीरो और दानवीरो को उत्पन्न करने मे अद्भुत क्षमताशाली सिद्ध हुआ है। राजस्थान के अतीत और वर्तमान उद्योग पर्व की ये विभिन्न दोनो देन शुभमय भविष्य के लिये उज्ज्वल आशा का सन्देश देने वाली है।

हर्ष है कि अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा ने सेठ हुकमचन्दजी के अभिनन्दन के लिये सक्रिय कदम उठाकर, अभिनन्दन-ग्रन्थ के रूप मे उनके साहित्यिक स्मारक को, जो ईंट और गारे के अस्थायी और विनाश-शील स्मारको से कहीं अधिक स्थायी और अविनाशी है, तरजीह देकर साहित्यिक स्मारक स्थापना की पुरानी भारतीय परम्परा को सुदृढ किया है।

सर हुकमचंदजी की जन्मभूमि यद्यपि इन्दौर है, किन्तु उनकी पुण्य पितृ-भूमि विशाल राजस्थान के मारवाड़ उपप्रदेश के अन्तर्गत डीडवाना तहसील का एक ग्राम है, जो लाडनू के निकट है और जहां से सेठ साहब के पूर्वज मालवा जा बसे थे। मारवाड की डीडवाना तहसील ने व्यापारिक भारत को अनेक रत्न दिये है। उनमे व्यापारिक धार्मिक जगत को प्राप्त होने वाले दो परमोज्ज्वल नररत्न सर हुकमचन्दजी और सेठ मंगनीरामजी बांगड तो सर्व विदित है, जिनमे चरित्रनायक सर हुकमचंदजी ने राजस्थान के दक्षिण भाग मे स्थित मालव महा-प्रदेश को अपनी व्यावसायिक प्रतिभा का पहला कार्य केन्द्र बनाया और बाद मे तो उनके औद्योगिक चमत्कार की किरणें समग्र भारत मे फैल गईं। आज सर हुकमचंदजी मालवा या मारवाड के न होकर समस्त भारतवर्ष के अपने उद्योगपति है। इसी प्रकार सेठ मगनीरामजी बांगड ने डीडवाना से निकल कर सुदूर पूर्व की राजधानी कलकत्ता महानगरी को अपने व्यापारिक बुद्धिवैभव का कार्य-केन्द्र बनाया, जहां से वे अपने बुद्धिकौशल और अध्यवसाय द्वारा समग्र भारत में फैल गये। दोनो ही बहुत सी बातो मे एक दूसरे के तुल्य हैं। दोनो मे सफल उद्योगपतित्व का सुन्दर समन्वय तो पूर्ण रूप से विकसित हुआ ही है; अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार दोनों की दानशीलता भी अनुकरणीय रही है। दोनो ने अपने जीवन मे कवि की उक्ति कि

"विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम्।"

के रहस्य को अच्छी प्रकार समझा है। पूर्व जन्म का तपस्वी वह नर-पुंगव है, जो सम्पति पाकर उसके खर्च करने का उदार दिल रखता है। इसके अतिरिक्त व्यापारिक साहसिकता, संयमशीलता, धार्मिकता और सरल स्वभाव तथा सादगी आदि गुण भी दोनो को अभिन्न रूप से समान-शील बनाये हुए है। धन कुबेर होकर भी दोनो धनाभिमान से मुक्त रहे है। सन् १९४७ के फरवरी माह की बात है कि इन पंक्तियो का लेखक पूज्य महर्षि स्वामी माधवानंद जी महाराज के साथ जोधपुर से रतलाम जा रहा था। रास्ते के मावली जंकशन के प्लेट फार्म पर मुक्त आकाश के नीचे एक जाजम बिछी हुई थी, जिसपर सौम्यमूर्ति सत्कुलवान सज्जन बहुत से स्वागतार्थी व्यक्तियो से घिरे बैठे थे। हमारी गाडी के वहां रुकने पर वह सज्जन जब स्वामीजी के निकट आकर प्रणत हुए, तो लेखक की जिज्ञासा पर पूज्य स्वामीजी ने बताया कि ये ही इन्दौर के धनकुबेर सेठ सर हुकमचन्दजी है और

मेवाड के जैन तीर्थ श्री पारसनाथजी केपरियाजी जा रहे है। उप समय को उनको साइगो का सजीव चित्र लेखक के हृदय-पटल पर आज भी अमिट रूप से अंकित है।

दूसरे किसी प्रदेश मे ऐसे नरपुंगव हुये होते, तो उन पर कितना साहित्य प्रकाशित हुआ होता। इसी-लिये महासभा का यह उद्योग सराहनीय और अनुकरणीय भी है।

सेठ साहब की गोभक्ति

श्री हरेन्दरनाथ शर्मा, लोक सेवक-इन्दौर

सन् १६४३ मे आर्यसमाज इन्दौर की ओर से सेठ कल्याणमलजी की धर्मशाला के मैदान मे यजुर्वेद पारायण महायज्ञ का आयोजन किया गया था। महायज्ञ के योजकों का कथन था कि यज्ञशाला के साथ गौशाला का होना भी आवश्यक है। इन्दौर जैसे नगर में गौशाला की बात एक समस्या थी। यहां के आर्यों के घर मे एक दो को छोडकर किसी के घर गाय नही थी।

यज्ञ भूमि मे एकत्रित आर्य बन्धुओं की चर्चा के दौरान मे एक सज्जन ने सर सेठ हुकमचन्द जी का नाम लेते हुये कहा कि यदि हरेन्द्रनाथ जी प्रयत्न करें, तो सुन्दर नही सुन्दरतम गौशाला की व्यवस्था हो सकती है। उन्होने अपनी बात को जारी रखते हुये सर सेठ साहब की गौशाला के प्रबन्ध व उनके गोप्रेम की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर डाली। उन महाशय के कथन का अन्य सज्जनों ने भी सिर हिलाकर समर्थन व अनुमोदन कर मेरी ओर आशाभरी दृष्टि से देखा और उनमे से एक वयोवृद्ध ने मुझे कहा कि शर्माजी यह काम तो आपको ही करना पडेगा-सो कहिये आप कब सर सेठ साहब से मिलेंगे ?

मै सर सेठ हुकमचन्दजी के स्वभाव से काफी परिचित था। आर्यसमाज इन्दौर की स्वर्ण जयन्ति पर चन्दा लेने वाले शिष्ट-मण्डल को सर सेठ साहब द्वारा दिया गया उत्तर भी उसी समय एकाएक आखो के सामने नाच गया। फिर भी आर्य बन्धुओं की आज्ञा एवं यज भगवान की सेवा के अवसर को हाथ से न खोने के लालच से गौशाला की कमी की पूर्ति करने का प्रयत्न करने का मैने वचन दे डाला।

सर सेठ भोजन करके इन्द्रभवन के सामने वाले बगीचे मे अकेले बैठे थे। मुझे आता देख आप खडे हो गये और पूछा क्यो भैया कैसे आये ? मैने पास पहुँच कर नमस्ते की और अपने आने का कारण उन्हे बता दिया। कुछ मिनिट शान्त रहने के बाद सेठ साहब ने मुझसे यज्ञ और गोशाला के विधान पर एक दो साधारण से प्रश्न किये, जिनके उत्तर सरलता व नम्रता से देते हुये मैने कहा कि उस गौशाला पर हम एक बोर्ड लगायेंगे, जिसमे लिखा होगा कि यह गायें सर सेठ हुकमचन्दजी को गोशाला की है। सेठ साहब जी मुस्कराये और बोले कि दोस्त दूध की गाय कैसे वहां भेजी जाँय ? मैने कहा कि पाच गाय हमे चाहियें, जिनमे से एक दूध की व चार बिना दूध की भी हों, तो हमारा काम चल जायगा।

सेठ साहब मेरी बात से सहमत होगये और गोशाला वाले मुनीमजी को बुलाकर पाच गाय हमारे यज्ञ मे गोशाला की पूर्ति के लिये भेजने व उनके चारे दाने की व्यवस्था करने का आदेश देकर विदा किया। मुनीमजी कुछ ही दूर पहूँचे होंगे कि फिर उन्हे आवाज दी और कहा कि देखो, तुम भी एक आध वार वहा जाकर देख भाल कर आना और गोशाला पर जो बोर्ड लगे, उसे भी देख लेना।

मै अपनी सफलता पर मन ही मन हंस रहा था कि सर सेठ साहब फौरन बोले कि भैया कल आकर गाये लेजाना। मै खडा होकर सेठजी का धन्यवाद कर चलने को हुआ, तो उन्होने बैठने का इशारा करते हुये मुझसे यहां ही गाय लेने के लिये आने की बात पूछी।

मैंने सेठजी को कहा कि इन्दौर मे आपसे अधिक अच्छा शौकीन घी दूध खाने वाला मुझे दूसरा नहीं दीख पडा। कुछ समय से मै आपकी डेरी की गाय व भैंस देखकर मुग्ध हूँ। हमारी यज्ञशाला मे जो गोशाला हो, उसमे दर्शनीय गाय रखी जांय और उनके लिये आपके सिवाय मेरा ध्यान कहीं और नही गया। आशा निराशा के बीच सोचता विचारता यहां तक आगया।

मेरे उत्तर से सेठ साहब बडे प्रसन्न हुये और मुझे दूध पीकर जाने को कहा। मगर दूध से भी मूल्यवान दुधारियां प्राप्त करने की खुशी व अपने साथियो तक वह सन्देश शीघ्र पहुँचाने की धुन मे मैंने सेठ साहब के मधुर आग्रह को टाल कर सधन्यबाद नमस्ते करके तुरन्त चल पडा।

हमारे यज्ञमन्डप पर आने वाले प्रायः सभी दर्शक गोशाला के दर्शन किये बिना नहीं लौटते थे। गौरी स्वस्थ एकसी गायो को देख कर हर दर्शक प्रसन्न हो जाता और गोशाला वाले बोर्ड को पढकर सर सेठ की तारीफ करता जाता।

सर सेठ हुकमचन्दजी एक चरित्रवान व अद्‌भुत व्यक्ति है। उनका सरल स्वभाव, धैर्य तथा ईश्वर के प्रति निष्ठा आदि गुणो ने उनकी महानता मे चार चांद लगा दिये है। जैनी होते हुये भी सेठ साहब सहिष्णु वृत्ति के है और आर्यसमाज की कार्य शैली व सुधार नीति के प्रशंसक हैं।

—पूज्य स्वामी करपात्रीजी महाराज के मन्त्री लिखते हैं कि पूज्यपाद श्री स्वामी करपात्री महाराज की सब प्रकार की शुभ कामनाएं श्रीमन्त सर हुकमचन्दजी के साथ है। ईश्वर ऐसे दानबीर सेठ को शतश: चिरायु करे। मगलमय भगवान ऐसे धार्मिक महापुरुषो की उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि करें, राष्ट्रोद्धार करने मे प्रवृत्त करें, जिससे कि धार्मिक आध्यात्मिक वादो की सर्वतोन्मुखी उन्नति होकर देश का सब प्रकार से कल्याण हो सके।

—राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रमुख संचालक गुरुजी श्री माधवराव गोलवेलकर लिखते हैं कि अतीव प्रसन्नता की बात है कि आपने श्रीमान सर हुकमचन्द्रजी का यथोचित सम्मान करने का निश्चय किया है। सर हुकमचन्दजी के प्रत्यक्ष दर्शन व सम्भाषण का सौभाग्य मुझे इन्दौर मे मिला है। मुझे अनेक व्यक्तियो को देखने का अवसर मिलता है। उनमे कई अति धनवान भी हैं। संपति के होते हुए भी मुखमंडल, आंतरिक नम्रता, मृदुता, कारुण्य आदि श्रेष्ठ गुणो से सुशोभित जैसा श्रीमान हुकमचन्दजी को देखा, वैसे बहुत ही थोडे धनिक हैं। किसी अन्य व्यक्ति के अपने धन पर गर्व करने का उल्लेख संभाषण मे होते ही स्वभावसिद्ध सरलता से आपने कहा कि गर्व किस बात का हो? आखिर सब छोडकर यह शरीर मिट्टी मे ही तो मिल जायगा। यह सहज उद्‌गार सुनकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई और उन श्रीमान् के प्रति स्नेहपूर्ण आदरभाव उत्पन्न हुआ। इस आदर के कारण ही श्रीमान् के सम्मान का यह आयोजन मुझे अति प्रसन्नता दे रहा है। इस सम्बन्ध मे श्रीमान् सर हुकमचन्दजी के प्रति अपना आदरभाव प्रगट करते हुए उन्हे दीर्घ काल पर्यन्त उत्तम जीवन प्राप्त हो, यह मनः पूर्वक प्रार्थना श्री प्रभु से करता हूँ।

—स्वातंत्र्यवीर श्री वि० दा० सावरकर लिखते है कि दानवीर श्रीमन्त हुकमचन्दजी के अभिनन्दन महोत्सव के शुभ समय पर मै भी शुभ कामना प्रदर्शित करता हूँ।

—"हरिजन सेवक" के सम्पादक श्री कि० मा० मशरूवाला लिखते हैं कि "श्री हुकमचन्द जी चिरायु हो।"

—चीनी भवन शांतिनिकेतन के अध्यक्ष प्रोफेसर तान यान शा लिखते है कि "मेरी सर्व प्रकार की श्रेष्ठ शुभ कामनाएं है।"

—कनडी भाषा के कवि कर्णाटक साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री गोविन्द पै मनजेश्वर दक्षिण

से लिखते हैं कि "भगवान से मै प्रार्थना करता हूँ कि उनके श्रेष्ठ आशीर्वाद श्री हुकमचन्दजी को प्राप्त हो तथा ये अतीव स्वस्थ, सुखी और अभ्युदयपूर्ण जीवन को प्राप्त करते हुए सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें। "शतं जीव शरदो वर्धमान" एव धर्म और मानवता की सेवा मे वर्धमान रहे।

—श्री० आर० के० सिधवा, सदस्य भारतीय पार्लमेंट लिखते है कि 'यद्यपि सेठ हुकमचन्दजी के साथ मेरा प्रत्यक्ष परिचय कभी हुआ नही, फिर भी मैंने उनकी औद्योगिक और उदारतापूर्ण प्रवृत्तियो के सम्बन्ध मे बहुत कुछ सुना है। मै उनकी देशभक्तिपूर्ण भावना की सराहना करता हूँ। अपनी उपार्जित सम्पत्ति का बडा भाग उन्होने लोकोपकारी कार्यों मे लगाया है। प्रभु के उन्हे सम्पूर्ण आशीर्वाद प्राप्त हो।

—देशभक्त श्री चांदकरणजी शारदा लिखते है कि "सेठ साहब को मै १९२० से जानता हूँ। तब मै उनके पास तिलक स्वराज्य फण्ड के लिये गया था, जिसमे उन्होने अच्छी रकम प्रदान की थी। सरकार की वक्र-दृष्टि का आपने भय नहीं किया। लाखो रुपया सार्वजनिक कार्यों मे लगाकर आपने अपनी सम्पत्ति को सफल बना लिया।

—प्रख्यात पुरातत्ववेत्ता डा० अनंत सदाशिव आलतेकर प्रोफेसर पटना विश्वविद्यालय लिखते हैं कि "मै हृदय से चाहता हूँ कि श्रीमन्त सर हुकमचन्दजी को परमेश्वर दीर्घायु दें, जिससे उनकी धर्म, शिक्षा, राष्ट्र कल्याण आदि की असाधारण मंगल प्रवृत्तियो से राष्ट्र को अधिकाधिक लाभ हो।"

—श्री के. बोरडिया आचार्य विद्याभवन उदयपुर लिखते है कि सर सेठ हुकमचदजी को मै बचपन से जानता हूं। परन्तु मुझे उनके साथ अधिक सम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ है। फिर भी उनकी दानशीलता से मै परिचित हूँ। सन् १९१८ मे इन्दौर मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अष्टम अधिवेशन हुआ। सर हुकमचन्दजी स्वागताध्यक्ष थे। उस समय पूज्य गांधीजी ने सम्मेलन के लिये चन्दे की अपील की और सेठ साहब ने तुरंत ही दस हजार रुपये प्रदान किये। मै उस समय केवल ग्यारह वर्ष का था और सम्मेलन की स्वागत समिति के मंडप विभाग का मै स्वयंसेवक था। परन्तु उस समय की जो भी धुन्धली स्मृति मेरे मन मे है, उससे मै कह सकता हूँ कि उस समय मेरे और मेरे जैसे दूसरे बाल हृदयो पर सेठ साहब की दानशीलता का बडा प्रभाव पडा। उसके बाद मैने सेठ साहब की उदारता के कई और उदाहरण देखे। मध्य भारत की शैक्षणिक तथा अन्य जनसेवी सस्थाओ को सेठ साहब से बहुत सहायता मिली है। वे हम सब के अभिनंदन के पात्र है।

—श्री बसन्तलालजी मुरारका सुप्रसिद्ध समाजसेवी और सदस्य पश्चिमी बगाल-धारासभा लिखते है कि "सेठ हुकमचन्दजी उन प्रसिद्ध व्यापारियो और उन प्रसिद्ध दानियो मे से हैं जिनको देश का बच्चा-बच्चा जानता है। कलकत्ता मे आज से अडतीस वर्ष पहिले सेठ जुगलकिशोरजी बिडला के साथ मैने उनके दर्शन किये थे। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव मेरे ऊपर विशेष रूप से पडा। उनका प्रभावशाली डीलडौल, खिला हुआ चेहरा हीराजडित हार जगमगा रहे थे। उनकी तेज आवाज से मालूम होता था कि उनमे आत्मविश्वास की भावना कितनी दृढ है? खतरा उठाने का वे विशेष साहस रखते थे। इसी कारण उन्होंने करोडो पैदा किये और लाखो दान किये। जैन समाज पर उनका अद्भुत प्रभाव है। जैन समाज उनको पाकर अपने को धन्य समझता हैं। मनुष्य जिस किसी क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करके हलचल पैदा कर सकता है। यही उसकी महानता हैं। वस्तुतः ही सेठ हुकमचन्दजी व्यापार-उद्योग-क्षेत्र के एक महान् पुरुष हैं। ईश्वर उनको दीर्घायु करें। यही मेरी उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि है।

—कलकत्ता के समाजसेवी श्री गंगाप्रसादजी भौतिका लिखते है कि हर्ष की बात है कि रावराजा सर हुकमचन्दजी ने अपने जीवन काल मे अपनी कमाई के एक बडे भागका उपयोग जन-कल्याण के लिये किया।

उनका यह प्रशंसनीय कार्य हमारे देश के धनिक समाज के लिये अनुकरणीय है। आज देश मे धनियों के प्रति जो दुर्भावना फैली हुई है, उसका मुख्य कारण यही है कि वे महात्मा गांधीजी के शब्दों में अपने को जनता के धनका ट्रस्टी न समझकर अपने धनका दुरुपयोग अपने ऐश-आराम और फिजूलखर्ची मे करते है। उनका कर्त्तव्य है कि वे रावराजा साहब जैसे महानुभावो का अनुकरण करते हुए अपने धनका सदुपयोग जन-हित के कार्यों मे विशेष रूप से करें, जिससे शोषक वर्ग मे उनकी गणना न हो। मुझे यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि सेठ साहब ने प्राचीन आदर्श के अनुसार सब वैभव और कारबार छोड़कर साधु वृत्ति से जीवन बिताने का संकल्प किया है।

—श्री रामगोपालजी माहेश्वरी, सचालक-सम्पादक 'नवभारत' नागपुर लिखते है कि श्रीमान् सेठ हुकमचन्दजी का जीवन और चरित्र अपने ढंग का अनोखा है और उसमे भव्यता के साथ दिव्यता भी है। व्यापारिक जगत् मे आपने जिस अनोखे साहस का परिचय दिया, वह तो विख्यात ही है। आपकी सार्वजनिक सेवायें भी कम महत्वपूर्ण नही है। विशेषतः आपका विपुल दान जो लक्ष्मी के सदुपयोग का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। आपने सार्वजनिक कार्यों के लिये मुक्तहस्त से दान देकर अपने लिये बड़ी श्रद्धा का स्थान बना लिया है। जीवन के चतुर्थ चरण मे आपकी वीतराग वृत्ति सांसारिक माया से दूर रहने का एक और श्रेष्ठ उदाहरण है, जो आपकी ख्याति को वृद्धिंगत करने वाला है।

—बम्बई प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष, राजस्थान ग्रामोद्धार संघ के संस्थापक श्रीयुत वैद्य सीतारामजी मिश्र लिखते हैं कि "एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोपि" की सुप्रसिद्ध उक्ति भारतवर्ष के व्यापार-उद्योग की महान् परम्परा के अग्रणी स्वनामधन्य सर सेठ हुकमचन्दजी के जीवन मे चरितार्थ होती है। हम प्रभु से सेठजी के दीर्घायु की कामना करते हैं, जिससे वे अधिकाधिक देश, समाज और धर्म की सेवा कर के यश और पुण्य के भागी बने। सेठजी देश के कतिपय उद्योगपतियो मे अग्रणी है, जिनसे राष्ट्र की वैभव-सम्पत्ति की वृद्धि हुई है। यह परम सन्तोष और आनन्द का विषय है कि सेठजी के जीवन मे दूध-पूत-लक्ष्मी का सुन्दर समन्वय है। इस समय आपने धर्ममय जीवन व्यतीत करने का विचार किया है। हम आशा करते है कि आपका आध्यात्मिक जीवन "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय आत्ममोक्षजगद्हिताय" आशीर्वाद होगा।

—श्री रतनचन्द चुन्नीलाल जवेरी महामन्त्री भारतवर्षीय दिगन्बर जैन तीर्थ रक्षाकमेटी बम्बई से लिखते हैं कि स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजी जे०पी०, स्वर्गीय लाला देवीसहायजी और स्वर्गीय लाला जम्बूप्रसादजी ने तीर्थ क्षेत्रो पर अपने स्वत्व तथा अधिकार की रक्षा के लिये इस कमेटी न की स्थापनाकी थी, तभी से सेठ साहब का उसको सहयोग प्राप्त है। स्वर्गीय माणिकचन्दजी के बाद तो वे उसके स्थायी प्रधान और सर्वेसर्वा ही है। जहां भी कही कोई संकट उपस्थित हुआ, उसको दूर करने के लिये सेठ साहब दौड़े गये है। मामलो-मुकदमो मे सलाह-मशविरा देने के लिये सदैव उपस्थित रहे है। तन-मन-धन लगाकर तीर्थों की सेवा और रक्षा की है। उदयपुर के ऋषभदेवजी, शिखरजी तथा दतिया के सोनागिर के मामले सर्वविदित हैं। आपकी प्रेरणा पर स्वर्गीय बाबू चम्पतरायजी बैरिस्टर और बाबू अजीतप्रसादजी एडवोकेट वर्षों बिना कुछ लिये मामले-मुकदमो की पैरवी करते रहे हैं। आज दिगम्बर जैन समाज का तीर्थों पर जो अधिकार है, उसका अधिकांश श्रेय सेठ साहब को ही है। पीछे मैंने एक तार इस कार्य से छुट्टी लेनी चाही थी, तो आपने मुझे लिख दिया कि 'जब तक मै जीवित हूँ, तुम्हे भी तीर्थक्षेत्र कमेटी की सेवा करनी पडेगी। यदि हमारी बात नही माननी है, तो हमारा भी सभापति पद से स्तीफा समझो।" वे स्वयं सेनापति है और अपने सब साथियो से सैनिक के रूप मे ही काम लेना जानते हैं। वीर सेनापति के चरणो मे हमारी शतशः श्रद्धांजलियां है।

राजर्षि का महान आदर्श

दानवीर रायबहादुर केप्टिन धर्मवीर सर सेठ भागचदजी सोनी
सभापति अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

महासभा की स्वर्ण जयंति के इस पुनीत अवसर पर श्रद्धास्पद पूज्य सेठ साहब हुकमचंदजी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पण करते हुये अतीव आनन्द का अनुभव हो रहा है। संसार मे समय समय पर ऐसे महान् पुरुषो का उद्भव होता है, जिनक उच्च जीवन और आदर्शों का प्रभाव तत्कालीन समाज पर तो पडता ही है, अपितु आनेवाली पीढियां भी उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करके अपने को धन्य मानती है। श्रद्धेय सेठ साहब जैन समाज की ऐसी ही महान् विभूति हैं। उनमे मृगराज का अटूट साहस एव पक्षिराज की तीक्ष्णता एवं दृढता है। वे अपने कौटुम्बिक एवं पारिवारिक जीवन मे कुसुमादपि कोमल और समाज एव धार्मिकता की रक्षा के हेतु बज्रादपि कठोर है। मै दीर्घ काल से उनके जीवन के इतने निकट रहा हूँ कि मेरे लिये उनके विषय मे कुछ कहना कठिन प्रतीत हो रहा है। वास्तव मे मै जब से उनके संपर्क मे आया हूँ, तब से मेरा वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन उनके प्रेम, वात्सल्य एवं मार्गप्रदर्शन से इतना ओतप्रोत हो रहा है कि मेरे रोम-रोम में वह व्याप्त है।

इस न्यूनता का अनुभव करते हुये भी यदि उनकी भावनाओ को मैने थोडा बहुत भी व्यक्त न किया और उन्हे मौन के आवरण मे छिपा दिया, तो मै समझता हूँ कि मै अपने कर्तव्य से विमुख हो जाऊंगा।

श्रीमंत सेठ साहब जैसी महान् विभूतिया अपने ही जानवल्यमान आलोक से प्रकाशित रहती हैं और अन्य लोगो का मार्ग प्रदर्शन करती रहती हैं। उन्हे किसी दीपक के प्रकाश की अपेक्षा नही रहती। पूज्य सेठ साहब की प्रतिभा का आलोक भी सूर्य की भांति समग्र जैन समाज पर छाया है और उसे तेज, शक्ति तथा जीवन प्रदान करता रहा है। उनके पदचिन्हों पर चलकर कोई भी कल्याण के मार्ग को प्राप्त कर सकेगा, ऐसी मेरी दृढ धारणा है। महाकवि तुलसी के शब्दो मे वे जैन समाज के "सेवक स्वामी सखा" सभी कुछ रहे हैं। अपनी लोकोत्तर प्रतिभा, कार्यों, दान, वैराग्य एवं प्रेम द्वारा इस भौतिक युग मे राजर्षि का महान् आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत किया है। जल मे रहते हुये भी उससे सदैव अलिप्त रहने की उक्ति को आपने अपने संयमी जीवन द्वारा चरितार्थ किया है।

प्रगति जीवन का चिन्ह है और यह आपके जीवन की घटनाओ से पद पद पर स्पष्ट होता है।

इस युग मे आप जैन शासन व जैन संस्कृति के सतत एव जागरुक प्रहरी रहे है। समाज की आपने जो निस्सीम तथा निस्वार्थ-सेवाये की हैं, उनके उस महान् ऋण से हम कभी भी उऋण नही हो सकते हैं। महासभा के आप प्राण रहे है और महासभा समाज की जो भी सेवाये कर सकी है, उसका श्रेय आप के सफल नेतृत्व को ही है। इसलिये आपके इस पुनीत अभिनन्दन का आयोजन कर महासभा ने कुछ अंशों मे ही सही, अपने कर्त्तव्य का ही पालन किया है।

मेरे ऊपर आपका वरद् हस्त सदैव छत्र की भांति रहा है और मुझे आप सदैव मेरे कर्त्तव्यों का ज्ञान देते रहे हैं। वीतराग भगवान् से प्रार्थना है कि वह हम सबको ऐसा बल दे कि हम श्रीमान् सेठ साहिब के जीवन से स्फूर्ति एव प्रेरणा प्राप्त करते रहे और आपके द्वारा निर्दिष्ट प्रशस्त पथ पर चल कर धर्म व समाज की उन्नति कर सकें। भगवान् महावीर से यह भी प्रार्थना है कि हमारे आदरणीय सेठ साहिब स्वस्थ्य रहे और सुदीर्घ काल तक हमारी उन्नति की प्रेरणा बने रहे और उनकी निर्मल यशपताका सदैव इसी प्रकार फहराती रहे।

सेठ साहब द्वारा की हुई धर्म और समाज की अपूर्व सेवा सदैव संसार मे आदर की वस्तु रहेगी और उनकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रक्खेगी और उन्हे याद कर कर सब "करते रहेंगे लोक मे तेरी सुजनता की कथा।"

लिखने को बहुत कुछ लिखा जा सकता है; लेकिन, मन के भाव भाषा मे व्यक्त किया जाना अत्यन्त कठिन है और सत्य ही महाकवि शेक्सपियर के शब्दो मे भी यही कहना चाहता हूं कि —

This was the noblest Roman of them all.

.. ..

His life was gentle, and the elements
So mixed in him that Nature might stand up,
And say to all the world, "This was a Man".

रचनात्मक सुधारक

दानवीर श्री साहू शातिप्रसादजी जैन
भूतपूर्व अध्यक्ष-अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद,

श्रद्धेय सर सेठ हुकमचंदजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करने मे समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है । समाज की कोई भी ऐसी प्रगति नहीं है, जिसमे सेठ साहब की सेवाओ की छाप न हो । उनका अपना एक विशेष व्यक्तित्व है । समाज की सेवाओ के सम्बन्ध मे कभी वह छोटे या बडे का विचार न कर क अपना सक्रिय सहयोग हरएक कार्यकर्त्ता को बहुत प्रसन्नतापूर्वक देते हैं। उनमे सेवा की लगन है। सेठजी अपने विचारो मे एक पक्के रचनात्मक सुधारक हैं। वह ध्वंसता मे विश्वास न कर समाज को केवल समय के अनुसार आगे बढाने मे सलग्न रहते हैं ।

व्यावसायिक क्षेत्र मे आपका अपना एक विशेष स्थान था। व्यवसायी वर्ग आपको व्यवसाय मे एकाधिपति-सा समझता था। कई वर्षों से आपने व्यवसाय की ओर से रुचि हटा कर वैराग्य ले लिया है।

जाति व समाज सेठ साहब का ऋणी है और मेरी हार्दिक कामना है कि श्री जिनेन्द्र सेठ साहब को चिरायु करें तथा समाज के व्यक्तियो को उनका पथानुसरण करने की सुबुद्धि दें ।

इन गुणों का अंताश भी पा सकूं

श्री देवकुमारसिंह एम० ए० इंदौर

एक बालक-अपने पिता के प्रति जब श्रद्धा, भक्ति व प्रेम मे विभोर हो जाता हैं, तब उसके सामने सारे ससार का शब्दकोष भी बहुत सीमित नजर आता है और वह मग्न होकर अपनी सारी भावनाये यही कह कर व्यक्त कर देता है कि "पिता जी, आप कितने अच्छे हैं।" इन्ही शब्दो मे मेरे हृदय के अन्तरतम मे उत्पन्न श्रद्धा को पूज्य काका साहब के पुनीत चरणो मे नतमस्तक हो समर्पण करता हूँ।

आज से करीब २१ वर्ष पूर्व जब मैं कुचामन से यहां आया था और आने के करीब छः माह पश्चात ही मेरी पूज्य माताजी का स्वर्गवास हो गया था, मेरे सामने अन्धेरा छा गया था। परन्तु आपके सुखद नियंत्रण मे रह कर मैने जो शिक्षा प्राप्त करने व अपनी फर्म का कार्य संभालने में समय बिताया, उसमें मुझे अपने स्वर्गीय पिताजी का अभाव कभी अनुभव नहीं हुआ। आपने मेरे यहां के कार्य को जिस दिलचस्पी के साथ सम्भाला, उसी का यह नतीजा है कि हम लोग आज सम्पन्न, सुखी व आनन्द हैं।

आपके पास से मुझे हमेशा स्फूर्ति व आशा ही मिली है। किसी भी कठिनाई को लेकर आपके पास जाने पर हमेशा मुझे तो यही उत्तर मिला कि "बेटा, कुछ फिकर नही। अभी इस काम को उडाते हैं।" इन शब्दो मे जो शक्ति रहती है, उससे हमे उसी समय विश्वास हो जाता है कि अपनी कठिनाई हल हो चुकी।

केवल कहनामात्र ही नही, कहते ही आप उस कार्य के पीछे इतनी लगन व सम्पूर्ण शक्ति से लग जाते है कि हमे आश्चर्य होता है। आप भले ही थके हुए हो, अस्वस्थ हो, परन्तु उसकी कुछ भी परवाह न करते हुए जब तक वह कार्य समाप्त नही हो जाता, चैन नही लेते। हम लोग कठिनाई उपस्थित करने वाले भले ही उसमे ढीले पडने की कोशिश करें, परन्तु आपका उत्साह कभी कम नहीं पडता और न हमारा ही उत्साह कम पडने देते हैं।

इसके साथ ही साथ हमे आपका प्रत्येक विषय मे निर्णय इतना शीघ्र मिलता है कि देखकर आश्चर्य होता है। किसी विषय के बारे मे मैंने यह तो कभी सुना ही नही कि "फिर विचार करेंगे।" कोई भी बात आप से पूछने के बाद जब तक उसका अन्तिम निर्णय नही होजाय, आप बराबर हम लोगो से पूछते रहते है तथा स्वय देखते है कि उनके निर्णय का पालन हो चुका या नही।

आपके अथक परिश्रम, अनन्य लगन, शीघ्र निर्णय, अपार शक्ति व उत्कृष्ट आशावाद के सामने हम अपने आपको बहुत ही तुच्छ पाते और मेरी सच्ची श्रद्धांजली तो यही होगी कि मै आपके इन गुणो का शतांश भी अपने आपमें पा सकूं।

मेरी तो जिनेन्द्र देव से यही करबद्ध प्रार्थना है कि आपका प्रेमपूर्ण हाथ हमारे सिर पर हमेशा बना रहे व हमे हमेशा आपसे मार्गदर्शन मिलता रहे।

बचपन का एक संस्मरण

प० कैलाशचंदजी शास्त्री, बनारस

१६१० मे सम्मेदशिखरजी की प्रतिष्ठा के अवसर पर ६ वर्ष की आयु मे मैंने सबसे पहले सेठ साहब का नाम सुना था, किन्तु देखा मैंने उनको तब, जब वे सन् १६१६ मे हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के समारोह मे सम्मिलित होने के लिये काशी पधारे थे। स्याद्वाद महाविद्यालय के व्यवस्थापक स्वर्गीय ब्रह्मचारी ज्ञानानदजी (प० उमरावसिंहजी) पर सेठ साहब के आतिथ्य का सब भार था। रात्रि के पिछले पहर मे वे वहा पधारे। कैसा गठीला उनका बदन था। चेहरे पर तेज था। नौकर-चाकरो मे दो पहलवान साथ मे थे और सामान मे थी मुद्गरो की जोडी।

विश्वविद्यालय का शिलान्यास लार्ड हार्डिंग करने वाले थे। बनारस के कमिश्नर आगंतुको का स्वागत कर रहे थे और सबको अपने नियत स्थान पर बिठा रहे थे। जब सेठ साहब पधारे, तो उनकी साजसज्जा देखते ही बनती थी। साथ मे जर्कबर्क पोशाक से मंडित अरदली था। जैसे ही अरदली के पीछे रौबीले चेहरे वाले सेठ साहब ने शान से मंडप मे प्रवेश किया, तो सहसा ही राजाओ-महाराजाओ की दृष्टि उन पर आकर्षित हुई। कई एक तो उनके स्वागत मे खडे भी हो गये।

स्याद्वाद महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव मे सेठ साहब २–३ घंटे उपस्थित रहे। इतने ही मे वहां तारो का तांता लग गया। तारघर का चपरासी एक तार देकर लौटता था कि दूसरा लाने के लिये टेलीग्राफ आफिस मे तैयार मिलता था। वह आश्चर्य से पूछता था कि ये सेठ कब तक काशी मे ठहरेंगे ?

जैन समाज के वर्तमान युग को इस शानबान, उदारता और धर्मप्रेम की ऐसी मूर्ति "न भूतो न भविष्यति" है।

पिताश्री के पुनीत चरणों में

भैय्यासाहब श्री राजकुमारसिहजी ऐम. ए. एल. एल. बी

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा अपने स्वर्णजयन्ती समारोह पर पूज्य पिताश्री को एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेट करने जारही है। इससे अधिक गौरव तथा हर्ष की बात मेरे लिये और क्या हो सकती है? इस शुभ अवसर पर मै अपने हृदय के भावो को शब्दो मे व्यक्त करने मे अपने आप को बिल्कुल असमर्थ पा रहा हूँ। फिर भी इतना तो अवश्य कहूँगा कि जन्म से लेकर अब तक मेरे जीवन की समस्त भूमिका केवल पूज्य पिताश्री के वात्सल्य की ही रचना है। जो भी मेरे जीवन मे सांस्कृतिक अल्प शक्तियाँ दिखाई दे रही हैं, वे उनके अनेकानेक अनुपम गुणो के अनुकरण का प्रयास मात्र है। मेरा यह दृढ विश्वास है कि यदि मै अनेक गुणो को कुछ अंश में भी अपने जीवन मे उतार कर किसी भी रूप मे जीवन को सार्थक कर सका, तो वही मेरी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। मेरी पूर्ण मान्यता है कि इस सत्य भावना की पूर्ति मे उनका पवित्र आशीर्वाद ही एक मात्र सहायक हो सकेगा। इस हेतु पिताश्री के पावन चरणो मे सादर, सप्रेम व पूर्ण श्रद्धा से नमन करता हूँ और परम पिता परमेश्वर से हृदय से यही चाहता हूँ कि उनकी स्नेहमयी गोद और आशीर्वाद रूपी छत्रछाया चिरकाल तक जन्मान्तर मे भी मेरे साथ बनी रहे।

पुत्री की श्रद्धांजलि

सौभाग्यवती चन्द्रावतीबाई साहिबा-सुपुत्री सर सेठ साहब

१

जय-जय महाघोष से गूंजी,
दशो दिशाओं मे विश्व महान।
पुण्य नाद से चकित इन्द्र ने,
सुना श्रीजिन का गुण गान॥

२

दिग्गज कंपे और दिग्पालो ने,
गुण गौरव गान किये।
पुण्यवान सर सेठ हुकमचन्द,
युग-युग, सौ सौ वर्ष जिये॥

३

नेत्र-हीन दीपक दिखलावे,
जग मे दीपक वाले को।
और पंगु यदि छूना चाहे,
रजत-ज्योति उजियाले को॥

४

नभ के तारे गिन जाने का,
पूर्ण हो सके यदि विज्ञान।
तो शायद कोई कर पावे,
पूज्य पिता श्री का गुणगान॥

५

किन्तु स्वयं की लोह लेखनी,
पर मेरा अधिकार नहीं।
नही पूर्ण होगी यश गाथा,
मौन रहूँ, स्वीकार नही॥

६

रोम रोम पुलकित मेरा,
नहीं मुझे अपना भी भान।
गाऊं अपनी हृदय बीन पर,
पूज्य पिता श्री का यश गान॥

७

त्याग किया जिसने इस जग में
उनकी कीर्ति ध्वजा फहरी।
राग और वैराग्य सभी मे,
जिनकी जयति-ध्वजा लहरी ॥

८

महिमामय कर्त्तव्य शील,
औदार्य दुंदुभी बाज रही।
सहन शीलता गुण ग्राहकता,
गजारूढ हो गाज रही ॥

९

नीति कुशल चारित्रवान,
निर्भीक साहसी और विनीत।
उत्साही अभिमान रहित,
गंभीर विवेकी और पुनीत ॥

१०

धर्म अर्थ औ काम मोक्ष,
सब एक साथ तुमने साधे।
साम दाम अरु दण्ड भेद से,
जन समूह रक्खा बांधे ॥

११

पुण्य योग सब शुभ कर्मों के,
तव चरणों पर न्योछावर।
और विश्व की धवल कीर्ति ने,
तुम्हे वरा ए त्याग प्रवर ॥

१२

भरत चक्रवर्ती सा वैभव,
पाकर आप अमल धवल हो।
और इन्ही से पंचम युग मे,
पंक-हीन जल भिन्न कमल हो ॥

१३

ओ! दीनों के प्राण, पीडितों,
के रक्षक, आधार महान।
जैन-जाति मेरु दण्ड, औ,
विद्वद्वर के मित्र प्रधान ॥

१४

अन्न, वस्त्र, औषधि, शिक्षा,
के मुक्त हस्त दानी विद्वान्।
धर्म दिवाकर औ कुल भूषण,
मूर्तिमान आदर्श महान् ॥

१५

हम छोटे बालक सब,
तेरे श्री चरणों की छाया मे।
निडर और निर्भीक रह रहे,
इन्द्र जाल सी माया मे ॥

१६

तव प्रसाद सी हीरा भैया,
हीरा सम हैं ज्योतिर्मान।
और हमारे छोटे भैया,
तुमसे ही हो कीरतिवान ॥

१७

आत्म ज्योति की जगी दीपिका,
कचन सी आभा पाकर।
आत्मलीन होगई आत्मा,
प्रेमामृत घन बरसा कर ॥

१८

आज प्रार्थना करते हम सब,
यह आशीश हमे भी दो।
तेरे पद चिन्हो पर चलदें,
हममे इतना बल भरदो ॥

१९

प्रभु से इतनी विनय हमारी,
ध्येय तुम्हारा प्राप्त तुम्हे।
तुमसी धवल कीर्ति श्री गरिमा,
धर्म भावना प्राप्त हमे ॥

२०

अवनि और अम्बर तक,छाये,
इस गुण यश गाथा की जय।
गगन गंजादें हम सब मिलकर।
पूज्य पिता की जय जय जय ॥

ज्योतित जीवन की झांकी

राज्यभूषण रावराजा सेठ हीरालालजी काशलीवाल, इन्दौर

आज मेरे हर्ष की सीमा नहीं है। संकोच से मेरी लेखनी रुक भी रही है। मै महान व्यक्तित्व को किन शब्दों मे अपने हृदय के श्रद्धा-स्नेह और प्रेम की पुष्पांजलि चढाऊं, जिनके चरणो मे पिछले पचास वर्ष मैंने दुनिया मे राजसी ठाट-बाट से जीवन का सुख उठाया और समाज की सेवा मे भी यथाशक्ति योगदान दिया। पूज्य काका साहब की विशेषताओ को, उनमे जीवन की सफलताओ के रहस्यो को और उनको हमारे समाज ही नहीं, भारत में वैश्य समाज का यशस्वी ऋलौकिक व्यक्तित्व बनाने वाले गुणो को मुझसे अधिक जानने का कब किसे मौका मिला होगा ? आधी शताब्दि का यह लम्बा इतिहास जैन समाज की नव-जागृति का स्वर्ण युग है और पूज्य सेठ साहब इस जागृति के जनक होने के नाते उनके जीवन की विविध घटनाओं का उल्लेख एक अलग ग्रन्थ का विषय है। अत: आज मन मे उमडने वाली भावनाओ को दबाकर मै उन चन्द संस्मरणो तक ही सीमित रहूँगा, जिनमे कि पाठको को सेठ साहब की ज्योतित जीवन की चमकदार झांकी दिखला सकूं।

भारत मे व्यवसायी अनेक हुए, धन भी अनेको ने कमाया और दान धर्म मे भी लगाया; किन्तु राव-राजा सर सेठ हुकमचंदजी जैसा व्यवसायी कलेजे वाला व्यापारी न तो मैंने देखा और न सुना, जिसने न केवल व्यवसाय क्षेत्र मे प्रतापी प्रभाकर की तरह नाम कमाया, बल्कि ऐश्वर्य का रईसी रहन सहन, दान-धर्म, समाज-सेवा और राज-निष्ठा मे उनसे आगे बढा हो। याद है मुझे वे दिन जब एक बार नहीं, अनेक वार अकेले और बेकलेजे काका साहब ने भारत के बालको का कार्नर किया था। देश ही नहीं, विदेशो तक मे सनसनी फैली हुई थी कि सेठ हुकमचद क्या कर रहा है ? सेठ साहब फेल हो जावेंगे। लोग उनको डराने की तरह तरह की बातें करते। जीवन-मरण की उन उत्तेजना की घडियों मे भी सेठ साहब हमेशा प्रसन्न मुख रहते। शांति के साथ सब से मिलते जुलते और सलाहकारो की सलाह पर हंस कर रह जाते। वे आधी-आधी रात मे स्थिर मन आगामी कल का प्रोग्राम बनाते और तारबाबू बन कर मैं उनके नगर-नगर के बाजारो मे तूफान बरसाने वाले खरीदी बिक्री के तारो के मजमून लिखता। कानो कान किसी को खबर लगे बिना रातो रात तार दूसरे दिन बाजारो मे पहुंचते और सेठ हुकमचंद की अचानक खरीदी—बेचवाली से बाजार का संतुलन उलट पुलट जाता।

कमाल इस बात की है कि हर कार्नर के मौको पर विजय श्री ने काका साहब के भंडार में करोडों की सम्पदा के साथ उनको यशस्वी बनाया, जब कि ऐसे 'कारनरो' मे कभी किसी को भी पूरी कामयाबी नहीं मिली है।

उनकी सफलता का मुख्य कारण है, उनका तेजस्वी व्यक्तित्व। इस तेज मे वे एक कोमलता भी लिये हुए हैं। जहां वे महसूस करेंगे कि उनकी धारणा गलत है, वे एक क्षण का समय लगाये बिना उसे स्वीकार कर लेंगे। जहां, उन्हे मालूम हुआ कि सामने वाला व्यापारी आर्थिक संकट में है और रुपया चुकाने की सामर्थ्य उसमे नही है, तो वे उसे बिगाडने को कभी तैयार न होंगे, बल्कि उसे माफ कर देंगे। किंतु जहां वे यह मानते हो कि वे सही मार्ग पर हैं, उनके विचार व कार्य मे त्रुटि नही है, तो वे सामने वाले को बोलने का भी मौका नहीं देंगे। अपने व्यक्तित्व और आत्मबल तथा इच्छा के द्वारा वे दूसरे को निरुत्तर कर देंगे।

सेठ साहब को धन का लोभ कभी नहीं हुआ। हो भी क्यो ? उन्होने इतना कमाया और ऐसे कमाया कि वाह ! तभी वे उसका उपभोग भी कर सके। धन ने उन्हे दबाया नहीं, बल्कि वे धन पर हावी रहे। यही

कारण है कि उन्होने अपने जीवन मे बीस बाईस लाख का एक बडा धार्मिक ट्रस्ट बना दिया। लाखों का दान-धर्म उन्होने प्रकट-अप्रकट मे किया, उसका पूरा-पूरा कोई हिसाब नहीं है। किसी भी शुभ कार्य के लिये देने में उनको हिचक नही होगी, किन्तु वे बिना जांचे समझे कभी नही देते। दान का उन्हे शौक रहा है और कुछ-कुछ मै भी उनसे यह स्वभाव पा सका हूँ। मुझे इस बात का दु ख नही कि उस स्वभाव से अनेक बार मै ठगा गया हूँ, किंतु मुझे तो इस मे भी कुछ ऐसा मजा मिला है कि सेठ साहब की आज्ञा भी कई बार चाहते हुये भी पालन नही कर सका हूँ। सेठ साहब को ठगना टेढी खीर है।

पूज्य काका साहब मे जो एक अलौकिक गुण है, वह है किसी भी काम करने का विचार आते ही उसको पूरा करने की शीघ्रता। वे कल पर कोई काम छोडने को कभी प्रस्तुत न होगे। आंधी, पानी, अंधेरी रात और भयंकर बाधाएं ही, क्यो न हो? एक दो नहीं, पच्चीस आदमियो को अंधेरी रात मे जगाना पडता हो और कितने ही खाते बहियो की जांच पडताल क्यो न करनी पडती हो तो वह होगा और होकर रहेगा। सेठ तब तक चैन न लेंगे, जब तक कि काम पूरा न कर लेंगे। हम लोगो को सेठ साहब हमेशा उसके लिये उपदेश देते रहते है, किन्तु हम कहां है, उन जैसे दुर्धर इच्छा-कार्य शक्ति वाले? आज वृद्धावस्था मे भी उस स्वभाव के कारण उनमे वही चचलता है और जीवन शक्ति की प्रेरणा!

बहुत कम लोग जानते है कि पिताश्री के इस यशस्वी जीवन महल की नीव रखने का सौभाग्य किसे प्राप्त है? मुझे मालूम है, यह मन्दसौर वाली माताजी थी, सेठ साहब की प्रथम स्वर्गीय पत्नी, जिन्होने उनके व्यवसायी जीवन के पुण्य प्रभा मे केवल सोलह वर्ष की आयु मे ऐसा प्रकाश फैलाया कि जीवन का सारा ढाचा बदल गया। पतन की ओर से मुंह मोडकर उत्कर्ष की ओर जो पग उठाया, तो पीछे की ओर मुडकर कभी झांका भी नहीं।

१०-१५ लाख की अपनी जायदाद को अपनी व्यवसाय कुशलता से आपने १०-१५ करोड मे भी अधिक बढा लिया, किन्तु वे हमेशा इस बात को जानते रहे कि सट्टे से आने वाली सम्पदा कभी उसी तरह जा भी सकती है। सो उन्होने अपनी सम्पति को स्थायी उद्योग धन्धो मे लगाया। मध्यभारत मे उद्योगो के जन्म-दाता के नाते उनका नाम सदैव औद्योगिको मे आदर पूर्वक लिया जाता रहेगा। मिल ही नही अन्य विविध कार-खानो मे और व्यवसायो मे उन्होने रुपया लगाया। स्वयं तो लगाया ही, अपने भाइयो और अन्य रिश्तेदारो तथा व्यापारियो को भी उद्योगो को अपनाने की प्रेरणा दी। हम लोगो को हमेशा यही सीख देते रहे कि हम सट्टे मे न पडें। १९४६ मे संयत जीवन का श्रीगणेश करते समय उन्होने आम सभा में हमे फिर यही सलाह दी। उसे आज्ञा के रूप मे मैंने माना और तबसे सट्टा मेरे जीवन से खत्म हो गया।

सेठ साहब समाज सुधार के काम मे सदैव आगे रहे। अपने व्यस्त जीवन मे भी उन्होने समाज की सेवा के लिये सदैव समय निकाला। गरीब अमीर का भेद-भाव भूल कर सबका हर्ष-शोक मे साथ दिया। दिगम्बर जैन समाज मे जो कुरीतियां सेठ साहब के प्रयत्नो से हटी, वह कौन नही जानता। देश के चारो कोने मे जहा भी और जब भी समाज के हित या जैन धर्म के सिद्धान्तो, आचार्यो एव धर्म-तीर्थों-मन्दिरो पर प्रहार हुए, तो सेठ साहब वहां दौडकर पहुँचे। तार-टेलीफोन का तांता उन्होने लगाया। अधिकारियो को न्याय के लिये प्रेरित किया और तब चैन लिया, जब उस अन्याय को जड से समूल नष्ट कर दिया। यदि यह कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी कि समाज का उनसे बडा हितैषी और सेवक कही नजर नही आता। अपने तेजस्वी व्यक्तित्व, धन की शक्ति और मिलनसारी स्वभाव के कारण सेठ साहब ने जिस काम को भी हाथ मे लिया, पूरा किया। यह हमारा सौभाग्य है कि वे आज हमारे बीच मौजूद है और अमीरी से दूर रहते हुए भी समाज-सेवा के

किसी काम मे स्वयं को दूर नही करते ।

नगे-पावो, सिर खुला हुआ, देह पर एक धोती बांधे और दूसरी ओढे,—जब कुछ लोगो ने उन्हे हमारे प्रात के सुयोग्य मुख्यमंत्री बाबू तख्तमलजी जैन की कोठीपर ऐन दिन मे देखा, तो सहसा पहिचान न सके कि क्या यही श्रीमन्त रावराजा, दानवीर, राज्यरत्न, तीर्थभक्तशिरोमणि आदि अनेक पदवियो से विभूषित सर सेठ हुकमचन्द सरूपचन्द नाइट है, जो बढिया झल्लेदार सामन्ती जरी की पगडी मे मलमल का अचकन और चुस्त पैजामा, गले मे हीरो-पन्ना का कठा और हाथ मे अमूल्य हीरो की अनेक अ ंगूठियां धारण करने वाला—निराली आन-बान और शान का साहूकारो का बेताज का बादशाह कहलाता है ?

सादगी की एक प्रतिमूर्ति बुढापे के बोझ से कमर झुकाये, किन्तु सिह की दबग चाल वाले, जी हां यही वह सर सेठ हैं, जो आज साधुत्व को सर करने के लिये वैभवविलास को उच्छिष्ट आम की गुठली की तरह फेके हुए है । कहां तो इन्द्रभवनो के राजसी पलंगो पर बिहार करने वाला श्रीमंत और कहां साधु-संतो के बीच भगवत् भजन मे लीन रहने और भगवान् के नाम की माला फेरने वाला यह संन्यासी व्यक्ति ! कितना बडा परिवर्तन है यह । क्या कोई महसूस कर सकेगा इस व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई अगाधता को ! जीवनभर जिसने माया को प्यार किया, दुलार किया और जिसके मनुहार मे ह मचलता रहा,—इठलाता और अठखेलियां करता रहा, अब उससे रूठे हुए है वह !

उनका मेरे प्रति जो प्रेम है , क्या उसका प्रतिदान मैं कभी दे सकू ंगा ? एक अत्यन्त गरीब घर से वे मुझे उठा लाये थे ४० वर्ष पूर्व, जब कि मै सिर्फ तीन वर्ष का ही तो शिशु था । उन्होने मुझे कभी यह महसूस न होने दिया कि मै माता-पिता के प्यार से कभी एक क्षण के लिये भी बंचित हुआ । मुझे गोद लाये । बालक को उन्होने अपने स्वयं के सुपुत्र से भी अधिक लाड प्यार मे रखा । चि० राजकुमारसिंह के जन्म के बाद भी मेरा दुलार कम नही हुआ और जब पूज्य कल्याणमलजी साहब का स्वर्गवास हुआ, तो उनकी फर्म का वारिस बना दिया । इतना ही नही, अपनी सम्पत्ति का भी लगभग एक करोड रुपया मुझे और दिया । इस कार्य मे भी सेठ साहब ने जिस दूरदर्शिता, मेरे हितका और समस्त परिवार की भलाई का ध्यान रखा, इसे कौन नही मानेगा ? मै उनके अहसानो कितना दबा हुआ हूँ ?

आज एक पुत्र अपने पिता को उनकी मौजूदगी मे किन शब्दो मे श्रद्धांजलि दे, समझ नही पा रहा हूं । मुझे संकोच है, तो इतना ही कि हम उनकी उच्चता और गंभीरता को पा न सके, उनके वारिस होकर भी । आज जब अपने भावो को उनके समक्ष प्रकट करने का सुअवसर मिला है, तो मै तो परमेश्वर से यही प्रार्थना करू ंगा कि सिर्फ मै और मेरे परिवार के लिये, बल्कि समस्त जैन समाज एवं व्यापारिक समाज के लिये वे शतायु हो और हम सब पर उनकी सरपरस्ती बनी रहे ।

आज सेठ हुकमचन्दजी हमारे बीच मौजूद हैं । अत. उनके प्रखर व्यक्तित्व का महत्व हम समझ नही पा रहे । मेरी मान्यता हैं कि भारत के व्यावसायिक एव औद्योगिक गगनमण्डल मे फिर कभी सेठ साहब जैसा प्रतापी सितारा प्रगट होना असभव नही. तो अत्यन्त कठिन अवश्य है । रो, भगवान उन्हे चिरायु रखे,-यही मेरी पुन: पुन परमेश्वर से प्रार्थना है ।

—इन्दौर से श्री रतनलालजी सोनी लिखते है कि इतने बडे ऐश्वर्य के धनी होते हुऐ भी अभिमान सेठ साहब के पास फटक तक नही पाया । बाल-वृद्ध-युवा किसी भी समय आपके पास जाकर मिल सकते हैं और अपने उद्‌गार प्रकट कर सकत हैं । आप कार्यकर्ताओ को खूब परखते हैं । साहस और धैर्य आपका मुख्य गुण है । आपके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूं ।

इन्दौर के राजा

वयोवृद्ध सेठ भंवरलालजी सेठी, इन्दौर

स्वागताध्यक्ष—महासभा स्वर्णजयन्ती महोत्सव

श्री श्रवणबेलगोला की यात्रा के समय मै मैसूर, बगलोर आदि दर्शनीय स्थानो पर गया था। उस यात्रा मे छोटे-छोटे नगरो मे भी लोग मुझसे पूछते कि "आप कहा से आये हैं ?" उत्तर सुनकर कहते "अच्छा आप सर हुकमचन्द के इन्दौर से आ रहे है ?" अथवा "वही इन्दौर जहा सर हुकमचन्द रहते हैं ?" मुझे बहुत आश्चर्य हुआ, जब बंगलोर मे एक काफी शिक्षित व्यक्ति ने मुझसे कहा कि "इन्दौर के राजा तो सर हुकमचन्द हैं न ?" सर हुकमचन्दजी का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली तथा आकर्षक है कि जहां कही भी वे जाते, लोग उन्हे देखने को उमड पडते। मैसूर के दशहरे के समय उन्हे महाराजा मैसूर स्वयं पत्र और तार पर तार देकर बडे आग्रह के साथ बुलाते। जब भी सेठ साहब वहा गये, लाखो की संख्या मे लोग उपस्थित होते। मैसूर मे लोग अब भी उन दशहरा-जलूसो को याद करते है, जिनमे सर सेठ साहब शरीक हुए थे। उनके अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण कई लोगो ने उन्हे इन्दौर का राजा ही समझ लिया था। उन्हे यदि कोई कहे कि सर हुकमचन्द इन्दौर के राजा नही है, तो एक बार तो वे विश्वास ही नहीं करते थे।

सोनगढ मे आप उनके अतुल धर्मानुराग की कथा सुनेगे, तो कलकत्ता मे उनकी गणना देश के इने गिने प्रमुख उद्योगपतियो मे होती देखेगे। दक्षिण मे अनेक स्वयं अर्जित धन तथा ऐश्वर्य के साथ उनके निरभिमान स्वभाव की चर्चा है, तो उत्तर मे दृढ व्यक्तित्व त ा दानशीलता की।

अपने जीवन मे मैने सर सेठ साहब सा दृढ एवं निडर व्यक्ति दूसरा नही देखा। किसी भी परिस्थिति मे उन्होने आत्मविश्वास नही खोया। बडे से बडे आफिसर, गवर्नर अथवा राजा-महाराजा के साथ धर्म के लिये उलझते वे कभी घबराये नही। उनके धर्मानुराग एव उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के सम्मुख अफसरो तथा राजाओ को अनेक बार झुकना पडा और उन्होने सर सेठ साहब को सदा के लिये अपना मित्र बना लिया। जब भी तीर्थ अथवा धर्म पर संकट आया, सर सेठ साहब ने अकेले सघर्ष करके धर्म की पताका को ऊचा रक्खा।

वास्तव मे सर सेठ स्वयं अपने मे एक सस्था है। उनका सहयोग सारे जैन समाज का सहयोग है। उनका विरोध सारे जैन समाज का विरोध, जिसके सन्मुख बडे बडे शासनाधिकारी झुक चुके है।

अपनी बुद्धि और अपने परिश्रम से उन्होने धनोपार्जन किया। एक साधारण व्यक्ति से वे अपने बुद्धिबल से हमारे प्रात के सर्वश्रेष्ठ उद्योगपति बने। पर, इसका उन्हे कोई गुमान नही है। ऐश्वर्य और सत्ता का साथी

अभिमान होता है। पर, सेठ साहब को अभिमान छू भी नही गया। धनी और निर्धन दोनो उनके मित्र हैं। छोटे से छोटे परिचित के यहां वे शादी ब्याह मे शामिल होते है।

आज प्रत्येक धर्मानुरागी जैन उन्हें अपना एकमात्र सेनानी मानता है। वास्तव मे वे जैन समाज के सम्राट् हैं। उन्होने तो सदा अपने को जैन समाज का सेवक ही माना। जैन समाज उनकी सेवाओ से कभी उऋण हो नही सकता। राजाओ, शासकों और विद्वानो ने उन्हे मान दिया, किन्तु उन्हे इसका कोई गर्व नही। सर सेठ साहब के निकट परिचित जानते है कि व्यापार मे लाखो खो देने पर भी उतने ही प्रसन्न मुख एव निश्चिन्त रहे है, जितने लाखो कमा लेने पर। दुःख और सुख मे वे सदैव शांत रहते है। स्वभाव की सरलता, नम्रता एवं धैर्य्य उन्होने कभी खोया नही। नित्य सामायिक मे हम जिस माध्यस्थ भाव की याचना करते है, वह सेठ साहब के स्वभाव का सहज गुण है।

कुछ वर्षों पहिले सेठ साहब के पेट मे तकलीफ हुई। बम्बई मे डाक्टरो ने उन्हे कहा कि लन्दन जाकर आपरेशन करवाना चाहिये अन्यथा जीवन का भय है। सेठ साहब ने विदेश जाना स्वीकार नहीं किया। मित्रो तथा सम्बन्धियो ने बहुत आग्रह किया। अनुनय विनय किया। पर, वे अडिग रहे। डाक्टरो ने मृत्यु भय बतलाया। पर, वे विदेश जाने को तैयार नही हुए। इसके विपरीत उन्होने इन्दौर आकर समस्त व्यावसायिक एवं पारिवारिक कार्यों का त्याग कर दिया तथा उदासीन वृत्ति धारण कर धर्म-अध्ययन एवं आत्म-चिन्तन मे जुट गये। मित्रो ने उन्हे कई बार पारिवारिक कार्यों मे लाने का प्रयास किया। पर, वे अपने निश्चय पर दृढ रहे।

जब हम सुनते है कि एक व्यक्ति ने अपने बुद्धि बल से खूब धनोपार्जन किया, दान दिया धर्म प्रभावना की तथा अनेक लोकोपयोगी कार्य किये और अधिक अवस्था होते देख आज वह उस समस्त ऐश्वर्य को क्षण भर मे त्याग कर आत्म चितन मे रत हो गया है, तो ऐसा लगता है कि किसी पुराणो मे वर्णित चतुर्थकाल के महान धर्मप्राण व्यक्ति की गाथा कही जा रही है। आज से दो सौ वर्ष बाद सेठ साहब की जीवन कथा पढकर लो। विश्वास नही करेंगे कि ऐसा व्यक्ति पंचमकाल मे हुआ भी था। आज यह हमारे सौभाग्य की बात है कि ऐसे महान व्यक्ति के हम समकालीन है।

मैं जिन प्रभु से यही प्रार्थना करता हूं कि धर्म, देश और समाज के लिये सेठ साहब अनेको वर्ष और हमारे बीच मे रहे। उनके अभाव मे जैन समाज का क्या हाल होगा,—इसकी कल्पना भी दुःखप्रद है। भगवान करे समाज सेठ साहब जैसे तेजस्वी व्यक्ति की सेवाओ तथा नेतृत्व से कभी वंचित न हो।

—बिजनौर से भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् के उपाध्यक्ष श्री रतनलालजी जैन सदस्य उत्तर प्रदेशीय धारासभा लिखते हैं कि रावराजा सेठ हुकमचन्दजी जैन समाज के अग्रणी नेता हैं। आप उन धनकुबेरो मे से है, जिन्होंने अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग किया है। आपकी लोकोपकारी संस्थाओ से लाखो व्यक्ति प्रति वर्ष लाभ उठाते है। मेरी हार्दिक भावना है कि सेठजी चिरंजीवी हो और उनके द्वारा धर्मप्रसारक समाज का कल्याण होता रहे।

—जयपुर से अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी कमेटी के मंत्री श्री बधीचन्दजी गंगवाल लिखते है कि सर सेठ साहब समाज व देश की प्रख्यात विभूतियो मे से है। जीवनभर आपने समाज की भरसक सेवा की है। दिगम्बर जैन तीर्थो एव क्षेत्रो की रक्षा के लिये आपने घोर व अथक परिश्रम किया है। धर्म के स्वरूप को आपने अपने जीवन मे उतारा है। आप रूढिवादी नही है। समाजसुधार के आंदोलनो मे आपने कितनी ही बार सफल नेतृत्व किया है।

युग-निर्माता

रायबहादुर जैनरत्न सेठ लालचन्दजी सेठी, उज्जैन

श्रीमंत सर सेठ हुकमचन्दजी साहिब उन प्रतिभाशाली पुरुषों मे से है, जो युग-निर्माता कहे जाते है। सेठ साहब ने गत पचास वर्षों में जो काम समाज, धर्म व्यापार और उद्योग के लिए किए हैं और उनमे जो यश व सफलता प्राप्त की है, वह बहुत कम भाग्यशाली पुरुषो को मिल सकती है। सेठ साहब का जीवन सभी दृष्टियों से सफल और महत्वपूर्ण रहा है। अपने पूज्य पिताजी से अपने हिस्से की पांच लाख की सम्पत्ति पाकर उसे आपने व्यापार-कौशल से सहस्रगुणा बढाकर करोडों में परिणत कर दिया है। आपके व्यापार करने के तरीके बडे साहस भरे होते थे, जिससे भारत ही नही, बाहर देशों के बाजार भी हिल जाते थे। आपकी साख भारत मे ही नही यूरोप और अमेरिका में भी मानी जाती थी। सम्पत्ति का विस्तार करने के साथ ही आपने अपने जीवन मे ७०-८० लाख से अधिक का दान देकर अपना नाम अमर कर दिया है, जिससे जैन समाज का काफी उपकार हुआ है।

आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। जैनधर्म मे धर्म-अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पुरुषार्थ माने गये है। चारो पुरुषार्थों में आपका जीवन बहुत ही उल्लेखनीय रहा है। जैनतीर्थों और जैनसमाज पर जब-जब आपत्ति आई, आपने अथाह परिश्रम करके तन-मन-धन, लगाकर उनका निवारण कर अपना जीवन सार्थक किया। जैनतीर्थों सम्बन्धी झगडे निपटाने में शुरू से आपकी अभिरुचि रही है। परन्तु श्रीमान् सेठ माणकचन्द पानाचन्द की मृत्यु के बाद से तो आपने तीर्थसम्बन्धी झगडे निपटाने का व्रत-सा ले लिया है। इसी से "तीर्थभक्तशिरोमणि" की पदवी जैन-समाज ने आपको सादर समर्पित की है।

इसी तरह समाज के आपसी झगडे मिटाने के लिए आप आधी रात को भी कटिबद्ध रहते हैं और उन सब झगडो को मिटाकर आपने पारस्परिक प्रेम-भाव सब मे स्थापित किया है। उज्जैन और बडनगर के पुराने झगडे तथा अव्यवस्था को आपने इसी तत्परता से निपटाया है। अत दूसरो के लिए जो काम कठिन होता है, उसे आप बडी आसानी के साथ अपनी बुद्धिचातुरी से निपटा देते हैं।

आपका मेरा सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। जिस प्रकार आप गृह-शासक है, प्रसिद्ध व्यापार-कुशल हैं, उसी प्रकार पितृ-वात्सल्य भी आप मे बडा अपूर्व है। मेरी धर्मपत्नी आपकी प्रथम सेठानीजी से है, जिन्हे वे तीन दिनकी छोडकर स्वर्गस्थ हो गई थी। तभी से मेरी धर्मपत्नी पर आपका विशेष प्रेम रहा है, जिसमे आज भी कोई कमी नही हैं। सम्वत् १९५८ मे मेरी सगाई हो गई थी, विवाह हुआ सम्वत् १९६७ मे। तभी से मेरे पर आपका प्रेम उत्तरोत्तर बढता जाता है। मुझे बचपन मे पितृ सुख बहुत थोडा मिल पाया, परन्तु सेठ साहब के वात्सल्य ने बहुत अशो मे उसकी पूर्ति कर दी है।

सन् १७२८ मे कुप्रबन्ध के कारण विनोद मिल की स्थिति बडी डावाडोल हो गई थी। १०० रु० के शेअरो के भाव केवल ३० रु० के रह गये थे। यह समस्या हमारे सामने बहुत उग्ररूप मे थी और हम सबका परेशान कर रही थी। उस समय सेठ साहब ने बडे ही जोरो से मुझे और मेरे भाइयो को प्रोत्साहन दिया और मुझे कारोबार सम्हालने मे पूरी मदद पहुचाई और मिलका काम हमारे सिपुर्द कराया। उसी का परिणाम है कि विनोद मिल मे जहा उस समय ४६० लूम थे, वहा आज १३०० लूम्स होकर वह अग्रगण्य मिलो मे गिना जाने लगा है। यदि आप और श्री आर-सी-जाल साहिब उस समय इतना सहयोग न देते, तो यह दिन नसीब नही होता।

सन् १९२० में मेरी तबीयत बहुत बिगड गई थी। उस समय सेठ साहब मामलेश्वर मे थे। गरमी बहुत

रायबहादुर, वाणिज्यभूषण सेठ लालचन्दजी साहब सेठी उज्जैन।

सर सेठ हुकमचन्दजी साहब के बाये हाथ की रेखाओं के चित्र

सर सेठ हुकमचन्दजी साहब के दाये हाथ की रेखाओं के चित्र

सर सेठ साहब का स्टेच्यु। इन्दौर मे ताः १२मई को पब्लिक गार्डनमें अनावरण होगा।

रावराजा श्रीमन्त सेठ हीरालालजी साहब कासलीवाल इन्दौर।

पड़ती थी। तार पहुँचते ही, यानी दो बजे तार मिला और तीन बजे आप एकदम वहां सबको छोड़कर, भयंकर गरमी में रवाना हो गये, जिससे आपकी स्वयं की तबीयत बिगड़ गई। जब तक मुझे डाक्टरों ने संतोषजनक स्वस्थ नहीं बताया, तब तक आप वापस नहीं गये। ऐसे कई प्रसंग मेरे और मेरी संतान के लिये भी आये हैं। इस वात्सल्य का मेरे हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि मैं भी सेठ साहब की कुछ सेवा करके उऋण होना चाहता हूँ।

८७ वर्ष पूर्णतया गृहस्थाश्रम का निर्वाह करते हुए आज कल आप वानप्रस्थ जीवन बिता रहे हैं। डाक्टरों और कुटुम्बीजनों के आग्रहपूर्वक मना करने पर भी आपने संसार की क्षणभंगुरता को जान कर उससे मन को हटा लिया है। अब आप घंटों स्वाध्याय किये बिना नहीं रहते और सुन्दर-सुन्दर भजन बोलने में तल्लीन हो जाते हैं। आपने अब ऐसा उदासीन रूप धारण कर लिया है कि जहाँ आप चौबीसों घंटे हीरा-मोती-पन्ना के जेवर पहने रहते थे, वहां अब आपके हाथ में बीटी भी दिखाई नहीं देती। इस कदर का त्याग बिरले ही पुरुष कर सकते हैं।

भगवान् की कृपा से आपकी श्रीमती सेठानीजी साहिबा भी इतनी पतिपरायणा, विवेकवती, लक्ष्मीस्वरूपा और धर्मप्राणा हैं कि वैसी स्त्री-रत्न जैनसमाज में मिलना दुर्लभ है। सेठ साहब की प्रसन्नता में ही उन्होंने अपना जीवन न्योछावर कर दिया है।

मैं चाहता हूँ कि आपकी छत्रछाया हम पर सदा बनी रहे और जैनधर्म तथा समाज की सेवा आपके द्वारा खूब होती रहे। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ यह श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—ब्यावर से पंडित पन्नालालजी सोनी लिखते हैं कि सेठ साहब ने धर्म की अनुपम सेवा की है। उन्होंने श्रेष्ठातिश्रेष्ठ धर्मस्थान का निर्माण कराया है। उनके कार्य से समाज का मस्तक ऊंचा है। वे नर पुंगव हैं, परस्पर विरोधी लक्ष्मी और सरस्वती का उनमें समावेश हुआ है। जिन पूजा में, सामान्यविशेष व्रतविधान, विद्वानों का समागम, तीर्थस्थानों की सेवा में लक्ष्मी का विनियोग उनके किये सुकृत्य के उत्तम फल हैं।

—श्रीमान् सिंघई कुंवरसेनजी भूतपूर्व अध्यक्ष अखिल भारतीय परवार महासभा सिवनी लिखते हैं कि जब स्वर्गीय राजा लक्ष्मणदासजी के नेतृत्व में अखिल भारतवर्षीय दिगंबर जैन महासभा ने जन्म धारण किया था, तब से सेठ हुकमचंदजी के साथ मेरा सम्बन्ध प्रारंभ हुआ। सेठ साहब का व्यक्तित्व असाधारण है। जिस किसी समारंभ में शुभागमन होता है, उसकी शोभा और आकर्षण बढ़ जाता है। आप जैन समाज के सफल और प्रभावशाली नेता हैं। आपके सुख तथा ऐश्वर्य के भोग में न दानांतराय, न लाभांतराय, भोगांतराय, न उपभोगांतराय और न वीर्यान्तराय की बाधा है। सूक्ष्मतत्त्व चर्चा करते हुये सेठ साहब बड़े भारी पंडित सरीखे मालूम होते हैं। सम्यक्त्व के आठों अंग आपके जीवन में सुन्दरता से झलकते हैं।

—अजमेर से श्री हीराचन्दजी बोहरा बी०ए० विशारद लिखते हैं कि मालवा प्रान्त के विशिष्ट महापुरुष, जैन-समाज के अनभिषिक्त सम्राट, जैनधर्म के अनन्य उपासक, जैन तीर्थों के संरक्षक भारत के इस महान नरपुंगव के प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि समर्पित करता हूं। समाज व देश का मस्तक ऐसे कर्मठ, यशस्वी एवं महापुण्यवान आदर्श नेता को पाकर सर्वोन्नत है। इस महान भव्यात्मा द्वारा समाज व देश को चिरकाल तक लाभ प्राप्त होता रहे, यही श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है।

—सीकर के दीवान भंवरलालजी लिखते हैं कि सेठ साहब सरीखी महान् आत्मा के प्रति हमारा यही कर्तव्य है कि हम उनका अभिनन्दन करें; उनकी सेवाओं से अपने को उऋण करें।

जैन समाज के सुहाग

श्री जोहरीलालजी मितल ऐम ए एल, एल बी

(अध्यक्ष प्रातीय कांग्रेस चुनाव न्यायालय मध्यभारत)

सर सेठ हुकमचंदजी मालवे के ही नही, किन्तु भारतवर्ष के प्रख्यात व्यक्तियों मे से है, आप सफल व्यापारी, उद्योगपति एव कुशल निष्ठावान समाज नेता है।

सेठ साहब के बारे मे बहुत कुछ लिखा गया है व लिखा जाता रहेगा। मै तो यहा उनके सम्बन्ध की दो एक छोटी मोटी उन बातों की ओर ध्यान आकर्षित करता हूँ जो उनका थोडा-बहुत असली परिचय देने वाली है।

सेठ साहब अपनी धुन के पक्के है। किसी भी कार्य को बिना अत तक पहुँचाये वे पीछा नही छोडते। न कुछ बात के लिये भी, यदि वह उनके दिमाग पर चढ गई, तो जमीन आसमान एक कर लेते है। यो जिस बात के लिये वे दो पैसे का पोस्टकार्ड खर्च नही करते, उसके लिये कुछ घण्टो मे पचासो रुपया ट्रक्क, टेलीफोन, तार व मोटरे दौडाने मे बडे उत्साह से खर्च कर देते है।

किसी की गलतफहमी को बिना उसकी तह तक पहुँचे और बिना उसका पूरा समाधान किये सेठ साहब को चैन नही पडती। एक ही बात के लिये आधे आधे मिनट मे टेलीफोन पर टेलीफोन करना, रातभर जगकर सामने वाले को भी सोने न देना। सेठ साहब की इस आदत को वे लोग खूब जानते है, जिनका उनसे निकट सम्पर्क रहा है।

अपना काम निकालने और अपनी मनचीती बात को पूरा कराने मे सेठ साहब के समान दृढ और धुन के पक्के बिरले ही मिलेगे। साधारण से काम के लिये भी वे अपनी प्रतिष्ठा व पोजीशन का मिथ्याभिमान न रख बडे से बडे छोटे से छोटे को भी येन केन प्रकारेण पटा लेने मे सिद्धहस्त है। अपने विरोधियो को मिनटो मे अपने अनुकूल कर लेने मे उन जैसे सफल नीतिज्ञ बहुत कम मिलेगे।

सेठ साहब की बुद्धि तीक्ष्ण और विवेक अपरिमित है। उनकी लम्बी सूझ किसी को भी प्रभावित किये बिना नही रहती। सेठ साहब छोटे बालक के समान सरल प्रकृति के व योग्य रीति से समझाने पर तुरन्त अपनी हठ छोडकर उचित बातो को तत्क्षण मान लेने के अभ्यासी हैं।

सेठ साहब ऐसे बुद्धिमान, कार्यकुशल, अनुभवी, सफल, प्रतिभाशाली, नेता, उद्योगपति व समाजसेवी देश की शान बढाने वाले, चुने हुये व्यक्तियो मे से है, जिन पर देश और समाज को गर्व होना चाहिये। जबतक सेठ साहब जीवित है, तभी तक जैन जाति का सुहाग समझना चाहिये। जैन धर्म व जैन समाज के लिये सेठ साहब ने जो कुछ सेवा व श्रम किया है, वह उन्हे अमर बनाने वाला है। मध्यभारत को तो ऐसा कर्मठ व्यापारी और कार्यकुशल व्यक्ति शायद ही अगले दस बीस वर्ष मे उपलब्ध हो सके।

सेठ साहब की संस्थाओ व उनके भव्य भवनो आदि ने इन्दौर की शान बना रखी है। उनकी सेवाये अनुपम है। सेठ साहब चिरायु हो और बर्षों स्वस्थ रहकर समाज का कल्याण व मार्गदर्शन करते रहे,-यही प्रार्थना है।

—उज्जैन से श्री जवाहरलालजी गगवाल लिखते है कि सेठ साहब ने महान् पुण्य द्वारा उपलब्ध सासारिक सुख वैभव के उपभोग मे भी धर्म को कभी विस्मृत नही किया। इसीलिये सासारिक सुख-वैभव का त्याग कर आपने धार्मिक जीवन व्यतीत करने का आदर्श उपस्थित कर दिया है।

उनके जीवन से शिक्षा

राज्यभूषण रायबहादुर सेठ कन्हैयालालजी भण्डारी, सुप्रसिद्ध उद्योगपति, इंदौर

पूर्व जन्म के संचित पाप और पुण्य का समन्वय ही वर्तमान जीवन एवं इस जन्म की आधारशिला है। इसके जाज्वल्य उदाहरण श्रीमान् दानवीर रईसुद्दौला, रावराजा, राज्यभूषण, राज्यरत्न, रायबहादुर सर सेठ हुकमचन्दजी है। उनके जीवन विकास मे पूर्व संचित कर्मों के ही फल अधिकांश दृष्टिगत होते है। मै अपनी बाल्यावस्था से ही सर सेठ साहब से निकट रूप से परिचित हूँ, क्योंकि आपके हृदय मे मेरे पिताश्री के लिए बडा आदर था।

आपके जीवन से हमे यह शिक्षा मिलती है कि केवल विद्या ही भाग्योदय, पराक्रम और लौकिक कीर्ति का कारण नही होती। पुण्यात्मा व्यक्ति मे जन्मजात कुछ ईश्वर प्रदत्त गुण होते हैं, जो किंचितमात्र अवसर प्राप्त होते ही जीवन की किसी धारा विशेष मे पूर्ण विकसित हो जाते है। लक्ष्मी उपार्जन करना यह फिर भी आसान हो सकता है, परन्तु उसे सम्हालना और उसका सद्व्यय करना बहुत ही कठिन है। लक्ष्मी के लिये तीन मार्ग कहे हुवे है—दान, भोग और नाश। सेठ साहेब ने अपने सौभाग्य से लक्ष्मी का उपभोग लिया और दान से अनेक पारमार्थिक संस्थाएं जनहित के हेतु स्थापित करके उसका सदुपयोग किया।

आपके स्वभाव मे एक और विशेषता है। वह है आपकी सरलता। आपको अपनी आवश्यकता से एवं काम के समय छोटे से छोटे व्यक्ति से भी कभी मिलने मे संकोच नही होता। मनुष्य जीवन के भयंकर शत्रु क्रोध जैसे मनोविकार को मैने आपमे कभी भी नही देखा। आपकी धार्मिक एवं पारमार्थिक भावनाएं इतनी उच्च हैं कि सर्वसाधारण व्यावहारिक प्राणी मे प्राप्त होना कठिन है।

अपने से बडो का आदर कैसे करना इसके मूर्तिमान उदाहरण श्री सेठ साहब है। मुझे याद है कि जब आपकी बिरादरी मे तडे (मतभेद) पडी थी और वे कई वर्ष तक कायम रही, उन्हें मिटाने के कई असफल प्रयत्न भी हुए। परन्तु जब मेरे पिता श्री ने अवसर पाकर आपसे कहा कि बहुत अवधि होगई है। बिरादरी के आपसी सम्बन्ध बहुत ही तन गये है। मनोमालिन्य व रंजिश बढती जाती है। यह अनुचित है। अतः आज ही तडें मिटाना चाहिये। आपने मेरे पिता श्री का कहना आदर पूर्वक माना और उसी क्षण तडो का मनोमालिन्य मिटा डाला। बिरादरी को इस प्रकार एक प्रेम-सूत्र मे बांध देने के ऐसे उदाहरण क्वचिद् ही देखने मे आवेंगे। यह सेठ साहब की विचारशीलता एवं अपने किसी भी हितैषी की सदिच्छा को मानकर हृदय मे स्थान देने का ही परिणाम था।

कुछ अवधि पूर्व सेठ साहब का स्वास्थ खराब था और वे बम्बई इलाज के लिये गये थे। वहां उन्हे कदाचित ऐसा अनुभव हुआ हो कि वे इस कठिन बीमारी से मुक्त होगे या नही, तो उन्होने इन्दौर वापिस आने के लिए अपने कुटुम्बियो से आग्रह किया उन्हे कहा गया कि आपके दूर और निकट के सभी कुटुम्बीजन धर्मपत्नी, पुत्र, पौत्र, पौत्रियां आदि समस्त आत्मीक जन यहां ही है और बंबई जैसा इलाज इन्दौर मे नहीं हो सकता। उत्तर मे सेठ साहब ने कहा कि मेरा इतना छोटा कुटुम्ब नही है। सारे इन्दौर की जनता मेरे कुटुम्बी है। किसी की बात न मानते हुए आप इन्दौर ही लौट आये। श्री सेठ साहब के लिए हजारो व्यक्तियो की सद्भावनाएं और शुभाशीष थे ही। यहां आने पर प्रभु कृपा से आपका स्वास्थ्य सुधरने लगा। यह अनुभव हुआ कि केवल दवाए काम नही करती, दुआएं भी चाहिएं, जो लोकप्रिय व्यक्ति के लिए सुलभ है। लोकप्रिय होने के लिये मान अभिमान जो महान शत्रु है, उन पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। मान कैसा शत्रु है उसके लिए संत महात्मा

कह गये है कि:—

"माया तजी तो क्या भया, मानहि तजा न जाय ।
मान बडी मुनिवर गले, मान सबन को खाय ॥"

आपका समयोचित व प्रिय भाषण नैसर्गिक स्वभाव है साथ ही स्पष्टवादिता आपके भाषण की विशेषता है ।

सृष्टि अपूर्ण है और उसमे उत्पन्न मनुष्य-मात्र अपूर्णता लिये हुए होता है । इस दृष्टि से सेठ साहब मे भी कुछ अपूर्णता है और वह है आपके चित्त की चंचलता अथवा अस्थिर-चित्तता । यदि यह मनोभाव आपके स्वभाव मे न होता, तो आप संपूर्णता के निकट पाये जाते । सर्वांगीण दृष्टि मे सपूर्णता होना तो मनुष्य के लिए सर्वथा असंभव है, क्योकि आखिर मनुष्य मनोविकारो का ही पुतला है । ज्ञान और बुद्धि द्वारा उन मनोविकारो पर विजय पाकर सपूर्णता के निकटतम लक्ष की ओर अग्रसर हो सकता है, किन्तु स्वयं संपूर्णता को प्राप्त नही हो सकता । विश्वकवि महात्मा टागोर ने तो अपने तत्वज्ञान मे यहा तक कह दिया है कि स्वयं ईश्वर भी अपूर्ण है, फिर सांसारिक जीवो का क्या कहना । मनुष्य जीवन मे धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारो फलो की प्राप्ति की साधना करना यह परम कर्तव्य है, इनमे मोक्ष-साधना सबसे कठिन है, किन्तु सेठ साहब ऐसे भाग्यशाली हैं कि—आप यह साधना कर रहे हैं । जिन्हे सातो सुखो की प्राप्ति हो ऐसे मनुष्य विरले ही मिलते हैं —

"पहिला सुख निरोगी काया,
दूसरा सुख घर मे माया ॥
तृतीय सुख पुत्र हो आज्ञाकारी ।
चौथा सुख पतिव्रता नारी ॥
पाचवा सुख सुस्थान मे बासो ।
छठा सुख राज मे पासो ॥
सातवां सुख वैकुंठ मे बासौ ॥"

बडे सौभाग्य की बात है कि सेठ साहब को आपके पूर्व जन्म के सत्कर्मो के प्रभाव से सभी सुखो की प्राप्ति तथा सातवे सुख पारलौकिक सुधार एवं मोक्ष के लिए आप साधनाशील हैं । आपके जीवन से हम मे से प्रत्येक को बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है ।

हम वीर प्रभु से यह प्रार्थना करते हैं कि, सेठ साहब को पूर्ण आरोग्य के साथ शतायुष प्रदान करे ।

—नांदगांव से बाबू तेजपालजी काला लिखते है कि सेठ साहब का जीवन चारो पुरुषार्थों का सुन्दर समन्वय है । आपने धर्म को ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य बना रखा है और उसको अपनी आत्मा का अंग बना लिया है । जैनाचार्यों की अमूल्य कृतियो को केवल प्रकाश में ही नही लाये, किन्तु स्वय भी घन्टो उनका स्वाध्याय, अनुशीलन और मनन भी करते है । विविध प्रवृत्तियो से भरा हुआ आपका अलौकिक जीवन "सत्यं शिवं सुंदरम्" का एक आदर्श नमूना है ।

—कलकत्ता से बंगाल बिहार उडीसा दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के मन्त्री श्री जयचन्दलालजी बगडा लिखते हैं कि आपकी दानशीलता, कर्मण्यता, धर्मवीरता, परोपकारिता एवं व्यापार कुशलता जगत् प्रसिद्ध है । आप जैन धर्म की प्रभावना और समाज सेवा के लिये सदैव अग्रसर रहते है ।

मालवा का सौभाग्य

श्री हुकुमचन्दजी पाटनी, बी० ए० एल० एल० बी०, इंदौर

उन्नत शरीर पर विशाल भाल, आजानु बाहु, गति में मयन्द की मस्ती लेकर चलने वाले सर सेठ हुकमचन्दजी को जिसने भी एक बार देखा होगा, मुग्ध हो गया होगा। आजके इस जर्जर युग में जब मानव सभी दृष्टि से पतन की ओर अग्रसर हो रहा है, सर सेठ साहब का व्यक्तित्व आगामी पीढी के लिए आश्चर्य एवं आदर्श की वस्तु सिद्ध होगा।

बहिरंग के पूर्णत: आकर्षक होने के बाद भी एक साधारण व्यक्ति में उस महत्ता के दर्शन नहीं हो सकते, जिसका प्रभाव जातीय जीवन के इतिहास में स्थायी और अमिट होता है। उसके लिए तो व्यक्तिविशेष को अन्त:प्रवृत्तियों का पूर्णत: विकसित होना अनिवार्य है। यही नहीं इस विकास की गति का लोकहित की सीमाओं से परावृत्त होना भी उतना ही आवश्यक है। तनिक-सा भी व्यतिक्रम होने पर विकास का विगति अथवा विकृति की ओर उन्मुख हो जाना स्वाभाविक है। जिस जीवन में उक्त क्रम अपने सन्तुलित रूप में दिखाई देता है, वह जीवन यथार्थ में आदर्श है, सम्माननीय है एवं अनुकरणीय भी है। सर सेठ साहब का व्यक्तित्व इसी प्रकार का आदर्श है और यही कारण है कि उनके लिए देश-विदेश में कीर्ति का एक विचित्र विश्व निर्माण हो सका है। बाह्य व्यक्तित्व की भव्यता जीवन-क्षेत्र में कितनी ही सफलताओं का पथ प्रशस्त करती है। सुगठित व्यक्तित्व का निर्माण सुदृढ चरित्र की अपेक्षा करता है। सर सेठ साहब के व्यक्तित्व में यही सब मूर्तिमान हो उठा है।

सेठ साहब स्वभावत: वणिक हैं। वाणिज्य क्षेत्र में समय-समय पर आपने जो प्रतिभा प्रदर्शित की, उसने भारतीय व्यवसाय क्षेत्र को अनेक मौलिक प्रयोग सिखाये। सेठ साहब मालवे के प्रथम व्यापारी है, जिन्होंने आधुनिक युग की देन यन्त्र-प्रबलता को पहिचाना और इन्दौर को एक उच्च कारखानों से युक्त नगर बनाने का श्रेय प्राप्त किया। भारत के सुविख्यात देशभक्त वैज्ञानिक पी० सी० राय ने सन् १६२३ में इन्दौर शहर की एक औद्योगिक प्रदर्शनी का उद्घाटन किया था। श्री सेठ साहब उसके स्वागताध्यक्ष थे। आचार्य राय ने अपने भाषण में किस मुक्त कण्ठ से आपकी सराहना की थी।

व्यापारी के नाते आपकी दूसरी विशेषता है—'वस्तु-विशेष का एकत्रीकरण।' यही एकमात्र कारण रहा है कि सर सेठ साहब ने पिछले तीस वर्षों तक सम्पूर्ण भारत के अच्छे-अच्छे अध्यवसायियों के अपने सामने घुटने टिकवा दिये थे। जिन्दगी में उन्होंने कितने ही दाव जीते और हारे। परन्तु प्रसन्नता से खिले हुए उनके मुख पर चिन्ता की छाया कभी भी प्रदर्शित नहीं हुई। व्यवसाय के क्षेत्र में सेठजी की इस सर्वांगीण कुशलता का कारण उनका मंजा हुआ व्यवसायविवेक है। किस वस्तु को कब खरीद कर कब बेचना उन जैसे व्यवसायपुरुष को वणिकपुत्र को भली-भांति ज्ञान रहता आया है और यही कारण है कि वे प्रत्येक कार्य में सदा सफल हुये।

जो असाधारण हैं, वे ही आनन्द के धाम होते है। हमने सेठजी को कई बार कई सभा स्थलों पर सभापतित्व करते देखा है। जिन मनोरंजक ढंग से वे अपने दायित्व का निर्वाह करते है, सचमुच वह बडे आनन्द की वस्तु है। इन्दौर में पहली बार जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुआ था, तब सेठ साहब ने महात्मा गांधी आदि महापुरुषों के सम्मुख कुछ अधिक न बोलते हुए अपने जेब में से एक रुपया निकाला और उपस्थित जन-समुदाय से मार्मिक अपील करते हुए कहा कि इधर देखिये इसमें अंग्रेजी, उर्दू आदि सभी भाषायें तो दिखाई देती है, किन्तु हिन्दी का कहीं पता नहीं। तब आपने भविष्य की ओर संकेत करते हुए कहा था कि जब तक इस अंग्रेजी

का स्थान हिन्दी नही ले लेती, तब तक हम सब हिन्दी के कार्यकर्त्ताओं को अपना-अपना कार्य करते रहना है। आज सेठजी की भविष्यवाणी सफल हुई। हिन्दी ने राष्ट्रभाषा के साथ ही साथ भारतीय गणराज्य की राज्यभाषा का भी गौरवमय स्थान सम्पादित कर लिया।

इसी प्रकार उनके रंजन की एक और घटना याद आती है। मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति मे भारतीय प्रथम गवर्नर जनरल माननीय राजाजी के स्वागत का आयोजन किया गया था। राजाजी ने अपने भाषण मे हिन्दी न जानने पर खेद प्रगट किया था। सर सेठ साहब ने अपनी मनोरंजक शैली मे कहा कि राजाजी तो बडे विद्वान् हैं। उन्हें कई भाषायें याद हैं, तो फिर हिन्दी जैसी सरल भाषा उनके लिए सीखना कोई बडी बात नही है।

नगर मे विभिन्न उत्सवो के अवसर पर सेठ साहब को हमने हर्ष से समाज के साथ प्रसन्नता बटोरते देखा है। उन्हे अपनी आर्थिक विशेषता पर कोई गर्व नही है। वे जाति के साधारण से साधारण व्यक्ति के सुख-दु:ख मे भाग लेते हैं।

सेठ साहब बडे उत्सवप्रिय है। जिनमे जीने का चाव होता है, इस काल-क्षेत्र विश्व मे वे ही शतायु हो पाते है। सेठजी ने अपने जीवन काल मे लाखो रुपयो का व्यय विवाह, धार्मिक समारम्भ, जातीय सम्मेलन आदि शुभ कार्यों मे केवल अपनी उत्सव-प्रियता की भावना के सन्तोषके लिए किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सेठ साहब ने अपने धन का दान भी खूब किया और उपभोग भी खूब किया।

सेठजी हृदय से कला-प्रेमी हैं। उन्हे वास्तु कला के प्रति विशेष अभिरुचि है। उन्होने स्वयं की देख-रेख मे तथा अन्य कई स्थलो पर भव्य इमारते बनवाई है, जिनकी बनावट अपना सानी नही रखती। आज भी 'हाबल्या काबल्या' (राजस्थानी जनता इस पीढी को इसी सम्बोधन से समझती है) के इन्द्र भवन, रंग-महल, भगवान का स्वर्ण-मन्दिर एवं शीश-महल देखने प्रतिदिन सैकडो की सख्या मे यात्रियो का समूह उमडा करता है। इन इमारतो का निर्माण सेठजी ने विभिन्न प्रान्तो के कारीगरो को बुलवा कर करवाया था।

इस प्रकार अपने राजसी वैभव के मध्य हृदय की उदारता के कारण वे इतने लोक-प्रिय हो चुके हैं कि मालवे का प्रत्येक समाज इनके सम्मुख पलके झुकाने मे एक मधुर गौरव का अनुभव करता है। राज्यमान्य सर सेठ जनमान्य भी हैं। बीच में जब वे बीमार हुये थे तब भारतवर्ष के सम्पूर्ण जैन समाज व सारा मध्य-भारत उनकी हृदय से आरोग्य कामना करता था। ऐसे श्रेष्ठ पराक्रमी उदार व्यक्तित्व को पाकर मालव-भूमि स्वयं को सौभाग्यशाली अनुभूत करती है।

—अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् के प्रधान साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन बम्बई से लिखते हैं कि सेठ साहब ने जैनधर्म, जैन जाति और जैन तीर्थस्थानो की अद्वितीय सेवा की है। वह जैन इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखी जायगी। वे बिना सदेह जैन जाति के माने हुये 'अहमिंद्र' हैं। उनकी सेवा और कार्यप्रणाली समाज-सेवको के लिये हमेशा आदर्श व प्रेरक रहेगी। उनका मृदुल, मधुर स्वभाव, अकृत्रिम वात्सल्यता और अकृत्रिम सेवा भावना उनके सम्पर्क मे आने वालो पर एक सरल मोहनी डाल देती है।

—पं० हरिप्रसादजी जैन शास्त्री उदासीन आविकाश्रम इन्दौर लिखते हैं कि सेठ साहब के महान गुणो का दिखाना सूर्य को दीपक से दिखाने के समान है। ये गुण ही पारलौकिक सुख के कारण माने गये है। सर सेठ साहब धर्म अर्थ काम मोक्ष का सेवन करते हुये चिरायु हों।

प्रथमानुयोग का प्रत्यक्ष

श्री पं० परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ, सम्पादक-वीर

प्रथमानुयोग-कथा ग्रंथो मे कई कथाये पढी थी कि अमुक सेठ था, उसका महान् वैभव था, उसका बहुत बडा व्यवसाय था, उसने दुनिया भर के दद्फंद मे भाग लिया, लाखो-करोडो दीनार कमाये, मन्दिर बनवाये, बडे-बडे धार्मिक कार्य किये, सांसारिक माया मे भी बाजी ले गया; किन्तु अन्त मे सांसारिकता के मोह का त्याग करके विरक्त हो गया और अपना जीवन त्याग-तप मे व्यतीत करके संसार के समक्ष एक आदर्श उपस्थित कर गया।

इन कथाओ को पढकर ऐसा लगता था कि दुनियादारी दंदफंद मे फंसा हुआ व्यक्ति अपना करोडो का वैभव छोडकर कैसे विरक्त हो जाता होगा? श्रीमान् सर सेठ हुकमचन्दजी का जीवन देखकर प्रथमानुयोग की कथा प्रत्यक्षवत् होगई।

लोगो ने यह भी देखा कि सर सेठजी सांसारिक माया मे एकदम तल्लीन हैं। अर्थोपार्जन मे लगे हुये हैं। उनकी सट्टेबाजी के कारण बाजार मे तहलका मचा हुआ है। चाँदी-सोने का बाजार उनकी मुट्ठी मे है। फिर यह भी देखा कि वे इन तमाम झंझटो से एकदम विरक्त होकर बैठ गये है। सहसा विश्वास नही होता था कि करोडो की उथल-पुथल करने वाला व्यक्ति उस मोह माया को इस प्रकार कैसे छोड सकता है, किन्तु जब यह प्रत्यक्ष देखा कि सेठजी एक दिग्व्रती या देशव्रती की भांति अपने भवन मे ही निवास करते हुये अपना सारा समय केवल धार्मिकता मे ही व्यतीत करने लगे हैं और इन्द्रभवन का टेलीफोन भी दुनियादारी के लिये नही किन्तु धार्मिक कार्यों के ही उपयोग मे आने लगा है, तब विश्वास हुआ कि सचमुच ही सर सेठ साहब के मन और क्रिया दोनो मे ही सांसारिकता के प्रति विरक्ति आगई है।

कई सामाजिक धार्मिक मामलो मे सर सेठजी के साथ मेरा निकटतम सम्पर्क स्थापित हुआ है। उनके साथ लम्बा-चौडा पत्रव्यवहार हुआ है। आधे आधे घन्टे टेलीफोन पर सूरत-इन्दौर से बातचीत हुई है। २०० २०० शब्दो तक के कई तार सेठजी ने भेजे हैं। इनसे मै इस निश्चय पर पहुंचा कि सचमुच ही सेठ साहब धार्मिक मामलो मे भी परीक्षाप्रधानी हैं। साथ ही उनकी कोमल भावुकता भी देखी, जो उनके निश्चयो को बदल देने मे कभी बाधक नही हुई। इस प्रकार सर सेठजी के विविध रूप देखने मे आते हैं; किन्तु अब उनका यह अन्तिम रूप, है जो किसी भी श्रीमान् के लिये आदर्श बनकर रह जायगा और जो उनके अभी तक के तमाम रूपो से लाख गुना बढकर कल्याणकर सिद्ध होगा।

सर सेठजी अपने इस अन्तिम रूप मे अब सुदृढ प्रतीत होते है। अभी कुछ समय पूर्व मैंने उन्हे एक पत्र लिखकर एक धर्ममिश्रित सामाजिक मामले मे उनकी सम्मति मांगी। उन्होने उत्तर मे स्पष्ट लिख भेजा कि आपकी बात न केवल सामाजिक है, किन्तु धार्मिक भी है। लेकिन, मैंने सामाजिकता से अपने को कतई दूर कर लिया है और इधर मेरी कोई रुचि नही रही है। इसलिये मै अपनी कोई सम्मति नही दे सकता।

उनके इस पत्र ने मेरे मन पर अच्छा प्रभाव डाला और साश्चर्य विचार किया कि जो व्यक्ति कुछ ही वर्ष पूर्व एक विषय को लेकर कई सौ शब्द के तार देता था और आध-आध घण्टे तक टेलीफोन का रिसीवर हाथ मे नहीं छोडता था, वही आज एक पत्र के उत्तर मे कुछ ही पंक्तियां लिखकर अपने को एक दम विरक्त बतला रहा है। बतला ही नही रहा है, सचमुच विरक्त होगया है। यह कैसे?

मै समझता हूं, यह उनकी सतत स्वाध्याय-प्रवृत्ति का परिणाम है। उन्होने वर्षों अपने निकट अच्छे

मे अच्छे विद्वानो को रखा है, और उनके निकट बैठकर केवल जिज्ञासुभाव मे स्वाध्याय किया है। इसीका यह शुभ परिणाम है कि आज वह महान् वैभवशाली श्रीमान् उदासीन भाव से अपना धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहा है। भोग और योग के इस तारतम्यमय जीवन को देखकर बहुतो को आश्चर्य हो सकता है, किन्तु जब हम अपने प्रथमानुयोग के किसी आदर्श सेठ की कथा को देखते हैं, तो सर सेठजी के जीवन का यह परिवतन भी कोई आश्चर्य का विषय नही रह जाता। अब, आज हम कह सकते है कि सचमुच ही सर सेठ साहब का जीवन धन्य है।

सेठ साहब की साफदिली

महात्मा भगवानदीनजी

सेठ हुकमचंदजी से हमारी सबसे पहली पहचान दिल्ली मे हुई। जब वो किसी सभा मे शामिल थे जिसके सभापति डिप्टीचम्पतराय थे उस सभा मे उन्होंने कुछ ऐसी बात कह दी थी जिसपर डिप्टी साहब बिगड उठे पर सेठजी जवाब मे बिगडने की जगह मुस्करा दिये और झट माफी माग ली इस माफी मांगने का असर औरो पर क्या पडा इससे हमे सरोकार नही। हमारे दिल पर यह असर पडा कि सेठ साहब दिल के बहुत साफ है और इस दिलकी सफाई के लिये तो बडे बडे साधु तरसते है। सचमुच दिल की सफाई साधुता है। इसी को कुछ ऋषियो ने मन्दकषाय नाम से पुकारा है। इस लिहाज से सेठ साहब को अगर मदकषायी कहा जाय, तो यह कुछ बढ कर कहना नही होगा। मंदकषाय कुछ ऐसा गुण है जो हमारे ख्याल से हर बच्चा मां के पेट से लेकर आता है पर माता-पिता, रिश्तेदार और दुनिया के दूसरे आदमी अपने फायदे के लिये बच्चे की इस मदकषाय को तीव्रकषाय मे बदल देते हैं और सेठ साहब के साथ भी बचपन म इस तरह का व्यवहार जरूर हुआ होगा और इसी वास्ते तो यह सेठजी के लिये तारीफ की बात है कि वो अपने इस गुण को इस वक्त ज्यो का त्यो बनाये रख सके जब कि इसको बिगाडने की हर तरह कोशिश हो रही थी।

बस दिल्ली के सेठ साहब के उस परिचय पर हम अपने मन मे यह कहने लगे थे कि काश हम भी सेठ साहब जैसे दिल के साफ होते। इस बात का हमारे मन पर गहरा असर पडा था, तभी हमको यह बात याद है। मामूली बातें याद नही रहा करती। हो सकता है सेठ साहब को भी यह बात याद न हो। उनके लिये साफदिली स्वभाव बन जाने की वजह से याद रखने की चीज नही।

ऋषभ ब्रह्मचर्य आश्रम यानि गुरुकुल हस्तिनापुर को खुले अभी कुछ महीने ही हुये थे कि सेठ पडित दरियावसिह को साथ लिये हस्तिनापुर आ धमके। वहा भी दो बडी मार्के की बाते हुई।

एक यह कि जिस वक्त आश्रम के ब्रह्मचारी खाना खा रहे थे, उस वक्त सेठ साहब रसोईघर के पास खुद आ खडे हुये और यह देखकर कि ब्रह्मचारियो को न दाल मे घी दिया गया और न रोटिया ही घी-चुपडी दी गई, बिगड खडे हुये और हमसे बोले कि हम लोग आश्रम को इतना रुपया देते है, फिर क्या वजह कि इनको रूखा खाना खिलाया जा रहा है। हमने शब्दो मे जबाब न देकर एक कटोरी मे रसोइये से थोडी सी दाल ली और सेठ साहब को दिखाई। उसका एक एक दाना घी से भरा हुआ था। उस दिन, सेठजी के दिखाने के लिये, यू ही तीन सेर दाल तीन सेर घी मे बनाई गई थी और यह रसोइये की कारीगरी ही थी कि उसने यह सब घी दाल को पिला दिया था। सेठ साहब यह देखकर बडे खुश हुये और अपने बिगडने को ऐसा भूल गये, मानो कभी बिगडे ही न थे और यह साफदिली का दूसरा सबूत मिला।

हम इस साफदिली पर यूं ही लट्टू नही हैं। जरा हमारे पढने वाले सोचे कि अगर कोई सेठ यानि

भैयासाहब राजकुमारसिंहजी एम.ए.एल.एल.बी

समाज का बडा आदमी इस तरह की बात देखकर बिना कुछ कहे चुपचाप चला जाता और फिर समाज के लोगों के सामने इसी बात को थोडा नमक मिर्च लगाकर रखता, तो उसने समाज को कितना नुकसान पहुँचाया होता और कितना धक्का नई उठती हुई संस्था को दिया होता और कितना बदनाम हमें किया होता और इससे भी ज्यादा सोचने की बात यह है कि उसने जो कुछ किया होता या जो कुछ कहा होता वो न बुरी नियत से किया होता और न झूट बोला होता। यह सेठ साहब की साफदिली ही थी, जिसने सेठ साहब को मजबूर किया कि वो अपनी आंखों पर ही भरोसा करके न रह जाये। भीतर बैठी हुई बुद्धि की भी सलाह ले और आत्मा तक भी पहुँचे मंदकषाय वाले ही अपने आप को इन्द्रियों पर नहीं छोडा करते। समझदारी से काम लिया करते हैं और फिर उनका आत्मा उनकी ठीक ठीक मदद किया ही करता है।

इस दाल वाली घटना के दिन ही एक और मार्के की बात हो गई और वह इस तरह है:—

उन दिनों हस्तिनापुर गुरुकुल इतना छोटा था कि उसके सब ब्रह्मचारी अध्यापक, लाला गेन्दनलालजी और हम, सेठ साहब और उनके साथी पंडित दरियावसिंह सब एक कोठरी में आसानी से आ जमे। वो कोठरी बारह फुट गुणित बारह फुट के करीब रही होगी। बस अब पंडित दरियावसिंहजी की तरफ से ब्रह्मचारियों पर तरह तरह के सवालों की बौछार होने लगी और ब्रह्मचारी भी फटाफट उन सवालों के जबाब देने लगे। वो सबके सब सवाल और जबाब कहीं लिखे होते तो आज हम उनको प्रश्नोत्तरी के नाम से जरूर छपवा देते और वो सचमुच समाज के लिये बडे काम के होते। हां, तो इन सवालों में से एक सवाल यह था कि एक इन्द्रीजीव के कौन सी इन्द्रिय होती है। ब्रह्मचारियों ने जवाब दिया स्पर्शन इन्द्रिय फौरन ही पंडितजी की तरफ से दूसरा प्रश्न उठा 'क्यों?'। ब्रह्मचारियों में से एक ब्रह्मचारी ने इस तरह उत्तर देना शुरू किया :—

(१) इन्द्रियां पांच हैं—सुनने की, देखने की, सूंघने की चाखने की और छूने की।

(२) सुनने की इन्द्रिय बहुत ज़बरदस्त है। उस पर काबू करना बहुत मुश्किल है। अगर हम किसी बात को न सुनना चाहें तो दोनों कानों में दो उंगली ठूंस कर भी सुनने से मुश्किल से ही बच सकते हैं।

(३) आंख कान से जल्दी काबू में आती है। फिर भी उसको काबू में करने के लिये पपोटे और पलक-नाम के दो अलग अंगों की मदद लेनी पडती है। तब आंख को देखने से रोका जाता है और पूरी सफलता मिल जाती है।

(४) गन्ध से बचने के लिये सांस रोकने से ही काम चल जाता है। किसी और अंग की मदद की जरूरत नहीं होती।

(५) चाखने की इन्द्रिय जीभ तो इतनी कमजोर है कि जब कोई चीज़ उस पर रख दी जाय, तब भी वह उसका स्वाद नहीं जान सकती। जीभ के किसी खास हिस्से पर रखने और घुलने पर ही जीभ उसका स्वाद बता सकती है।

(६) स्पर्श का तो यह हाल है कि पीठ के किसी हिस्से पर अगर सुई चुभा दी जाय, तो जिसके चुभाई गई है, वह उसकी ठीक जगह भी नहीं बता सकता।

बस, इसी वजह से कमजोर इन्द्रियां कमजोर आत्माओं को मिलती हैं और जोरदार जोरदारों को।

यह जवाब सुनकर पंडित दरियावसिंह बोल उठे कि यह सब तुमने किस ग्रन्थ में पढा। ब्रह्मचारी इस सवाल का जबाब कुछ दे कि मैं बोल उठा कि यह सवाल ब्रह्मचारियों से पूछने का नहीं। यह मुझसे पूछिये और अगर आप मुझसे पूछते हैं, तो मेरा जबाब है कि यह सब आदमी की अक्ल के ग्रन्थ में लिखा है। यह जवाब सुनकर पंडित दरियावसिंह बिगड खडे हुये और कह बैठे कि क्या आप ब्रह्मचारियों को धर्म विरुद्ध बातें सिखाते

हैं। मैं कुछ जवाब दूं कि सेठ साहब बोल उठे कि इसमे धर्म विरुद्ध सिखाने की क्या बात है ? यह तो उसी बात को सिद्ध किया जाता है, जो आर्ष ग्रन्थ में लिखा हुआ है। सेठ साहब के इस समझदारी से भरे जबाब का हमारे ऊपर बहुत गहरा असर पडा। पर, उसी दिन से पण्डितो की तरफ से और समाज की तरफ से हमारे मन मे खटक पैदा हो गई। हम सोचने लगे कि हमे इस तरह के पंडितो और इस तरह के समाज से काम पडेगा। देखे, समाज की गाडी अब किस तरह आगे चलती है ?

साफदिली आत्मा की सफाई मे मदद देती है और आत्मा की सफाई समझदारी के रूप मे बाहर आती है। साफदिली का सचाई से भी बहुत पास का नाता है। इसीलिये तो हम सेठ साहब की साफदिली को शब्दो मे रख रहे है।

ऊपर की घटना के बाद सेठ साहब से फिर हमारा मिलना उन्हीं के शहर इंदौर मे हुआ। उन दिनो हम अपने गुरुकुल के ब्रह्मचारियो के साथ मध्य हिंदुस्तान के दौरे के लिये निकले थे और शायद नीमच छावनी से सीधे इंदौर पहुँचे थे। यह सन् १९१४ की बात है। पहली बडी लडाई शुरू हो चुकी थी। हम ब्रह्मचारियो समेत सेठजी की नशियां की धर्मशाला मे ठहरे थे। रास्ते भर पंडित गोपालदासजी को छोडकर हमने न खुद किसी के घर जाकर खाया था और न किसी ब्रह्मचारी को खाने के लिये भेजा था। लोग हमारी जगह पर ही सामान भेज देते थे और हमारे रसोइये वहीं खाना तैयार कर लेते थे जहा हम ठहरे हुये होते थे। किसी के घर जाकर न खाने का हमने नियम बना लिया था। इस नियम की जड मे कोई दिखावा या शान नहीं थी। न कोई मान-अभिमान की बात थी। यह सब ब्रह्मचारियो को ऐसी चीजो के खाने से बचाने के लिये किया जाता था, जिससे उनकी तन्दुरुस्ती बिगड जाने का डर था। हां, इस काम मे इतनी दूरन्देशी भी थी कि न हर मामूली आदमी को घर पर खिलाने के लिये बुलाने की सूझेगी और न वह अपनी शान दिखाने की खातिर बेमतलब दिक्कत मे पडने की सोचेगा। सेठ हुकमचंद उन दिनो भी काफी बडे सेठ थे और उनके दिल मे यह बात उठी कि वो हम सबको अपने घर पर खाने के लिये बुलाये और उन्होने न्यौता देने का काम अपने पडित दरियावसिह सोधिया के सुपुर्द किया। इन्होने तरह तरह की दलीले देकर हमे न्यौता स्वीकार करने के लिये राजी करना चाहा। हम किसी तरह राजी न हुये। उनके फेल हो जाने पर सेठजी खुद आये। उन्होने हमारे सामने दलीले नही रक्खी। सीधा खरा सवाल पूछा कि आप किस वजह से दूसरे के यहा जाकर खाना पसंद नही करते। हमने सीधी बात का साफदिली से जबाब दिया। जिसके जबाब मे वे बोले कि आप जो हिदायत कर देगे, वही खाना बनेगा और जैसा आप चाहेगे वैसा ही इन्तजाम कर दिया जायेगा। हमारे पास इन्कार करने के लिये अब कोई वजह न थी। इसलिये हमने यह कहकर न्यौता मंजूर करने से कुछ इस तरह इंकार किया, जिसमे पूरी इन्कारी नही कहा जा सकता था। कहा ये कि अगर हम आपकी खातिर ये नियम तोडते हैं, तो हम दूसरो को किस मुंह से इन्कार कर सकेंगे ? जिसके जबाब मे सेठजी ने यह कहा कि हां, अगर दूसरे भी मेरी तरह से इंतजाम कर सके, तो हमे उनको भी इंकार नहीं करना चाहिये। अत मे हमारे यह कहने पर कि हमे सोचने के लिये थोडा मौका दीजिये, सेठ साहब चले गये। एक तरह से उनको हमारी आधी रजामदी मिल ही गई। अभी कुछ मिनट भी न बीते होगे कि पण्डित दरयावसिह आ धमके और लगे हमे समझाने कि सेठ आपको दस हजार रुपये की रकम देने की बात सोच रहा है। अगर आपने उसके यहा खाना खाने से इन्कार कर दिया, तो वह आपको एक पैसा भी न देगा। हम उन दिनो जवान थे और त्यागी तो थे ही। जवानी के जोश और त्याग के घमण्ड मे हम आगबबूला बन गये और हम पूरी जानकारी हासिल किये बिना कि ये शब्द सेठजी के भेजे हुये हैं या पण्डितजी की अपनी सूझ है, हम उबल पडे कि क्या सेठ दस हजार मे हमारे नियम मोल लेना

चाहता है। रखे अपने दस हजार। हम तो उसके यहां जाकर खाने की सोच रहे थे। पर, अब वैसा न होगा। हमारे ये शब्द सेठ साहब के कानों तक पहुँचने ही थे और पहुँच गये। रात को सेठजी के मकान के सामने ही हमारी सभा का इन्तजाम किया गया था। हम तो चुटीले शेर थे ही। जैसे ही बोलने को खड़े हुये, नासीधे ढंग से उसी बात पर सारा व्याख्यान दे गये। पर, हम यह दावे के साथ कहते है कि हमारे उस व्यंग को सिवाय सेठ साहब के कोई और समझ नही पाया। सबसे पीछे सेठ साहब भी बोले और उन्होने भी हमारी सारी बातो का जवाब इस ढंग से दिया कि हमारे सिवाय उसका ठीक ठीक मतलब कोई और समझ न पाया। हमारी तसल्ली हो गई और हमने उसी समय सबके सामने सेठजी का न्यौता स्वीकार कर लिया। पर उस दिन के बाद से हमने दूसरों के यहां जाकर न खाने का नियम काफी ढीला कर दिया। इसका असर सेठ साहब की खातिरदारी पर क्या पड़ा होगा, यह पढने वालो का काम है, वे खुद समझ लें।

यह घटना भी दिल की सफाई के बगैर अगर घटती, तो न जाने कितना बुरा रूप ले लेती।

औद्योगिक जगत में उनका महत्व

श्री युधिष्ठिरजी भार्गव, एम. एस. सी.

(उद्योग-व्यापार-रसद सचिव-मध्यभारत)

इन्दौर के प्रसिद्ध व्यवसायी तथा उद्योगपति सेठ हुकमचंद का नाम वर्तमान भारत विशेषत: मध्य-भारत की व्यापारिक तथा औद्योगिक प्रगति के साथ सम्बद्ध है। जनसाधारण सेठ साहब को धन कुबेर के रूप मे जानते है। यह भी प्रसिद्ध है कि लक्ष्मी का उन पर वरद हस्त रहा है और उन्होने यदि अपने जीवन मे मिट्टी को भी हाथ लगाया है, तो वह सोना होगया। उन्होंने करोडो रुपया कमाया, खुले हाथो करोडो का खर्च किया। अपने समाज, अपने प्रदेश और जन साधारण की उन्होने सेवा की।

सेठ साहब ने जाति और वंश की पर्याप्त सेवा की और इस अर्थ मे अपना जीवन सार्थक किया। परन्तु उनके जीवन पर दृष्टिपात करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि उन्हे केवल एक धनकुबेर कहना अथवा जैन जाति का उज्ज्वल रत्न मानकर चलना अथवा इन्दौर नगर का केवल एक प्रमुख व्यवसायी मानना उनके प्रति एक अन्याय होगा। सेठ हुकमचंद का पूर्ण महत्व समझने के लिये हमे अपने आप को उस काल और उस परिस्थिति मे ले चलना होगा, जब कि भारतवर्ष मे औद्योगीकरण का सूत्रपात हो रहा था और जब कि पूंजीपति इस क्षेत्र मे पदार्पण करने म काफी हिचकिचाते थे। उस समय देश मे विदेशी सत्ता राज्य कर रही थी, जिसका काम यह था कि भारत के उद्योगधन्धे पनप न पावे, जिससे विदेश के कार-खानो को भारत मे खुला बाजार मिलता रहे।

सेठ हुकमचंद ने भाग्यलक्ष्मी की अनुकम्पा से और अपनी तीखी बुद्धि के सफल प्रयोग से एक विशाल धनराशि एकत्रित की। प्रारम्भ मे चाहे यह राशि अफीम के बाजार को सफलतापूर्वक समझने अथवा सट्टो के सौदे से एकत्रित हुई हो; परन्तु बाद मे उसका उपयोग देश की प्रगति के लिये हुआ। सन १६०६ मे सेठ साहब के प्रयत्न से मालवा मिल की स्थपना हुई और उसमे १५ लाख पूंजी लगाई गई। इस प्रयत्न ने सेठ साहब को धन भी दिया और अनुभव भी। इस कारखाने के स्थाई डायरेक्टर के रूप मे रहकर आपने जो अनुभव प्राप्त किया था, उसका यह फल था कि सन १६१३ मे सेठ साहब स्वयं मैनेजिंग एजेंट बन सके, और हुमकचंद मिल्स की स्थापना १५ लाख की पूंजी लगाकर कर सके। वह दो कारखाने जल्दी ही अपने

साथी भी ले आये। सन १९१९ मे हुकमचंद मिल्स के मुनाफे से एक और मिल खोली गई और १९२२ मे २० लाख की पूंजी लगाकर राजकुमार मिल्स का प्रारम्भ हुआ। अब तक सेठ साहब का कार्यक्षेत्र अधिकतर इंदौर तक ही सीमित था। परन्तु १९२८ मे तत्कालीन ग्वालियर राज्य के प्रोत्साहन के कारण उज्जैन मे हीरा मिल्स की स्थापना हुई। इसी बीच कलकत्ते मे जूट व्यवसायमे पर्याप्त प्रगति का क्षेत्र देखकर सेठ हुकमचंद की तीक्ष्ण व्यवसाई बुद्धि ने यह निश्चय किया कि एक जूट मिल्स मे बहुत बडी पूजी लगाना लाभदायक होगा। १९१९ मे ८० लाख रुपये की पूजी से कलकत्ता मे एक जूट मिल तथा अगले ही साल कलकत्ते म एक स्टील को कारखाने का भी कार्य प्रारम्भ कर दिया गया।

इस सिंहावलोकन का तात्पर्य यह नही है कि सेठजी द्वारा स्थापित औद्योगिक कारखानो की अच्छी सूची बना दी जाय। निष्कर्ष यह निकलता है कि सेठ हुकमचन्दजी चाहते, तो वे रूई के व्यवसाय या सट्टे से उपार्जित रुपया व्याज-बट्टे मे फैला कर तथा साहूकारी के पुश्तैनी धन्धे को चला कर अपनी शेष आयु बडे आराम मे बिता सकते थे। परन्तु उन्होने ऐसा न करके उस औद्योगिक क्षेत्र मे कदम रखा, जिसमे न तो सफलता ही निश्चित थी और न यह ही इत्मीनान था कि विदेशी प्रतिस्पर्धा मे यह व्यवसाय बन्द नही करना पड जायगा। काम सीखे हुए भारतीयो की कमी थी और यह बिलकुल अनिश्चित था कि जो विदेशी टेकनीशियन रखे जायेंगे, वह किस हद तक ईमानदार और भारतीय व्यवसाय को स्थाई उन्नति पहुँचाने के उद्देश्य से काम करेंगे। ऐसे समय मे सेठ हुकमचन्द ने आराम से मिलने वाली आमदनी को छोड कर औद्योगिक क्षेत्र मे रुपया लगाने का जो साहस किया, वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। उनकी जिस व्यवसायबुद्धि ने व्यापार के क्षेत्र मे सफलता प्राप्त की थी, वही औद्योगिक क्षेत्र मे भी उतनी ही सफल रही। किसी नये औद्योगिक क्षेत्र मे प्रयोग करने मे उन्होने हमेशा एक व्यापारिक दृष्टिकोण को अपनाया। हाल ही मे लगभग छः लाख रुपये लगा कर रेजर ब्लेड बनाने की फेक्टरी जो उन्होने उज्जैन मे खोली है, वह औद्योगिक साहस और दूरदर्शिता का नमूना कहा जा सकता है। मालवे की और विशेषतः इन्दौर की जो आर्थिक समृद्धि गत चालीस वर्ष मे हुई, उसका अधिकाश श्रेय सेठ साहब द्वारा स्थापित उद्योगो को देना चाहिये, क्योकि न केवल उन उद्योगो ने कई हजार व्यक्तियो को रोजी दी, परन्तु अनेक छोटे बडे पूंजीपतियो को उद्योगधन्धो की ओर आकर्षित किया और यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय प्रयत्न और सचालन मे बडे-बडे कारखाने सफलतापूर्वक चल सकते है।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह सेठ हुकमचन्द के वशजो और सम्बन्धियो को शक्ति दे कि वे उन औद्योगिक कारखानो को जनहित के लिये चलाने मे समर्थ हो, जो कि यशस्वी सेठ साहब ने स्थापित किये है और उनकी धन और जनशक्ति का उपयोग देश की समृद्धि बढाने वाले रचनात्मक कार्यों मे हो।

—श्रवणबेलगोला (मैसोर) के जैनमठ के भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी पण्डिताचार्यवर्य स्वामीजी लिखते है कि श्री १००८ भगवान् बाहुबली स्वामी सर सेठ साहब को दीर्घायु, आरोग्य, ऐश्वर्य आदि सकल सन्मगल परंपरा को प्रदान करे।

—शोलापुर से पं० वंशीधरजी शास्त्री लिखते है कि सर सेठ हुकचन्दजी क सत्कृत्यो को जैन और अजैन जनता बडे आदर के साथ देख व मान रही है। बहुत दिनो से मै देखता हू कि सेठ साहिब की अध्यक्षता मे शास्त्र चर्चा अखंड चलती रहती है। आपकी धर्मात्माओ मे अत्यधिक प्रीत है। आपका लोकचातुर्य और सौजन्य अनुकरणीय हैं। आपने दान और भोगो मे अपनी संपत्ति को ठीक विनियुक्त किया है। आज तो आपके सामने एक धर्म ही आराध्य हो रहा है। दुर्लभ नर-रत्नो मे से आप है। आप समय को ठीक समझते है। आपको सदा ही कीर्ति वरमाला पहराती रहती है। आप और भी सौ वर्ष जियें।

—लाला रघुवीरसिंहजी मन्त्री श्री भारतवर्षीय अनाथ जैन रक्षा सोसाइटी दिल्ली लिखते हैं कि ऐसे महान नर-रत्न का जितना भी सम्मान किया जाय, थोडा है। सर सेठ साहब चिरजीवी हो।

—श्री जैन बाला विश्राम धर्मकुंज आरा की संचालिका, शिक्षिकाये एव छात्राये लिखती है कि हम सेठजी की दीर्घायु की कामना करती हुई हार्दिक अभिनन्दन करती है।

—अखिल भारतीय दिगम्बर जैन पद्मावती पुरवार महासभा के रायसाहब नेमीचन्द्र जैन जलेसर-एटा लिखते हैं कि मैं भी अ० भा० दि० जैन पद्मावती पुरवाल महासभा की ओर से श्री सेठ साहब की अपूर्व सेवाओ के लिये सादर श्रद्धाजलियां समर्पित करता हूं और प्रभु से उनके दीर्घजीवन की कामना करता हूँ, ताकि जैन समाज उनसे और भी लाभ उठा सके।

—श्री सिद्धवरकूट प्रबन्ध कमेटी की ओर से उसके पदाधिकारी और सदस्य लिखते हैं कि वि० स० १६३५ मे इन्दौर के भट्टारक महेन्द्रकीर्ति को हुए स्वप्न के अनुसार १६४० मे बडे मन्दिरजी के जीर्णोद्धार का कार्य सेठ भूरजी इन्द्रमल मोदी मल्हारगंज इन्दौर की ओर से आरम्भ हुआ और बिम्ब प्रतिष्ठा होकर क्षेत्र ख्याति मे आया। सेठ साहब ने भी हजारो रुपयो की लागत से विशाल मन्दिर और धर्मशाला बनवाई। प्रारम्भ मे जितनी भी उलझने आईं, उन सबको सेठ साहब ने सुलझा दिया। सन् १६३८ मे बडवाहा मे क्षेत्र कमेटी का पहला चुनाव हुआ और सेठ साहब ही सभापति चुने गये। तब से आपही सभापति हैं। आपकी ही निगरानी मे क्षेत्र की सारी व्यवस्था, क्षेत्र का सारा हिसाब और कमेटी की वार्षिक बैठक आदि होती हैं। गत १३ वर्षों मे एक लाख पन्द्रह हजार आय और करीब इतना ही खर्च हुआ। ध्रुव फण्ड मे भी बारह हजार रुपया जमा हो चुका है। कमेटी के समस्त सदस्यो और सम्बन्धित व्यक्तियो की यही कामना है कि हमारे तीर्थ-भक्तशिरोमणि दीर्घायु हो।

—दिल्ली के पं० महबूबसिंहजी लिखते है कि ऐसा कौन सज्जन होगा, जो सेठ साहब के उपकारो से उपकृत न हो। समाज मे आप जैसे प्रमुख पुरुष होने दुर्लभ है।

—दिल्ली से लाला सिद्धोमलजी कागजी लिखते है कि सेठ साहब जैन समाज के सच्चे हितैषी है। आपकी समाज और धर्म की सेवा अनुकरणीय है। जैन समाज आपके नेतृत्व मे दिन प्रतिदिन उन्नति करता रहे।

—हाथरस से श्री मिश्रीलालजी सोगानी लिखते है कि सेठ साहब समाज के महान प्रभावशाली नेता और अनभिषिक्त राजा हैं। आप द्वारा धर्म की महती प्रभावना और समाज का महान् उपकार हुआ है। वृद्धावस्था मे उदासीन वृत्ति धारण करके भी आप धर्म और समाज के सरक्षण के लिये पूरे उत्साह के साथ उद्यत रहते है।

—शोलापुर से "जैन बोधक" के संपादक पं० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री विद्यावाचस्पति लिखते हैं कि सर सेठ साहब समाज के अनभिषिक्त सम्राट, धर्म के यथार्थ आधारस्तम्भ, तीर्थों के यथार्थभक्त और समाज के गौरव स्वरूप हैं। उनके द्वारा जैन धर्म की यथार्थ प्रभावना हुई है। समाज मे जब कभी धर्म संकट से चिंता उत्पन्न हुई, तो उसी समय सर सेठ साहब के प्रति सबकी दृष्टि जाती। सर सेठ साहब ने हर संभव प्रयत्न एवं अपने प्रभाव से उन धर्मसंकटो को दूर किया है। वे दीर्घजीवी हो। उनकी धवल कीर्ति दिगन्त व्यापी हो।

—गिरिडिह से सेठ रामचंद्र जी सेठी लिखते है कि सेठ साहब समाज के दृढ स्तम्भ हैं। उनके कार्य और विचार गति शील होने के साथ साथ शास्त्र और आचार से विशुद्ध है। उन्होने मानवता की परिभाषा को ठीक रूप मे समझा है। इसीलिये वे जन कल्याण के लिये सदैव तत्पर रहे हैं। तीर्थ, शिक्षा तथा निवृत्तिमार्ग के वे प्रबल प्रेरक रहे है। तन, मन, धन से उन्होने जो समाज को जागृत तथा उन्नतशील बनाने का प्रयत्न किया है, वह अनिर्वचनीय है। जैन समाज आपकी सेवाओ का सदैव ऋणी रहेगा।

—उज्जैन से जैनजातिभूषण सेठ कल्याणमलजी लिखते हैं कि सेठ साहब इस युग मे जैन समाज की अद्वितीय विभूति हैं। जैन समाज के लिये जो सेवाये मे आपने की हैं, वह अकथनीय एव अनुकरणीय हैं। मुझे कई बार सामाजिक व तीर्थों के कार्यों में आपके संसर्ग मे रहने का सौभाग्य मिला है। समाज व धर्म की सेवा की जो लगन आप मे मुझे देखने को मिली, वह कही भी नहीं देखी गई।

—अजमेर से श्री सुजानमल सोनी लिखते है कि सेठ साहब समाज के अनभिषिक्त हृदय-सम्राट है। चिरकाल तक हमारे बीच मे रहकर समाज की सेवा करते हुये आत्मिक धर्म मे दृढता प्राप्त करते रहे।

—नातेपूते (शोलापुर) से श्री रामचंद्र धनजी लिखते है कि यह परम आश्चर्य की बात है कि सेठ साहब मे अविरोध रूप मे रहने वाली सरस्वती और लक्ष्मी दोनो का वास है। आपने अपनी सपत्ति का सप्तक्षेत्रो मे विनियोग करके उसे सफल बनाया है।

—इन्दौर से सेठ गुलाबचंद जी टोंग्या लिखते हैं कि मैं भी श्रीमन्त सेठ हुकमचन्दजी साहब की गोद में खेला हुआ एक बालक हू। जितने नजदीक से मैंने उन्हें समझा, परखा और निरखा, उससे मेरी अल्प बुद्धि से यही कह सकता हूं कि,—

हर व्यक्ति उनसे खुश रह सकता है।

हर वर्ग के व्यक्ति से वे किसी भी प्रकार समय निकालकर मिल ही लेते हैं।

किसी को कभी भी असमजस मे नही डालते हैं।

आज का कार्य कल पर छोडना उन्होने नहीं सीखा है। उन्होंने अपनी कुशल वाणिज्यव्यवसायबुद्धि से करोडो रुपये उपार्जित कर सिर्फ धन बटोरकर रखना कभी नहीं सीखा। वे तो:—

"जब जल बाढे नाव में, घर मे बाढे दाम।
चारों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।"

की कहावत को चरितार्थ करते रहे है। उनकी प्रख्याति मे चाद लगाने वाला उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व है।

—बडनगर से श्री फूलचंदजी अजमेरा लिखते हैं कि श्रीमत सर सेठ साहब जैन समाज के तो सर्वस्व हैं ही, वे भारत की भी महान विभूति है। दिगम्बर जैन मालवा प्रांतिक सभा के महामन्त्री के नाते मुझे उनके संग मे रह कर काम करना ही होता है, किन्तु अविकल रूप से भी मुझ पर उनकी अपार कृपा है। मुझ मे समाज सेवा की जो भावना जागृत हुई है, वह उनकी ही देन है। मै उनके सरल स्वभाव, धर्मनिष्ठा, स्पष्टवादिता आदि गुणो पर सदैव नत मस्तक हूं। जैन समाज का यह वयोवृद्ध हृदयसम्राट युग युग चिरजीवी हो।

—जयपुर से सेठ गोपीचन्दजी ठोलिया लिखते हैं कि रावराजा सर हुकमचन्दजी साहब ने दिगम्बर जैन समाज की बहुत बडी सेवा की है। दिगम्बर जैन समाज के तीर्थक्षेत्रो की रक्षा मे भी बडा भारी सहयोग दिया है। इस वृद्धावस्था मे भी वे बराबर धर्मकार्यो मे सचेष्ट अभिरुचि ले रहे हैं। मै चाहता हूं कि सेठ साहब दीर्घ काल तक जीवित रह कर इसी प्रकार जैन समाज की सेवा करते रहे।

—सहारनपुर से महासभा के उपसभापति रायबहादुर लाला हुलाशरायजी लिखते है कि सर साहिब के समाज पर अनगिनत उपकार हैं। उनके प्रति कृतज्ञ होना समाज का कर्तव्य है। उनकी हंसमुख प्रकृति की मेरे हृदय पर अमिट छाप है। उन्होने धार्मिक कार्यों मे सर्वदा प्रमुख रूप से भाग लिया है। ऐसे धर्मधुरंधर महान व्यक्ति चिरकाल तक जीवित रहकर धर्म की उन्नति करते रहे।

—सहारनपुर से रायसाहब लाला प्रद्युम्नकुमारजी लिखते है कि मेरा परिचय सेठ साहब से पूज्य लालाजी के समय से ही चला आ रहा है। दोनो का कितना दृढ धार्मिक स्नेह तथा आदर भाव था, यह समाज से छिपा नही। मुझे बहुधा सर सेठ के सन्निधान मे रहने का सुअवसर मिला है और मैंने उस स्नेह को यथावत रूप से अनुभव किया है। अनेक हर्षविषाद के प्रकरण आते हुए भी कोई कषाय भाव प्रगट नहीं होता। सदैव ही मुखाकृति सौम्य बनी रहती है। अपने निश्चित उद्देश्य पर दृढ बने रहते है। उनकी प्रकृति अलौकिक है। धार्मिक तथा सामाजिक लग्नता इस वृद्ध अवस्था मे भी उन मे उत्साह का संचार कर देती है। सर सेठ साहब वास्तव मे जैन समाज के भूषण है।

—जयपुर से रायसाहिब सेठ घेबरचन्दजी गोधा लिखते हैं कि सर सेठ हुकमचन्दजी समाज के ही नही, किन्तु समस्त भारत के अनमोल रत्न है। आप मे सबसे बडा गुण लक्ष्मी के साथ विवेक का होना है। लक्ष्मी की शोभा विवेक से ही है। आपने अपना शेष जीवन सांसारिक विषयो से हटाकर प्रायः धर्म-साधना मे ही लगा दिया हैं। ऐसे लोकोत्तर महापुरुष ही संसार मे शुभमार्ग के दिखलाने के लिये अनुकरणीय और आदर्श होते है।

—राची से सेठ चांदमलजी पांड्या लिखते है कि इन दो-तीन शताब्दियों मे आपके समान धर्मप्रेमी, साधर्मी, वात्सल्यधारी, समाज हितैषी और जैन धर्म का दृढ श्रद्धानी दूसरा नही हुआ और न सन्निकट भविष्य मे होने की आशा है।

—श्रीमंत सेठ ऋषभकुमारजी बी०ए० सभापति भारतवर्षीय दिगबर जैन परवार सभा खुरई लिखते है कि रावराजा श्रीमन्त सेठ दानवीर सर हुकमचन्दजी का नाम जैन समाज के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे बडे गौरव के साथ अंकित किया जायगा। सेठ साहब मर्यादाशील, धर्मनिष्ठ, निर्व्यसनी, विद्याप्रेमी, देवगुरुशास्त्र के अनन्यभक्त तीर्थरक्षक, समाजसेवी, परदुःखकातर व्यक्ति है। इन गुणो का उनमे पूरा-पूरा सद्भाव पाया जाता है। वे अपव्यय और अतिरेक मे दूर रहने वाले जिन भक्त, स्वाध्याय प्रेमी, समुचित उदार, मनस्वी पुरुष है।

—खंडेलवाल दिगंबर जैन पंचायत कलकत्ता के मत्री सेठ लक्ष्मीनारायणजी छावडा लिखते है कि सेठ साहब सरीखे प्रभावशाली महापुरुष तथा रक्षक नेता का होना जैन समाज अपने लिये गौरवपूर्ण समझता है। समस्त जैन समाज को आपका अनुकरण करना चाहिये।

—कोडरमा (बिहार) से सेठ जगन्नाथजी पांडया लिखते है कि मुझे अपने जीवन मे भक्त सेठ साहब के संपर्क मे आने का अवसर मिला। मैंने उनके व्यक्तित्व और सरल, सरस एव निश्चल व्यवहार से बहुत कुछ सीखा है। मै चाहता हूं कि वे हमारे बीच मे रहकर इसी प्रकार समाज की शोभा बढाते रहे।

—पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर से लिखते है कि सेठ साहब वह पुरुष हैं,जिनके हृदय मे समाज के प्रति दर्द है। कही किसी सधर्मी व्यक्ति पर संकट उपस्थित हुआ नहीं कि आप उसके संरक्षण मे सदा प्रस्तुत रहे है। धर्म, धर्मायतन और धर्म के धारक सभी के प्रति आपके हृदय मे अगाध श्रद्धा और अप्रतिम वात्सल्य है। वात्सल्य ही तो सम्यग्दर्शन का परिचायक है।

—पलाशवाडी से सेठ अमरचन्दजी लिखते हैं कि सेठ साहब की अनन्य तीर्थभक्ति,धर्मनिष्ठा और समाज सेवा के लिये हम कृतज्ञ हैं। सर सेठ साहब चिरायु हो, यही मेरी सद्भावना है।

—श्री दिगम्बर जैन मालवा प्रान्तिक सभा की ओर से महामन्त्री श्री फूलचन्दजी अजमेरा लिखते है कि श्री मालवा प्रान्तिक दिगम्बर जैन सभा भी अपना सुवर्ण जयन्ती उत्सव मनाती हुई श्रीमन्त सर सेठ साहब का अभिनन्दन करती है।

—जम्बू स्वामी की निर्वाण भूमि चौरासी मथुरा मे विक्रमी सम्वत् १६५७ मे अ० भा० व० दि० जैन महासभा के तृतीय अधिवेशन के अवसर पर चार प्रांतिक सभाओ की स्थापना हुई थी। उनमे मालवा प्रांतिक सभा भी एक थी। श्रीमन्त सर सेठ साहब और नीमचनिवासी स्वर्गीय लाला दौलतरामजी डिप्टी कलक्टर झालावाड उसके सभापति और उपसभापति निर्वाचित हुये थे। प्रारम्भ से ही श्रीमन्त सेठ साहब इस सभा के स्थायी सभापति पद पर रहकर सभा की और इसके अन्तर्गत सचालित विभागो के सुचारु-संचालन एवं संवर्द्धन मे सलग्न है। कुछ समय बाद द्रव्याभाव से सभा का कार्य शिथिल सा होता हुआ देखकर सर सेठ साहब ने वीर सम्वत् २४३६ मे इन्दौर मे एक कमेटी बुलाई। सभा का आफिस बडनगर मे स्थापित कराकर महामत्री जैन जाति भूषण भगवानदासजी साहब को निर्वाचित किया तथा कार्य चलाने के लिये सेठ साहब ने स्वय २५००) उपदेशक विभाग के लिये तथा ११००) प्रबन्ध विभाग के लिये प्रदान कर सभा की नीव जमाई। इस सभा का औषधालय वीर सम्वत् २४४० और अनाथालय २४४६ मे स्थापित हुआ था। तब से आज तक दोनो सस्थाएं बडनगर मे चल रही है। औषधालय से अब तक इतने वर्षों मे दैनिक संख्या क्रम अनुसार लगभग ३० लाख स्थानीय रोगियो ने लाभ लिया है। भारत भर मे २००० शाखाएं काम कर रही है, जिनसे लाखो रोगी लाभ उठा रहे है।

यहां सर्व औषधिया बिना मूल्य वितरण की जाती है। अनाथालय से समाज के करीब ४४० छात्रो ने लाभ उठाया है। सर सेठ साहब स्थाई सभापति होने के साथ ही कोषाध्यक्ष भी है। वर्तमान मे सभा का ध्रुव फण्ड व जायदाद आदि ७२०००) के लगभग है। वार्षिक व्यय १५०००) के लगभग होता है। सन् १६१६ से ग्वालियर सरकार ने ३०) मासिक ग्राट औषधालय को हमेशा के लिये नियुक्त फरमाई है और एक हजार नगद और सनद भी प्रदान की हैं। सभा के स्थापनकाल से आज तक सम्पूर्ण कार्यो मे श्रीमन्त का तन,मन और धन से पूर्ण सहयोग रहा है, जिसके लिये यह सभा अत्यन्त आभारी है और इस मगलमय अवसर पर अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए श्रीमन्त सर सेठ साहब के स्वास्थ्य एवं चिरायु की १००८ जिनेन्द्र भगवान से कामना करती है।

—प० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ लिखते है कि सेठ साहब जैन समाज की महान निधि एव गौरव हैं। उनका यश अप्रतिद्वन्द्वी है। जैनो के धार्मिक और सामाजिक इतिहास मे उनकी सेवायें सदा ही अमर रहेगी। वे सचमुच अजात शत्रु है। उन्होने ऐसा कोई काम कभी नही करना चाहा, जो किसी को सह्य न हो। जैन धर्म पर आपकी आस्था प्रशसनीय है। कोई ऐसा धार्मिक क्षेत्र नही है, जहा आपकी सेवाएं किसी न किसी रूप मे न पहुँची हो। आपकी दान की राशि इतनी विशाल है कि जैन समाज का कोई धनिक उसकी तुलना मे खडा नही हो सकता। आपके विचार उदार और दृष्टिकोण आग्रहहीन है। जैन समाज आपके आदर मे जो कुछ करे, वह थोडा है। मै भगवान महावीर से आपके शतजीवी होने की प्रार्थना करता हूँ।

—जैनमित्र के सम्पादक श्री मूलचन्द किशनदास कापडिया सूरत से लिखते है कि सारे जैन समाज मे अनेक पदविभूषित सर सेठ हुकमचन्दजी की सानी का कोई व्यक्ति नही है। आपने अपने ही बाहुबल से करोडो रुपया पैदा किये और उनका उपयोग दान व धर्म व भोग उपभोग मे किया। जैन धर्म और जैन समाज की रात दिन सेवा करने ही के कारण आपको जैन सम्राट कहा गया। धर्म पर संकट आने पर न आप रात देखते है न दिन। उसको दूर करके ही सांस लेते हैं। आजकल आप राजशाही ठाटबाट छोडकर धर्म-ध्यान मे ही तत्पर हैं। फिर भी आपने समाजसेवा और धर्म को नही छोडा। आप शतायु हो और जैन धर्म व जैन समाज की अधिकाधिक सेवा कर सके,-यह श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है।

—कलकत्ता के प्रमुख व्यवसायी बाबू छोटेलालजी लिखते है कि सेठजी सारी जैन समाज की विभूति व आदर की प्रतिमूर्त्ति हैं। इतनी बडी विभूति से सम्पन्न होते हुये भी उनमे निरभिमानता और सरलता अनुपम गुण हैं। मैंने देखा है कि बडी-बडी सभाओ मे साधारण सी बात के लिये भी वे क्षमायाचना करते हुये संकोच नही करते। ये मार्दव और आर्जव गुण उनमे कृत्रिम न होकर स्वभाव से हैं। चरित्र ग्रन्थो में राजाओ के त्यागी बनने के सहस्रो उदाहरण मिलते हैं। ऐतिहासिक काल मे भी मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त और कलिंग चक्रवर्ती श्री खारवेल के अन्तिम जीवन को हम त्यागी के रूप मे पाते है। वर्त्तमान मे सेठजी ने उस आदर्श को पुनः जागृत किया है और आपका जीवन धर्मध्यानाध्ययन मे सलग्न हम देख रहे है। सेठजी चिरकाल तक हमारे बीच आत्मोद्धार के साथ-साथ समाजहित भी करते रहे,—यही मेरी शुभ कामना है ।

—श्र सरुपचन्द हुकमचन्द जैन पारमार्थिक संस्थाओ के ट्रस्टी और प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्य श्री जिनेन्द्र भगवान् से यह प्रार्थना करते है कि सेठ साहब सपरिवार चिरायु हो। हमारी आपको श्रद्धांजलि स्वीकार हो।

—आगरा से रा० सा० मटरूमल बेनाडा उपसभापति महासभा लिखते हैं कि स्वर्गीय पूज्य पिताश्री पदमचन्दजी बैनाडा से सर सेठसाहब से बहुत ही घनिष्ट मित्रभाव था। इसी कारण मुझे सर सेठ साहब के सम्पर्क मे अनेक बहुमूल्य अनुभवो का लाभ हुआ। मैंने अपने स्वर्गीय पूज्य पिताजी की स्मृति मे नेत्र चिकित्सालय को स्थायी और सार्वजनिक विस्तार के साथ स्थापना के हेतु प्रान्तीय सरकार से अपनी योजना स्वीकार कराई और "मथुरादास पदमचन्द जैन नेत्र चिकित्सालय" के शिलान्यास के लिये पिताजी की कामना और भावना के प्रतिनिधि धर्मनिष्ट, उज्वलचरित महापुरुष सेठ साहब से प्रार्थना की और सर सेठ साहब ने बडे प्रेम के साथ हमारा अनुरोध स्वीकार कर लिया। सेठजी के गम्भीर और उदार भावो की छाप मेरे हृदय पर उस समय विशेष रूप से अंकित हुई,जब मुझे ज्ञात हुआ कि सर सेठ साहब का प्रिय पौत्र गम्भीर रुग्णावस्था मे है। फिर भी तार पर तार देकर हमे आश्वासन देते रहे कि कुछ भी हो मै निश्चित कार्यक्रम और वचन के अनुसार आगरा पहुंच कर अपने स्वर्गीय मित्र का स्मारक परम पारिमार्थिक संस्था का शिलान्यास करके अवश्य पुण्यभागी बनूंगा। ग्रीष्म ऋतु मे लम्बी यात्रा का कष्ट उठाकर भी आप मोटर से निश्चित समय पर आगरा पधारे। २२ जून सन् १६४१ को शिलान्यास करते समय आपने विशाल जनसमूह के सामने महामन्त्र का उच्चारण किया तथा यह संस्था प्राणिमात्र की सेवा मे समर्थ हो, ऐसी शुभ कामना की। आपकी सेवा मे बैनाडा परिवार, समस्त दिगम्बर जैन स्कूल (जो अब विशाल कालिज के रूप मे परिणत हो गया है) बडे समारोहपूर्वक मानपत्र समर्पित किये गए। श्रीमन्त सेठ साहब ने मानपत्रो के उत्तर मे गदगद होकर यह उदगार प्रगट किये 'स्व० सेठ पदमचन्दजी साहब मेरे खास मित्रो मे से थे। यह आंख का अस्पताल उनकी परोपकारिता का प्रत्यक्ष नमूना है। उनके सुपुत्र चि० मटरूमलजी ने इसके स्थायित्व की जो दूरदर्शितापूर्ण योजना की है, वह अनेक दृष्टियो से हितकर है। एक सुपुत्र के कर्तव्य के नाते इन्होने अपने पिता की भावना और कीर्ति को अधिक यशस्वी बनाया। इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है।" सर सेठ साहब के वृद्ध तन-मन मे अब भी नवीन भावना और ज्योति जागृत है, जो हमे धार्मिक और सांस्कृतिक विश्वासो के साथ सर्वस्व समर्पण करने और प्राणपण से कटिबद्ध रहने के लिये प्रेरित करती है।

—श्री छगनलालजी मित्तल आनररी मन्त्री मध्यभारत चैम्बर आफ कामर्स इन्दौर लिखते है कि सेठ साहब इसके तभी से अध्यक्ष हैं, जब इन्दौर राज्य के चैम्बर के रूप मे इसकी स्थापना की गई थी। मध्यभारत का निर्माण होने पर जब चैम्बर को भी सारे मध्यभारत का बनाया गया, तब भी आप ही उसके अध्यक्ष हुये। परमेश्वर हमारे कुशल मार्गदर्शक को चिरायु करे।

—इन्दौर के कांग्रेसी नेता और गाधी स्मारक भवन तथा मध्यभारत कस्तूरबा महिला सेवा सदन के उन्नायक श्री कन्हैय्यालालजी खादीवाला लिखते हैं कि मैंने कई वार देखा है कि विकट से विकट और उलझे हुये प्रश्न को भी वे दोनो दलो के गले मे हाथ डालकर इस खूबी से निपटा देते थे कि दोनो ओर के ही लोग खुश हो जाते थे। आज भी सेठ साहब के लिये इन्दौर की हर कौम काफी आदर रखती है और उनको अपने कुटुम्ब का ही बडा मुखिया मानती है।

—भेलसा से श्रीमन्त सेठ लखमीचन्दजी लिखते है कि इनकी मिलनसार और सीधे तथा सरल स्वभाव की आत्मा मुझे जैन जाति मे आप ही दिखाई देते है। मैंने जब भी यहा के धार्मिक कार्यो के बारे मे पूज्य श्रीमन्त सर सेठ साहब से सलाह ली, मुझे हर समय सुपथ की ओर ले जाने वाली सलाह मिली, जिससे मैंने सेवा कार्य मे विजय प्राप्त की। उनसे जिसने भी अपनी मनोभावना प्रगट करके सलाह ली, उसके लिये वह आजन्म आपकी सराहना करता रहा।

—श्री रतनचन्द हीराचन्द एम० ए० जे० पी० प्रमुख उद्योगपति बम्बई से लिखते है —"I wholeheartedly join in the celbrations of Sir Hukam Chand ji. He has rerdered great service to our community and is an ideal example of jain aristocracy May he live long and his family should prosper in all aspets in future."

—श्री ताराचन्दजी रपरिया आगरा से लिखते हैं कि सेठ साहब से मैं पहली बार सन १९३८ मे इन्दौर मे मिला। मैं बडे सकोच से उनके पास गया, किन्तु वहा जाने पर आश्चर्य हुआ कि मेरे एकाएक जाने पर भी और कार्य मे व्यग्र होने पर भी उन्होने यह कहकर मेरा स्वागत किया कि "आओ, ताराचन्दजी आओ" और उठकर मुझे अपने पास बिठा लिया। यह पता ही हमे न दिया कि वह पहिली मुलाकात थी। एक ही साथ मेरे ठहरने की व्यवस्था और स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध मे सब कुछ पूछ गये। उनकी वह आत्मीयता, सरलता और मिलनसारिता मैं जीवनभर भूल नहीं सकता। यदि सभी धनिकों का ऐसा ही व्यवहार हो, तो उनके विरुद्ध जनता को शायद इतनी शिकायत न रहे।

—बम्बई के सुप्रसिद्ध समाजसेवी सेठ भाईचन्दजी रूपचन्दजी दोसी लिखते हैं कि जिस महापुरुष ने महासभा की नींव तैयार की, उसके स्वर्णजयंति उत्सव से अधिक उपयुक्त अवसर उसके सम्मान का दूसरा नहीं हो सकता। सेठ साहब का धैर्य, साहस और दूर दृष्टि उसके लिये स्फूर्ति रही है, जिन्होने उनका अनुकरण करते हुये अपने को धर्म और समाज की सेवा मे लगाया है। उनकी सरलता उनके जीवन की सबसे बडी विशेषता है, पिछले ५० वर्षों मे उनका जीवन जैन समाज के लिये प्रकाशस्तंभ रहा है और महासभा पर तो उनका बहुत बडा ऋण है। आपने अनेको युवकों के जीवन का निर्माण किया है। आपने समस्त भारत के जैनमन्दिरो के निर्माण और जीर्णोद्धार मे खुले हाथो पैसा खर्च किया है। इन्दौर का जैनमन्दिर तो शीशे का एक चमत्कार ही है। जैन साहित्य के प्रकाशन मे भी आपने बहुत बडी सहायता की है। अनेक संस्थाओ के आप सरक्षक और पोषक हैं। जैनसमाज के हृदय मे आपने अपना स्थायी स्थान बना लिया है। आपका शानदार जीवन हमारे लिये सदैव आदर्श रहे।

—हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री सुखसंपत्तिरायजी भंडारी अजमेर से लिखते हैं कि सर सेठ हुकमचन्दजी व्यापारी जगत् की एक विभूति हैं। उन्होने अपनी गभीर सूझ बूझ, दूरदर्शिता और साहस से करोडो की सम्पत्ति कमाई और लाखो का दान भी किया। उनको अभिमान छू तक नही गया। छोटे से छोटे आदमी से भी बडे प्रेम से मिलते है।

—वयोवृद्ध समाजसेवी सेठ गजराजजी गंगवाल लाडनूं लिखते है कि सबसे बडा सौभाग्य यह है कि जन्म से आज तक कोई भी दाग आप पर लगाया नहीं जा सकता है। सौ टंच सोने की तरह कलंक रहित भोग भोगा है। धर्म-अर्थ-काम मे सन्तोष न मान कर मोक्ष की अभिलाषा भी छोडी नहीं है। ऐसी बुद्धि भगवान् सभी को दें।

— कटनी से भा० व० दिगम्बर जैन परवार सभा के मन्त्री पं० जगमोहनलाल जैन शास्त्री लिखते है कि सेठ साहब का दरबार सदा त्यागियो और विद्वानो से भरा रहता है। उनकी दृष्टि मे ज्ञान व तप का महत्व विशेष है। उन्हे योगीपद प्राप्त होना चाहिये। उनमे गुणो का समावेश इतना है कि दुर्गुणो की छाया भी दीख नही पडती। अपने समाज मे ऐसे नररत्न को पाकर किसे गर्व न होगा?

—रायबहादुर राज्यभूषण सेठ हीरालालजी पाटनी किशनगढ से लिखते है कि सर सेठ साहब और मेरा सम्बन्ध बहुत गाढा और पुराना है। उनके संघर्ष और उत्कर्ष दोनो मे मैने एक महान व्यक्तित्व की झांकी देखी है। वाणिज्य और वैभव मे घिरे रहने पर भी उन्हे सदा धार्मिक या सामाजिक संकट पर अग्रणी ही पाया है। राज्य, और समाज सबसे अति सम्मानित इनकी जोड का दूसरा व्यक्ति अपनी समाज मे नही है। ऐसे योग्य अनुभवी व उच्चकोटि के पुरुष हमारे बीच युगो तक रहे।

—लाला हीरालालजी और लाला कपूरचन्दजी जौहरी दिल्ली लिखते है कि हम दोनो भाइयो और हमारे परिवार पर सेठ साहब का विशेष वात्सल्यभाव है। आपने कितनी ही बार दिल्ली पधारने पर हमारे अतिथ्य को बडे प्रेम के साथ स्वीकार किया है। वे 'जौहरी' न होते हुये भी रत्न तथा जवाहर के ऐसे पारखी है कि देखकर आश्चर्य होता है। इस पारखी बुद्धि के ही कारण आपने अपने जीवन मे अपूर्व सफलता प्राप्त की है।

—कलकत्ता के वयोवृद्ध समाजसेवी सेठ बैजनाथजी सरावगी लिखते है कि मुझे सेठ साहब को बहुत समीप से देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। हिन्दू विश्वविद्यालय मे जैन मंदिर और बोर्डिङ्ग हाऊस बनाने के लिये आपकी आतुरता को देखकर मुझे पता चला कि आप मे धर्मप्रभावना कितनी प्रबल है। लगभग आठ हजार रुपया खर्च करके हवाई जहाज से आप काशीजी पधारे थे और जब यह कार्य सफल हुआ, तब आपको परम सन्तोष हुआ। धर्म व समाज सेवा के अवसर पर आप न तो स्वयं चैन लेते है और न दूसरो को ही लेने देते है। जैन समाज को सदियो तक ऐसा अथक् सेवक मिल सकना दुर्लभ है।

—रायबहादुर सेठ हरकचन्दजी पाण्ड्या रांची से लिखते है कि हमारे घर के साथ सेठ साहब का संबंध पूज्य पितामह रायबहादुर सेठ रतनलालजी के समय से है। शिखरजी की रक्षा और सेवा के लिये सेठ साहब ने जिस साहस से काम लिया था, उसकी स्मृति मेरे हृदय पर अमिट बनी हुई है। अब तो आपकी यह सेवा भावना सारे देश मे व्याप चुकी है। ऐसे महापुरुष किसी समाज को भी उसके पुण्य से ही प्राप्त होते है।

—ब्यावर से रायसाहब सेठ मोतीलालजी रानीवाला ने लिखा है कि मेरे हृदय मे सेठ साहब के प्रति जो श्रद्धा पैदा हुई, वह उत्तरोत्तर बढती ही गई है। इस युग की जैन पीढी आपके उपकारो को कभी भूल नहीं सकती।

—डेली कालेज इन्दौर के प्रिंसिपल ी डी० ऐफ० जैक लिखते हैं कि सेठ साहब की महान् उदारता का शिक्षण संस्थाओ को विशेष लाभ मिला। शिक्षा के महत्व को उन्होने खूब समझा। अपने सुपुत्र को उन्होने इसी कालेज मे भरती कराया, जब कि यहां केवल राजाओ और सरदारो के लडके ही भरती किये जाते थे। अब वह सभी के लिये खुला कर दिया गया। उनका पौत्र भी इसी का विद्यार्थी है। डेली कालेज सेठ साहब का चिर ऋणी और कृतज्ञ है।

१

जिनपतिपदपद्मामोदितस्वान्तसद्मा
श्रुतिवचनविचाराचारचारुप्रचार : ।
व्रतिजनशुभसङ्गापास्तमोहप्रसङ्गो
जयति हुकमचन्द्र श्रेष्ठिवर्योऽस्ततन्द्र. ॥

२

जगति विदितकार्या यास्त्वया लोकहेतो-
र्विपुल विभवदानास्स्थापिता. श्लाघ्यसंस्था ।
दिशि विदिशि शशिद्यु त्कीर्तिराशिप्रसाग-
स्तव मनस उदारां भावनां व्यञ्जयन्ति ॥

३

क्वचिदपि जिनतीर्थे केचनाप्यस्तबोधा
विदधति यदि नामोपद्रवान्मर्त्यपाशा' ।
तदिह सपदि रक्षा सविधातु समर्थ-
स्त्वमिव नहि जनोऽन्यो दृश्यतेकश्चनापि ॥

४

गुणिषु मुनिषु जैनेष्वन्यतः पीडितेषु
कलुषचयविपाकादामयाद्यार्दितेषु ।
निजजन इव शीघ्र तत्प्रतीकारहेतु-
स्त्वमिति जगति को नो मानवो वेत्ति सम्यक्

५

निखिल विषयतृप्त. किन्तु शास्त्रेष्वतृप्तः
कृतबुहुजनसङ्गोऽप्यस्तसङ्गप्रसङ्ग' ।
त्वमसि वयसि वृद्धोऽथापि तेजस्त्ववृद्धः
सुकृत कृतमहिम्ना निर्द्दितोयो विभासि ॥

६

श्रीमन् ! मान्य ! मनीषिभूषितसदा ! श्रेष्ठिन ! प्रतिष्ठाश्रय ।
दाने कर्णसहोदर ! श्रुतमहाशास्त्र ! प्रशस्याशय ! ।
दत्तां लब्धफलोऽभिमञ्जुलयश शीता शुरम्योदय
सोऽयं त्वामभिनन्दति प्रणयत स्याद्वादविद्यालय' ॥

—काशीस्थ श्रीस्याद्वादद्विगम्बर-जैन महाविद्यालयत

श्रीमद्धर्मपरायणो गुणभृतामग्रे सरो नायक
प्राप्तानेकपदप्रशस्तगरिमा सम्मानितो राजभिः ॥
सेवाधर्मसमाजयोर्विरचयन् दानप्रभावे सदा
जीयाद्वर्ष सहस्रश. सुसुखत श्री हुकमचन्द्र. सर. ।

—मक्खनलाल शास्त्री, विद्यावारिधि, न्यायालंकार
(आचार्य-श्री गो० दि० जै० सिद्धातविद्यालय, मोरेना)

—इन्दौर ' ईसाई ' कालेज के आचार्य लिखते हैं कि हमारे कन्या विद्यालय का बड़ा हालसेठ साहब के २५ हजार के उदार दान से ही बना है । कालेज में एम० ए० की पढ़ाई शुरू होने पर आपने पुस्तकालय के लिये दो हजार रुपये प्रदान किये । जवरीबाग मे आपने कालेज के विद्यार्थियों के निश्शुल्क रहने का प्रबन्ध किया है। सेठ साहब का शिक्षाप्रेम सराहनीय है ।

—महात्मा गांधी मेडिकल कालेज इन्दौर के आचार्य ने भी कालेज को पहिले दिये गये ४० हजार और बाद मे दिये गये २५ हजार के लिये आभार प्रदर्शन किया है और शतायु होने की कामना की है ।

—पण्डित भगवानस्वरूप जैन फरिहा मन्त्री अतिशय क्षेत्र मरसलगज लिखते हैं कि तीर्थक्षेत्रो के सम्मान की रक्षा के लिये सेठ साहब ने जो महान सेवा की है, वह इतिहास में सोने के अक्षरो मे लिखी जायेगी ।

—पण्डित शिखरचन्दजी विशारद 'सरावतपुरीय' दिल्ली लिखते हैं कि श्री हुकमचन्द महाविद्यालय का छात्र होने और महासभा में डेढ दो वर्ष काम करते हुये मै आदरणीय सेठ साहब की लगन-धुन और धर्मपरायणता से अत्यधिक प्रभावित हुआ हूं और मैने उनसे बहुत कुछ सीखा है। उनके उपकारों से उऋण होना सभव नहीं है ।

"MY OLD FRIEND."

Sir Kenneth Fitze

(Hon'ble Agent—General to the Governor General in Central India in 1912)

Teal Hatch, Cross in Hand, Sussex, England.

"It was good to learn that my old friend Sir Hukam Chand is still flourishing and about to reach the age of 80 years My connection with Indore, where I spent the happiest years of my life, goes back 1912 and I well remember Sir Hukamchand as being, even in that time, a towering figure among the local personolities In subsequent years I frequently had the pleasure of meeting him and appreciating his never failing cheerfulness and geniality, which so often expressed itself in levish hospitality. I I imagine that few octogenarian of today could look back on a more strenuous and fruitful career and I hope that he will still have many years in which to enjoy the consciousness of great achievements and the respect and affection of his admirers.

May I, in conclusion, thank you for affording me this opportunity to associate myself with the tribute, which you are organising, which I feel sure will be most widely and enthusiastically supported.

"जैन गजट" के प्रकाशक पं० बाबूलालजी शास्त्री देहली लिखते हैं कि पिछले ९-१० वर्षों में महासभा के साथ अविरत संबंध होने और उससे भी पहले इन्दौर मे शिक्षाध्ययन करने का अवसर मिलने के कारण मुझे सेठ साहब को बहुत समीप से देखने और समझने का अवसर मिला है। उनके बहुत से वे तार और पत्र मेरे हाथों मे से गुजरे हैं, जिनसे उनके जैन धर्म के प्रति अटूट प्रेम और अगाध श्रद्धा का परिचय मिलता है। ऐसे साहसी, धर्मवीर, और उदार नेता का प्राप्त होना जैन समाज का सबसे बा सौभाग्य है। यह सौभाग्य सदा ही बना रहे।

—श्री गुट्टनलालजी देहली लिखते हैं कि सर सेठ हुकमचन्दजी साहब ने धर्म, समाज, जाति की जो सेवा की है एवं तीर्थरक्षा की है, वह जैन समाज मे स्वर्णाक्षरों में सदैव अंकित रहेगी। सेठ साहब के सन् १९३९ मे महासभा की प्रवन्धकारिणी मे देहली पधारने पर तथा अन्य अवसरों पर भी मुझे उनके दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आपकी अलौकिक प्रतिभा है। मैं श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता हूँ कि सेठ साहब का वरद् हस्त सदैव जैन समाज पर बना रहे।

—वैद्यराज आयुर्वेदभूषण श्री कन्हैयालालजी जैन कानपुर लिखते हैं कि सेठ साहब के दर्शन मैंने पहली बार बम्बई मे आज से तेतालीस वर्ष पहले किये थे। उस समय उनकी धर्म चर्चा सुनने का लाभ मिला था। इन्दौर जाने पर उनके साहस और प्रबन्ध को देखकर बडा ही आश्चर्य हुआ। इन्दौर के अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष रायबहादुर पं० सरजुप्रसादजी त्रिपाठी सिविल सर्जन के अस्वस्थ होने से उनका भाषण आपने पढा। अंत मे आपने घोषणा की थी कि महामना मालवीयजी की तरह देश के कोने कोने में घूम कर रुपया इकट्ठा करके जब तक वैद्य-समाज आयुर्वेद कालेज नहीं खोलेगा. तब तक आयुर्वेद की उन्नति नहीं होगी। मैं भी आपका साथ देने को तय्यार हूं। एक बार वे जिससे मिललें, उसको कभी भी भूलते नहीं। किसी भी समस्या को हल करने में आप जिस प्रत्युत्पन्नमति से काम लेते हैं वह कमाल की है। राजकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज को उत्तर प्रदेश के मेडिसन बोर्ड से सम्बन्धित कराने में आपने जिस लगन-धुन और तत्परता का परिचय दिया, उसको देखकर मै दंग रह गया। श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि सर सेठ साहब और उनके पुत्र पौत्रादि चिरंजीवी हों।

—जैनजातिभूषण लाला हजारीलालजी जैन, मन्त्री पारमर्थिक संस्थाये इन्दौर से लिखते हैं कि मेरा

सेठ साहब से पचास वर्ष से सम्बन्ध चला आ रहा है। उनकी असाधारण प्रतिभा, अनुपम स्मरण-शक्ति, व्यापार कुशलता, सदाचार परायणता, दृढ़ता और धर्म एवं समाज की सेवा मे तत्परता आदि गुणो का परिचय मुझे उनके दैनिक जीवन मे निरन्तर मिलता रहा। वे पूर्व जन्म के समीचीन संस्कारों मे भली प्रकार सुसंस्कृत है। उनका पुण्य वैभव भी अपूर्व है। सेठ साहब स्वस्थ रहकर चिरायु हों और हमे उनका शतवर्षीय जयन्ति उत्सव देखने का भी सुयोग मिले।

—श्री कन्हैयालालजी महाशय सेठ साहब के व्यापार व्यवसाय की प्रगति का विस्तृत विवरण करते हुए लिखते हैं कि सेठ साहब ने १४ वर्ष की आयु मे ही अफीम के सट्टे में लाखों रुपया कमाना शुरू कर दिया था। अनेकों बार सट्टे के बाजार मे देश विदेश के सभी सटोरियों का मुकाबला किया और उन्हें 'सट्टे का राजा' कहा जाने लगा था। उनकी सफलता का कारण यह था कि वे देश विदेश के सटोरियों से सम्पर्क बनाये रखते थे और अफीम की फसल पर हवामान मे पड़ने वाले असर की जानकारी प्राप्त करने के लिये अफीम के उत्पादन के केन्द्रो पर तथा हाजरमाल के स्टाक आदि की जानकारी प्राप्त करने के लिये गुप्तचर रखा करते थे अपने रुख पर बहुत दृढ़ रहते थे। उनकी यह उदारता भी कमाल की थी। आप मालवा के पहले करोड़पति हैं। ईश्वर आपको चिरायु करे।

—वैद्यराज कन्हैयालालजी आयुर्वेदाचार्य देहली लिखते है कि सेठ साहब के सम्पर्क मे मै वर्षों रहा। आप समाज की महान् विभूति हैं। आपकी व्यापार व्यवसाय की प्रतिमा अनूठी है। दान धर्म में प्रवृत्ति आपकी विशेष है। हमारी वीर प्रभु से प्रार्थना है कि आपकी छत्रछाया जैन समाज पर चिरकाल तक बनी रहे।

—अजिताश्रम लखनऊ से महासभा के पुराने सेवक व नेता बीकानेर के भूतपूर्व जज श्री अजितप्रसादजी लिखते हैं कि सर सेठ हुकमचन्द्र जैन समाज मे एक अद्वितीय, आदर्शरूप, महान् पुरुष है। भरत चक्रवर्ती के समान वैभव का त्याग, अनुकरणीय व्रती श्रावक का सदाचार, संसार के भोगो से उदासीनता उनके असाधारण गुण हैं। प्रात. अपराह्न और सायंकाल घटों अध्यात्म रस का पान करते है। माला तो निरन्तर फेरते ही रहते हैं। इन्द्र भवन के राजकीय चकाचौंध से मन मोड कर केवल तीन कमरों मे ही रहते हैं। कहीं भी किसी प्रकार जैन-धर्म पर सकट-सम्वाद सुनते ही अपनी पूर्ण शक्ति लगा कर धर्म और धर्मायतन की रक्षा मे सफलता प्राप्त कर जैन समाज को गौरवान्वित करते हैं। सम्यक्दर्शन, ज्ञान-चारित्र रूपी मोक्ष मार्ग के शीघ्रगामी पथिक हैं। मेरा निकट परिचय सर सेठ महोदय से जनवरी १९२४ में हुआ, जबकि मै दिगम्बर समाज के पक्षमे श्री चम्पतरायजी के साथ वकील था और सर सेठ महोदय की गवाही इन्जंकशन केश मे चार पाच दिन तक हजारीबाग मे होती रही।

१९२१ की गर्मियो मे सर सेठ महोदय श्री ऋषभदेव केशरियानाथ के हत्याकांड के अवसर पर एक डेपुटेशन की सरदारी स्वीकार करके उदयपुर पधारे। डेपुटेशन के पंच सदस्यों में मैं भी था। महाराणा उदयपुर से न्याय प्रार्थनार्थ स्थान और तिथि निश्चित कराके शिकारगाह के निर्जनस्थान पर मुलाकात प्राप्त की। महाराणाजी को मामला समझाया। महाराणाजी का आदेश हुआ कि 'न्याय होगा"। केशरियाजी पर ध्वजादण्ड के मामले मे भी सर सेठ महोदय ने उचित परामर्श दिया तथा सहायता की। सन् १९३३ मे हैदराबाद (दक्षिण) के भूपति ने जैन दिगम्बर मुनि श्री जयसागर के नगर विहार मे प्रतिबन्ध लगा दिया। उस अवसरपरभी सर सेठ महोदय ने कलकत्ता पहुचकर उपसर्ग निवारण कोषमे प्रचुर दान दिया।

—श्री रतनलालजी मादीपुरिया देहली लिखते है कि आप जैन समाज के नर पुंगव हैं। महान् विभूति के प्रति मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि है।

੪
ਵਿਗਿਆਨ ਲੇਖ
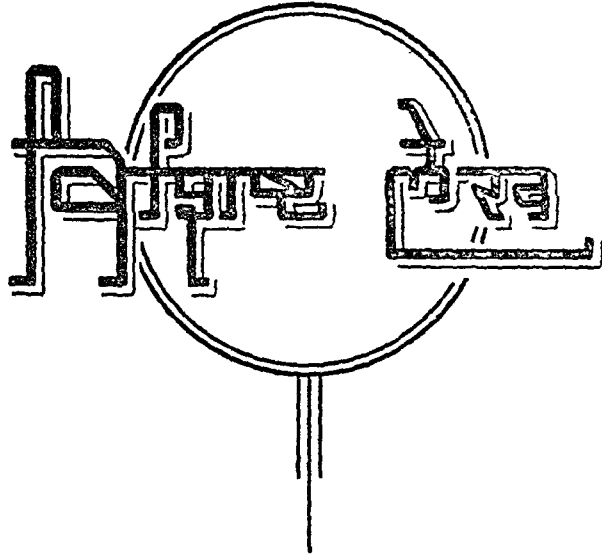
इस ग्रन्थ का प्रकाशन बहुत थोड़े समय में किया गया। बहुत शीघ्रता से इस विभाग की सामग्री जुटाई गई। लेखक महानुभावों से बहुत जल्दी में लेख मगाये गये। उन्हें न तो लेख का विषय चुनने और न उसकी सामग्री जुटाने के लिए ही पर्याप्त समय मिल सका। कुछ लेख तो अप्रैल मास के तीसरे सप्ताह में ही प्राप्त हुए हैं। फिर भी इतने अधिक लेख प्राप्त हो गये कि उन सबका समावेश कर सकना संभव न हो सका। कदाचित पृष्ठ संख्या बढ़ा दी जाती, किन्तु इतना समय न था कि उन सबका मुद्रण हो सकता।

सम्पादक समिति का यह निर्णय रहा कि एक लेखक का एक लेख दिया जाय, अमुद्रित लेख दिए जाय और यथासम्भव विवाद रहित लेख दिये जांय। इसीलिए जिन महानुभावों के जो लेख नहीं दिये जा सके हैं, उनके लिए विनीत भाव से क्षमा-याचना है। लेखकों के समस्त विचारों का दायित्व न तो ग्रन्थ की प्रकाशक अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा पर है और न सम्पादक समिति पर। उनके लिए एक मात्र लेखकों पर ही उत्तरदायित्व है।

श्री चन्द्रप्रभस्तोत्रम्

—स्या० वा० वि० वा० पं० खूबचंदजी शास्त्री
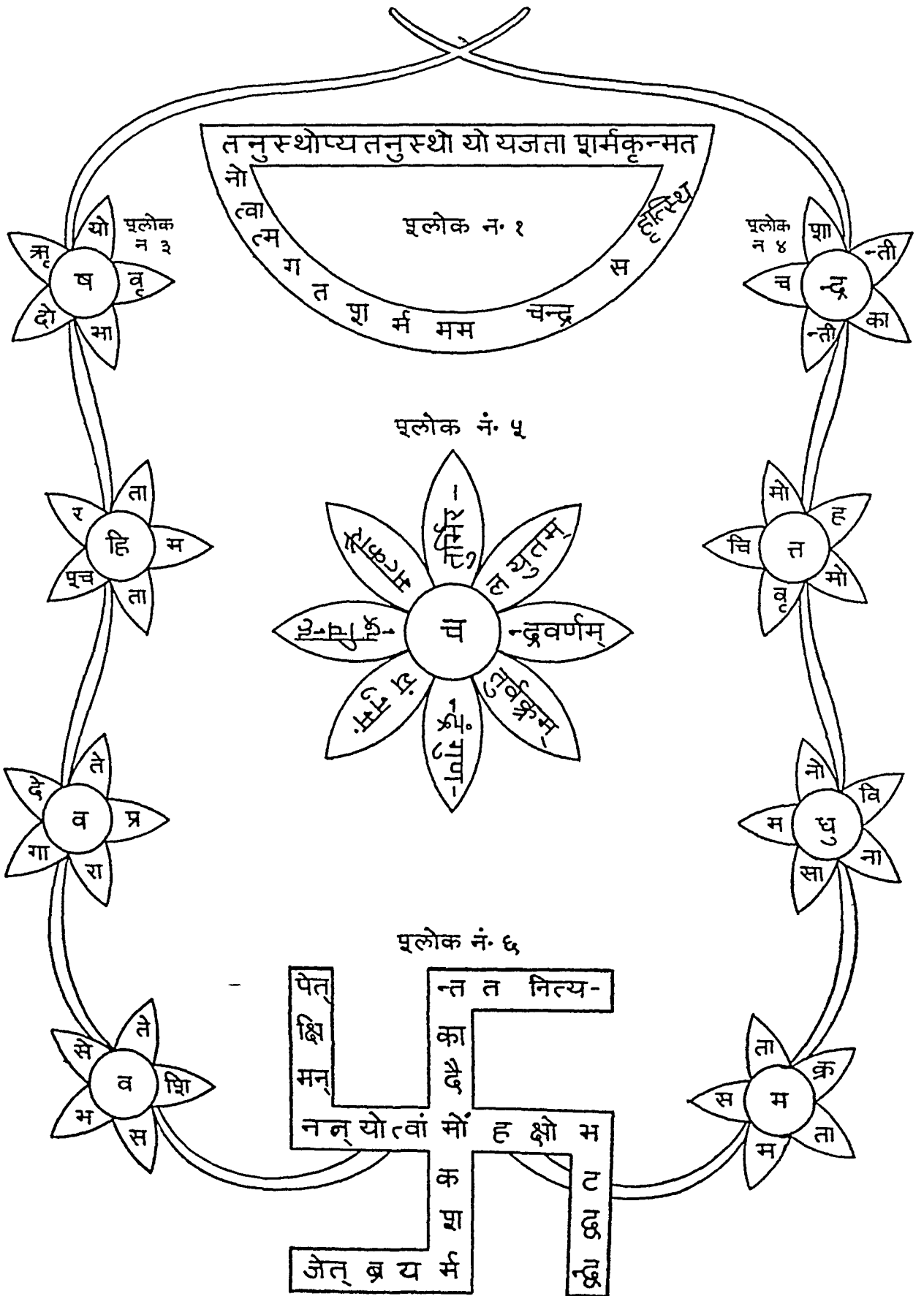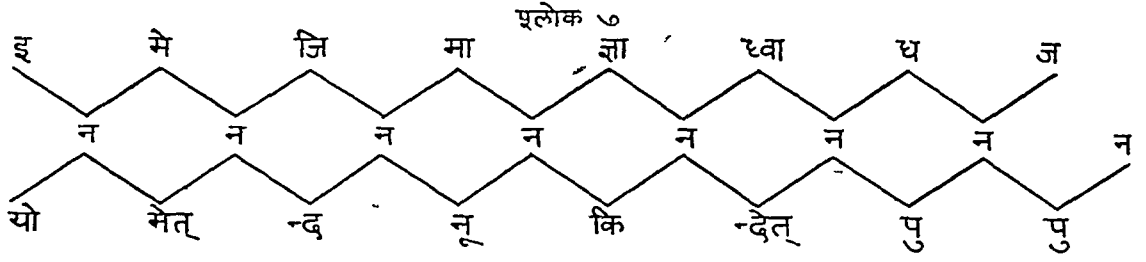
तनुस्थोऽयतनुस्थो यो यजतां शर्मकृन्मत'।
तनोत्वात्मगतं शर्म मम चन्द्रः स हृत्स्थित.॥१॥

सुधर्मं य सत' शास्ति सुसमं यममात्मनः।
शिवोत्तमाङ्गसंसेव्यः भुजङ्गानपसारयन्॥२॥

ऋषयो वृषभा दोषरहिताः महिताश्च हि।
देव ते प्रवरां गावं सेवन्ते शिवसम्भवम्॥३॥

चन्द्र शान्तीन्द्र कान्तीन्द्र चित्तं मोहतमोवृतम्।
मधुनो विधुना साधु-समता क्रमतां मम॥४॥

चन्द्रवर्णं चतुर्वक्त्रम् चन्द्रं गुणचय नुमः।
चन्द्रचिन्ह चमत्कारैश्चतुभिरचलं युतम्॥५॥

मोहक्षोभभटद्वन्द्वमों त्वां यो नन्नमन् क्षिपेत्।
मोदैकान्ततत्तं नित्यमोकः शर्ममय व्रजेत्॥६॥

इनमेनं जिनं मानज्ञानध्वानधन जनः।
यो नमेन्नन्दनं नूनं किं नन्देन्न पुनः पुनः॥७॥

वक्ष आलिङ्गते लक्ष्मीः पद्मा पतति पादयोः।
कृपाणी कर्मणां वाणी तस्य यस्य भवान् हृदि॥८॥

तस्यैव सफलं जन्म तस्यैव धवलं यश।
तस्यैव सफला वाचो येन संस्तूयते भवान्॥९॥

तस्यारयः प्रणश्यन्ति वश्यतां यान्ति दुर्हृद।
तुष्यन्ति देवताः सर्वाः त्वां स्रजाऽर्चति यो जनः॥१०॥

जिनके प्रति

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

यह तनु तो है रक्त-मांस मय,
उस तनु में है केवल दुग्ध,
वात्सल्यभाव से ही जिन, यह जन;
आ सकता है वहाँ विमुग्ध।

आत्म-जागरण

डा० रामकुमार वर्मा एम. ए. डी. लिट.

आत्म जागरण हो जीवन मे,
साधन का हो मार्ग प्रशस्त।
सत्य अहिंसा के बल पर ही,
सुखी बने जीवन संत्रस्त॥ १॥

सहज समन्वय मे श्रद्धा हो,
संयम-रवि हो कभी न अस्त।
षट् द्रव्यों मे आत्म-तत्व,
निज पद में रहे सदा आश्वस्त॥२॥

अै काल जका सिणगार बण्या

श्री कन्हैयालालजी सेठिया-सुजानगढ

झर-झर पाका पान झड़ै।
अै देखी आँध्याँ खेंखाती
अै भिड्या रूँख रा बण साथी;
पण रूत रो धीमूँ सो धक्को
अै सह लै आँ री के छाती?
होलै सी सैन करी करताँ
अै डरता उपरा थली पड़ै।

अै काल जका सिणगार बण्या,
बै आज रूँख रा भार बण्या,
दिन माठा आवै जकी बगत,
वा भेलप राखै इण्या गिण्या,
धरती तो झेलै नहीं किस्यै,
वा बिल में भेली हू'र बड़ै।

ओ जीणूँ मरणूँ सालीणूँ
सुख दुख रो जावक तथ झीणूँ
के हँसणूँ आँ पर के रोणूँ?
पण समझै कोनी मन हीणूँ।
बो तोड़ै पीला पान जको
बो सागी कूँपल नुँई घड़ै।

झर झर पाका पान झड़ै।

भारतीय इतिहास में जैनकाल

लेखक—श्री कामताप्रसाद जैन, एम० आर० ए० एस०, डी० एल०

भारतीय इतिहास का आलोडन करते हुये विद्वानो ने जिस काल मे धर्म अथवा राजवश का प्राबल्य देखा, उसी के अनुरूप उस कालविशेष का नामकरण कर दिया। धर्म की अपेक्षा जो नामकरण किये गये, वे मौर्यकाल से पहले की शताब्दियो तक ही सीमित है। मौर्यकाल के उपरान्त सभी कालविशेषो का नामकरण प्रायः राजवशो की अपेक्षा से किया गया है। नन्दो और मौर्यो के पहले ही हमे वैदिककाल, रामायणकाल, महाभारतकाल, बौद्धकाल आदि नामो का प्रयोग भारतीय इतिहास मे किया गया मिलता है। पाठको को एक बात मार्के की दीखेगी कि 'जैनकाल' जसा कोई नामकरण भारतीय इतिहासज्ञो द्वारा प्रयुक्त नहीं हुआ। इसका कारण यह नहीं है कि जैन धर्म का प्राबल्य भारत-वसुन्धरा मे कभी रहा ही न हो, बल्कि कारण यह है कि जैन सम्बन्धी इतिहास का ठीक से अध्ययन और अन्वेषण ही नहीं किया गया। थोड़ा बहुत जो किया भी गया, वह अजैन विद्वानो द्वारा और उसमे भी बहुत-सा पुरातत्व जैन होते हुए भी बौद्ध घोषित किया गया। इस अजस्थिति का दोष अजैन विद्वानो पर नहीं, अपितु स्वय जैनो पर है। उन्होने जैन पुरातत्व का उद्धार करने के लिये जब कभी एकाध प्रस्ताव तो पास किया, परतु उस ओर अपनी लक्ष्मी का उपयोग करना उचित न समझा। समूचे जैन समाज मे एक भी तो पुरातत्व-मंदिर नहीं है और न कोई शोध अथवा पुरान्वेषण की उल्लेखनीय सस्था है। ऐसी दयनीय स्थिति मे कदाचित् भारतीय इतिहास मे "जैनकाल" का उल्लेख और दर्शन नहीं मिलते हैं, तो कोई अचरज की बात नहीं। इसका एकमात्र परिशोध यही है कि जैन समाज अपनी भूल को पहिचाने और उसका सुधार करे। अपार जैन कीर्तिया भारत के और भारत के बाहर बिखरी हुई पड़ी है, परन्तु उनकी सुध लेने वाला कोई नहीं है। स्व० श्री विन्सेन्ट स्मिथ ने बहुत पहले ही जैनो का ध्यान इस आवश्यक कार्य की ओर आकृष्ट किया था। उन्होने लिखा था कि "खोज के लिये बहुत बडा क्षेत्र पडा है। आजकल जैनमतावलम्बी अधिकतर राजपूताना और पश्चिमी भारतवर्ष मे रहते है, परन्तु हमेशा यह बात नहीं रही है। प्राचीन काल मे महावीर स्वामी का धर्म आजकल की अपेक्षा दूर-दूर तक फैला हुआ था।"

प्रस्तुत लेख मे हमे यही देखना अभीष्ट है कि भारतीय इतिहास परम्परा मे कोई काल ऐसे भी हो सकते हैं, जिनमे जन धर्म ने राष्ट्र की गतिविधि को सर्वोपरि अनुप्राणित और अनुशासित किया हो, जिस प्राबल्य के कारण वह समय 'जैन काल' कहा जा सके।

ऋषभ-नेमि पर्यन्त जैनकाल

आज जब हम भारतीय इतिहास की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो उसका इतिवृत्त भ० महावीर और म० बुद्ध से बहुत पहले तक पहुँचता पाते हैं। अब भारतीय इतिहास का प्रारभ शिशु नागवश से भी पहले पहुच जाता है, क्योकि सिन्धु उपत्यका और नर्मदा तट से उपलब्ध पुरातत्व ईस्वी सन् से लगभग चार-पाच हजार वर्षो पुरानी घटनाओ का परिचय कराता है। मोहनजोदडो और हड़प्पा का पुरातत्व इस बात की साक्षी उपस्थित करता है कि उस

प्राचीनकाल मे वैदिक सस्कृति से भिन्न प्रकार की संस्कृति सिन्धु उपत्यका, सौराष्ट्र और नर्मदा प्रदेश मे प्रचलित थी। वह संस्कृति योगाचारनिरत संतो द्वारा अनुप्राणित हुई थी। वैदिक सस्कृति की परम्परा के समकक्ष मे जो दूसरी सास्कृतिक परम्परा इस देश मे प्राचीनकाल से प्रचलित मिलती है, वह श्रमण परम्परा है। इस श्रमण परम्परा का प्रतिनिधित्व आज यद्यपि जैन और बौद्ध—दोनो ही करते हैं, परन्तु इनमे बौद्ध से जैन प्राचीन हैं। अतएव सिन्धु आदि प्रदेशवर्ती परम्परा के उत्तराधिकारी जैन ही हो सकते है। उस संस्कृति को अभारतीय कहना निरी मूर्खता होगी। उसके निर्माता वे जैन श्रमण प्रतीत होते हैं, जिनकी चर्या योगमयी थी और जो अहिंसा-सस्कृति के परिष्कृत उपदेष्टा थे। मोहनजोदडो के पुरातत्व से यह स्पष्ट है कि वह वैदिक मान्यताओ से अछूता और निराला था। मूर्ति का बाहुल्य और यज्ञकुण्ड का सर्वथा अभाव उसे वैदिक सिद्ध नही करता। वैदिक ऋषियो ने योगियो की पूजा करने का न तो विधान ही किया और नहीं ही कभी उनकी मूर्तिया बनाई। इसके विपरीत श्रमण परम्परा मे केवल जैन संस्कृति मे ही हम को योगनिष्ठ साधुओ की पूजा का विधान मिलता है और जैनी योगियो—पञ्च परमेष्ठयी की मूर्तियां बनाकर उनकी पूजा प्राचीनकाल से करते आये है। इस मान्यता की पुष्टि साहित्य और पुरातत्व—दोनो से होती है। जैन साहित्य मे उल्लेख है कि सर्वप्रथम ऋषभपुत्र भरत ने ऋषभ एव अन्य तीर्थंकरो की मूर्तिया बनाई थीं। श्री सोमदेवसूरि और जिनप्रभ सूरि ने मथुरा मे भ० सुपार्श्व की मूर्ति और स्तूप बनाने का उल्लेख किया है, उसकी पुष्टि ककाल टीला से उपलब्ध बौद्धस्तूप के लेख से होती है, जिसमे उसे 'देवो द्वारा निर्मित' बताया गया है। मूलतः वह भ० पार्श्वनाथ के समय मे बनाया गया था। इसी प्रकार राजा करकण्डु द्वारा निर्मापित गुफामदिरो और मूर्तियो का अस्तित्व तेरापुर मे आज भी मिल रहा है। इन मूर्तियो का निर्माणकाल ईस्वी सन् से पहले आठवी शताब्दी तक पहुँचता है। उपरान्त सम्राट् खारवेल के हाथीगुफा वाले शिलालेख से भी स्पष्ट है कि जिन-मूर्तिया नन्दराजाओ के बहुत पहले से निर्माण की जाने लगी थीं,—यदि ऐसा न होता तो नन्दराज कलिङ्ग भग्न जिन की मूर्ति कैसे मगध ले जाता? उस पर लोहानीपुर पटना से जो भग्न दिगम्बर जिन प्रतिमाये प्राप्त हुई है, उनमे से एक की पालिश मौर्यकालीन है। इस कारण जायसवालजी ने उसे मौर्यकालीन प्रतिमा माना था और उसकी तुलना हडप्पा से प्राप्त भग्न मूर्ति से की थी, जिसका केवल धड ही मिला है। उन्होने दोनो को समान पाया था। इसका अर्थ यह हो सकता है कि मोहनजोदडो व हडप्पा के लोग भी वैसी ही मूर्तिया बनाते थे, जैसे कि जिन-मूर्तियां है। प्रो० रामप्रसाद चन्दा ने तीर्थंकर ऋषभ की मूर्ति की तुलना मोहनजोदडो की मुद्राओ पर अंकित आकृतियो से की थी और उनको ऋषभ-प्रतिमा का पूर्णरूप माना था। मारशल साहब कीपुस्तक 'मोहनजोदडो' मे प्लेट न० १३ पर जिस मूर्ति नं० १५-१६ का चित्र दिया है, उसे कोई भी जैन देखते साथ ही कहेगा कि वह तीर्थंकर सुपार्श्व वा पार्श्व की मूर्ति है। नागफणमंडित पद्मासन ध्यानमग्न मूर्तिया केवल जिनेन्द्र सुपार्श्व और पार्श्व की ही मिलती है। प्रो० डॉ० प्राणनाथ का यह मत है कि मोहनजोदडो मे जिन देवताओ की पूजा होती थी, उनमे जैन देवता भी हैं। मुद्रा नं० ४४९ पर उन्होने 'जिनेश्वर' (जिनइइसरः) वाक्य भी पढा है। सर्वोपरि मोहनजोदडो की मुद्राओं पर अकित मूर्तिया दिगम्बर योगियो की है, जो प्रायः सभी कायोत्सर्ग मुद्रा और नासाग्रदृष्टियुक्त ध्यानरत योगियो की हैं। जैन योगियो मे जहाँ ऋषभदेवजी का वर्णन आया है, वहां उनके कायोत्सर्ग आसन में खडे रहकर छै महीने तक तप करने का उल्लेख है। वे न तो नेत्रो को पूरा-पूरा खुला रखते थे और न उन्हे पूरा बंद ही रखते थे—अर्धोन्मीलित नेत्रो से वे नासिका के अग्रभाग पर अपनी दृष्टि लगाये रखते थे। जैन संघ मे ज्ञान-ध्यान का यह आसन और विधि तीर्थंकर ऋषभ के समय से ही प्रचार मे है। मोहनजोदडो के योगी ऋषभ भगवान के बताये हुये योगधर्म का अभ्यास करते हुये प्रतीत होते हे। 'भागवत' मे भी ऋषभदेव को योगधर्म का आदि प्रचारक लिखा है।

ऋषभादि तीर्थङ्कर काल्पनिक नहीं है

कोई विद्वान् तीर्थङ्करो की बडी-बडी आयु-काय का वर्णन जैन पुराणो मे पढकर उन्हे काल्पनिक कहने लगते हैं, परन्तु वे भूलते हैं । प्राणीशास्त्रविदो का यह मत है कि पूर्वकाल के प्राणियो कीआ यु-काय उत्तरोत्तर बढी-चढी थी । ऐसे-ऐसे अस्थिपिंजर मिले है, जिनकी तुलना आज के किसी भी जीव-जन्तु से नही की जा सकती! जैन पुराणकारो ने प्राणीशास्त्र के इस वैज्ञानिक नियमानुकूल तीर्थङ्करो की आयुकाय का विशेप वर्णन किया, तो वह ठीक ही है। उस पर जैन अकगणना के अनुसार वह उल्लेख किये गये है, जो लौकिक और अलौकिक रूप मे मिलती है। पूर्व और सागर की सख्या लौकिक-गणना से परे अलौकिक उपमा-गणित के अङ्क हैं। जैनाचार्यों को उन उपमाओ से किस प्रकार के वर्षो को ध्वनित करने का भाव था, यह अन्वेषण करने की चीज है । इतना तो निर्विवाद सिद्ध है कि पूर्व और सागरो की गणना साधारण अङ्कगणना से विशेप और निराली थी। ठीक वैसी ही वह विचित्र अङ्क-गणना थी, जैसे कि आज वैज्ञानिको द्वारा प्रकाश-वर्षो (Light years) आदि का प्रयोग किया जाता है। तीर्थङ्करो की नियत सख्या २४ है और वह इस कारण कि एक कल्यकाल मे ज्योतिपमडल की चक्रगति मे सर्वोत्कृष्ट कालयोग २४ ही आकर पडते है, जिनमे धर्म चक्रवर्तियो का जन्म हो सकता है । अतएव २४ नियत संख्या पर आशङ्का करना भी व्यर्थ है। उसपर प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थकाल की घटनाये भी जैन पुराण मे वर्णित की गई है। यदि यथार्थ मे तीर्थङ्करो की कल्पना ही की गई होती, तो प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थकाल की घटनाये कहा से उठाली गई ? वे घटनाये इस बात की साक्षी है कि अलग-अलग काल मे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुरूप प्रत्येक तीर्थङ्कर का जन्म हुआ था, जिन्होने लुप्त-से हुये धर्म का उद्धार किया था । सर्वप्रथम दसवे तीर्थङ्कर शीतलनाथ के समय मे कुदान की प्रवृत्ति रूप मिथ्या मत का प्रचार किया गया—ब्राह्मणो ने स्वर्ण-कन्या, गो आदि दान लेना भी स्वीकारा। यद्यपि इससे भी पहले भ० ऋषभ के समय मे ही मरीचि द्वारा साख्य सदृश किसी दर्शन और मत का प्रचार किया जा चुका था, परन्तु ऋषभादेशना के होते ही वह टिक न सका । इसके पश्चात् सबसे बडी घटनाये बीसवे तीर्थङ्कर मुनि सुव्रतनाथ के तीर्थकाल मे घटित हुई थी। पर्वत-नारद का प्रसग इसी समय घटित हुआ, जिसके कारण पशुबलि, गो अश्वमेधादि यज्ञो का प्रचलन होगया। अहिसा-सस्कृति के अनन्य भक्तो ने इस हिंसक प्रथा को मिटाने का प्राण-पन से उद्योग चालू रक्खा । निमि-नेमि-पार्श्व और महावीर तीर्थङ्करो की सतत अहिंसा-देशना का यह सुफल हुआ कि भारतवर्ष से इन रक्ताभिषिक्त हिसक यज्ञो का अन्त होगया और प्राचीन शालिधानो से यज्ञ करने की प्रथा का प्रचलन पुन. भारतभू पर हुआ। हिंसक यज्ञो की विच्छित्ति एक देव के सहयोग से हुई बताकर जनपुराणकार ब्राह्मणो के देव-दैत्य सघर्ष के प्रति ही इशारा कर रहे हैं। जहा अनेक राजा लोग इस हिंसक पशु-बलि प्रथा के अनन्य सरक्षक और प्रचारक थे, वहा रावण हनूमान आदि विद्याधरवश के जैन सम्राट् अहिसा धर्म के नेता और रक्षक थे। रावण आदि विद्याधर राजाओ ने उन हिसक यज्ञो का विनाश किया था और उनके शासन को भारी धक्का पहुँचाया था—यह बात 'पद्मपुराण' आदि प्राचीन जैन ग्रन्थो के अध्ययन से स्पष्ट होती है। कदाचित रावण धर्मच्युत न होता और सीताजी का अपहरण न करता तो अहिंसा-सस्कृति का प्राबल्य बहुत पहले ही होगया होता । साराशतः जैन तीर्थङ्करो के व्यक्तित्व और अस्तित्व मे शङ्का करना व्यर्थ है । आज से ढाई हजार वर्षो पहले के लोग भी उनके अस्तित्व मे विश्वास रखते थे, क्योकि हम देख चुके है, उस प्राचीन समय मे ऋषभ, सुपार्श्व, पार्श्व आदि तीर्थङ्करो की मूर्तिया बन चुकी थी । अतएव यह मान्यता निराधार नही है कि मोहनजोदड़ो की सिंधु सस्कृति को अनुप्राणित करने वाले योगी जैन श्रमण ही थे।

प्राचीनकाल मे जैनवादीगण अपने धर्म-चिन्हो से लक्षित मुद्राओ का प्रयोग वाद प्रसगो और अर्थव्यवहार मे करते थे । किसी को शास्त्रार्थ के लिये ललकारने के समय वह सार्वजनिक स्थान, किसी चबूतरा आदि पर अपना

दुपट्टा (पीतवस्त्र) और धर्मसुद्रा रख देते थे । साथ ही ऐसे सिक्के भी मिले हैं, जिनपर जन चिन्ह अङ्कित है। यह चिन्ह जैनो के अपने है और इनका प्रचलन जैन समाज मे एक अत्यन्त प्राचीन काल से चला आरहा है। तीर्थङ्कर मूर्तियो को पहिचानने के लिये विशेष चिन्हो का प्रयोग जैनो ने किया है । कुछ विद्वान किन्ही प्राचीन मूर्तियो पर चिन्ह न पाकर यह अनुमान करते है कि मूर्तियो को चिन्हित करने की प्रथा बाद मे चली है, परन्तु यह धारणा निर्भ्रान्त नही है । तेरापुर मे करकुंड द्वारा निर्मित गुफाओ मे जो जिनमूर्तिया है, उन पर चिह्न मिलते हैं। पार्श्वनाथ की मूर्तिया सर्पफण मडित है, तो महावीर मूर्ति सिहचिह्न द्वारा लक्षित है। एक पार्श्वमूर्ति के आसन मे हिरण-सिह आदि पशुओ को अङ्कित करके भगवान के अहिंसक प्रभाव को ही प्रदर्शित किया गया है । मथुरा के ककालीटीला से जो कुशान आदि काल की जिन प्रतिमाये मिली हैं, उन पर भी चिह्न उकरे हुये मिले हैं । कुमारमिता की बनवाई हुई एक मूर्ति पर जहा कोई चिह्न नहीं है, वहा की स्थिरा द्वारा निर्मित पार्श्व प्रतिमा पर सर्प का आकार है । इससे भी पहले की एक भग्न प्रतिमा कंकालीटीला से प्राप्त हुई थी, जिसके आसन पर दो सिह और दो वृषभ अंकित है । वृषभ चिह्न की स्थिति इस प्रतिमा को वृषभ या ऋषभदेव की सिद्ध करती है । ऐसी ही कई मूर्तिया है, जिनसे यह सिद्ध है कि कुशाणकाल से भी पहले की जिन मूर्तियो पर चिह्न अङ्कित किये जाते थे । मूर्तियो के अतिरिक्त अन्य जैन इमारतो पर भी स्वास्तिक, त्रिशूल, वज्र, शंख, वृषभ, हस्ति, कलश, हस, हरिण इत्यादि चिह्न मिलते हैं । दूसरी शती पूर्वेसा की बनी हुई अनन्त गुफा (ओडीसा) की दीवाल पर त्रिशूल और स्वस्तिक के चिह्न तथा आगन मे जन मूर्तिया मिलती है । दक्षिण भारत मे भी चिह्नाङ्कित जिन मूर्तिया मिली हैं, जिनपर उकेरे हुये लेखो की लिपि ईस्वी पूर्वकाल की ब्राह्मी लिपि है। इन उदाहरणो से जैन मान्यता की पुष्टि होती है और जैन चिह्नो की प्राचीनता का बोध। ठीक वैसे ही चिह्न और ध्यानी दिगम्बर योगियो की आकृतियाँ मोहनजोदड़ो से उपलब्ध मुद्राओ पर भी मिलती हैं । अतः यह मानना अनुचित नहीं है कि सिंधु उपत्यकाकी योगाचार विशिष्ट सस्कृति के निर्माता ऋषभ तीर्थङ्कर परम्परा के जन श्रमण ही थे ।

सिधु में वैदिक आर्यो से भिन्न सुसंस्कृत अध्यात्मवादी समाज

अधुना विद्वानो का यह मत है कि वैदिक आर्य मध्य एशिया से आकर भारत मे बसे थे। उनके मुख्य देवता इन्द्र, वरुण, मरुत् आदि थे। बेबीलोनिया की संस्कृति मे भी इन्द्र, वरुण, मरुत आदि की मान्यता का प्राबल्य था। 'सभमवतः मूल मे वैदिक संस्कृति का उद्गम इस बेबीलोनियन सस्कृति से हुआ है'—ऐसा भी अनुमान किया जाता है । निस्सन्देह भारतीय पुरातत्व से यह स्पष्ट है कि इन वैदिक आर्यो के आगमन के बहुत पहले से भारत मे एक सुसस्कृत अध्यात्मवादी समाज का अस्तित्व था । विद्वज्जन उनको द्रविड अथवा सुमेर या सु जाति का अनुमान करते है और मोहनजोदडो के निर्माता भी वे ही द्रविड और सु लोग माने गये है। सौभाग्यवश इन दोनो जातियो के लोगो का सम्पर्क भी जैन धर्म से मिलता है । सु लोगो का आवासस्थान आज भी सौराष्ट्र कहलाता है, जो जैनो का प्रमुख क्षेत्र है। प्राचीनकाल मे सु-राष्ट्र के जैन लोग बैबीलोनिया गये और वहा उन्होने जैन सस्कृति का प्रचार किया था। काठियावाड से जो एक ताम्रपत्र मिला है, उससे भी इस बात की पुष्टि होती है। इस ताम्रपत्र को प्रो० प्राणनाथ ने पढकर प्रगट किया कि सु जाति का नृप नभचन्द्र राज (Nebuchadnazzar I, circa 1140 B C.) रेवा-नगर का भी स्वामी था, वह रैवत (गिरिनार) तीर्थ पर नेमिजिन की वंदना करने आया था । अतएव यदि सुलोग ही मोहनजोदड़ो की सभ्यता के निर्माता हो, तो वह भी जैनधर्म से सिक्त थे । द्रविडो के विषय मे भी यही सिद्ध होता है । ब्राह्मणो ने उनको वृषल क्षत्रिय इसी कारण कहा है कि वे वैदिक क्रियाकाण्ड को नही मानते थे । मनु उनको व्रात्य क्षत्रिय कहते है और यह व्रात्य प्राचीन जैन थे, यह सिद्ध किया जा चुका है। जैन मान्यता के अनुसार प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव के पुत्र द्राविड़ की सन्तान द्राविड कहलाई थी। द्राविड़ो मे अनेक राजा जैन मुनि हुये थे,

जिनको आज भी जैन लोग सिद्ध परमात्मा के नाम से पूजते है । इसके अतिरिक्त आज भी द्राविडो मे एक जाति 'माकल' कहलाती है, जिसे विद्वज्जन 'मर्कट' का अपभ्रष्ट रूप मानकार उसे वानरवंशियो की सन्तान मानते हैं। यह वानरवशी जैन धर्मानुयायी थे। वाल्मीकि रामायण मे साम्प्रदायिकता के कारण उनका चित्रण पशु रूप मे किया गया है । तामिल भाषा के प्राचीन व्याकरण ग्रन्थ 'ठोल्कप्पय्यम्' से सिद्ध है कि द्राविड लोग आर्यो के समान ही सुसस्कृत थे और जैन सिद्धान्त के ज्ञाता भी थे। निस्सन्देह द्राविडो मे जैनधर्म की मान्यता अत्यधिक रही है। मेजरजनरल जे० जी० आर० फरलाना सा० का यह लिखना ठीक ही है कि ईस्वी पूर्व १५०० से ८०० वर्षो जैसे प्राचीन काल से समस्त पश्चिमीय, उत्तरीय और मध्य भारत पर द्राविडो का शासनाधिकार था। यद्यपि द्राविड़ो मे वृक्ष, सर्प और फलिक पूजा का प्रचलन था, किन्तु उनमे एक योग निरत धर्म अर्थात् जैन धर्म का भी प्रचार था । इस अवस्था मे मोहन-जोदडो की मुद्राओ और मर्तियो पर जिन योगियो की आकृतिया अङ्कित है, वे जैन श्रमण थे । पाश्चात्य विद्वान भी इस मान्यता को तथ्यपूर्ण मानने लगे हैं।

सचमुच वदिक आर्य मूलत. भारत के निवासी हैं ही नही—वे तो मध्य एशिया से आकर भारत मे बसे है। उनके आगमन के पहले से ही भारत मे द्राविड़ और विद्याधर आर्यो का निवास था, जिनमे जैनधर्म प्रचलित था। इस प्रकार भारतीय इतिहास का आदिकाल 'जैन' ही प्रमाणित होता है। विद्वज्जनो को इस पर और अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है।

द्वितीय जैनकाल

प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव के उपरान्त बीसवे तीर्थकर मुनि सुव्रत नाथ, किंवा बाईसवे तीर्थकर नेमिनाथ के समय तक भारत की विचारधारा जैन तीर्थकरो और श्रमणो द्वारा ही अनुशासित रही । अतएव भारतीय इतिहास का आदिकाल जहाँ "जैनकाल" है, वहाँ ही दूसरा "जैनकाल" पूर्वेसा की पहली-दूसरी शताब्दियो से प्रारम्भ होता है। भ० पार्श्वनाथ के उत्तरावर्ती काल को यद्यपि "बौद्धकाल" कहने की प्रथा है, परन्तु यह निभ्रान्त नही है, क्योकि उस काल मे एक ओर वैदिक परिव्राजको का प्राबल्य था, तो दूसरी ओर श्रमणो मे निर्ग्रन्थ-अचेलक-जन, आजीविक आदि संघनायक लोक का नेतृत्व कर रहे थे। वौद्ध सघ तो नवजात शिशु के समान उठता जा रहा था। स्वयं बौद्ध-ग्रन्थो से इस बात का बोध होता हैं कि बौद्ध सघ का निर्माण तीर्थक अर्थात् जैन सघ के नियमो के आधार से हुआ था। स्वयं म० गौतम बुद्ध एक समय पार्श्वपरम्परा के जैन मुनि रहे थे। अतः उस समय बौद्धो की अपेक्षा जन प्रबल हो रहे थे । अनेक भारतीय शासक गण जैन मुनि हुये थे और जिनको बौद्ध कहा गया है, वे भी जैनो का आदर और संरक्षण करते थे। नन्दवंश के प्रमुख शासक जैसे नन्द वर्द्धन जैन ही थे—उनके मत्री भी जैन थे। मौर्यो मे चन्द्रगुप्त, सम्प्रति और सालिसूक पूर्णतः जिनेन्द्र भक्त थे। सम्राट अशोक ने अकबर के समान समुदार नीति को अपनाया था। अतएव यह कुछ ठीक नही जचता कि यह काल "बौद्ध" कहा जावे,—इसे "अहिंसा-काल" कहना अधिक युक्तिसंगत है।

"अहिंसाकाल" मे दयाधर्म भारतभूमि के कण-कण मे व्याप्त हो गया। वैदिकी पुरोहितो को यह अखरा और प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई, जिसने संघर्ष का रूप धारण किया। मौर्य सेनापति ने विद्रोह का झंडा ऊचा किया। कण्ववश अधिकृत होकर आगे आया, जिसने वैदिक क्रियाकाण्ड को पुनर्जीवित किया । राजसूय—अश्वमेधादि पशुयज्ञ रचे गये। कलिङ्गसम्राट् ऐल खारवेल जैनधर्म के स्तभ थे । उनको यह असह्य हुआ। उन्होने मगधविजय करके अहिंसाधारा के वेग को स्थिर रखने का प्रयत्न किया। किन्तु यह सघर्ष इतने से मिटा नही । आन्तरिक द्रोह बढता गया—जैन जीवन दूभर हो गया—जैनो पर अत्याचार होने लगे। गर्दभिल्ल जैसे दुष्ट राजाओ ने जैन साध्वियो का बलात् अपहरण करना प्रारम्भ किया। भारत के क्षत्रियो को काठ मार गया । किसी का यह साहस न था कि

तत्कालीन सम्राटो के अत्याचारो का विरोध करने के लिये आगे बढता ! साम्राज्यवाद की नृशंसता का अन्त करना अनिवार्य था। जन साधु कालक ने इस का बीडा उठाया—अहिंसक वीर अत्याचार को कैसे सहन करता ? कालक महाराज शकस्थान गये और वहाँ के शकशाही सरदारो को अपना शिष्य बना लाये। वे शकराजा जैन धर्म के सरक्षक हुए—उन्होने साम्राज्यवाद की नृशंसता का अन्त किया। वे भारत मे भारत के होकर ही रहे। अहिंसा सस्कृति फिर एक बार चमक उठी ! जैनाचार्यों ने प्राणीमात्र को अहिंसाधर्म का अनुयायी बनाया। ब्राह्मणो के पुरोहितवाद का गढ टूट गया। उनकी कुलीनता का मद दयामय समता मे बदल गया। देशी-विदेशी सभी लोग धर्म-कर्म करने मे लीन हो गये। जैनधर्म पुनः एक बार चमक उठा। भारतीय इतिहास मे यह दूसरा "जैनकाल" था।

इस द्वितीय "जैनकाल" मे जैन नियमो का समादर भारत के सभी लोगो ने किया। 'जैन जयतु शासन' लक्षित विजय-वैजयन्ती पुन: फहराने लगी। वैदिकी पुरोहितो ने इसे अपने धर्म का ह्रास माना, साम्प्रदायिक और वर्गगत विपमता का नाश जो इसमे हुआ था। आन्ध्र, शक, भार, पुलिन्दादि राजाओ ने जैन और बौद्ध धर्मो मे दीक्षित होकर श्रमणपरम्परा को आगे बढाया था। इसी कारण गुणाढ्य ने लिखा कि म्लेच्छो ने ब्राह्मणो को नष्ट किया और उनके यज्ञयाग क्रियाओ मे बाधाये उपस्थित की थीं।' (कथासरित्० १८) किन्तु इसका अर्थ ब्राह्मणो के भौतिक नाश की अपेक्षा सास्कृतिक नाश मानना अधिक उपयुक्त है। 'महाभारत' (वनपर्व अ० १८८ व १९०) के अनुसार स्व० मम० डा० जायसवाल ने सन् १५० से २०० ई० तक भारत मे म्लेच्छ राज्य होना लिखा है, जिसमे वर्णाश्रमी वैदिकधर्म का ह्रास हुआ बतलाया है। इस काल के पुरातत्व मे जायसवाल जी को हिन्दू धर्म के अवशेषो का अभाव खटका और उन्होने माना कि उस समय हिन्दू पूजा (Orthodox Worship) का प्रचलन नही था। इस समय का जैन पुरातत्व कलिग, मथुरा, गिरि नगर, साची आदि स्थानो से प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हुआ है। अतएव इसकाल को द्वितीय "जैनकाल" लक्षित करना इतिहास सिद्ध प्रतीत होता है।

इस काल के उपरान्त यद्यपि उत्तरभारत मे जैनधर्म इतना प्रबल फिर न हो पाया कि वह भारतीयो पर अनुशासन करता, परन्तु उसकी अहिंसा सस्कृति भारत के कण-कण मे व्याप्त हो गई। परिणामतः प्रयत्न करने पर भी वैदिकी हिसा को प्रोत्साहन न मिला। भारत का शिष्ट समाज प्रायः समूचा का समूचा अहिंसक और शाकाहारी रहा। गुप्त काल मे जैनमठो की बहुलता रही, जिनमे आचार्यों और उपाध्यायो द्वारा धर्म एव अहिंसा सस्कृति का प्रचार किया गया। उपरान्त १२ वी से १५ वी शती के मध्यवर्ती काल मे जैन धर्म पुनः गौरवशाली हुआ। जैन मन्दिरो मे इस काल की प्रतिष्ठित हुई मूर्तिया अत्यधिक है और इस काल का रचा हुआ जैन साहित्य भी काफी मिलता है। राजपूतो मे जैनधर्म की प्रगति हुई थी। उनमे से कोई-कोई शासक जैनी हुये और उनके मत्री तो अधिकाश जन ही थे। किन्तु मुसलमानो के आक्रमण और अत्याचारो ने जैन को हतप्रभ बना दिया। जैनो पर वैदिकी हिन्दुओ के रीति-रिवाजो का प्रभाव पडा। जैन आधे वैष्णव-से हो गये। कहीं-कहीं जैन और वैष्णवो मे विवाह सम्बन्ध भी होने लगे। इस सम्बन्ध को दृढ़ करने मे प्रेरक कारण जैनो के अहिंसा सिद्धान्त की सार्वभौम प्रबलता और मुसलमानो का आतंक था।

दक्षिण भारत के जैनकाल

दक्षिण भारत द्राविड़ लोगो का घर रहा है; यद्यपि एक समय द्राविड़ सारे भारत मे फैले हुये थे। इन लोगो मे जैनधर्म की मान्यता अति प्राचीन काल से रही है। जैन मान्यता के अनुसार भ० ऋषभदेव के द्वारा ही जन धर्म का प्रचार और सभ्यता का प्रसार दक्षिण भारत मे हो गया था। इतिहास भी इस मत का पोषण करता है, क्योकि दक्षिण के प्राचीन राजवश (१) चेर, (२) चोल, (३) पाड्य जैन ही थे और उन्होने जनधर्म के अभ्युदय मे पूरा योग

दिया था। यही कारण था कि उस समय के साहित्य की धारा को जनाचार्यों ने सुचारु रीति से प्रवाहित किया था। विद्वानो ने तामिल और कन्नड साहित्य के आदि प्रणेता जैन ही माने है और उन साहित्यो के प्रारम्भिक काल को 'जन' नामाकित किया है। अतएव राजनैतिक दृष्टि से भी उस ऐतिहासिक काल को "जैन" कहना असगत नही है। किन्तु यह सुन्दर स्थिति वहुत समय तक स्थिर न रही। ब्राह्मण और बौद्धो के प्रचार से प्रतिक्रिया प्रारभ हुई—जैन हतप्रभ हो गये।

दक्षिण भारत मे जैनो की यह दयनीय स्थिति श्री सिहनन्दि आचार्य को सहन न हुई। उत्तर भारत मे कण्वादि राजवशो के प्रावल्य से आतकित होकर कई राजपुत्र दक्षिण भारत को चले गये थे। सिंहनन्दि आचार्य ने इन्ही मे से एक भ्रातृ-युगल को राजनिष्ठ बनाया। ददिग और माधव राजा हुये, जिन्होने गग वश की स्थापना की और जैन धर्म के लुप्त गौरव को पुनः प्रतिष्ठापित किया। "गग साम्राज्य का स्वर्णकाल" दक्षिण भारत मे द्वितीय "जैनकाल" सिद्ध हुआ।

किन्तु प्रकृति उत्थान-अवसान का भूला है। भ० महावीर की भविष्यवाणी मे उसका निर्देश पहले ही हो चुका था। जैनधर्म का क्रमशः ह्रास अन्यवर्ती क्रमिक ह्रास के साथ-साथ होता ही चलेगा। जहाँ वीर निर्वाण से एक हजार वर्षो के अन्तर से ह्रास होता चलेगा, वहा ही प्रति पाच सौ वर्षो की अवधि मे धर्मोत्कर्ष का योग भी जुटेगा—यह वीर देशना सच होती आ रही है। ह्रास की अपेक्षा उत्थान के सुअवसर अधिक है। अतएव जैन नेतागण कभी भी हताश नही हुये। गगो के पश्चात् दक्षिण मे जैनो का महत्व लुप्त हो गया। किन्तु सुदत्ताचार्य ने वीरवर सल को आगे वढाकर 'होयसल' राजवश की स्थापना की और जनधर्म के अवसान का मार्ग ही रोक दिया। होयसलकाल मे जैनधर्म पुनः चमका। यह भी स्वर्णिम "जन युग" था। उत्तरभारत मे भी इन युगो मे जैन गौरवशाली हुये प्रतीत होते है।

आशा है, विद्वज्जन इस विषय पर समुचित ऊहापोह करके इतिहास को परिष्कृत करेगे।

भक्तियोग और स्तुति-प्रार्थनादि रहस्य

लेखक—पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार

जैनधर्म के अनुसार, सब जीव द्रव्यदृष्टि से अथवा शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा परस्पर समान हैं—कोई भेद नहीं, सबका वास्तविक गुण-स्वभाव एक ही है। प्रत्येक जीव स्वभाव से ही अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त-सुख और अनन्तवीर्यादि अनन्त शक्तियों का आधार है—पिण्ड है। परन्तु अनादि काल से जीवों के साथ कर्म-मल लगा हुआ है, जिसकी मूल प्रकृतिया आठ, उत्तर प्रकृतियाँ एकसौ अडतालीस और उत्तरोत्तर प्रकृतिया असंख्य हैं। इस कर्म-मल के कारण जीवों का असली स्वभाव आच्छादित है, उनकी वे शक्तियाँ अविकसित हैं और वे परतन्त्र हुए नाना प्रकार की पर्यायें धारण करते हुए नजर आते हैं। अनेक अवस्थाओं को लिए हुए ससार का जितना भी प्राणिवर्ग है वह सब उसी कर्म-मल का परिणाम है—उसीके भेद से यह सब जीव जगत् भेदरूप है, और जीव की इस अवस्था को 'विभाव-परिणति' कहते हैं। जबतक किसी जीव की यह विभाव-परिणति बनी रहती है तब तक वह ससारी कहलाता है और तभी तक उसे ससार में कर्मानुसार नाना प्रकार के रूप धारण करके परिभ्रमण करना तथा दुःख उठाना होता है। जब योग्य साधनों के बल पर यह विभाव-परिणति मिट जाती है—आत्मा मे कर्म-मल का सम्बन्ध नहीं रहता—और उसका निज स्वभाव सर्वाङ्ग रूप से अथवा पूर्णतया विकसित हो जाता है, तब वह जीवात्मा संसार-परिभ्रमण से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है और मुक्त, सिद्ध अथवा परमात्मा कहलाता है, जिसकी दो अवस्थाएं हैं—एक जीवन्मुक्त और दूसरी विदेहमुक्त। इस प्रकार पर्याय दृष्टि से जीवों के 'ससारी' और 'सिद्ध' ऐसे मुख्य दो भेद कहे जाते हैं। अथवा अविकसित, अल्पविकसित, बहुविकसित और पूर्ण-विकसित ऐसे चार भागों मे भी उन्हें बाटा जा सकता है। और इसलिये जो अधिकाधिक विकसित हैं वे स्वरूप से ही उनके पूज्य एवं आराध्य हैं, जो अविकसित या अल्पविकसित हैं, क्योंकि आत्मगुणों का विकास सबके लिए इष्ट है।

ऐसी स्थिति होते हुए यह स्पष्ट है कि संसारी जीवों का हित इसी मे है कि वे अपनी विभाव-परिणति को छोडकर स्वभाव मे स्थिर होने अर्थात् सिद्धि को प्राप्त करने का यत्न करें। इसके लिये आत्म-गुणों का परिचय चाहिये; गुणों मे वर्द्धमान अनुराग चाहिए और विकास-मार्ग की दृढ श्रद्धा चाहिए। बिना अनुराग के किसी भी गुण की प्राप्ति नहीं होती—अननुरागी अथवा अभक्त हृदय गुण ग्रहण का पात्र ही नहीं, बिना परिचय के अनुराग बढाया नहीं जा सकता और विकास मार्ग की दृढ श्रद्धा के गुणों के विकास की ओर यथेष्ट प्रवृत्ति ही नहीं बन सकती। और इस लिये अपना हित एव विकास चाहने वालो को उन पूज्य महापुरुषों अथवा सिद्धात्माओं की शरण में जाना चाहिये—उनकी उपासना करनी चाहिये, उनके गुणो मे अनुराग बढाना चाहिये और उन्हें अपना मार्ग-प्रदर्शक मान-कर उनके नकशे कदम पर—पद-चिह्नोंपर—चलना चाहिये अथवा उनकी शिक्षाओं पर अमल करना चाहिये, जिनमें आत्मा के गुणों का अधिकाधिक रूप में अथवा पूर्णरूप से विकास हुआ हो, यही उनके लिये कल्याण का सुगम मार्ग है। वास्तव मे ऐसे महान् आत्माओं के विकसित आत्म-स्वरूप का भजन-कीर्तन ही हम ससारी जीवो के लिए अपने

आत्मा का अनुभव और मनन है। हम 'सोऽहं' की भावना द्वारा उसे अपने जीवन मे उतार सकते है और उन्ही के—अथवा परमात्मा-स्वरूप के—आदर्श को सामने रख कर अपने चरित्र का गठन करते हुए अपने आत्मीय गुणो का विकास सिद्ध करके तद्रूप हो सकते है। इस सब अनुष्ठान मे उन सिद्धात्माओ की कुछ भी गरज नही होती और न इसपर उनकी कोई प्रसन्नता ही निर्भर है—यह सब साधना अपने ही उत्थान के लिये की जाती है। इसीसे सिद्धि (स्वात्मोपलब्धि) के साधनो मे 'भक्ति-योग' को एक मुख्य स्थान प्राप्त है जिसे 'भक्ति-मार्ग भी कहते है।

सिद्धि को प्राप्त हुए शुद्धात्माओ की भक्ति द्वारा आत्मोत्कर्ष साधने का नाम ही 'भक्ति-योग' अथवा 'भक्ति-मार्ग' है और भक्ति उनके गुणो में अनुराग को, तदनुकूल वर्त्तन को अथवा उनके प्रति गुणानुरागपूर्वक आदर-सत्कार रूप प्रवृत्ति को कहते है, जोकि शुद्धात्मवृत्ति की उत्पत्ति एव रक्षा का साधन है। स्तुति, प्रार्थना, वन्दना, उपासना, पूजा, सेवा, श्रद्धा और आराधना ये सब भक्ति के ही रूप अथवा नामान्तर हैं। स्तुति, पूजा, वन्दनादि के रूप मे इस भक्तिक्रिया को 'सम्यक्त्ववर्द्धिनी' क्रिया बतलाया है, 'शुभोपयोगि चारित्र' लिखा है और 'कृतिकर्म' भी लिखा है, जिसका अभिप्राय है 'पापकर्म-छेदन का अनुष्ठान'। सद्भक्ति के द्वारा औद्धत्य तथा अहकार के त्यागपूर्वक गुणानुराग बढने से प्रशस्त अध्यवसाय की—कुशल परिणाम की—उपलब्धि होती है और प्रशस्त अध्यवसाय अथवा परिणामो की विशुद्धि से सचित कर्म उसी तरह नाश को प्राप्त होता है, जिस तरह काष्ठ के एक सिरे मे अग्नि के लगाने से वह सारा ही काष्ठ भस्म हो जाता है। इधर सचित कर्मो के नाश से अथवा उनकी शक्ति के शमन से गुणावरोधक कर्मो की निर्जरा होती या उनका बल-क्षय होता है तो उधर उन अभिलषित गुणो का उदय होता है, जिससे आत्मा का विकास सधता है। इसीसे स्वामी समन्तभद्र जैसे महान् आचार्यों ने परमात्मा की स्तुति रूप मे इस भक्ति को कुशल परिणाम का हेतु बतलाकर इसके द्वारा श्रेयोमार्ग को सुलभ और स्वाधीन बतलाया है और अपने तेजस्वी तथा सुकृती आदि होने का कारण भी इसी को निर्दिष्ट किया है, और इसीलिये स्तुति-वन्दनादि के रूप मे यह भक्ति अनेक नैमित्तिक क्रियाओ मे ही नही, किन्तु नित्य की षट् आवश्यक क्रियाओ मे भी सम्मिलित की गई है, जोकि सब आध्यात्मिक क्रियाये है और अन्तर्दृष्टि पुरुषो (मुनियो तथा श्रावको) के द्वारा आत्मगुणो के विकास को लक्ष्य मे रखकर ही नित्य की जाती है और तभी वे आत्मोत्कर्ष की साधक होती है। अन्यथा, लौकिक लाभ पूजा-प्रतिष्ठा, यश, भय, रूढि आदि के वश होकर करने से उनके द्वारा प्रशस्त अध्यवसाय नही बन सकता और न प्रशस्त अध्यवसाय के बिना सचित पापो अथवा कर्मो का नाश होकर आत्मीय गुणो का विकास ही सिद्ध किया जा सकता है। अतः इस विषय मे लक्ष्य शुद्धि एव भाव शुद्धि पर दृष्टि रखने की खास जरूरत है, जिसका सम्बन्ध विवेक से है। बिना विवेक के कोई भी क्रिया यथेष्ट फलदायक नही होती, और न बिना विवेक की भक्ति सद्भक्ति ही कहलाती है।

स्वामी समन्तभद्र का यह स्वयम्भूग्रन्थ 'स्तोत्र' होने से स्तुतिपरक है और इसलिये भक्तियोग की प्रधानता को लिये हुए है, इसमे सन्देह के लिये कोई स्थान नही है। सच पूछिये तो जबतक किसी मनुष्य का अहकार नही मरता तबतक उसके विकास की भूमिका ही तय्यार नही होती। बल्कि पहले से यदि कुछ विकास हुआ भी हो तो वह भी 'किया कराया सब गया जब आया हुंकार' की लोकोक्ति के अनुसार जाता रहता अथवा दूषित हो जाता है। भक्तियोग से अहकार मरता है, इसी से विकास-मार्ग मे सबसे पहले भक्तियोग को अपनाया गया है और इसी से स्तोत्र-ग्रन्थो के रचने मे समन्तभद्र प्राय. प्रवृत्त हुए जान पडते है। आप्त पुरुषो अथवा विकास को प्राप्त शुद्धात्माओ के प्रति आचार्य समन्तभद्र कितने विनम्र थे और उनके गुणो मे कितने अनुरागी थे यह उनके स्तुति-ग्रन्थो से भले प्रकार जाना जाता है। उन्होने स्वय स्तुति-विद्या मे अपने विकास का प्रधान श्रेय भक्तियोग को दिया है (प०११४) भगवान जिनदेव के स्तवन को भव-वन को भस्म करनेवाली अग्नि लिखा है, उनके स्मरण को क्लेश समुद्र से पार करने वाली नौका बतलाया है (प० ११५) और उनके भजन को लोह से पारस मणि के स्पर्श समान बतलाते हुए यह

घोषित किया है कि उसके प्रभाव से मनुष्य विशद ज्ञानी होता हुआ तेज को धारण करता है और उसका वचन भी सारभूत हो जाता है (९०)।

अब देखना यह है कि प्रस्तुत स्वयम्भू ग्रन्थ मे भक्तियोग के अगस्वरूप 'स्तुति' आदि के विषय मे क्या कुछ कहा गया है और उनका क्या उद्देश्य, लक्ष्य अथवा हेतु प्रकट किया है।

लोक मे 'स्तुति' का जो रूप प्रचलित है उसे बतलाते हुए और वैसी स्तुति करने मे अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए स्वामी जी लिखते हैं—

गुण-स्तोकं सदुल्लङ्घ्य तद्बहुत्व-कथा स्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तु मशक्यास्त्वयि सा कथम् ॥८६॥
तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामाऽपि कीर्तितम् ॥
पुनाति पुण्यकीर्ते नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥८७॥

अर्थात् 'विद्यमान गुणो की अल्पता को उल्लङ्घन करके जो उनके बहुत्व की कथा की जाती है—उन्हे बढा-चढाकर कहा जाता है—उसे लोक मे 'स्तुति' कहते है। यह स्तुति (हे जिन !) आप मे कैसे बन सकती है ? नहीं बन सकती। क्योकि आपके गुण अनन्त होने से से पूरे तौर पर कहे ही नहीं जा सकते है—बढा-चढाकर कहने की तो बात ही दूर है। फिर भी आप पुण्यकीर्ति मुनीन्द्र का चूंकि नाम कीर्त्तन भी—भक्तिपूर्वक नाम का उच्चारण भी —हमे पवित्र करता है, इसलिये हम आपके गुणो का कुछ—लेशमात्र—कथन (यहा) करते हैं।'

इससे प्रकट है कि समन्तभद्र की जिन-स्तुति यथार्थता का उल्लङ्घन करके गुणो को बढा-चढाकर कहने वाली लोकप्रसिद्ध स्तुति जैसी नहीं है, उसका रूप जिनेन्द्र के अनन्त गुणो मे से कुछ गुणो का अपनी शक्ति के अनुसार आशिक कीर्त्तन करना है। और उसका उद्देश्य अथवा लक्ष्य आत्मा को पवित्र करना। आत्मा का पवित्रीकरण पापो के नाश से—मोह, कषाय तथा राग-द्वेषादिक के अभाव से होता है। जिनेन्द्र के पुण्यगुणो का स्मरण एव कीर्त्तन आत्मा की पाप परिणति को छुड़ा कर उसे पवित्र करता है, इस बात को निम्न कारिका मे व्यक्त किया गया है—

न पूजार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ ! विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्य-गुण-स्मृतिर्नः पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥५७॥

इसी कारिका मे यह भी बतलाया गया है कि पूजा-स्तुति से जिनदेव का कोई प्रयोजन नहीं है, क्योकि वे वीतराग हैं—राग का अश भी उनके आत्मा मे विद्यमान नहीं है, जिससे किसी की पूजा, भक्ति या स्तुति पर वे प्रसन्न होते। वे तो सच्चिदानन्दमय होने से सदा ही प्रसन्नस्वरूप है, किसी की पूजा आदिक से उनमे नवीन प्रसन्नता का कोई सञ्चार नहीं होता। इसलिये उनकी पूजा, भक्ति या स्तुति का लक्ष्य उन्हे प्रसन्न करना तथा उनकी प्रसन्नता द्वारा अपना कोई कार्य सिद्ध करना नहीं है और न वे पूजादिक से प्रसन्न होकर या स्वेच्छा से किसी के पापो को दूर करने मे प्रवृत्त होते है, बल्कि उनके पुण्य-गुणो के स्मरणादि से पाप स्वय दूर भागते है, और फलतः पूजक या स्तुतिकर्त्ता की आत्मा मे पवित्रता का सञ्चार होता है। इसी बात को और अच्छे शब्दो मे निम्न कारिका द्वारा स्पष्ट किया गया है—

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः।
किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायसपथे,
स्तुयान्नत्वा विद्वान्सततमपि पूज्यं नमिजिनम् ॥

इसमे बतलाया है कि 'स्तुति के समय और स्थान पर स्तुत्य चाहे मौजूद हो या न हो और फल की प्राप्ति भी चाहे सीधी (Direct) उसके द्वारा होती हो या न होती हो, परन्तु आत्म-साधना मे तत्पर साधु स्तोता की विवेक के साथ भक्ति-भावपूर्वक स्तुति करने वाले की स्तुति-कुशल परिणाम की पुण्यप्रसाधक या पवित्रताविधायक शुभ भावो की कारण जरूर होती है, और वह कुशल परिणाम अथवा तज्जन्य पुण्यविशेष श्रेय फल का दाता है। जब जगत् मे इस तरह से स्वाधीनता से श्रेयोमार्ग सुलभ है—स्वय प्रस्तुत की गई अपनी स्तुति के द्वारा प्राप्त है—तब हे सर्वदा अभि पूज्य नाम जिन ! ऐसा कौन विद्वान्—परीक्षापूर्वकारी अथवा विवेकी जन—है, जो आपकी स्तुति न करे ? करे ही करे।

अनेक स्थानो पर समन्तभद्र ने जिनेन्द्र की स्तुति करने मे अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए अपने का अज्ञ (१५), बालक (३०) अल्पधी (५६) के रूप मे उल्लेखित किया है। परन्तु एक स्थान पर तो उन्होंने अपनी भक्ति तथा विनम्रता की पराकाष्ठा ही करदी है, जब इतने महान् ज्ञानी होते हुए इतनी प्रौढ स्तुति रचते हुए भी वे लिखते है—

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम प्रलाप-लेशोऽल्पमतेर्महामुने !
अशेष-माहात्म्यमनीरयन्नपि शिवाय संस्पर्श इवाऽमृताम्बुधे. ॥७७॥

(हे भगवन्) आप ऐसे है, वैसे है—आपके ये गुण हैं, वे गुण है—इस प्रकार स्तुति रूप मे मुझ अल्पमति का—यथावत् गुणो के परिज्ञान से रहित स्तोता का—यह थोडा सा प्रलाप है। (तब क्या यह निष्फल होगा ? नहीं।) अमृत समुद्र के अशेष माहात्म्य को न जानते और न कथन करते हुए भी जिस प्रकार उसका सस्पर्श कल्याणकारक होता है उसी प्रकार हे महामुने ! आपके महात्म्य को न जानते और न कथन करते हुए भी मेरा यह थोडा सा प्रलाप आपके गुणो का सस्पर्श रूप होने से कल्याण का ही हेतु है।'

इससे जिनेन्द्र गुणो का स्पर्शमात्र थोडा सा अधूरा कीर्त्तन भी कितना महत्व रखता है, यह स्पष्ट जाना जाता है।

जब स्तुत्य पवित्रात्मा, पुण्य-गुणो की मूर्ति और पुण्य-कीर्त्ति हो, तब उसका नाम भी, जो प्राय. गुण प्रत्यय होता है, पवित्र होता है और इसी लिये ऊपर उद्धृत ८७वी कारिका मे जिनेन्द्र के नाम कीर्तन को भी पवित्र करने वाला लिखा है तथा नीचे की कारिका मे अजित जिन की स्तुति करते हुए, उनके नाम को 'परम-पवित्र' बतलाया है और लिखा है कि आज भी अपनी सिद्धि चाहने वाले लोग उनके परम पवित्र नाम को मङ्गल के लिये—पाप को गालने अथवा विघ्नबाधाओ को टालने के लिये—बडे आदर के साथ लेते हैं—

अद्यापि यस्याऽजितशासनस्य सतां प्रणेतु प्रतिमङ्गलार्थम्।
प्रगृह्यते नाम परमपवित्रं स्वसिद्धि-कामेन जनेन लोके ॥ ७ ॥

जिन अर्हन्तो का नाम-कीर्तन तक पापो को दूर करके आत्मा को पवित्र करता हे, उनके शरण मे पूर्ण हृदय से प्राप्त होने का तो फिर कहना ही क्या है—वह तो पाप-ताप को और भी अधिक शान्त करके आत्मा को पूर्ण निर्दोष एव सुख-शान्तिमय बनाने मे समर्थ है। इसीसे स्वामी समन्तभद्र ने अनेक स्थानो पर 'ततस्त्व निर्मोहशरण-मसि नः शान्तिनिलयः' (१२०) जसे वाक्यो के साथ अपने को अर्हन्तो की शरण मे अर्पण किया है। यहा इस विषय का एक खास वाक्य उद्धृत किया जाता है, जो शरण-प्राप्ति मे कारण के भी स्पष्ट उल्लेख को लिए हुए है—

स्वदोष-शान्त्या विहितात्म-शान्ति' शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भव-क्लेश-भयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्य ॥

इसमे बतलाया है कि 'वे भगवान् शान्ति' जिन मेरे शरण्य है—मै उनकी शरण लेता हूँ—जिन्होने

अपने दोषो की—अज्ञान, मोह, तथा राग-द्वेष, काम, क्रोधादि विकारो की शान्ति करके आत्मा मे परम शान्ति स्थापित की है—पूर्ण सुखस्वरूपा स्वाभाविकी स्थिति प्राप्त की है—और इसलिये जो शरणागतो की शान्ति के विधाता है—उनमे अपने आत्मप्रभाव से दोषो की शान्ति करके शान्ति-सुख का सञ्चार करने अथवा उन्हे शान्ति-सुखरूप परिणत करने मे सहायक एव निमित्तभूत हैं। अतः (इस शरणागति के फलस्वरूप) वे शान्ति जिन मेरे ससार परिभ्रमण का अन्त और सासारिक क्लेशो तथा भयो की समाप्ति मे कारणीभूत होवे।'

यहा शान्ति जिन को शरणागतो की शान्ति का जो विधाता (कर्त्ता) कहा है, उसके लिये उनमे किसी इच्छा या तदनुकूल प्रयत्न के आरोप की जरूरत नहीं है, वह कार्य्य उनके 'विहितात्मशान्ति' होने से स्वय ही उस प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार कि अग्नि के पास जाने से गर्मी का और हिमालय के पास या किसी शीतप्रधान प्रदेश के पास पहुँचने से सर्दी का सञ्चार अथवा तद्रूप परिणमन स्वय हुआ करता है और उसमे उस अग्नि या हिममय पदार्थ की इच्छादिक जैसा कोई कारण नही पडता। इच्छा तो स्वय एक दोष है और वह उस मोह का परिणाम है, जिसे स्वय स्वामीजी ने इस ग्रन्थ मे 'अनन्त दोषाशय-विग्रह' (६६) बतलाया है। दोषो की शान्ति होजाने से उसका अस्तित्व ही नही बनता और इसलिये अर्हन्त देव मे बिना इच्छा तथा प्रयत्नवाला कर्तृत्व सुघटित है। इसी कर्तृत्व को लक्ष्य मे रखकर उन्हे शान्ति के विधाता कहा गया है—इच्छा तथा प्रयत्नवाले कर्तृत्व की दृष्टि से वे उसके विधाता नहीं हैं। इस तरह कर्तृत्व-विषय मे अनेकान्त चलता है—सर्वथा एकान्त पक्ष जैन शासन मे ग्राह्य ही नहीं है।

यहाँ प्रसङ्गवश इतना और भी बतला देना उचित जान पडता है कि उक्त पद्य के तृतीय चरण मे सासारिक क्लेशो तथा भयो की शान्ति मे कारणीभूत होने की जो प्रार्थना की गई है, वह जैनी प्रार्थना का मूल रूप है, जिसका और भी स्पष्ट दर्शन नित्य की प्रार्थना मे प्रयुक्त निम्न प्राचीनतम गाथा मे पाया जाता है—

दुक्ख-खओ कम्म-खओ समाहि-मरणंच बोहि-लाहो वि।
मम होदु जगद्बंधव ! तव जिणवर चरण-सरणेन ॥

इसमे जो प्रार्थना की गयी है उसका रूप यह है कि—हे जगत् के (निर्निमित) बन्धु जिनदेव ! आपके चरण-शरण के प्रसाद से मेरे दु.खो का क्षय, कर्मो का क्षय, समाधिपूर्वक मरण और बोधिका-सम्यग्दर्शनादिका—लाभ होवे।' और इससे यह प्रार्थना एक प्रकार से आत्मोत्कर्ष की भावना है और इस बात को सूचित करती है कि जिनदेव की शरण प्राप्त होने से—प्रसन्नतापूर्वक जिनदेव के चरणो का आराधन करने से—दुःखो का क्षय और कर्मों का क्षयादिक सुख-साध्य होता है। यही भाव समन्तभद्र की प्रार्थना का है, इसी भाव को लिये हुए ग्रन्थ मे दूसरी प्रार्थनाए इस प्रकार है—

"मति-प्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ !" (२५)
"मम भवताद् दुरितासनोदितम्" (१०५)
"भवतु ममाऽपि भवोपशान्त्यै" (११५)

परन्तु ये ही प्रार्थनाएं जब जिनेन्द्र देव को साक्षात् रूप मे कुछ करने-कराने के लिये प्रेरित करती हुई जान पडती है, तो वह अलङ्कृतरूप को धारण किये हुए होती है। प्रार्थना के इस अलंकृतरूप को लिए हुये जो वाक्य प्रस्तुत ग्रन्थ मे पाये जाते है, वे निम्न प्रकार है—

१. पुनातु चेतो मम नाभिनन्दन. (५)
२. जिन श्रियं मे भगवान् विधत्ताम् (१०)
३. ममाऽऽर्य देयाः शिवतातिमुच्चैः (१५)

४ पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे (४०)

५. श्रेयसे जिन वृष ! प्रसीदनः (७५)

ये ही सब प्रार्थनाए चित्त को पवित्र करने, जिनश्री तथा शिवताति को देने और कल्याण करने की याचना को लिए हुए है। आत्मोत्कर्ष एव आत्मविकास को लक्ष्य करके की गयी है, इनमे असंगतता तथा असभाव्य जैसी कोई बात नही है—सभी जिनेन्द्रदेव के सम्पर्क तथा शरण मे आने से स्वय सफल होने वाली अथवा भक्ति-उपासना के द्वारा सहज साध्य हैं—और इसलिए अलकार की भाषा मे की गई एक प्रकार की भावनाये ही है। इनके मर्म को अनुवाद मे स्पष्ट किया गया है। वास्तव मे परम वीतराग देव से विवेकी जन की प्रार्थना का अर्थ ही देव के समक्ष अपनी भावना को व्यक्त करना है अर्थात् यह प्रकट करना है कि वह आपके चरण-शरण एव प्रभाव मे रहकर और कुछ पदार्थ-पाठ लेकर आत्म-शक्ति को जाग्रत एव विकसित करता हुआ अपनी उस इच्छा, कामना या भावना को पूरा करने मे समर्थ होना चाहता है। उसका यह आशय कदापि नहीं होता कि वीतराग देव भक्तकी प्रार्थना से द्रवीभूत होकर अपनी इच्छाशक्ति एव प्रयत्नादि को काम मे लाते हुए स्वय उसका कोई काम कर देंगे अथवा दूसरो से प्रेरणादिक के द्वारा करा देंगे। ऐसा आशय असम्भाव्य को सम्भाव्य बनाने जैसा है और देव-स्वरूप से अनभिज्ञता व्यक्त करता है। अस्तुः प्रार्थनाविषयक विशेष ऊहापोह स्तुति-विद्या की प्रस्तावना मे "वीतराग से प्रार्थना क्यो ?" इस शीर्षक के नीचे किया गया है और इसलिये उसे वहीं से जानना चाहिये।

इस तरह भक्तियोग मे, जिसके स्तुति, पूजा, वन्दना, आराधना, शरणागति, भजन-स्मरण और नाम कीर्तनादि अग है, आत्म-विकास मे सहायक है। इसलिये जो विवेकी जन अथवा बुद्धिमान पुरुष आत्मविकास के इच्छुक तथा अपना हित-साधन मे सावधान हैं, वे भक्तियोग का आश्रय लेते है। इसी बात को प्रदर्शित करनेवाले ग्रन्थ के कुछ वाक्य इस प्रकार हैं—

१. इति प्रभो ! लोक-हितं मतो मतं ततो भवानेव गतिः सतां मतः (२०)

२. ततः स्वनिश्रेयस-भावना-परैर्बुधप्रवेकैःजिन जिन शीतलेड्यसे (५६)।

३. ततो भवन्तमार्या प्रणताहितैषिणः (६५)।

४. तस्माद्भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः,
स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकतानाः (८५)।

५. स्वार्थ-नियत-मनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षयः (१२४)!

स्तुति विद्या मे तो बुद्धि उसी को कहा है जो जिनेन्द्र का स्मरण करती हैं, मस्तक उसी को बतलाया है जो जिनेन्द्र के पदो मे नत रहता है, सफल जन्म उसी को घोषित किया है जिसमे ससार परिभ्रमण को नष्ट करनेवाले जिन चरणों का आश्रय लिया जाता है, वाणी उसी को माना है जो जिनेन्द्र का स्तवन (गुण कीर्त्तन) करती है, पवित्र उसी को स्वीकार किया जो जिनेन्द्र के मत मे रत है और पण्डित-जन उन्हीं को अगीकार किया है जो जिनेन्द्र के चरणो मे सदा नम्रीभूत रहते है। (११३)

इन्हीं सब बातो को लेकर स्वामी समन्तभद्र ने अपने को अर्हज्जिनेन्द्र की भक्ति के लिये अर्पण कर दिया था। उनकी इस भक्ति के ज्वलन्त रूप का दर्शन स्तुति विद्या के निम्न पद्य मे होता है, जिसमे वे वीरजिनेन्द्र को लक्ष्य करके लिखते है— हे भगवन्! आपके मत मे अथवा आपके विषय मे मेरी सुश्रद्धा है—अन्ध श्रद्धा नहीं, मेरी स्मृति भी आपको ही अपना विषय बनाये हुए है—सदा आपका ही स्मरण किया करती है, मै पूजन भी आपका ही करता हूँ, मेरे हाथ आपको ही प्रणामाञ्जलि करने के निमित्त है, मेरे कान आपकी ही गुण-कथाओं को सुनने मे लीन रहते है, मेरी आँखे आपके सुन्दर रूप को देखा करती है, मुझे जो व्यसन है वह भी आपकी सुन्दरस्तुतियो के

रचने का है और मेरा मस्तक भी आपको ही प्रणाम करने मे तत्पर रहता है। इस प्रकार चूकि मेरी सेवा है—मैं निरन्तर ही आपकी इस तरह आराधना करता हूँ—इसलिये हे तेजःपते ! (केवल-ज्ञान स्वामिन् !) मै तेजस्वी हूँ, सुजन हूँ और सुकृती (पुण्यवान) हूँ —

सुश्रद्धा मम ते मते स्मृतिरपि त्वय्यर्चनं चाऽपि ते ।
हस्तावञ्जलये कथा-श्रुतिरत कर्णोऽक्षि सम्प्रेक्षते ॥
सुस्तुत्यां व्यसनं शिरोनतिपरं सेवेदृशी येन ते ।
तेजस्वी सुजनोऽहमेव सुकृती तेनैव तेजःपते ॥११४॥

यहा सबसे पहले सुश्रद्धा की बात कही गई है, वह बडे महत्व की है और अगली सब बातो अथवा प्रवृत्तियो की जान—प्राण—जान पडती है। इससे जहा यह मालूम होता है कि समन्तभद्र जिनेन्द्रदेव तथा उनके शासन (मत) के विषय मे अन्ध-श्रद्धालु नही थे, वहाँ यह भी जाना जाता है कि भक्ति योग मे अन्ध श्रद्धा का ग्रहण नही है—उसके लिये सुश्रद्धा चाहिये, जिसका सम्बन्ध विवेक से है। समन्तभद्र ऐसी ही विवेकवी श्रद्धा से सम्पन्न थे। अन्धी भक्ति वास्तव मे उस फल को फल ही नहीं सकती, जो भक्तियोग का लक्ष्य और उद्देश्य है।

इसी भक्त्यर्पणा की बात को प्रस्तुत ग्रन्थो मे एक दूसरे ही ढग से व्यक्त किया गया है—और वह इस प्रकार है—

अतएव ते बुधनुतस्य चरित-गुणमद्भुतोदयम् ।
न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयम् ॥ १३० ॥

इस वाक्य मे स्वामी समन्तभद्र यह प्रकट करते है कि हे बुधजन स्तुत जिनेन्द्र ! आपके चरित गुण और अद्भुत उदय को न्याय-विहित—युक्तियुक्त—निश्चय करके हम बडे प्रसन्नचित्त से आप मे स्थित हुए है—आपके भक्त बने है और हमने आपका आश्रय लिया है।'

इससे साफ़ जाना जाता है कि समन्तभद्र ने जिनेन्द्र के चरित-गुण की और केवल ज्ञान तथा समवसरणादि विभूति के प्रादुर्भाव को लिए हुए अद्भुत उदय की जाँच की है—और उन्हे न्याय की कसौटी पर कसकर ठीक एवं युक्ति-युक्त पाया है तथा अपने आत्मविकास के मार्ग मे परम सहायक समझा है, इसीलिये वे पूर्ण हृदय से जिनेन्द्र के भक्त बने है और उन्होने अपने को उनके चरण-शरण मे अर्पण कर दिया है। अतः उनकी भक्ति मे कुलपरम्परा, रूढिपालन और कृत्रिमता (बनावट-दिखावट) जैसी कोई बात नहीं थी—वह एकदम शुद्ध विवेक से चालित थी और ऐसा ही भक्तियोग मे होना चाहिए।

हाँ, समन्तभद्रका भक्ति-मार्ग, जो उनके स्तुति-ग्रन्थो से भले प्रकार जाना जाता है, भक्ति के सर्वथा एकान्त को लिए हुए नही है। स्वय समन्तभद्र भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग-तीनो की एक मूर्ति बने हुए थे—उनमे से किसी एक ही योग के एकान्त पक्षपाती नही थे । निरी या कोरी एकान्तता तो उनके पास तक नही फटकती थी। वे सर्वथा एकान्तवाद के सख्त विरोधी थे और उसे वस्तुतत्व नही मानते थे । उन्होने जिन खास कारणो से अर्हज्जिनेन्द्र को अपनी स्तुति के योग्य समझा और उन्हे अपनी स्तुति का विषय बनाया है, उनमे उनके द्वारा, एकान्त दृष्टि के प्रतिषेध की सिद्धिरूप न्यायवाण भी एक कारण है। अर्हन्त देव अपने इन एकान्तदृष्टि-प्रतिषेधक अमोघ न्याय-वाणो से—तत्वज्ञान के सम्यक्-प्रहारो से—मोहशत्रु का अथवा मोह की प्रधानता को लिए हुए ज्ञानावरणादिरूप शत्रु-समूह का नाश करके कैवल्य विभूति के—सम्राट् हुए है, इसीलिये समन्तभद्र उन्हे लक्ष्य करके प्रस्तुत ग्रन्थ के निम्न वाक्य मे कहते हैं कि 'आप मेरी स्तुति के योग्य है—

एकान्त दृष्टि-प्रतिषेध-सिद्धि-न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य ।

अस्मिन् कैवल्यविभूति-सम्राट् ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवार्हः ॥५५॥

इससे समन्तभद्र की परीक्षाप्रधानिता, गुणज्ञता और परीक्षा करके सुभद्रा के साथ भक्ति मे प्रवृत्त होने की बात और भी स्पष्ट हो जाती है। साथ ही यह भी मालूम हो जाता है कि जब तक एकान्त दृष्टि बनी रहती है तब तक मोह नहीं जीता जाता, जब तक मोह नहीं जीता जाता तब तक आत्म-विकास नहीं बनता और न पूज्यता की ही प्राप्ति होती है। मोह को उन न्याय-बाणों से जीता जाता है जो एकान्त दृष्टि के प्रतिषेध को सिद्ध करने वाले है—सर्वथा एकान्त दृष्टिदोष को मिटाकर अनेकान्त दृष्टि की प्रतिष्ठारूप सम्यग्दृष्टित्व का आत्मा मे सञ्चार करने वाले है। इससे तत्वज्ञान और तत्त्व श्रद्धानका महत्व सामने आजाता है, जो अनेकान्त दृष्टि के आश्रित है, और इसी से समन्तभद्र भक्तियोग के एकान्त पक्षपाती नहीं थे। इसी तरह ज्ञानयोग तथा कर्मयोग के भी वे एकान्त पक्षपाती नहीं थे—एक का दूसरे के साथ अकाट्य सम्बन्ध मानते थे।

अहिंसा

लेखक—महात्मा भगवानदीनजी

अहिंसा मे, अहिंसा के व्रत मे, आदमी को इतनी कठिनाई क्यो ? कोई भले ही यह समझे कि जीव का आधार जीव है, इसलिये अहिंसा का व्रत किसी तरह नही पाला जा सकता। फिर भी उसे किसी न किसी रूप मे अहिंसा-व्रत का सहारा लेना ही पडता है। अहिंसा-व्रत को समझने के लिये हम कभी कभी बिलकुल दूसरी तरफ चले जाते है। अहिंसा-व्रत के सम्बन्ध मे यह खोज करने बैठ जाना कि आदमी जन्म से आमिष भोजी है या निरामिष भोजी, एकदम अहिंसा से दूर पड जाना है। खोज तो हमे यह करनी चाहिए कि आदमी जन्म से हिंसक है या अहिंसक। अगर हमारी खोज से यह साबित हो जाय कि आदमी जन्म से हिंसक है, तब भी इसका यह नतीजा नही निकाला जा सकता कि हिंसक होने के नाते उसे आमिषभोजी नही होना चाहिये या अहिंसक होने के नाते उसे निरामिषभोजी होना चाहिए। जब भी हम इस तरह की खोज करने बैठते है, तो हमारी जाच की कसौटी होती है प्रकृति। प्रकृति के पास हम सीधे तो पहुँच नही सकते। हमे उस तक पहुँचना पड़ता है उन प्राणियो के रास्ते, जिनके बारे मे यह कहा जाता है कि वे प्राकृतिक जीवन बिता रहे हैं। आइये उन प्राणियो तक चले।

प्रकृति का रूप

हाथी, घोडा, सुअर अपने बचाव की खातिर आदमी को ही नही मार डालते और जानवरो को भी मार डालते है। इसलिए यह तो मानना ही पडेगा कि यह तीनो जन्म से हिंसक हैं। पर यह आमिषभोजी तो नही है। जन्म से हिंसक होना आमिषभोजी होने का सबूत नही हो सकता। ठीक इसी तरह से जन्म से आमिषभोजी होना हिंसक होने का सबूत नही हो सकता। गिद्ध जन्म से आमिषभोजी है। पर, वह न हिंसक है, न जानवरो का शिकार करता फिरता है।

अगर इस बात पर गहराई से विचार किया जाय, तो हम इस नतीजे पर पहुँचेगे कि आदमी जन्म से हिंसक है। पर, जन्म से न आमिषभोजी है और न शिकारी। आमिषभोजी और शिकारी उसे उस सभ्यता ने बनाया, जिसके आज बेहद गीत गाए जाते है। मानव समाज अपने बचपन मे जब भी हिंसा पर उतारू होता था, तब उसकी नीव अपनी जान बचाने की होती थी। न कि अपनी मारने की इच्छा का पूरा करना। आज मनुष्य प्राकृतिक नही रह गया। इस लिए आज उस मे जो शिकार की और मास भोजन की इच्छा होती है, उसकी तह मे न कोई सद्भाव रहता है और न कोई बचाव। इस लिये आज का शिकार और मांस भोजन ऐसा नही रह गया कि उसे यूंही उडा दिया जाय। उस पर खूब सोचने की जरूरत है और गहरे जानने की भी जरूरत है।

आज का मानव समाज

आम लोगो ने मानव समाज को दो हिस्सो मे बाट रखा है, एक जंगली, दूसरे शहरी। फिर शहरी भी दो तरह के होते है, एक ग्रामीण और दूसरे नागरिक। आम तौर से हम जगली उन को कहते है, जो पूरे पूरे तो नही,

पर बहुत अंशो मे प्राकृतिक जीवन बिता रहे हैं, जो नगे या अध-नगे रहते है, कच्चे-पक्के फल खा लेते हैं, खुले आसमान के नीचे सोते हैं, और जानवरो का शिकार करते हैं और जाडे गर्मी से बचने के लिए मकान तो बनते हैं, पर उन्हें आदमियो के घोसले कहा जाये या आदमी के भिट का नाम दिया जाए , तो बेजा न होगा। पूरा-पूरा प्रकृति का जीवन नही बिताते। थोड़े प्रकृति से हट कर सभ्य भी हो गये हैं और सभ्यता के नाते इन के शिकार मे से आत्म-रक्षा या आत्म-जनों की रक्षा का भाव इतना नही रह गया, जितना शिकार का आनन्द और खुराक की पूर्ति। हमारी राय मे शुरू का आदमी आमिषभोजी नही होना चाहिए । आमिष भोजन की बात उसे बहुत बाद में सूझी और वह तब सूझी जब सभ्यता ने उस के दिल मे यह सवाल उठाया कि हे आदमी, तू जानवरो को बेमतलब क्यो मारता है ? इन को खाने के काम में क्यो नही लाता ? हो सकता है सभ्यता के सवाल या हुक्म की फरमाबरदारी आदमी ने ऐसे वक्त की हो, जब आस पास या दूर तक किसी वजह से उसे फल या अनाज जुटाने के लिये कोई साधन न दीख पडते हों।

यह हम एक बहुत बडी बात कह गये और इस बात की सच्चाई हम किसी के लिखे इतिहास से नहीं कर सकते। फिर आज कल के विद्वान् हमारी इस बात को अपने गले क्यो उतारने लगे। हम भी यह बात कुछ यो ही नही कह बैठे है । जिन पाच बातो की धर्म मे गिनती है, यानी सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और असग्रह यह हम जितनी ज्यादा जगलियो यानी अधनगे आदमियो मे पाते हैं, उतनी शहरियो और कपडो से लदो मे नही पाते। जगली आदमी बहुत कम झूठ बोलता है, बहुत कम हिंसा करता है, बहुत कम चोरी करता है, बहुत कम संग्रह करता है और बहुत ज्यादा ब्रह्मचारी रहता है। इस मामले मे जो कमिया उस मे पाई जाती हैं, वे सिर्फ इस वजह से हैं, कि उसे शहरियो से मिलने जुलने के नाते सभ्यता देवी से कभी-कभी दो-चार हो जाना पडता है और वह देवी इतनी देर मे उसके प्राकृतिक जीवन मे कुछ न कुछ अप्राकृतिकता शामिल कर ही देती है।

हमारा ख्याल और हमारी खोज का तो यह नतीजा है कि आदमी का हर बच्चा जन्म से अहिंसक भले ही न हो, पर सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य व्रत लिये होता है। अहिंसक न होने की बात हमने इस लिये कह दी है कि अपने बचाव के लिये हर प्राणी जन्म से हिंसक ही होता है। वैसा हिंसक होना इतना ज्यादा बुरा नहीं हैं, जितना सभ्यता देवी से नाता जोड कर हिंसक होना। यह किसको नही मालूम कि "पिताजी कहते है कि पिताजी घर पर नही है" कहलवा कहलवा कर बच्चे को झूठ का पाठ पढाया जाता है। अगर जरूरत से ज्यादा सग्रह करना और जरूरत से ज्यादा खा जाना या किसी को दु:ख पहुँचाने की नीयत से उसकी चीज को बिना पूछे ले लेना चोरी है, तो बच्चा कभी चोरी नहीं करता । असग्रही तो वह इतना पक्का है कि प्यारी से प्यारी खाने की चीज को पेट भरने के बाद किसी को भी दे डालता है और अगर दिल की सफाई व ममत्व की कमी ब्रह्मचर्य है, तो बालक जसा ब्रह्मचारी शायद ही कोई मिले। यह सुन कर किसी के मन मे शका पैदा हो सकती है और वह पूछ सकता है कि उस ने कई बच्चो को झूट बोलते, चोरी करते, सग्रह करते और मन के खोटे पाया है। उस के जवाब मे हम यही कहेंगे कि यह सब उसने सोहबत से पाया है और सभ्यता देवी के दासो या मालिको की सोहबत से पाया है।

अहिंसा के सम्बन्ध मे इस शका को भी निवारण कर दिया जाय कि हिंसा मे नकारात्मक 'अ' लगा कर अहिसा शब्द क्यो तय्यार किया गया? क्या अहिंसा की जगह प्रेम या प्यार शब्द से काम नही चल सकता था या प्रेम प्यार जैसा कोई और शब्द नहीं लगाया जा सकता था ? यह शका बेशक ठीक है। पर अव्वल तो अहिंसा शब्द का प्रचार और चाहे तो आप यह भी कह सकते है कि अहिसा शब्द का जन्म उस वक्त हुआ, जिस वक्त आदमी काफी सभ्य या सस्कृत हो चुका था और ज्ञान के आकाश मे ऊची ऊची उडान लगाने लगा था । ऐसे समय सोचे हुए शब्द के पीछे अगर कोई दूरअन्देशी छिपी हुई मिले, तो न अचरज की बात है, और न शक करने की जगह है।

प्रेम, राग और अहिंसा

प्रेम और राग दोनो मिलते-जुलते शब्द हैं । पर प्रेम द्वेष साथ-साथ बोले जाने का रिवाज नही है, रिवाज है राग द्वेष के साथ-साथ बोले जाने का । प्रेम सचमुच द्वेष रहित राग का दूसरा नाम है । पर, वैसा प्रेम कि ी प्राणी मे नहीं पाया जाता और आदमी मे तो उस का मिलना सम्भव ही नही । प्रेम आत्मा परमात्मा या आत्म-परमात्म गुणो से ही हो सकता है । इस लिये आज कल के रिवाज के प्रेम शब्द ने सोलहो आना राग के अर्थो की जगह ले ली है । यह ध्यान मे रख कर ही ऋषियो या समझदारो ने प्रेम को न अपना कर अहिंसा को ही अपनाया अहिसा की जगह अगर वह प्रेम बढ़ाने की बात कह जाते, तो राग बढता और राग और द्वेप एक ही विचारधारा के दो किनारे है । धारा के दोनो किनारे हमेशा बराबर के हुआ करते है । इसे चाहे, तो आप यूँ भी कह सकते हैं कि राग और द्वेप एक ही विचार-सिक्के के दो पहलू है । राग जितना ही बढेगा उतना ही द्वेष बढ़ेगा । द्वेष जितना घटेगा, उतना ही राग घटेगा । द्वेष का फल हिंसा है और राग का फल जड वस्तुओ का त्याग । जड वस्तु यानी तन-धन । इस खुलासे का यह नतीजा निकला कि अगर ऋषियो ने प्रेम यानी राग बढाने की बात कही होती, तो द्वेष बढता और उसी हिसाब से हिसा बढती । इसी को साफ-साफ यो समझ लीजिये कि जितना ज्यादा आप को अपने बेटे से राग होगा, उतना ही ज्यादा दूसरे के बेटे से द्वेष होगा । अमरीकी अमरीका के राग के धुन मे रूस देश से द्वेष अनजाने बढ़ाते चले जा रहे हैं । इसी तरह हर आदमी अपने घर और घरवालो से राग बढा कर दूसरो के घर और घरवालो से द्वेष अनजाने बढाता चला जाता है । इस बात को ध्यान मे रख कर ही ऋषियो ने यह नकारात्मक हुक्म देना ही ठीक समझा कि हिसा मत करो । जैसे-जैसे हिंसा कम होती जायगी, द्वेष कम होता जायगा, और द्वेष के कम होने से राग का कम होना जरूरी है । बस, इसलिये अहिसा शब्द के 'अ' पर शंका नही करनी चाहिये ।

हिंसा बनाम अहिंसा

दुनियादारो का ही नही बड़े बड़े समझदारो और संतो का भी यह कहना बताया जाता है कि आदमी हिसा से परहेज करता, तो आज उसका वश नाश हो गया होता । इस बात मे कुछ सच्चाई है । इसे हमे कोई जबरदस्ती ही मनवा सकता है, क्योकि वह यह कहकर यही तो कहना चाहता है कि अगर आदमी ने भेडियो, चीतो, शेरो, अजगरो और इसी तरह के और खूनखार जानवरो को न मारा होता, तो आज दुनियां के पर्दे पर आदमी नाम का प्राणी देखने को नही मिलता । पर जो यह कहते हैं, वे अपनी आखो यह क्यो नही देखते कि छोटे से छोटे बन्दर प्राणी से ले कर बडे-बडे हाथी प्राणी तक उन जगलो मे पाये जाते हैं, जहा शेर चीते काफी तादाद मे रहते हैं । यहा कोई यह सवाल खडा कर सकता है कि आदमी ने इनको मारने का काम न किया होता, तो बन्दर हाथी भी खतम हो चुके होते । इस के जवाब मे हम इतना ही कहेंगे कि अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में आज के दिन तक ऐसे जंगल मौजूद है, जहा आदमी तो क्या आदमी की परछाई भी नही पहुँच पाई है । वहां शेरो चीतो के रहते दूसरे जानवर भी मौजूद है । यह कह कर हम यह कहना चाहते हैं कि आज मानव वश अगर जीवित है और दुनियां के पर्दे पर फलता जाता है, तो इस जीते रहने और फैलाव में हिसा कारण नहीं, किन्तु मानव का मानव के लिये राग और प्रेम कारण है । मानव अपने वश को बचाये रखने के लिये शेर चीते का मुकाबला करते वक्त अपने कुटुम्ब, अपने गाँव, यहाँ तक कि अपने देश और धर्म को भूल जाता है । उस वक्त उस के दिमाग के सामने एक मानव जाति होती है । मानव जाति का यह चित्र उस की सभ्यता देवी का बनाया हुआ नही होता । उसे तो वह अपने साथ जन्म से लाया होता है । कुछ अशो मे इसी तरह का चित्र उन प्राणियो के भी सामने रहता है, जो जन्म से आमिषभोजी नहीं है जैसे हाथी, घोडा, नीलगाय, सूअर वगरह । ये प्राणी न तो आदमी जितने समझदार है और न विचारो को जाहिर करने और न बनाये रखने की कला जानते है । पर, जिन लोगो ने इन जानवरो को गौर से देखा है और उनकी

आदतो को पढने की कोशिश की है, उनका भी कहना है कि ये प्राणी भी जब किसी खू ख्वार जानवर का मुकाबला करते है, तो उनके सामने उस खू ख्वार जानवरो को मार डालने की इतनी बात नही रहती, जितनी अपनी या अपनो के बचाव की। हमने देखा तो नही पर सुना पढा जरूर है कि किस तरह गायो का झु ड एक गोल दायरा बनाकर उस वक्त अपने ग्वाले को बीच मे ले लेता है, जब कोई शेर जगल मे आ धमके। उनके बचाव की परेड किसी हिंसक को ऐसी दिखाई दे सकती है, मानो वे गाये शेर का शिकार करना चाहती है। उनका फूला हुआ बदन, उठी हुई पूछे और शेर की तरफ लिए हुए सींग और उनके चेहरे की आकृति भले ही किसी जल्दी नतीजा निकालने वाले के दिल मे कुछ की कुछ बन बैठे, पर असल मे उन गायो की नीयत अपने मालिक ग्वाले को बचाने के सिवाय और कुछ नहीं होती। अब अगर शेर आ ही टूटे और वह जानवर खेलकर अपने नुकीले सीगो से शेर की छाती फाड दें और शेर मर जाय, तो यह समझना कि गायो ने शेर की हिंसा की निरी भूल से भरी बात होगी । असल मे यह कहना निरी भाषा की भूल है कि गायो ने शेर का सीना फाड डाला। कहना यह चाहिये कि शेर का सीना उनके सीगो से फट गया। उनके सींग तो ग्वालो के बचाव के लिए ही शेर की तरफ उठे हुए थे। यही वजह है कि हाथी, घोडा, गाय, सुअर, वगैरह जानवर हिसा करते हुए भी अहिंसक गिने जाते है।

हिंसक और अहिसक प्राणियो पर अगर गहरी नजर डाली जाय, तो हिंसक और अहिंसक का भेद समझने मे बडी मदद मिलेगी। शेर, चीता, भेडिया, न भी सही, तो हममे से हर एक ने कुत्ते को जरूर देखा होगा कि वह किस तरह अपने बच्चे को शिकार करना सिखाता है। कुत्ता जब किसी चूहे, मुर्गी, या खरगोश को पकडना चाहता है, वह अपने पाव झुका लेता है और अगले पिछले पाव मामूल से ज्यादा लम्बाई कर देता है, बदन को सिकोड लेता है, पूछ को उठा लेता है और इतना चुपचाप हो जाता है कि वह कुत्ते का खिलौना बन जाता है और फिर जब शिकार उसकी पहुँच के अन्दर आ जाता है, तो वह एकदम उस पर टूट पडता है। यह टूट पडने का मुहावरा शिकारी जानवरो के लिये ही है । यह दूसरी बात है कि इस मुहावरे का उपयोग और जगह भी होने लगा है। चूहा और कबूतर पकडते हुए किसने बिल्ली को नहीं देखा, वह भी शिकार करने से पहले बिलकुल शात हो जाती है। धीरे धीरे पूछ हिलाती रहती है। अहिंसक प्राणी न शिकार करते है, न आमिषभोजी है। इसलिए उनको न शिकार के आसन मे बैठना आता है और न वैसी जरूरत है । इसमें शक नहीं कि अहिंसक प्राणी अपने बचाव की खातिर बडा भयानक रूप धारण कर लेते है, पर उस भयानक रुप मे भी इतनी हिंसा की भावना नही दिखाई देती, जितनी बचाव की।

प्राणियो को हिंसको और अहिसको मे बाट कर हम यह कहना चाहते है कि अहिसक प्राणी हिंसको से कई बात मे ऊचे है। समझदारी के लिहाज से हाथी घोडे का शेर से कोई मुकाबिला ही नही। हाँ, कुत्ता एक अनोखा जानवर है। उसकी समझदारी की कथाए ऐसी जरूर मिलती हैं, जिनको पढकर यह मालूम होता है कि समझदारी मे कुत्ते ने हाथी-घोडो को बहुत पीछे छोड दिया है। इसकी वजह यह है कि कुत्ता बरसो से नहीं, युगो से आदमी का साथी रहा है और सभ्य आदमी की शिकार मे मदद करता रहा है। यह हम पहले ही कह चुके है कि आदमी ने शिकार करना सभ्य हो कर सीखा। जगली हालत मे आदमी न शिकारी था, न कपडे पहनता था । इसके सबूत मे हम इतना ही कहेंगे कि घोडे आदमी के साथ फौज मे रह कर आमिषभोजी बन जाते है और हाथी आदमी की सौबत से शिकार करना सीख जाता है।

जीव की खुराक जीव है। इससे किसी को इन्कार नही। पर जीव जीव मे अन्तर है। जो आमिषभोजी है वे सब्जी और लट-गिराड जसे छोटे कीडो मे अन्तर करते है। सब्जी के सडे हुए हिस्से को अलग काट कर फेक देते है। कीडे पडे हुए दही को नही खाते। इस न खाने की वजह और भी हो सकती है। पर हम यहा इतना ही कहना चाहते

हैं कि शाक-सब्जी और चलने वाले छोटे से छोटे कीडे को वह एक ही नजर से नहीं देखते। चींटियो को शक्कर डालते हुए आमिषभोजियो को किसने नहीं देखा । पूरे-पूरे आमिषभोजी भी छोटे-छोटे कीडो और सब्जी के साथ एकसा बर्ताव नहीं करते। सब्जी को तोडते और उखाड़ते वह इतनी तकलीफ नहीं मानते,जितनी एक चींटी और मक्खी को मारते। दुश्मन की हैसियत से या छोटे प्राणियो को दुःखदाई समझ कर उनका बहुत बडी तादाद मे सहार कर डालना यह बिलकुल दूसरी बात है। उस सहार मे और शेर और भेडियो के सहार मे अन्तर तो होता है, पर सिर्फ अशो की। यही वजह है कि आमिषभोजी भी शाक भोजन को मासाहार नही कहते और क्रूर भावना के लिहाज से एक दूसरे मे बहुत बडा अन्तर मानते है।

आदमी स्वभाव से उस अहिसा की पूर्णता की तरफ बढ रहा है, जिसे लेकर वह जन्मा है। गाँधी जी के साथ एक मर्तबा उनके आश्रम मे रहने वाले पौलेड के इजिनियर ने उनसे यह कहा कि आदमी जब पूरा सभ्य बन जायगा, तो वह फल ही तोड कर खाया करेगा। गाधीजी ने तुरन्त जवाब दिया कि नहीं, नहीं, वह फल बीनकर खाया करेगा। इस बात का जिक्र हम यहां इसलिए कर रहे है कि आदमी स्वभाव से अहिसा की ओर बढ रहा है। अगर आदमी अहिसा की ओर नही बढेगा, तो और करेगा ही क्या ? आज भी बड़े बडे मुल्क, जिन्होने संहार के बडे-बड़े यन्त्र बना रखे है, इस बात के प्यासे है कि दुनिया मे शान्ति की स्थापना हो जाय। शाति अहिंसा के फूल के सिवाय और क्या हो सकती है। क्या आज का शाति का आन्दोलन इस बात का सबूत नहीं है कि आदमी स्वभाव से अहिसक है ? इस बात के कहने मे हमारा क्या तर्क है, इसको जरा साफ कर देना चाहते है। वह यह कि हमारी राय मे ही नही, बड़े-बडे ऋषियो का यह कहना है कि आदमी की तरक्की का इसके सिवाय और कुछ मतलब ही नहीं हो सकता कि वह अपने स्वभाव तक पहुँच जाय। आदमी अन्दर से बेहद अच्छा है, तभी तो कभी-कभी बुरे से बुरे आदमी मे किसी वक्त ऊची से ऊची भलाई जाग उठती है और वह जरा सी देर मे समाज मे नीचे से नीचे स्थान से ऊचे से ऊचे स्थान पर जा जमता है। ऐसी मिसालो से किताबे तो भरी पड़ी है, पर हाल मे हिन्दु-मुस्लिम लडाई के मौके पर ऐसी मिसाले सैकडो नहीं, तो दसियो-बीसियो तो जरूर देखने को मिलेगी। क्या यह इस बात का सबूत नही है कि आदमी अन्दर से एक-दम अहिसाप्रिय है ? मनुष्य समाज के बचपन का इतिहास साफ बता रहा है कि वह अहिंसा की तरफ दौड़ा जा रहा है। आज के जुल्मो और सहार के बडे-बडे यन्त्रो से उसका अन्दाजा नहीं लगाना चाहिये। उसका अन्दाज़ा इस बात से लगाना चाहिए कि वह यह सब सहार करने के दूसरे क्षण ही दु.खी होता है और पछताता है, जब कि पहले ऐसा नहीं होता था।

मनुष्य प्रेम यानी अहिंसा का पुतला है। क्षमा, सरलता, साफदिली और उदारता से भरा हुआ है, फिर भी वह द्वेषी यानि हिंसक और क्रोधी यानी मायाचारी और लोभी दीख पडता है। यह क्या बात है। इसकी वजह है कि समाज की जरूरते और समाज की बेढगी व्यवस्था मे फसे हुए मा-बाप और गुरुओ से वह बचपन से ही ऐसे पाठ पढता है, जो उसके प्रेम को हिसा मे बदल देते है और उसकी क्षमा को क्रोध मे, सरलता को मान मे, साफ-दिली को मायाचारी मे और उदारता को लोभ मे बदल देते हैं। जिस तरह पानी स्वभाव से ठडा होते हुए भी आग की सोबत पाकर गरम ही नही हो जाता, इतना गरम हो जाता है कि आग की तरह फफोला डाल देता है। जिस तरह कि पानी को हम अपने ऊपर छोड़ दे, तो वह कुछ ही देर मे इतना ठंडा हो जायगा, जितना उसके आस-पास का वातावरण। ठीक इसी तरह से हिसक आदमी को कुछ दिनो के लिए अपने ऊपर छोड़ दिया जाय, तो वह इतना प्रेमी तो बन ही जायगा, जितना उसके आस-पास का वातावरण। इसमे शक नहीं कि धर्म ने और समय-समय के पैदा होने वाले सन्तो-महन्तो ने इसकी आख तो खोली है, पर स्वभाव की ओर बढ़ाने मे हमारी राय मे मदद करने की जगह अडचन ही डाली है। जिस तरह जबरदस्ती का लादा हुआ व्रत आदमी को छिपाकर व्रत तोड़ने को

मजबूर कर देता है, उसी तरह जबरदस्ती से लादी हुई कोई शिश्त यानि डिसीपलीन आदमी मे उस शिश्त के खिलाफ विद्रोह करने की भावना पैदा कर देती है। हिसा के जो नाटक सभ्य समाज मे देखने को मिले, उसका सौवा हिस्सा भी उन जातियो मे देखने को नही मिलेगा, जो जगली कहकर पुकारी जाती हैं।

आदमी को यह ख्याल तो दुरुस्त कर ही लेना चाहिये कि यह उसकी हिंसा नही है, जो उसे सभाले हुए है, बल्कि यह उसका प्रेम और अहिंसा ही है, जो उसे ऐसी जगह ले आई है, जहा से स्वभाव तक पहुँचने की असली मजिल बहुत निकट रह गई है।

आदमी का स्वभाव प्रेम है। राग, द्वेष यानि हिंसा प्रेम का विभाव है। अहिंसा से स्वभाव तक पहुँचने का साधन है। स्वभाव तक पहुँचना ही मानव जीवन का उद्देश्य है। इसलिए अहिंसा से भागिये नहीं, उस तरफ दौडिये। मजबूर होकर दौडे, तो क्या हुआ?

श्री सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखरजी
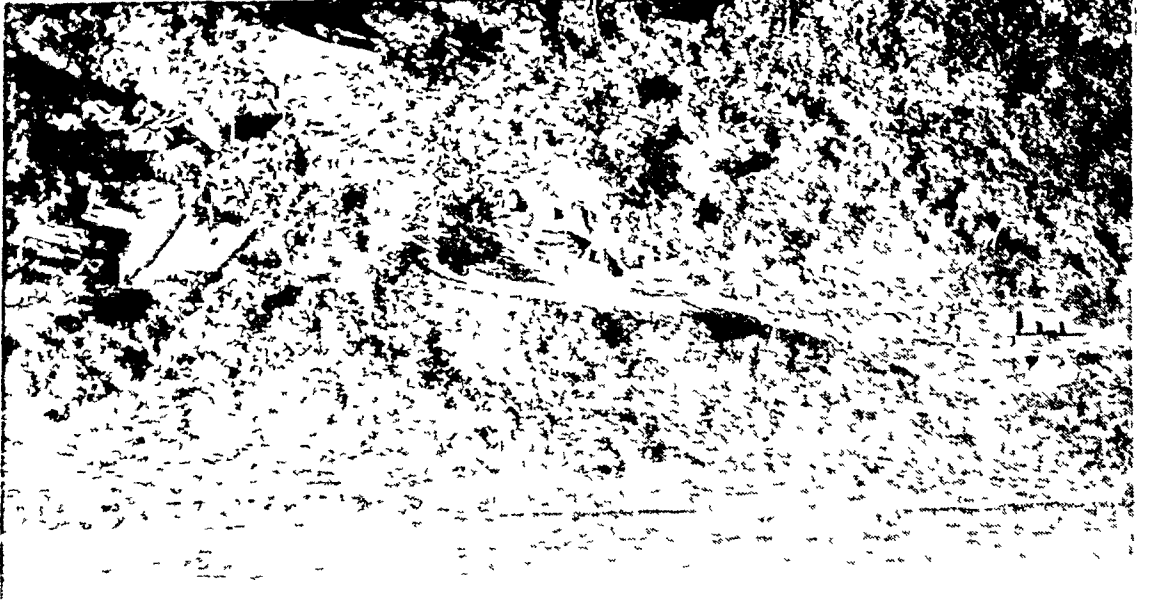
श्री उदयगिरिजी

श्री खडगिरि जी
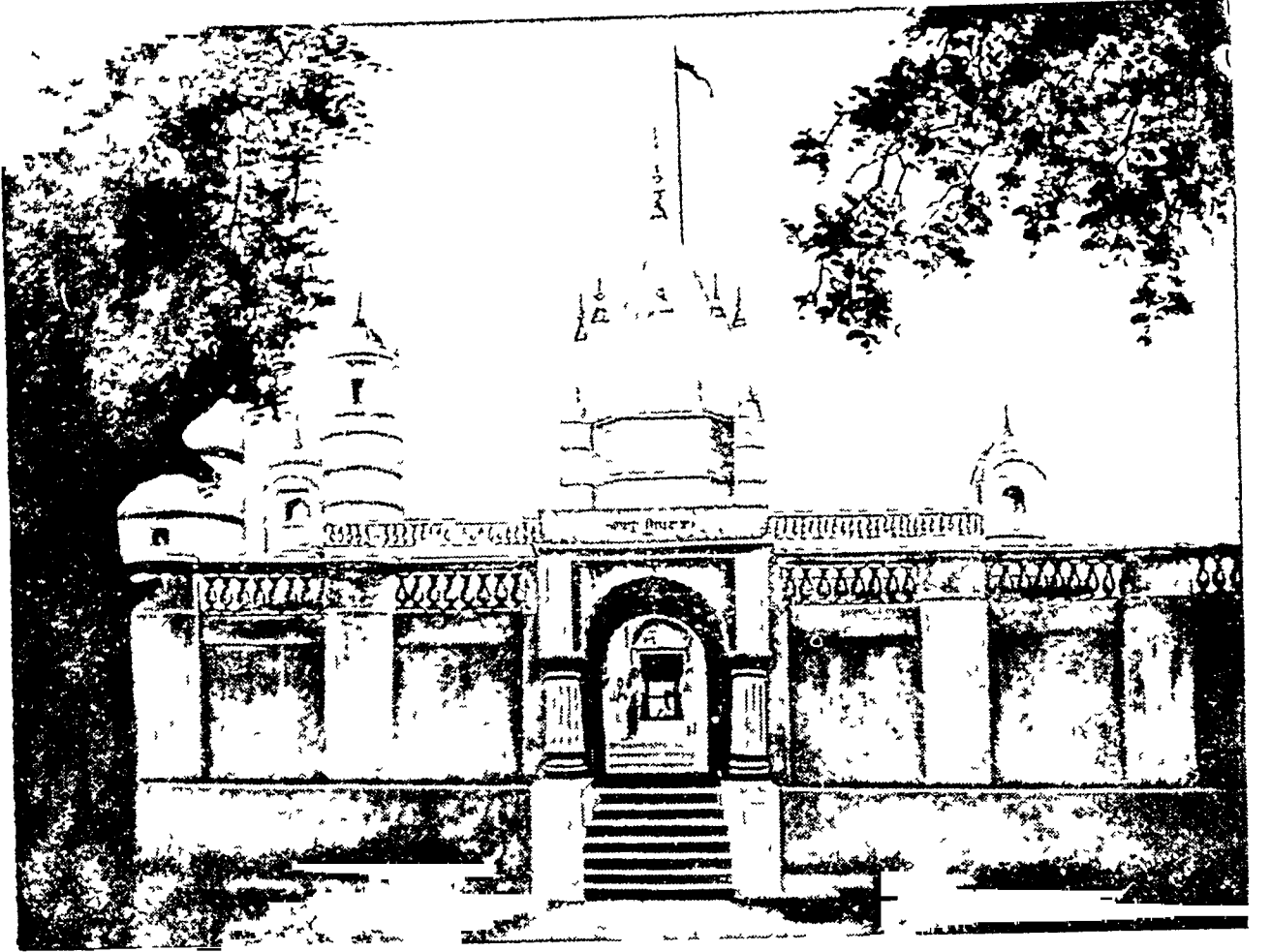
श्री सिद्धक्षेत्र चपापुर
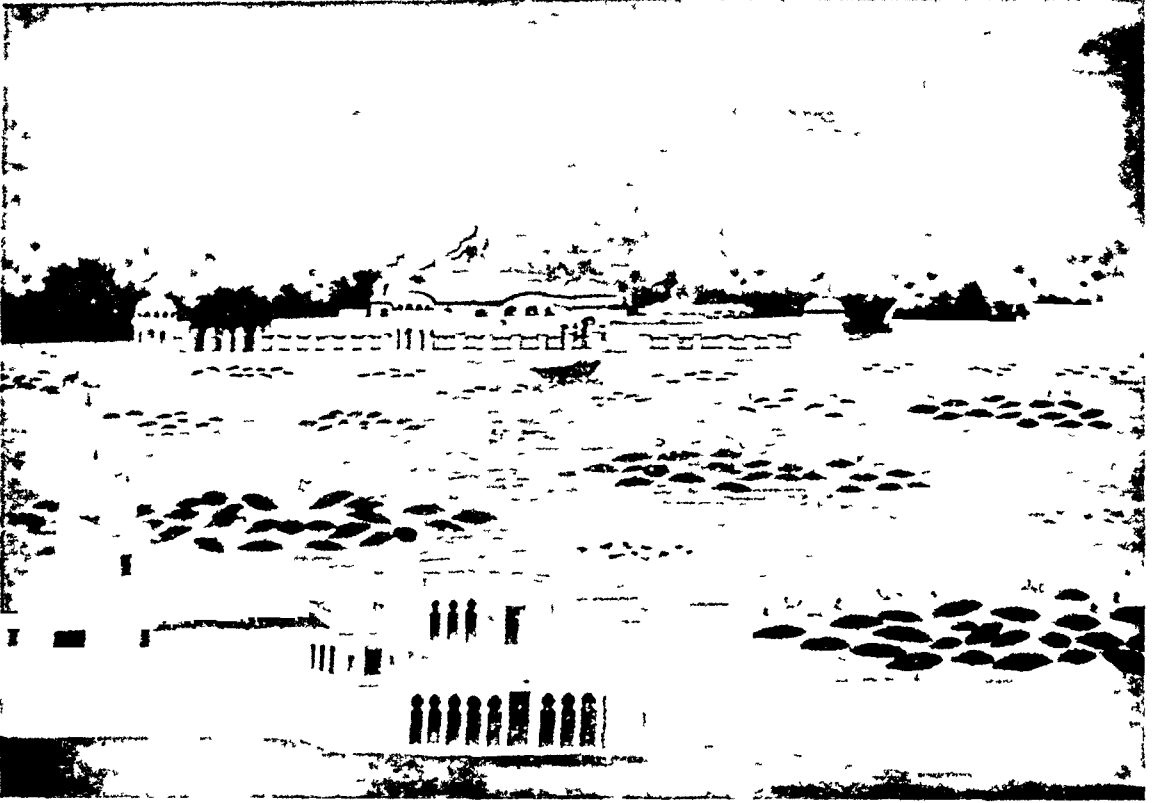
श्री सिद्धक्षेत्र पावापुर जी
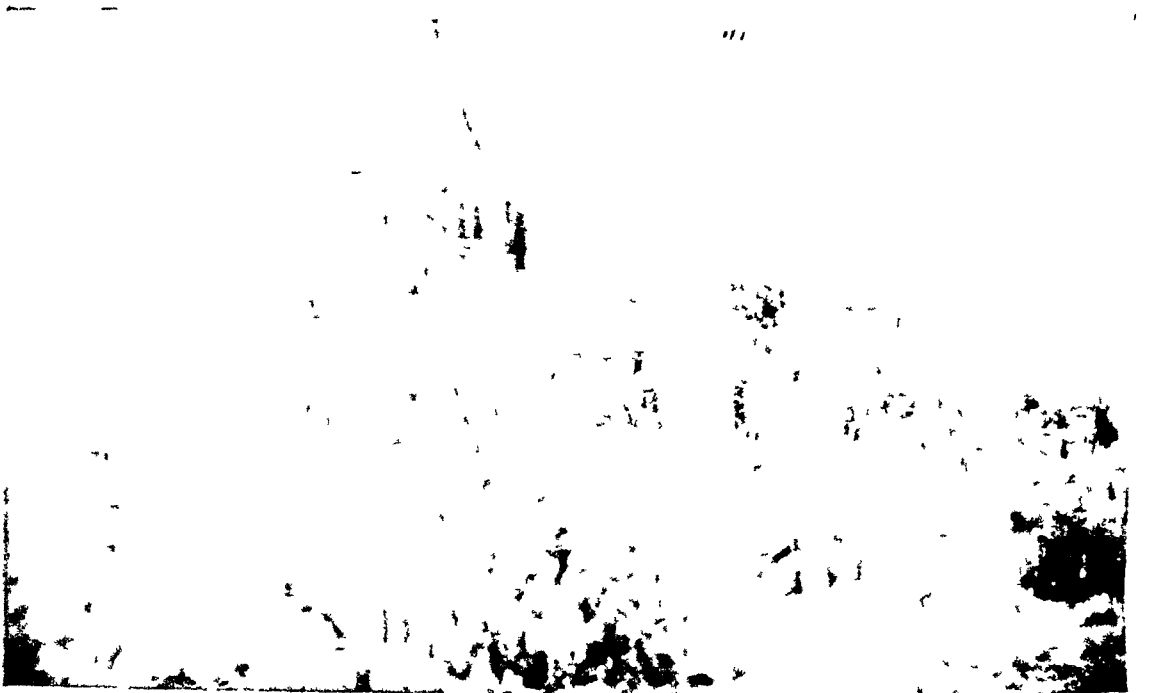
सिद्धक्षेत्र श्री मंदारगिरि
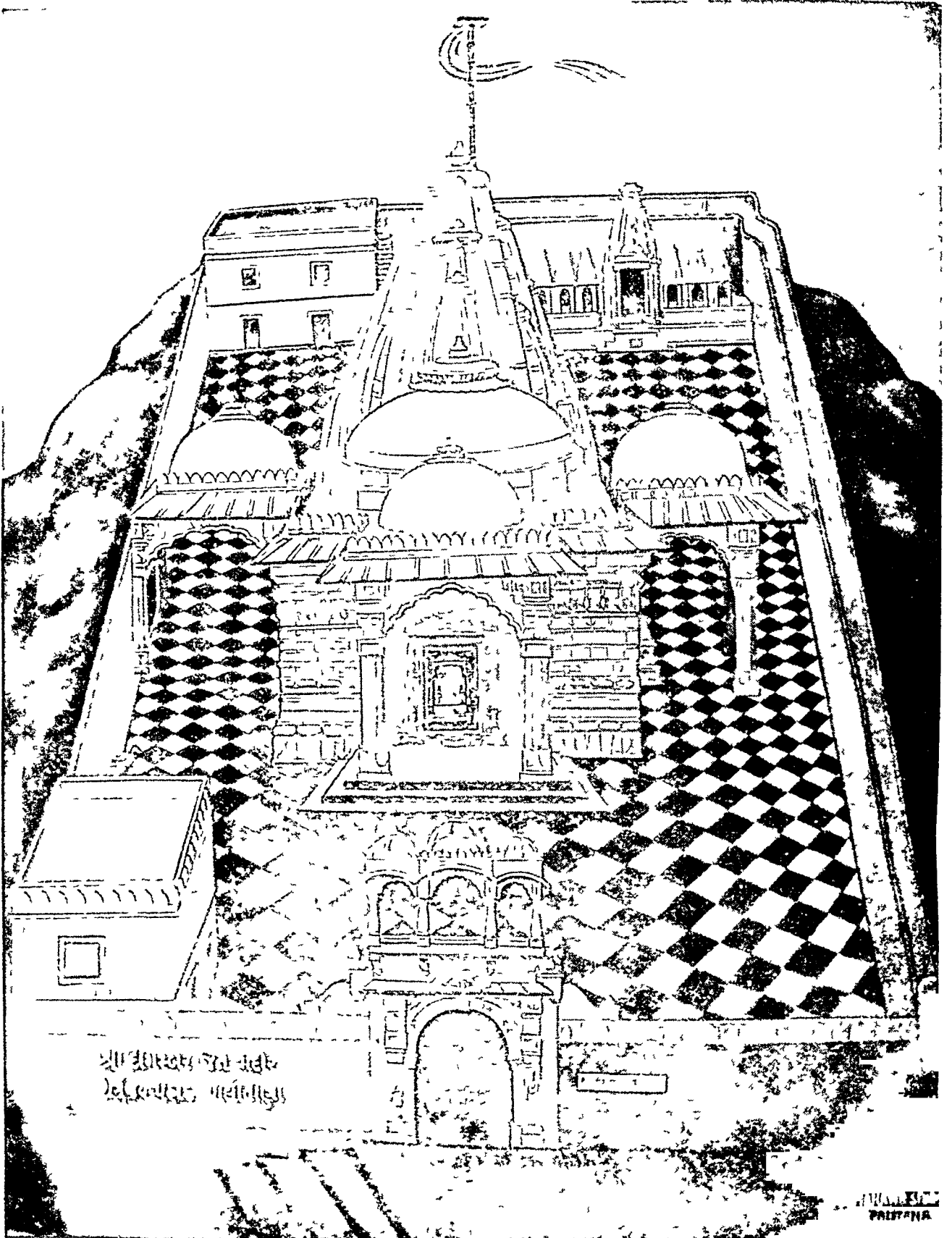
श्री दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र शत्रु जय जी।
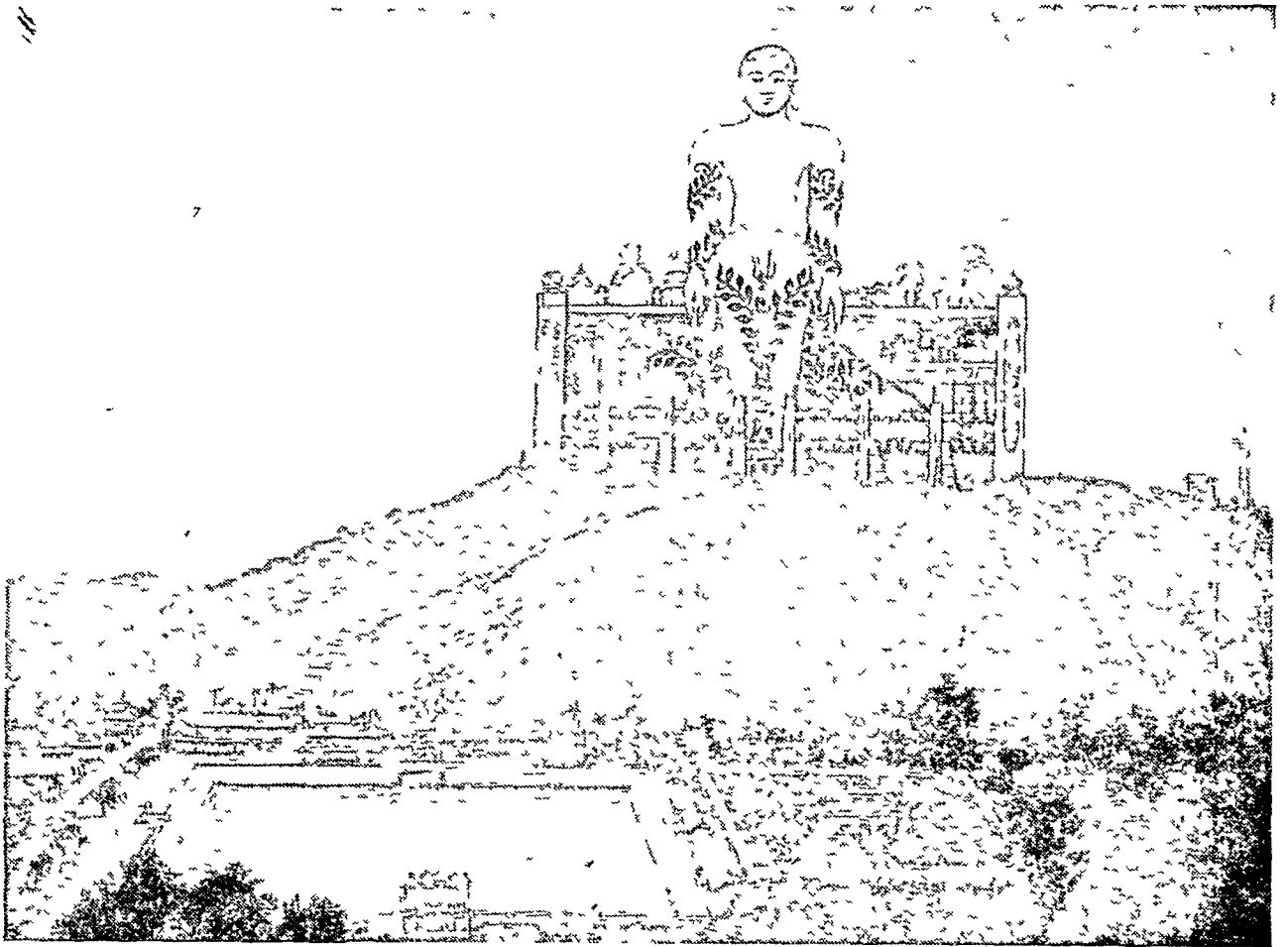
श्री १००८ बाहुबलि स्वामी
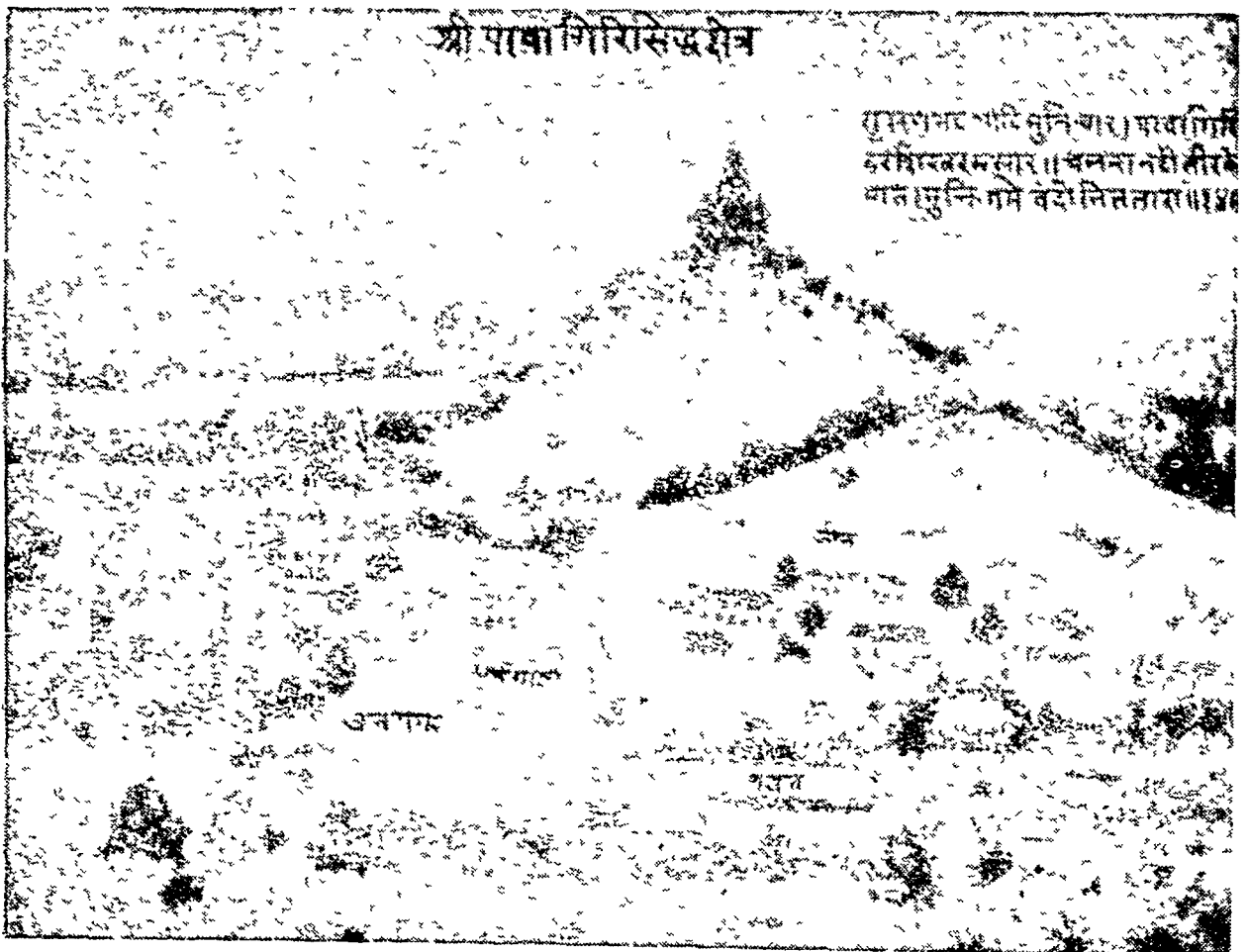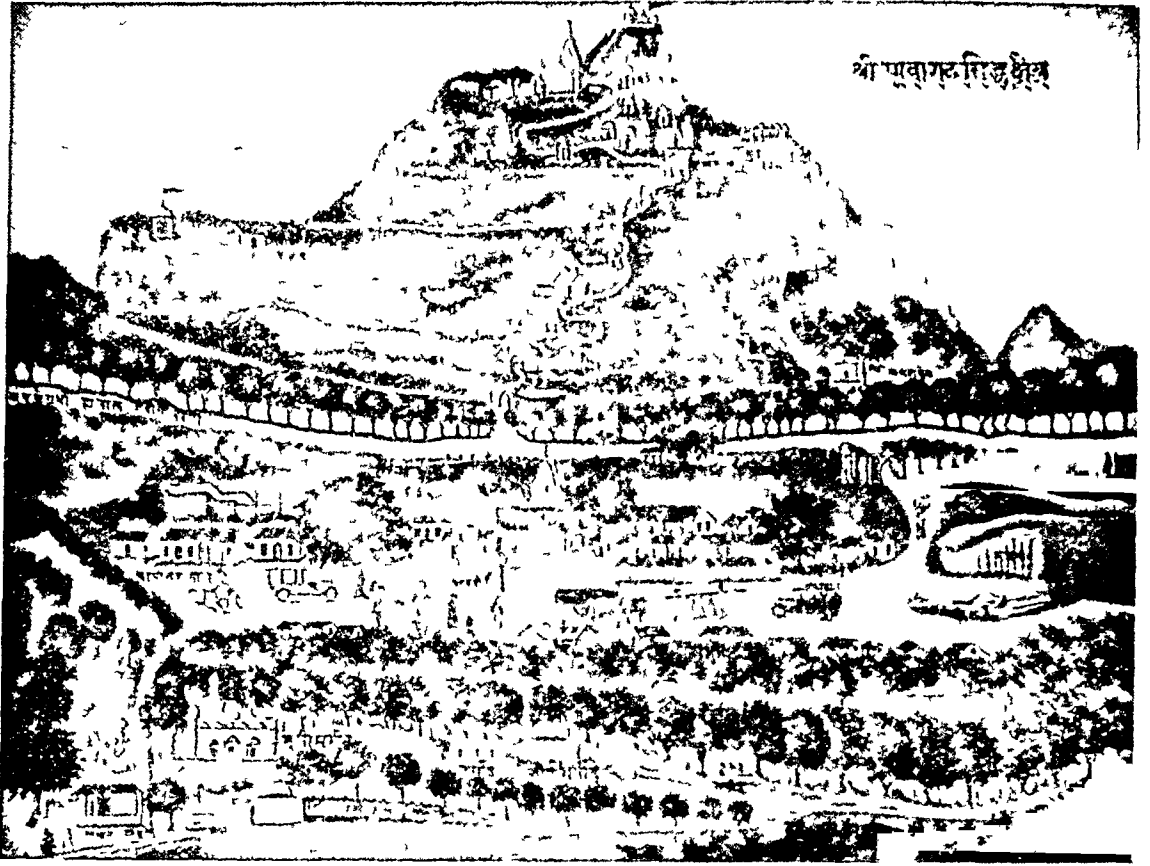
श्री सिद्धक्षेत्र पावागिरि

श्री सिद्धक्षेत्र पावागढ।
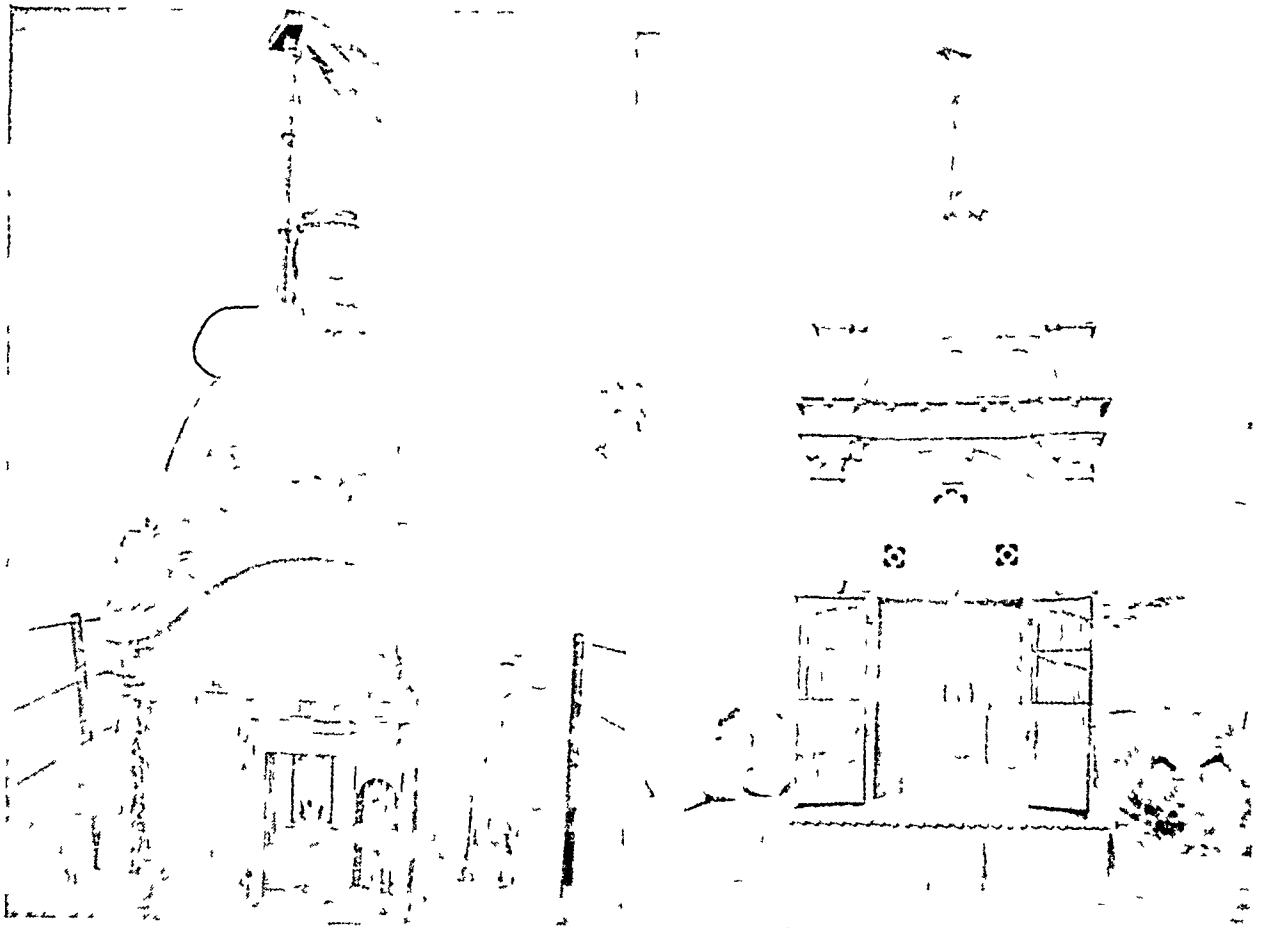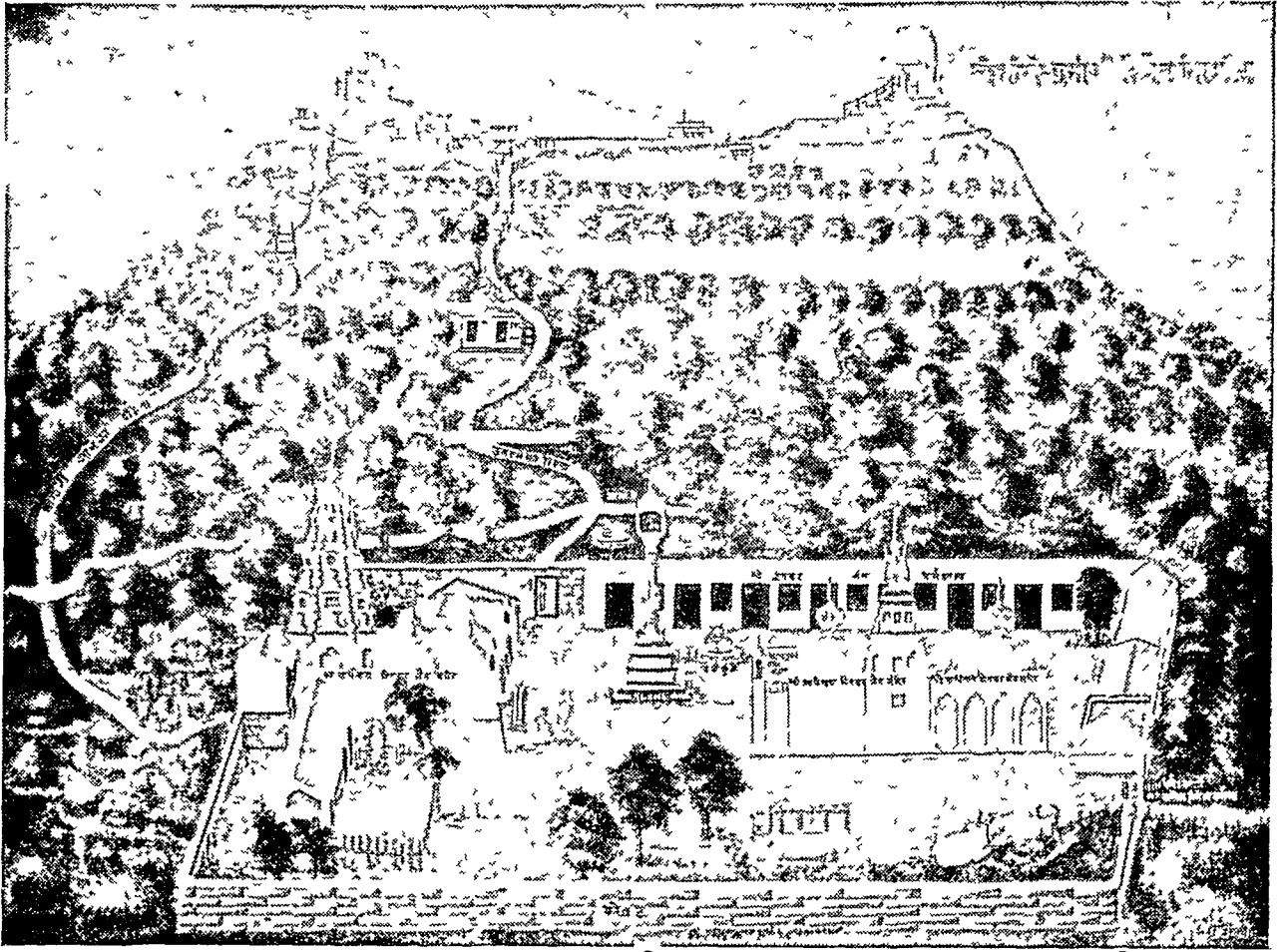
श्री सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगीजी
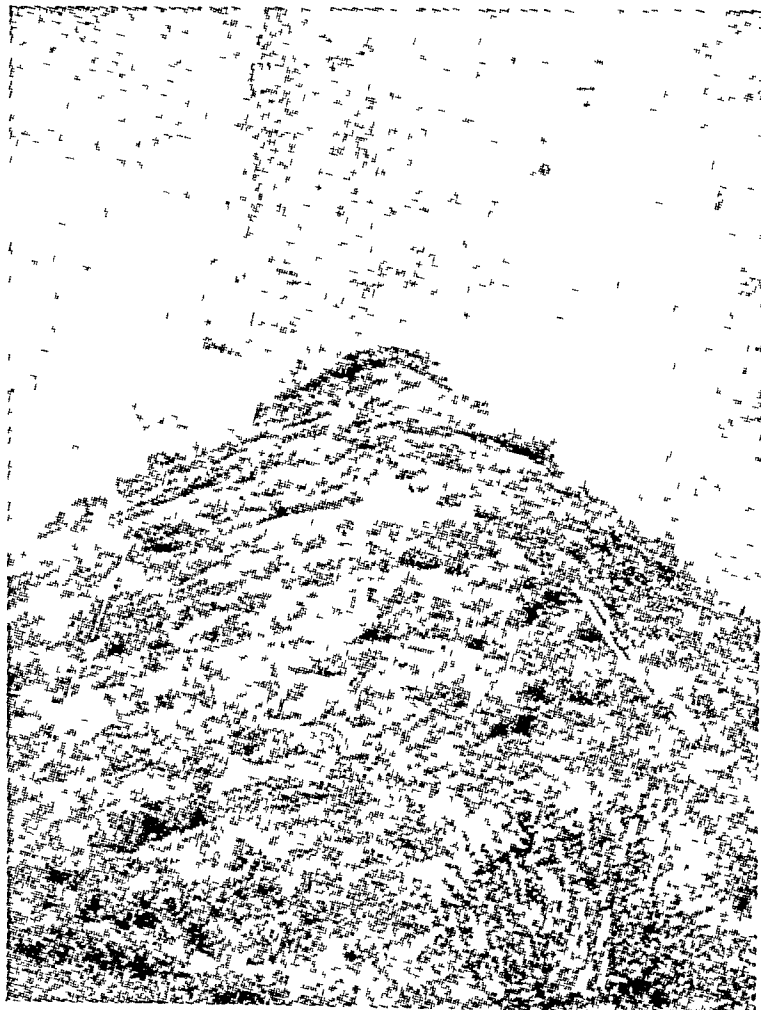
श्री सिद्धक्षेत्र गजपंथाजी
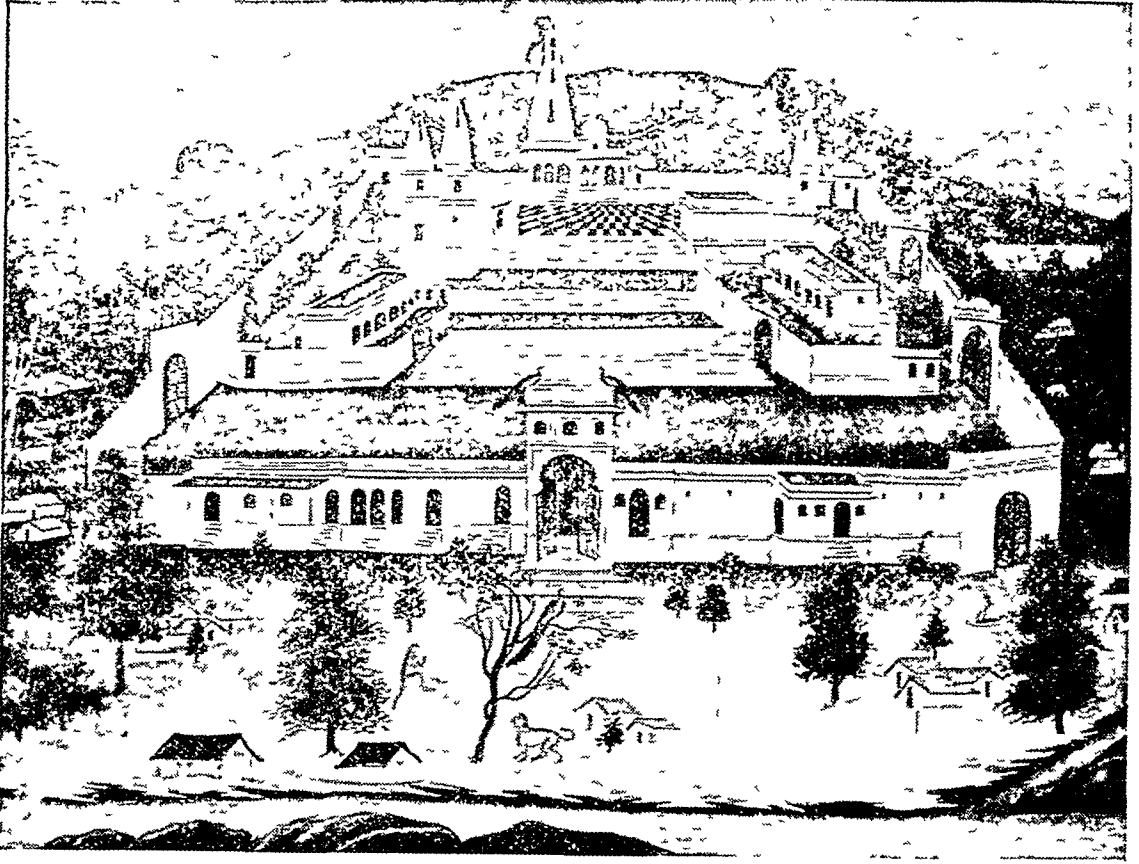
श्री सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूटजी

श्री सिद्ध क्षेत्र सोना गिरजी

श्री चंदा प्रभु मंदिर

दरवाजा

मान स्तंभ
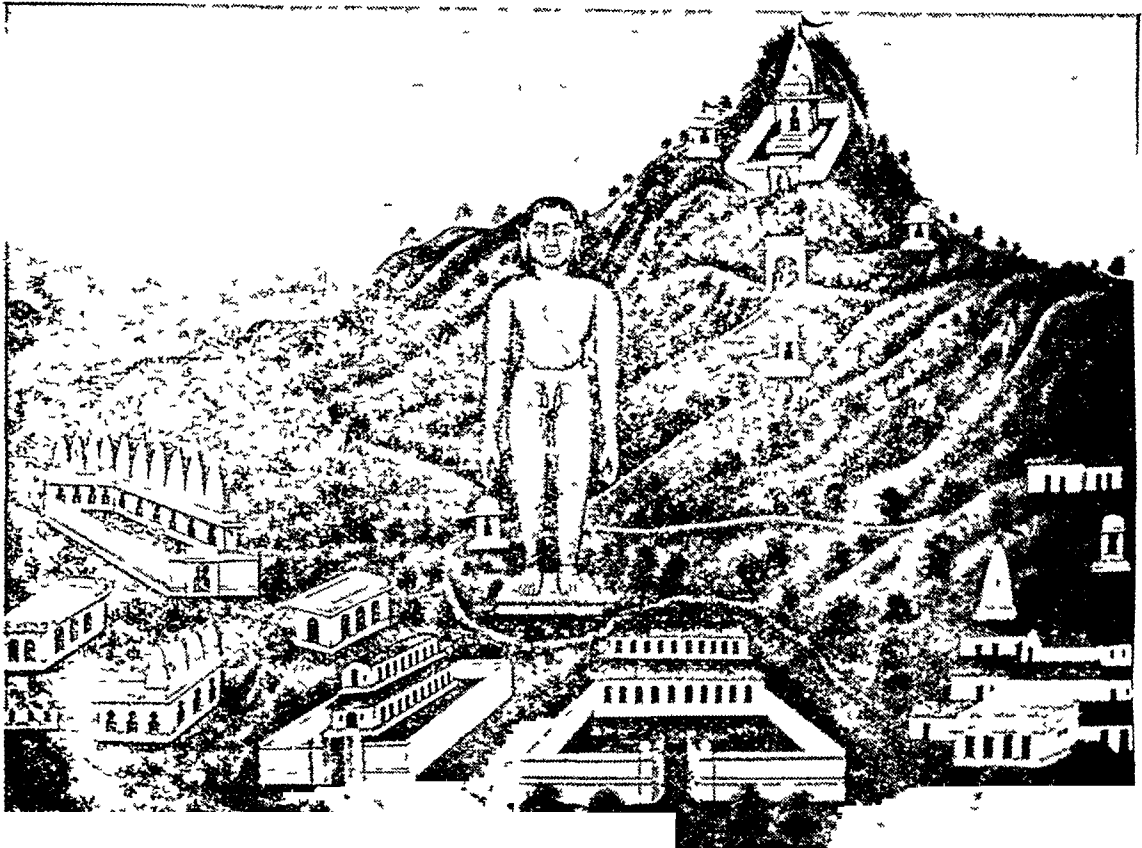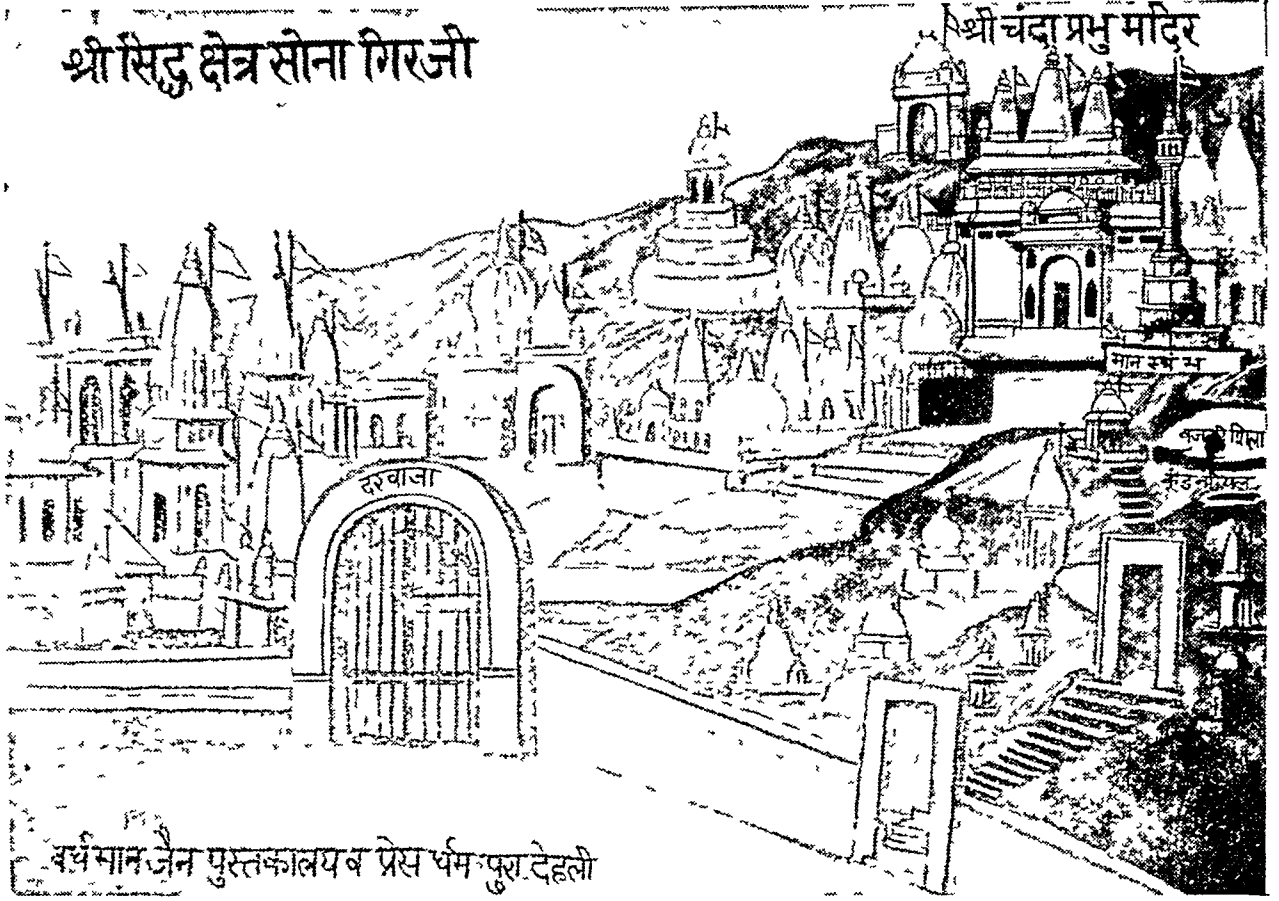
वर्धमान जैन पुस्तकालय व प्रेस धर्मपुरा देहली

श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिर जी
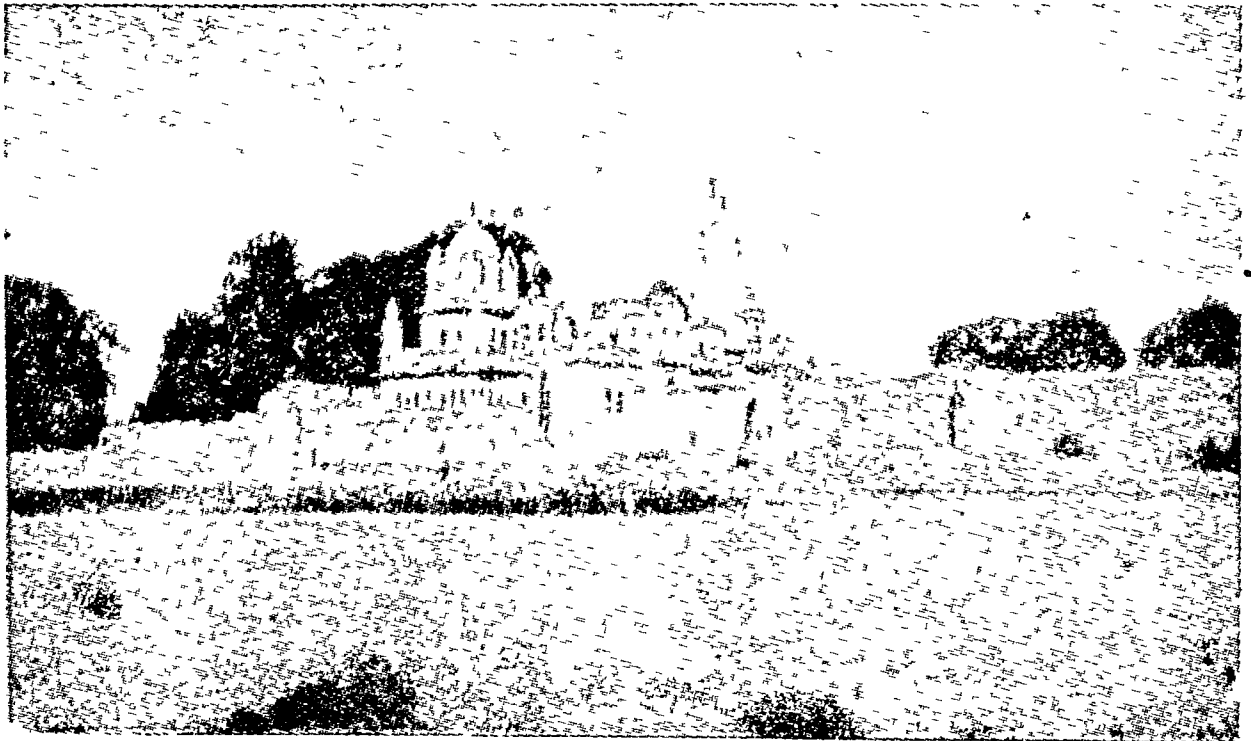
अतिशय क्षेत्र श्री मक्सी पार्श्वनाथजी
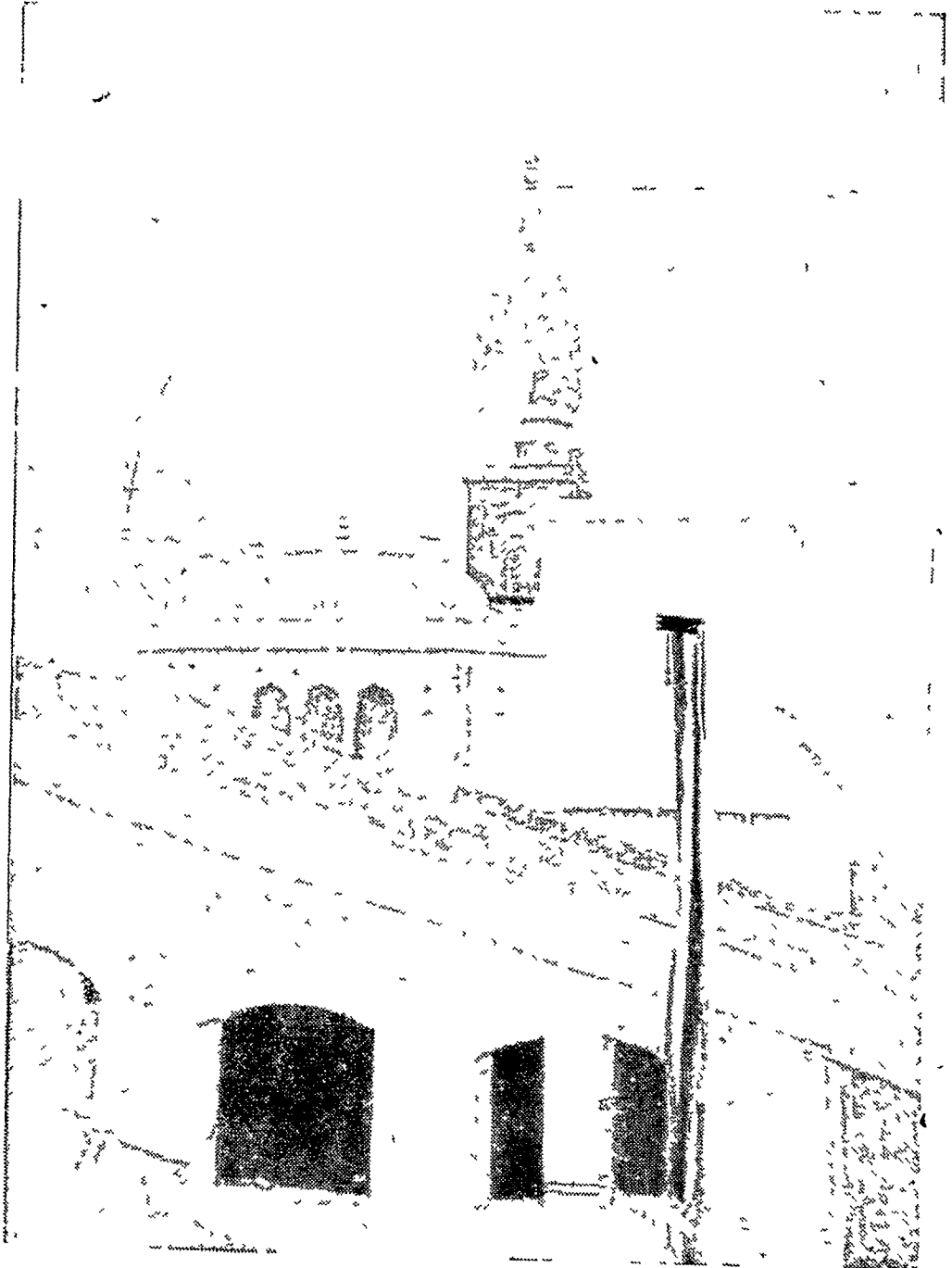
श्री अतिशय क्षेत्र मरसलगंज
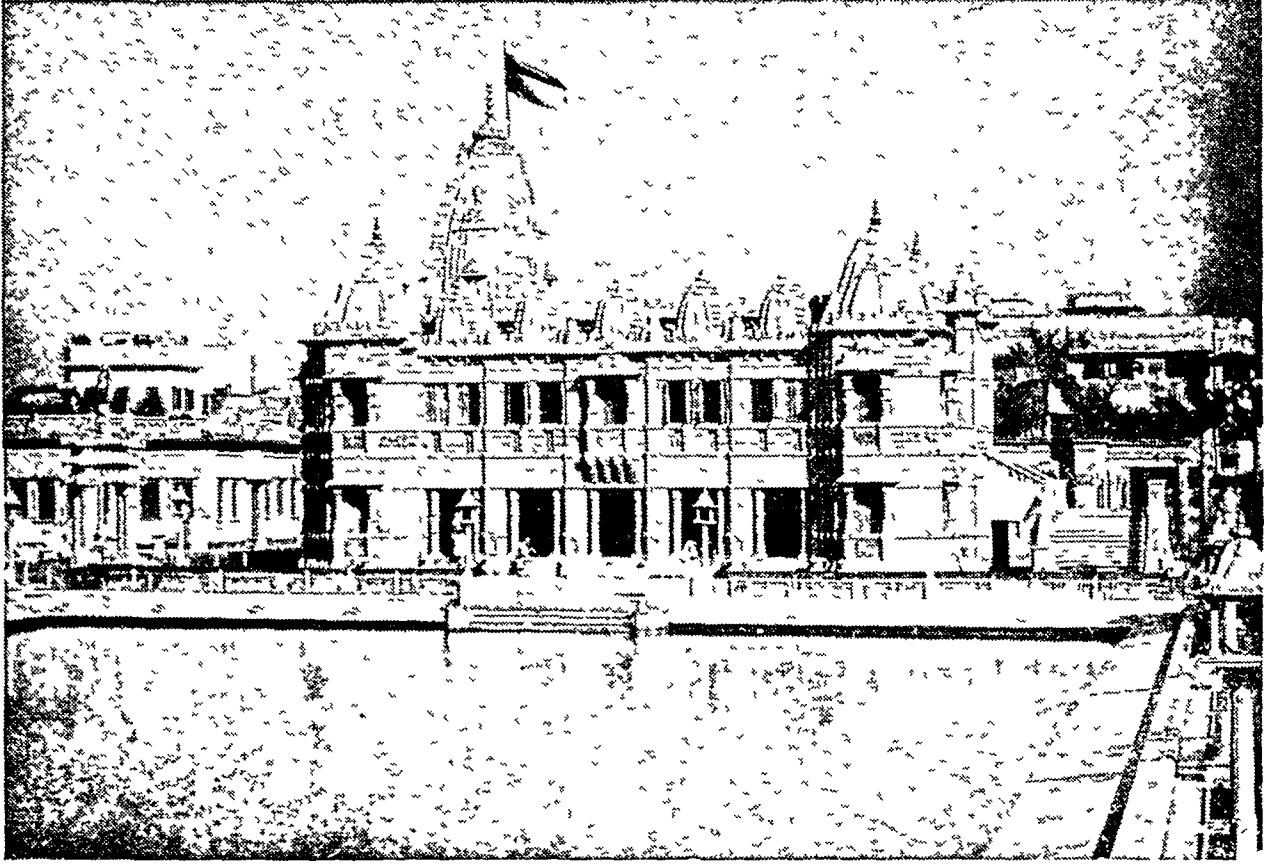
वेलगछिया कलकत्ता का सुप्रसिद्ध दिगंबर जैन मंदिर
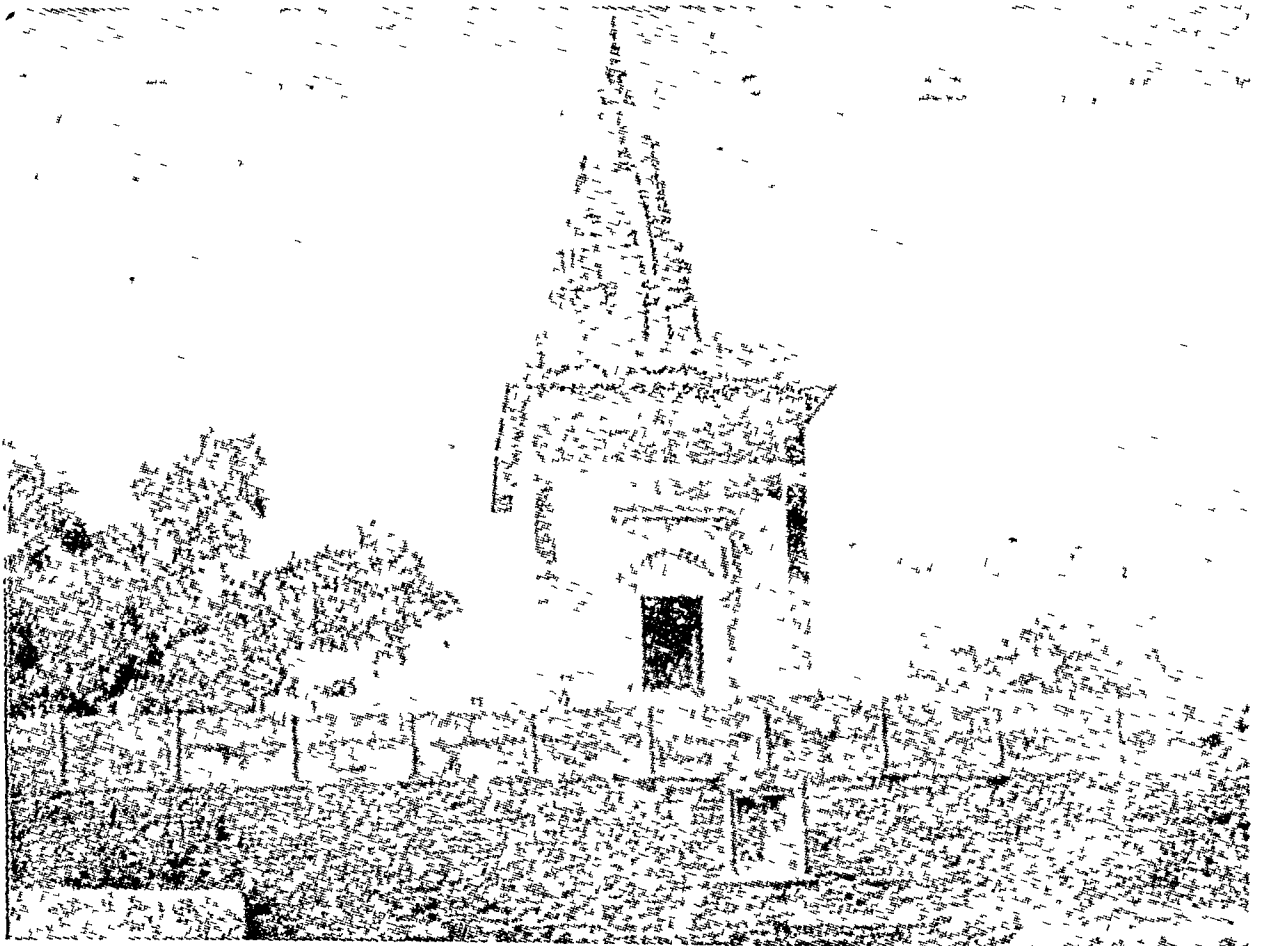
श्री चंद्रपुरी [काशी] का सुप्रसिद्ध दिग्गम्बर जैनमंदिर
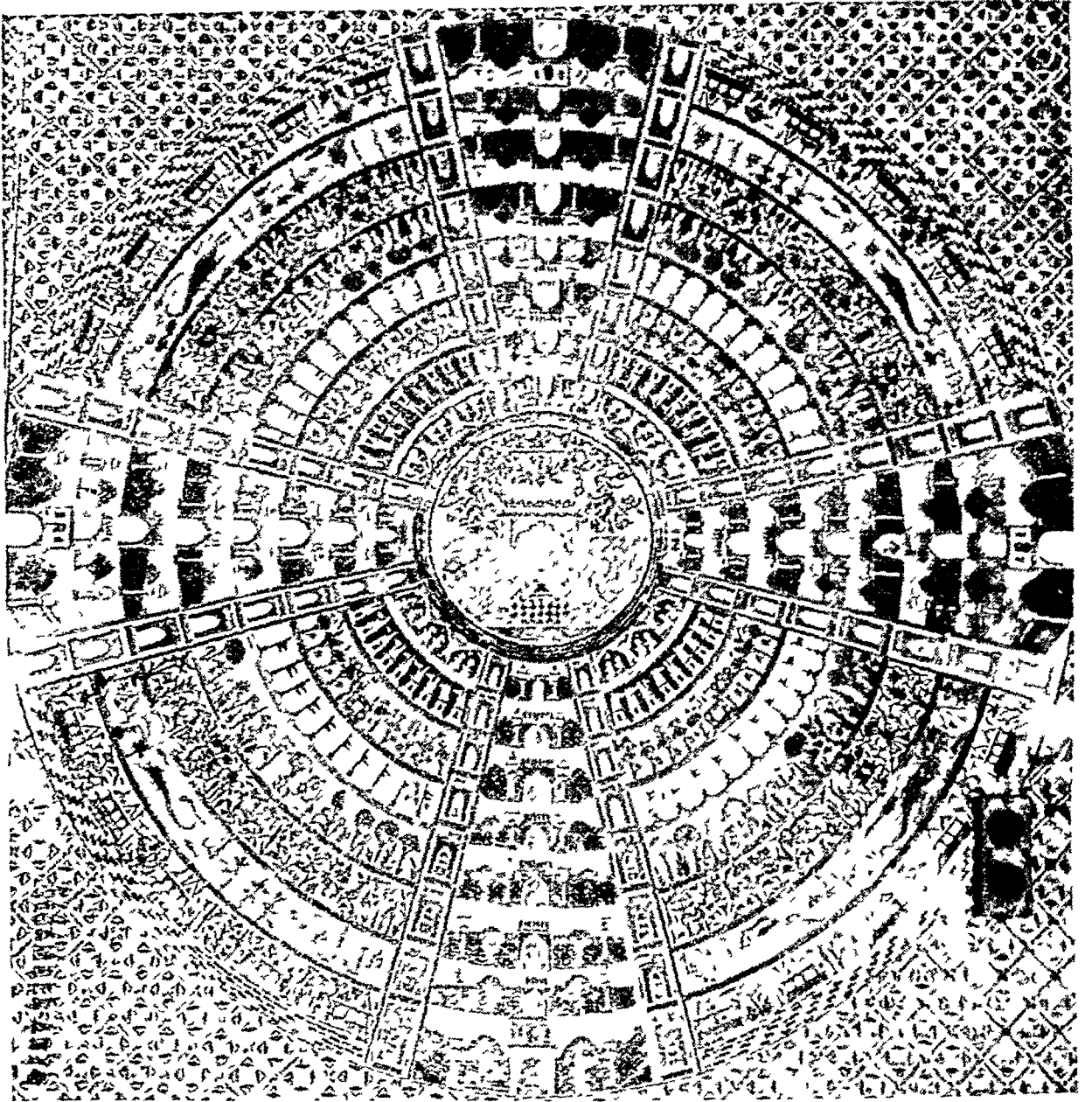
इन्दौर मे कांच के मन्दिर मे समवशरण का चित्र ।
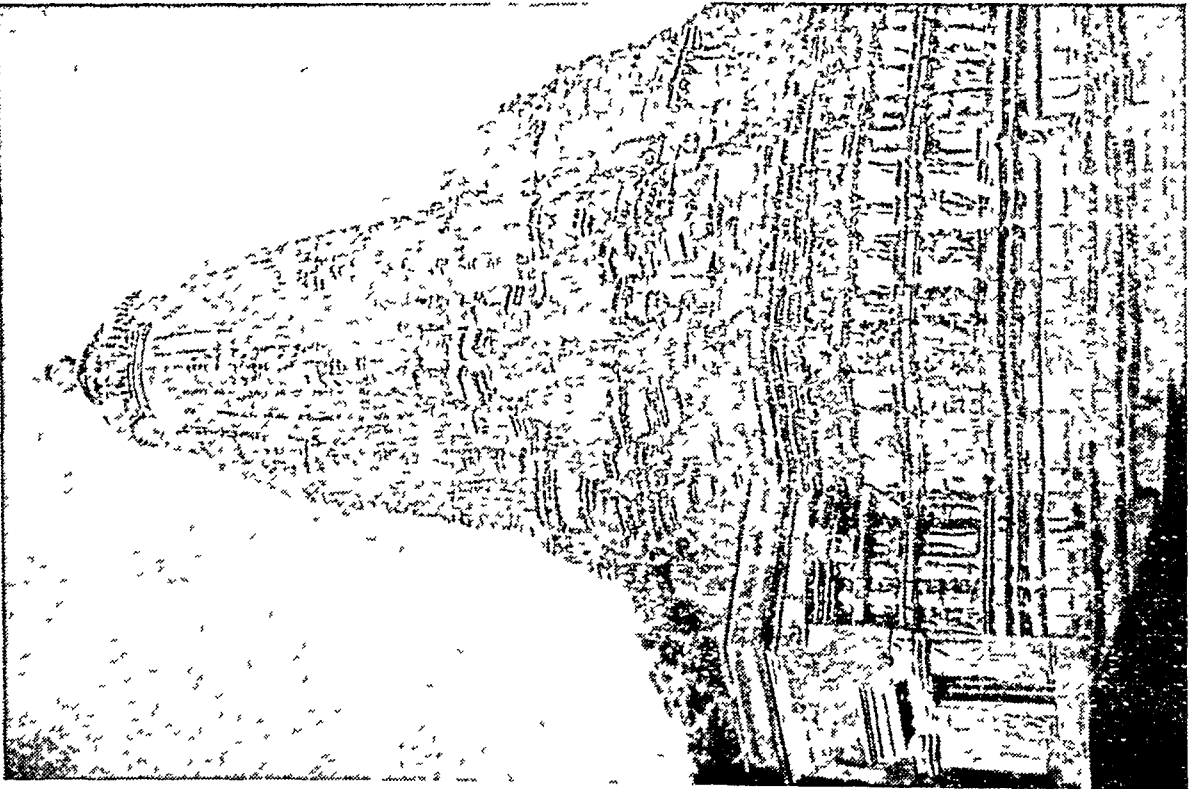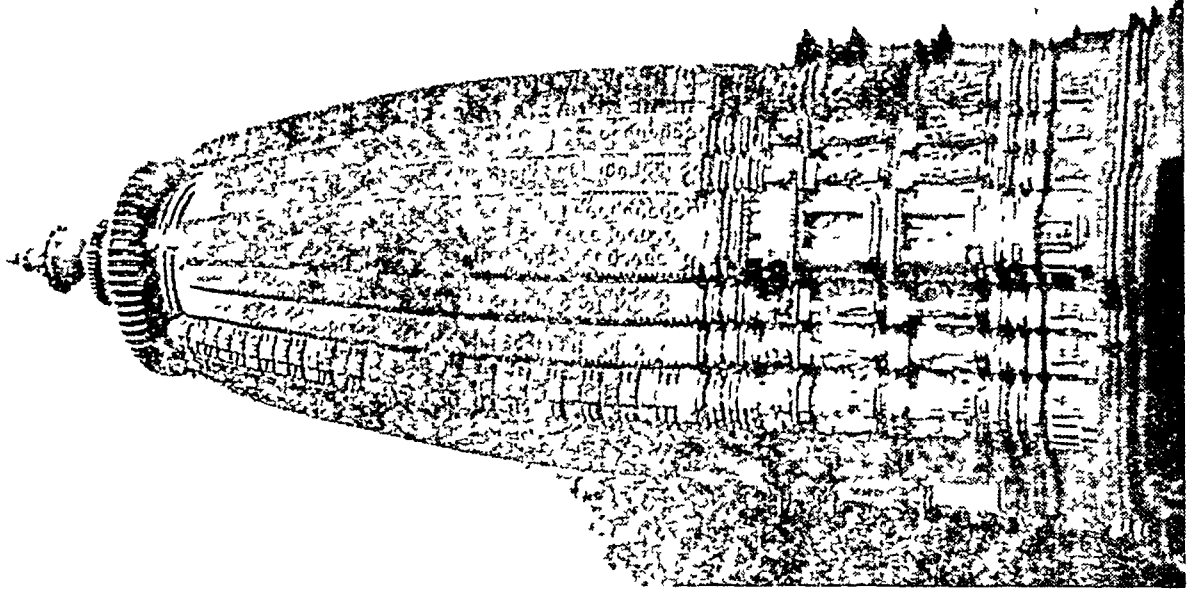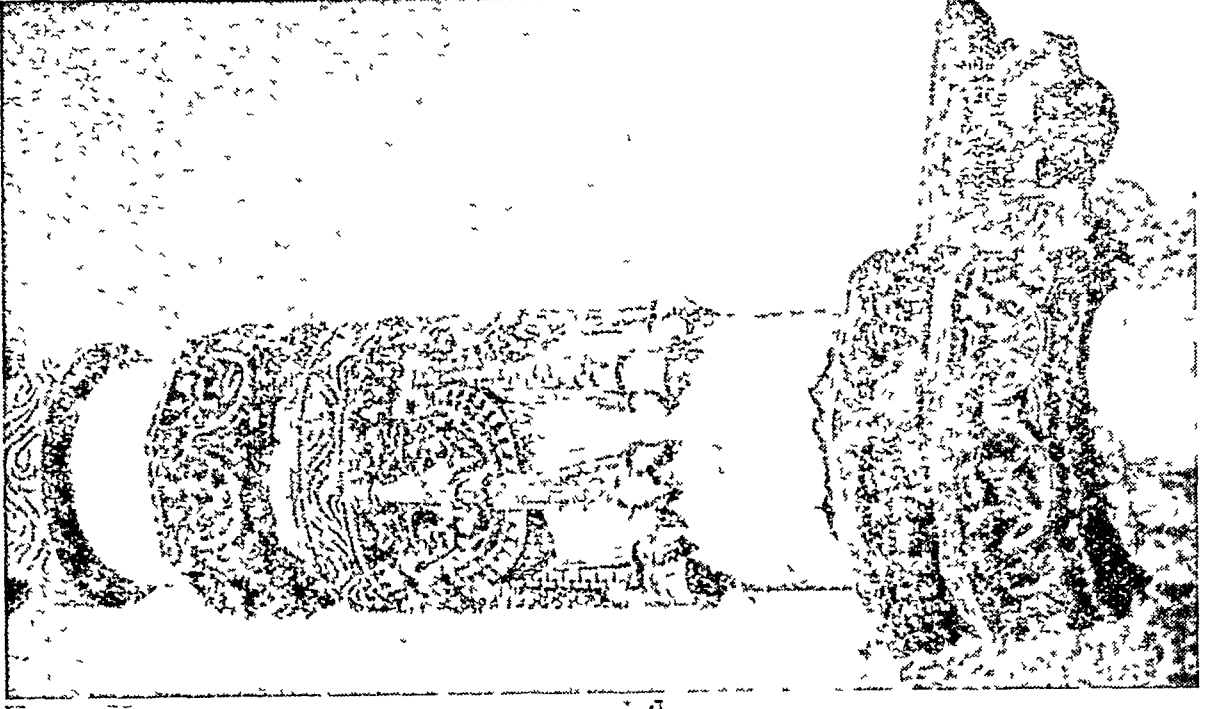
खजराहा [बुन्देल खंड] के ११ वीं शताब्दि के सुप्रसिद्ध प्राचीन कलापूर्ण दिगम्बर जैन मंदिर। [१] श्री पार्श्वनाथ मंदिर [२] श्री आदिनाथ मंदिर [३] श्री घंटाई मंदिर।
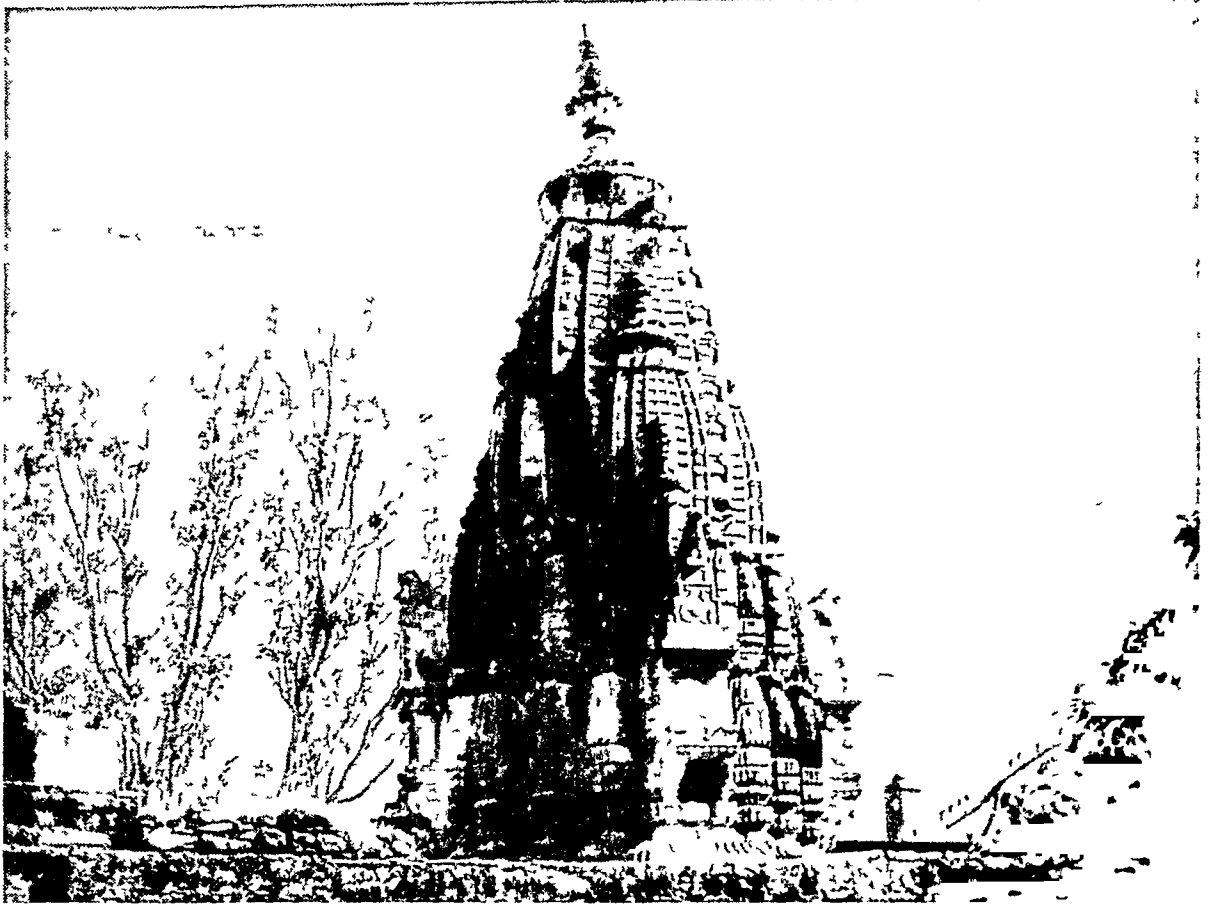
आमेर का प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर, जो अब जैनों के कब्जे में नहीं है।

• एलोरा की सुप्रसिद्ध जैन गुफा इन्द्रसभा या छोटा कैलाश का एक दृश्य।

स्याद्वादः

लेखकः—श्री माणिक्यचन्द्रः कौन्देयो न्यायाचार्यः फिरोजाबादवास्तव्यः

निर्बाधसम्विदितसूक्तिसुधा स्रवन्ती ।
संशीतिविभ्रमविमोहतमांसि हन्त्री ॥
जीवादितत्त्वकुमुदानि विबोधयन्ती ।
स्याद्वादगी शशिविभा धिनुतात् त्रिलोकीम् ॥ १ ॥

ऊर्ध्वमध्याधस्तात् त्रिजगदुद्धरणाप्रतिहताप्रतिमनिःप्रतिद्वन्द्वसामर्थ्यजुष्टा, भक्तिभारविनतसंख्यातीतसुत्रामप्रमुखानेकलेखमुकुटमाणिक्यमणिमयूखमालारुणीकृतपादपद्माः, प्रणतषट्खण्डस्थामरनृतिर्यग्जीवानुग्रहशासनाधिकारिचक्रभृन्मण्डलेश्वराभरणरत्नमरीचिजालबालातपमञ्जरीपिञ्जरितपदकञ्जनखमरीचिपुञ्जरञ्जिता, नारकिणामपि सम्यग्दर्शनसहोत्थसद्बोधसमयनिष्ठध्यातव्यविषयतामापन्ना, अष्टाधिकसहस्रश्रीवर्द्धमानभगवन्तः सम्यग्ज्ञानमेव चरमफलनिःश्रेयसप्रापकाव्यभिचारिकारणतावच्छेदकावलीढधर्मावच्छिन्नं, त्रिकालत्रिलोकाबाधितपथप्रस्थाव्यपारपारावारसंसारसमुत्तरणपोतायमानमुपदिदिशुः ।

तत्रापि विश्वज्ञानप्रपितामहोपमानं श्रुतज्ञानमुक्त्यव्यवहितात्मभूतान्वयव्यतिरेकशालिताशक्तिसमन्वितं त्रिविष्टपटङ्कोटङ्कितं टङ्कटङ्कितनिःकिट्टकालिकाकान्तिशातकुम्भमिवाहार्याप्रामाण्याज्ञानानास्कन्दितविमर्शनमन्थराचलसञ्चालनपरिक्षुब्धविद्यावारिधिमन्थनोद्युक्तविबुधमनस्सु नितरामुद्योतते चमत्कृतिजनकतावच्छेदकाक्रममितामोदामृतप्रदम् ।

अनादिकालीनपावनवाच्यवाचकसम्बन्धमात्मसात्कुर्वतोः श्रुतज्ञानस्याद्वादयोर्वृत्त्यनियामकाविनाभावसम्बन्धभृद्विषमा व्याप्तिः प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धापन्नप्रतियोग्यनधिकरणीभूतहेत्वधिकरणवृत्त्यभाव प्रतियोगितासामान्यनिष्ठसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वसाध्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नत्वोभयाभावस्तत्प्रयुक्तसम्बन्धधर्मावच्छिन्नहेतुना सहान्यथानुपपत्तिस्वरूपोच्चैस्तटसकण्टकमटाट्यते ।

परावबोधनोत्कृष्टपरोपकारतपोनिष्ठमहर्षिप्रज्ञप्तं मानवमनोगतदुरवधानदुर्भिक्षोत्क्षेपपरिक्षमपरमार्थसदुपदेशपयोधाराधाराधरायमाणमागमप्रामाण्यं स्वतः समुद्भूतसमुत्साहसन्दोहमदोलायमानमद्यत्वे भास्वद् भास्करप्रभेव प्रकाशते प्रमातृप्रमितिप्रमेयरूपम् ।

शाब्दप्रमाणमन्तरा मूकवाग्मिराड्भरटनेपु भेदं न पारयन्ति स्थूलबुद्धयोऽपि वावदूकाः किमुत तीक्ष्णप्रज्ञा मनीषिणः ।

सार्वसर्वज्ञातीन्द्रियज्ञानविकले कलावयमेव ते पितेति निर्णये मातृवाक्यादन्यत्प्रमाणं नास्ति प्रत्यक्षलैङ्गिकार्थापत्त्यैतिह्योपमानादि ।

काणादाः नव्यन्यायनिर्वृत्तिनिपुणा निरर्थकात्पार्थकावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगितानुयोगिताधारताधेयताविषयितानिरूपिता प्रभृत्यबहुसारकटुकाठिन्यसम्पादकवाचकप्रयोगोच्चारणचणा एततोन्ये पूर्वोत्तरमीमांसासांख्यपतञ्जलिबार्हस्पत्यशौद्धोदनिसरणिशरणा अपि प्रकाण्डप्रतिवादिनो नाद्याप्यवगाहन्तेऽनन्तप्रमेयमाणिक्यादिमणिभृत स्याद्वादाम्बुध्यल्पीय उपतटमपि।

बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितधर्मावच्छिन्नस्थूलमतिकुतीर्थ्यहृदयमस्तकोन्माथिनी सूक्ष्मार्थगवेषकामन्दधिषणविपश्चिदाह्लादवर्धिनीं चरमपरमोपादेयमोक्षपुरुषार्थान्वयव्यतिरेकशालिकारणत्ववाहिनीं स्याद्वादवैजयन्तीं प्रसारयन्त आर्हता उच्चमस्तक प्रद्योतन्ते योगक्षेमपारायणपरायणाः परिचितात्मपरमात्मतत्त्वाः।

नहि सन्तप्ततातायिभिः सर्वथाभेदवादिभिरिव द्रव्यद्रव्ययो संयोग संयोगद्रव्या समवायः संयोगसमवाययोर्विशेष्यविशेषणभाव समवायविशेष्यविशेषणयोः स्वरूपसम्बन्धो रूपरसयोरेकार्थ समवाय इति लांगूलिकलगूलवल्लम्बायमानकल्पितसम्बन्धपरम्परानवस्थाचसूगीचक्रमणाक्रांतैष्यते स्याद्वादिभिः कथञ्चित्तादात्म्यात्मकसम्बन्धपीयूषवाराशिनिमग्नवपुर्भिर्जिनहिमाचलोद्भवस्याद्वादवाग्गङ्गा प्रवाहावगाहनपवित्रान्तःकरणैः।

श्री वर्द्धमानमनुपरिपूर्णाधिकारं न्यायशास्त्रकृतो भावितीर्थङ्करदिभूतिभृत. श्रीसमन्तभद्रसूरयो ऽन्ययोगव्यवच्छेदकायोगव्यवच्छेदकात्यन्तायोगव्यवच्छेदकैवकार प्रयुक्तमप्रयुक्तं वा स्याद्वादसहचारणं नितांतावश्यकमामनन्त्यन्यथानुक्तसमत्वापत्त्यापादनेनावधीरयन्ति प्रतिवादिपण्डितान्।

पार्थ एव धनुर्धरो धनुर्धरः पार्थ एव पार्थो धनुर्धरो भवत्येववज्जरायुजाण्डजपोतानां गर्भो गर्भ एव जरायुजाण्डजपोतानामेतेषां गर्भजन्मभवत्येवेत्यत्रोद्देश्यतावच्छेदकसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वाद्य लक्षितैवकारोपयोजना प्रमितिजनकतावच्छेदकापन्नप्रमाणभृत्प्रमातृविद्वत्सम्विदद्विषयतामियर्त्ति।

समघनचतुरस्राकारानन्तानन्तरज्जुविस्तारायामावगाहधार्याकाशवद्रंहीयसि स्याद्वादगम्भीरोदारोदरे आसत्तियोग्यताकांक्षातात्पर्यव्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्यपदार्थबोधादिशाब्दबोधजनकसामग्री अभिनिविष्टास्तीति नास्माकमत्रातितरामादरः खण्डनमण्डनविधौ।

लक्ष्यलक्षणप्रकरणेष्वप्युपयोगो लक्षणमित्थ यौ लक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणत्वे सति लक्ष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसामानाधिकरण्यमतिव्याप्तिलक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वाव्याप्त्यादिलक्षणदोषरिक्तं पूर्वमनुस्याद्वादैवकारपदप्रतिष्ठितं लक्षणं त्रिलोकाबाधितं कक्षीकुर्वन्ति लक्ष्यलक्षणभावविदो धैर्यधारिधीधना विचक्षणविपश्चितः स्वगरितविपक्षपक्षक्षयदक्षाः स्वकीयसच्चरित्रपवित्रकीर्तिकौमुदीसमासादितप्रियमिष्टशिष्टाक्लिष्टवचनप्रयोगप्रीतिप्रसराः।

क्वाचित्कपुण्यदेशभाविशरदी वृष्टि रिव, कादाचित्कसिद्धचक्रपूजनप्रवृत्तिरिव अनेकभिषग्वर्यान्यतमसाध्यपारदीसिद्धिरिव माकन्दमञ्जरीमकरन्दबिन्दुस्यन्दिस्याद्वादानुस्यूतवचनप्रणाली सुदुर्लभा।

धर्मान्तरादानोपेक्षाहानिलक्षणत्वात्प्रमाणनयदुर्णयाना मिति निष्कलकाकलंकोक्त्या सम्यङ्मिथ्यैकान्तानेकान्तवत् स्याद्वादयोजनप्रक्रियापि पुद्गलोरूपवान, मुक्ताः केवलज्ञानिनो, देवदत्तो विद्वान्, जिनदत्तो धनाढय इत्यादिवाक्येषु द्वैविध्यमश्नुते।

अनल्पानन्तानन्तानेकान्तेषु संख्यातशब्दनिष्टवाचकतानिरूपितवाच्यतावन्तः स्याद्वादाभिहिता धर्माः परिगणिताः सन्ति परमल्पीयःसंख्याकैरभिधायकैः सातिशयश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमशालिनां प्रमातृणामनन्तप्रमेयप्रतिपत्तिर्भवतीति महच्चित्रम्। लघुपरिमाणावच्छिन्नवटबीजमिव लघीयान् स्याद्वादः महापरिमाणात्तफलद्रु-

श्रुतज्ञानं जनयत्प्रपितामहायते कैवल्यस्यापि, प्रथमोपशमसम्पक्त्वदृष्टियथानि श्रेयसोत्पत्तौ मातामहीयते चेत्या-लोचनप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानप्रत्याहारधारणासनसमाधिध्यानाधिष्ठैर्धर्मिकैरनारतं ध्येय ।

परमार्थग्राहिनिश्चयव्यवहारनयप्रमाणकृतानुचिन्तनप्रगुणैर्निमित्तोपादानकारणक्रमस्थिरत्युत्पत्तिव्यव-स्थापादकैरर्थव्यञ्जनयोगमक्रान्त्याक्रान्तधर्म्यध्यानरतैरनुक्षणं परिशीलयतां स्याद्वाद' आत्मनीननाना वस्तुस्वभाववाचनप्रवण सर्वथैकान्तत्यागचण. सप्तभगनयापेक्षो मोक्षोपयोगिप्रलम्बकर्मनिर्जरकनिश्चयनयोत्पाद-कान्तर्जल्पमयो हेयादेयविशेषक साक्षात्प्रयत्नकेवलज्ञानमिव [साक्षात्सर्वतत्त्वप्रकाशक ।

स्याद्वादाम्बुध्येकश सीकरग्राहिनानाप्रवादिनो 'हरिद्राग्रन्थिग्राहिमूषकवणिगिव स्वमताभिनिवेशमद-मत्ता अद्याप्युपासते तमेव व्यापकवपुषं सापेक्षानेकधर्मवकुश ऋद्धिसिद्धिवृद्धिप्रसिद्धिप्रापकम् ।

सुरेन्द्राख्यवगाल्येव ब्रूयाद्विश्वे वगवासिनोऽलीकाभिधायिन सन्ति. शाब्दबोधप्रणाल्या वाचो स्यास्तात्पर्यमेतावन्मात्रं वितथभाषणदोषारोपणपरं प्रतिभाति परंच सुरेन्द्रोपि वगदेशवासी सोपि स्वकीय-प्रतिज्ञावशवर्त्तितयानृतवचनशील' तथा च तदध्यारोपित वगीयेष्वसत्यत्वमप्यसत्यं, ततोन्यथानुपपत्ति-रूपार्थापत्त्या वगप्रान्तीयमनुजा सत्यवादिन इति सम्प्राप्ता सत्यलाञ्छनस्याद्वादसत्कृत्योपयुक्तवाक्यस्योभयार्थ-प्रतीतिरखिलापामरजनप्रसिद्धाटीकामन्तरोद्दृश्यते झटिति ।

हिताहितसम्यग्गवेषणा संचेतनाविरहितो गर्दभ एव विजया न भुनक्तीत्यत्र रासभोपि विजया नात्तीति एवकार स्थानेऽपि पदपरिवर्त्तनेन स्याद्वादमुद्राङ्कितपरत्वेन मादकपदार्थत्यागनियमिनियमव्यवस्था-स्थीयते ।

कृतकारितानुमतसंरम्भारम्भसमारम्भत्रियोगाभ्यासोद्भूतसाम्परायिकास्रवनिरोधहेतु चित्चैतन्य-चमत्कारसंचेतनात्मसंवरपरिणामै रुदितोदीयमानोदेष्यमाणकर्मनिर्जरणसमर्थसहजस्फारप्रभाभासुर-शुद्धज्ञानघनोन्तरात्मा नानासप्तभङ्गीनयनयननीयमानस्फुरज्ज्योति. स्फूर्जति अतिगहनतरात्मतत्त्वार्थरत्नपुञ्ज परिपूर्णतर्कमञ्जूषोद्घाटनकर्मठकुञ्चिकाभूत ।

शब्दस्फोटपदस्फोटवाक्यस्फोटवादिवैयाकरणाभिप्रेतव्युत्पन्नाव्युत्पन्नशब्दपक्षकक्षीकरणेन क्षणिककालान्तर-स्थायिपदार्थद्वयोररीकुर्वाणसौगतमतप्रतिपत्त्याथवा द्वैताद्वैतप्रवादिसौत्रान्तिकवैभाषिकविवेकपद्धत्या ज्ञानशब्दात्माद्वैतानुविद्धपरिपाट्या च विशालस्याद्वादप्लक्षवृक्षस्वच्छच्छायामाश्रयन्ति पतदञ्जलिपतञ्जलि-प्रभृतयस्तीरादर्शिपोतकाकन्यायमनुकुर्वाणा अनेकविधश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणव्याकरणन्यायतर्कमीमांसा-साहित्यनानाविधशास्त्राध्ययनाध्यापनपर्यालोचना ।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत", "न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु ' इति कर्तृ-वादाकर्तृवादविपञ्चीघोषा घोषणा कुर्वती भगवत्स्वोपज्ञगीताभारती यथा स्याद्वादं प्रतिपाद्य प्रतिपत्ति विदधाति वैष्णवसम्प्रदायाश्रितानां प्रत्यवायविरोधिनित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठायिनामणोरणीयान्महतो महीयानित्यध्ये-तृणां बाधप्रतिबन्धतावच्छेदकीभूतस्वनिष्ठविषयितावटितधर्मावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपितासाध्यवत्तानिश्चयत्व व्यापकप्रतिबन्धकानिरूपितप्रतिबध्यतावच्छेदकावच्छिन्नशालिज्ञानरूपसंशयनिराकरणपरा ।

पितृत्वपुत्रत्वमातुलत्वभागिनेयत्वप्रभृतिरापेक्षवादसम्बन्धिष्विव पौराणिकाभीष्टगजाननरसिंहो-दाहरणेषु कापिलाभिप्रेतसत्त्वरजस्तमसा साम्यावस्थाप्रकृतितत्त्वे मेचकरसापन्नपानके विचित्रचित्रपटे च स्यात्पदानुयोजनिकानिवार्यमाणा केवलान्वयिनी छायेवानुगच्छति प्रतिपद । समाधिसाधनसावद्यसावद्य इव प्राज्ञा' समयसारैकान्तरसिका स्वात्मान श्रेण्यारोहणम्मन्यमाना अनुक्षण परिशुद्धज्ञानमात्रैकभावनाभावितान्त

करणा: स्वेच्छोच्छलत्पुष्कलोद्यानल्पविकल्पमालामात्मकर्मद्रुयावच्छिन्नप्रयोगकुशलकुलिशोपमस्याद्वादान्चित-भेदज्ञानबलेन तीक्ष्णपरशुनेव भवपाशाशावल्लरी छिन्दन्तीतन्त्यात्मान आत्मनः आत्मभिरात्मभ्यः आत्मन आत्मस्वेत्रं षट्कारकाध्यात्मैकताना. ।

पश्चिमाशावर्त्यस्ताचलोप्युदयाद्रितामियर्त्ति सर्वेषां वर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थित इत्यखण्डज्योतिष्कसिद्धांतप्रक्रियया भारतवर्षीयजनतोक्तसामकालीनरव्यस्तकाल. पश्चिमविदेहस्थमानवानां प्रात.कालीन सूर्योदयवेलोदबोध्यते वैश्वानरदग्धनरमनलसेवो लाभप्रद. जललेपश्च कष्टप्रदः विषस्य विषमौषधमित्य.यलौकिकलौकिकनिदर्शनप्रदर्शनेन स्याद्वादवल्ली वेष्टयति त्रिविष्टप, किं बहुना संशयसुभृदखिलवचनप्रणाली सूत्रानुस्यूत निर्मलवृत्तमौक्तिकस्रगिव स्याद्वादाकिनगीरखिलस्थावरजंगमजङ्गदभिव्याप्य विद्वज्जनमानसविहारिमरालहृदयेषु नितरां नितातमुद्भासते इति ।

श्रेष्ठित्व, पण्डितत्व, दातृत्व, पात्रत्व, गृहपतित्वोदासीनत्व, जिनभक्तिनिपुणत्व, आत्मचिन्तनचेतयितृत्व, अन्तर्जागृतत्व, बहिःसुप्तत्व, शुद्धद्रव्याभ्यासित्व, अशुद्धद्रव्यकथनोपरतत्व, विद्वद्गोष्ठीचर्चित्व विजनतायां स्वात्मपरिशीलनरतत्व, अनन्त प्रमाणोपपन्नाकलङ्काचार्यप्रणीतप्रमेयप्रेमित्वेऽपि बहि.क.नजी स्वाम्युक्तनिश्चयनयाच्यार्थनिबध्यासनोन्मुखत्वप्रभृति स्वच्छसमुच्छलदच्छलधर्माभ्यासप्रणाल्या स्याद्वादगुम्फितया नानागुणनिष्ठाधेयतानिरूपिताधिकरणतामधिवुर्वाणः सर श्रेष्ठिवर्य हुकुमचन्द्रमहोदय अतिशेरते गङ्गाजीवननंदनचन्दनलसच्छुभ्रगुणाढ्य धार्मिकनृन् ।

प्रलम्बाजवञ्जमदिवर्त्तनकर्त्तनविध्वंसनपटुजिनधर्मप्रभावना, चैतन्यचिच्छिन्तनानन्दरवादप्रवर्त्तना सद्विग्रहहृद्यनिरवद्यगद्यपद्यमय जिनशासनवेदिविद्वद्वृन्दसद्गोष्ठीचैतेषाम् प्रवर्द्धन्ताम् धर्मशास्त्राभ्यासानुमननशीलता च ॥

स्याद्वादोन्नतवर्द्धमानहिमवत्पद्मांगतो निसृता ।
स्वान्यज्ञप्तिधृताजटाक्तजिनभद्द्वीपांगविद्गौतमात् ॥
सन्तप्तात्महिताप्यकुण्डवद्रुमा स्वाम्याननाद्वाहिता ।
नास्त्यस्त्यादिकणान् विकीर्य जिनवाग्गङ्गा पुनात्वाशु न ॥१॥

——— ———

दिगम्बर जैन-साधु-चर्या

लेखक—श्री इन्द्रलालजी शास्त्री विद्यालंकार, संपादक जैन गजट

साधु-जीवन गृहस्थ-जीवन से सर्वथा भिन्न होना चाहिये। यदि जो काम गृहस्थ करे, वही साधु भी करे, तो साधु और गृहस्थ में कोई अन्तर नहीं रह जाता। इसीलिए साधु को विषयाशाओं से सर्वथा रहित और आरंभ तथा परिग्रह से भी सर्वथा रहित ही होना चाहिये। विषयाशा, आरम्भ और परिग्रह ये सब गृहस्थ जीवन के कार्य हैं। यदि साधु होकर विषयाशाओं के आधीन और आरम्भ-परिग्रहयुक्त हो, तो उसे किसी भी दशा में साधु नहीं कहा जा सकता। जब विषयाशा, आरम्भ और परिग्रह से मानव सर्वथा रहित हो जाता है, तो उस के विधेय कार्य ज्ञानाभ्यास, धर्मध्यान और तपश्चरण आदि हो जाते हैं।

सबसे बड़ा पाप और अपराध परिग्रह है। मानसिक और शारीरिक परिग्रह ही संसार में पापों की पारस्परिक संतति को बढ़ाता रहता है। परिग्रह ही क्रोध, हिंसा, कठोर वचन, अनृतवाणी आदि का उत्पादक और ममत्वकारक है। भयादि का प्रदाता और चित्त का भ्रामक है। इसीलिए सच्ची साधुता के उपासक अपने शरीर और मनपर रत्ती भर भी परिग्रह तथा लालसा नहीं रखते और ऐसा रूप धारण करते हैं जिससे क्रोधादि की प्रवृत्ति का हेतु ही न उपजे। वैसा रूप यदि संसार में है, तो दिगंबर रूप ही है। अन्तरंग और बहिरंग दिगंबररूप ही समस्त अपराधों और पापों से मुक्त हो सकता है।

नग्न दिगंबर रूप ही जातरूप है। तत्कालोत्पन्न बालक की जातरूपता और साधु की जातरूपता में अन्तर विवेक मात्र का है। जिस प्रकार तत्कालोत्पन्न अथवा कुछ बड़ा भी बालक निर्विकार होता है, उसी प्रकार दिगम्बर नग्न साधु भी सर्वथा निर्विकार होता है। ऐसे जातरूपधारी नग्न दिगंबर वीतरागी साधु पांच महाव्रतों का यथाविधि पालन करते हैं:—

१—ऐसे महासाधु न राग, द्वेष, काम, क्रोध, मानादि से अपनी हिंसा करते और न किसी जीव का घात ही करते। वे छोटे से छोटे जीव की रक्षा का भी इतना कठोर प्रयत्न करते हैं कि सर्वथा कोमल मयूरपिच्छिका से स्थान आसन आदि से प्राणियों को बचा देते हैं। अपने शरीर को भी उस पिच्छिका से इसीलिए स्पर्श करते रहते हैं कि शरीर पर बैठा हुआ कोई प्राणी संकटग्रस्त न हो जाय। इतनी कोमल मयूरपिच्छिका के पास में निरंतर रखने का प्रयोजन केवल प्राणिरक्षा है। 'जीयो और जीने दो' इस भावना और प्रवृत्ति के वे पूर्ण और आदर्श अवतार होते हैं।

२—अपने प्राणों पर संकट आने पर भी वे कभी अयथार्थ और अतथ्य वचन नहीं बोलते। कठोर, कर्कश आदि वचन भी, जो कि परिणाम में भी वैसे ही हों, कभी भी नहीं बोलते।

३—वे बिना दी हुई कोई वस्तु एवं जो उस पद के उचित न हो वह दी हुई भी नहीं लेते। दी हुई का भी लेकर उनको कुछ करना नहीं। दिये हुये भी केवल ज्ञानोपकरण पुस्तकादि, शुद्ध आहार, पिच्छिका, कमण्डल आदि ही ग्रहण करते है।

४—ब्रह्मचर्य महाव्रत का पूर्ण रूप से पालन करते हैं।

५—अन्तरंग और बहिरंग किसी भी प्रकार का परिग्रह अपने पास नही रखते। पिच्छिका और कमण्डल परिग्रह के रूप मे नही, वे केवल शौच और संयम के उपकरण है। उनमे भी उनकी ममत्वबुद्धि अथवा मूर्छा नहीं होती। उनके न होने पर पाप के भय से वे अपनी शारीरिक प्रवृत्ति बंद कर देते है।

वे साधु पंच समितियों का यथाविधि पालन करते है —

१—सूर्य के प्रकाश मे ही भूमि को अच्छी तरह देख भाल कर चलते हैं। वे अपने चलने फिरने में यथासम्भव किसी भी जीव को मारना तो क्या, पीडा भी नही पहुचाते। जीवरक्षा का बडा भारी खयाल रखते है। इसीलिए अनावश्यक यातायात नहीं करते। आवश्यकता होन पर भी बडे भारी संयम से यातायात करते हैं, जिससे कि किसी प्राणी को बाधा भी न पहुंच सके।

२—सदैव हित, मित और मधुर वचन ही बोलते हैं।

३—श्रद्धा और विनय युक्त शुद्ध श्रावक के घर पर जाकर दिन में एक बार भोजन करते हैं। भोजन ४६ दोष टाल कर ही करते है। जल भी भोजन के साथ दिनमें एक बार ही लेते है। भोजन प्रायः अनेक रस छोड कर करते है। पानी भी प्राय गरम पीते हैं। भोजनदाता के अमीर-गरीब होने का कोई खयाल नही करते। केवल उसकी और भोजन की शुद्धि का ध्यान रखते है।

४—किसी भी वस्तु को रखते, उठाते तथा स्पर्श करते समय इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखते है कि उस प्रवृत्ति से किसी जीव को पीडा तो न पहुंच जायगी।

५—मलमूत्र भी ऐसे सर्वथा निर्जन्तु स्थान पर करते है जिससे किसी प्राणी को रंचमात्र भी पीडा न पहुच सके।

पांचों इन्द्रियों पर विजय रखते है। इन्द्रियों के वश न होकर उन्हे अपने वश में रखते है। इन्द्रियों के विषयों तथा ज्ञेय पदार्थो से वे सर्वथा रागद्वेष नही करते।

विशेष आत्मचिन्तनार्थ प्रतिदिन त्रिकाल सामायिक करते है। तीर्थङ्कर भगवान् की स्तुति करते हैं और उन्हे त्रिविध शुद्धि से नमस्कार करते है। इतनी सावधानी रखने पर भी यदि प्रमाद से कोई दोष लग जाय, तो उन दोषो का आलोचनादि द्वारा संशोधन करते हुए भविष्य के लिये पूर्ण सावधानी रखते है तथा उन दोषों से बचने के लिये अयोग्य व्यापार का मन वचन-काय की विशुद्धिपूर्वक परिहार करते है। तपश्चरण की अभिवृद्धि एवं दोषशांत्यर्थ वे महासाधु शरीर से ममत्व भाव का त्याग कर प्रतिदिन अनेक बार कायोत्सर्ग करते रहते हैं। कायोत्सर्ग का अर्थ शरीर त्याग न होकर शरीर में ममत्व का त्याग है, जिसके लिए वे महासाधु खडे होकर दोनों भुजाओ को नीचे लटकाते हुए पांव के पञ्जो को एक पंक्ति में रखकर आत्मध्यान में पूर्ण निश्चलता के साथ लीन हो जाते हैं, जिससे तपोवृद्धि, संचितकर्मनिर्जरा और आत्मानुभव की पराकाष्ठा को वे प्राप्त होते हैं।

वे महासाधु आजन्म स्नान नही करते। जिस समय आहार के लिये श्रावक के घर पर जाते है, उस समय भोजनानंतर वह श्रावक ही यथावश्यक उनका शरीर पौंछ देता है।

ये महासाधु मुखशुद्धि तो भोजन के समय गृहस्थ के घर पर करते हैं, परन्तु दन्तधावन नही करते। दन्तधावन दातों का मैल हटाने के लिये होता है। दातों पर मैल तभी जमता है, जबकि शरीर की आंतो का जाल अशुद्ध हो गया हो। अर्थात् उनमे मैल भर गया हो। उसमे मैल तभी भरता है जबकि अनापशनाप गरिष्ट दुष्पच भोजन किया जाता हो। ये महासाधु नीरस और सर्वथा सात्विक भोजन करते है। मात्रा से भी थोडा ही खाते है। ऐसी अवस्था मे न आन्तो पर मैल जमता और न तज्जनित दातो पर ही। इसी लिये ये दन्तधावन नही करते।

पवित्रता अथवा शारीरिक आमोद-प्रमोद के लिये स्नान किया जाता है। वे महासाधु स्वय पवित्र ही नहीं किन्तु पावन भी होते है। इसलिये पवित्रता की आवश्यकता नहीं। शारीरिक आमोद प्रमोद तो उन के लिये हैं जो विषयाशा और परिग्रह आदि मे लीन होते हैं। वे महासाधु इन सब झझटो से अलग है। इसलिये उन्हे स्नान की भी आवश्यकता नही।

वे महासाधु खाट पलंग आदि पर न बैठते न सोते है। पृथ्वी या काठ के पाटे आदि पर बैठते या सोते है।

सर्दी, गर्मी, बरसात सभी ऋतुओ मे प्रतिसमय सर्वथा नग्न ही रहते है। शरीर से रत्ती भर भी परिग्रह का सम्बन्ध नही रखते। भोजन भी खडे खडे ही अपने हाथ रूपी पात्र मे ही करते हैं। खडे भोजन करने का यह उद्देश्य है कि जब तक पावो मे खडे रहने की शक्ति होती है, तभी तक भोजन लेते है। खडे रहने की शक्ति नष्ट हो जाने के बाद वे महासाधु संन्यास धारण कर लेते है। वे महासाधु अलौकिक महात्मा एक वर्ष मे तीन बार, चार बार या छ बार अपने हाथ से ही अपने मस्तिष्क दाढी मूछ के केश उपाड लेते हैं। इस केश लुचन क्रिया से शरीर मे निममत्व तो प्रत्यक्ष ही है, साथ मे अयाचकवृत्तिता का भी परमोच्च आदर्श उपस्थित हो जाता है।

इस प्रकार दिगम्बर जैन साधु की चर्या का यह स्थूल चित्रण है। दिगम्बर जैन साधु ससार से सर्वथा निरपेक्ष होता है। वह ससार की समस्त अपेक्षाओ से रहित होता है। सासारिक मानवो को यह दिगम्बर जैन साधुचर्या बडी कठिन प्रतीत होती है। परन्तु जो महासाधु आत्मचितन और आत्मशोधन मे सलग्न हैं उन्हे उसी प्रकार कठिन नही लगती जैसे किसी बीमार को कडी से कडी औषधि लेने मे भावी सुख ही प्रतीत होता है। यदि कोई रोगी कटुतम औषधि, शल्यचिकित्सा आदि को कठोर समझ उसका त्याग कर दे, तो वह स्वस्थ नही हो सकता। इसीलिये अनादिकालीन कर्मो से बद्ध प्राणी यदि इस चर्या से उपेक्षित हो जाय, तो वह मुक्त नहीं हो सकता। कष्टो और सकटो मे वास्तविक मुक्ति पाने के लिये इस आदर्श विधि के बिना कदापि काम नही चल सकता।

इस दिगम्बर जैन साधुचर्या के इतनी कठिन होते हुए भी पूर्वकाल मे असख्य महामुनि हो गये है, और आज भी विद्यमान हैं, तथा होगे भी। उन सब को त्रिविध शुद्धि से बारबार नमस्कार है।

———

जैन-धर्म का मूलाधार

लेखक—पं० जगन्मोहनलाल जी जैन शास्त्री, कटनी

भारतीय समाज सदा से धर्म प्रधान समाज रहा है। धर्म शब्द की व्याख्या भी सर्वत्र यह की गई है कि "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धि. स धर्मः"। अर्थात् जिस से सांसारिक अभ्युदय और मोक्ष की प्राप्ति हो, वह धर्म है। जैन परम्परा के अनुसार उक्त पंक्ति का अर्थ यह है कि शुभ प्रवृत्ति या पुण्य प्रवृत्ति भी धर्म है, जिससे सांसारिक सुख स्वरूप अभ्युदय प्राप्त होता है, और शुभाशुभ प्रवृत्ति परिवर्जक निवृत्ति परक भी धर्म है, जिससे मुक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार व्यवहारधर्म और निश्चयधर्म दोनों धर्म के लक्षण मे समाविष्ट है। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी ने लिखा है कि "संसारदुःखत. सत्त्वान् यो धरत्युत्तमसुखे स धर्मः।" अर्थात् संसार के दुःखों से छुडाकर जो उत्तम सुख को प्राप्त करावे वही "धर्म" है। धर्म शब्द के लक्षण मे, स्वरूप में और कार्य में तथा उसके फल में, सभी धर्म सम्प्रदाय एक मत है। यह बात उक्त दोनों लक्षणों की अर्थ-विचारणा से स्पष्ट हो जाती है।

जैन-धर्म की विशेषता

यद्यपि प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप मे २ प्रकार का धर्म ऊपर बताया गया है, तथापि जैन धर्म प्रवृत्ति-परक धर्म को सांसारिक सुख का हेतु स्वीकार करते हुए भी उसे संसार बंधन का ही साधन मानता है। शुभ प्रवृत्ति पुण्यबंध की कारण है और पुण्य भी कर्मबंधन है, जिसे काटे बिना यथार्थ सुख का स्थान मोक्ष नही मिल सकता। अतएव उस परम सुख के धाम मोक्ष पुरुषार्थ का साधना करना ही धर्म का सर्वोत्कृष्ट ध्येय है। सांसारिक जीवन को सुखी और शान्त बनाने के लिए अशुभ या पाप प्रवृत्ति रूप अधर्म का परित्याग कर शुभ या पुण्य प्रवृत्तिरूप धर्म को स्वीकार करना यद्यपि आवश्यक है, पर इससे भी ऊपर असीम, अविनाशी, स्वात्मोत्थ, स्वतंत्र आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति के लिए जो धर्म हेतुभूत है वही सर्वप्रकारेण ग्राह्य है। इस संबंध में यह जानने योग्य है कि जैनागम क्या कहता है? वर्तमान मे समुपलब्ध जैन साहित्य में सर्वमान्य प्राचीन आर्ष ग्रन्थ "श्री तत्त्वार्थसूत्र" है। इस ग्रंथ का प्रथम सूत्र है—

"सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्राणि मोक्षमार्गः"

अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्याज्ञान और सदाचार ये तीन मिलकर दुःख निवृत्ति के सदुपाय हैं। जब कि यह सर्वमान्य सिद्धांत है कि संसार में दुःख है और येन केन प्रकारेण उससे मुक्ति पाना अभीष्ट है, तब प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय में इस दुःख से छूटने के उपाय प्रदर्शित किए गए है। इसी प्रकार जैन धर्मग्रन्थों में भी दुःख निवृत्ति का उपाय उक्त प्रकार से प्रदर्शित किया गया है।

जैन-धर्म क्या है ?

इस सबंध में शाब्दिक व्युत्पत्ति द्वारा "जैन धर्म" शब्द का अर्थ क्या होगा, यह भी विचारणीय है। "जयतीति जिन" जो जीतता है; वह "जिन" है। जीतना किसी शत्रु पर होता है। इस आत्मा के भीतर जो काम क्रोध लोभ मान मोह आदि दुर्गुण हैं, वे ही इसके शत्रु है और उन पर विजय पा लेना सबसे बडी विजय है।

आत्मदोष संशोधक ज्ञानी, जिन्हें "जिन" सज्ञा प्राप्त हुई हैं, उन्हें अपना आराध्य देव मानने वाले लोग "जैन" संज्ञा को प्राप्त होते हैं तथा उन जैनो का जो धर्म है वह जैन धर्म है। दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि "संसार के जन्ममरणादि महान् दुःखो के मूलकारणभूत अपनी आत्मा की असत् प्रवृत्तियो को दूर करने के कर्त्तव्य को पूरा करने वाले, सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ जो मोक्ष पुरुषार्थ है, उसके द्वारा सम्पूर्ण आत्म वैभव का स्वतंत्रता से उपभोग करने वाले सर्वाधिक "कृतकर्त्तव्य" व्यक्ति ही "जिन" है और उन्हे आदर्श मानकर अपनी मोह निद्रा को भंग कर अपने मे जागरूक रहकर जो उनके पथ पर चलकर स्वय को "जिन" बनाने का प्रयत्न करते है वे 'जैन' हैं और उनके सम्पूर्ण कर्त्तव्य विषयक सिद्धांत ही "जैनधर्म" है। इसे थोडे शब्दो में कहा जाय तो जैनधर्म कर्त्तव्यशील व्यक्तियो का धर्म हैं। अतः वह "आचार-प्रधान" धर्म है।

मोक्ष मार्ग आचार प्रधान है

यद्यपि सूत्रकार ने सम्यग्दर्शन आदि तीन उपाय दु.ख निवृत्ति के बताये है, तथापि उनका स्वरूप विचार करने पर एकमात्र "आचार" धर्म में लीन हो जाता है। जैन धर्म का यह सर्वोपरि सिद्धांत है कि प्रत्येक संसारी आत्मा स्वोपार्जित पुण्य पाप का फल भोगता है। कोई ईश्वर आदि दैवीशक्ति व्यक्ति पर शासन नहीं करती। अत. न कोई उसको कुछ दे सकता है और न हर सकता है। न कोई रक्षक है और न कोई मारने वाला है। अपना किया हुआ 'सदाचार' ही एक हद तक पुण्य है और 'कदाचार' ही पाप है। अतएव उसी दुराचार या सदाचार के फलस्वरूप (जो कि उसे प्राकृतिक रीति से स्वय प्राप्त होता है) दुख सुख को यह भोगता है।

आचारमूलक आत्म-स्वतन्त्रता

यह लोक छह द्रव्यो का समूह है। इसमें प्रत्येक द्रव्य की सत्ता स्वतत्र है। कोई किसी की सत्ता का अपहरण नहीं कर सकता और न किसी की सत्ता को बना सकता है। जैसे प्रत्येक द्रव्य के लिए यह अनिवार्य सिद्धांत है, वैसे ही आत्मतत्त्व पर भी वह लागू है। ऐसा होने पर भी यह आत्मा अपने भ्रमवश ऐसा मान बैठा है कि मै पराधीन हू। इसे अपनी आत्म-स्वतन्त्रता पर न तो विश्वास है और न उसका ज्ञान ही है। जब किसी आगमवचन से या सद्गुरु के निमित्त से इसका यह भ्रम दूर हो जाता है और वह अपनी आत्म-स्वतन्त्रता पर विश्वास कर लेता है तथा उसका ज्ञान उसे हो जाता है, तब वही विश्वास 'सम्यग्दर्शन" और वही ज्ञान "सम्यग्ज्ञान" कहलाता है। उक्त प्रकार आत्म स्वतन्त्रता को प्राप्त कर लेने का उसका जो प्रयत्न है, वही 'सदाचार या सम्यग्चारित्र" का नाम पाता है।

इस प्राणी को अपनी ही भूल से अपने को परतन्त्र मानने के कारण दुःख होता है और अपनी भूल समझ मे आजाने और परावलम्बन का त्याग कर देने मात्र से ही यह सुखी हो जाता है। अत मिथ्या विश्वास, मिथ्या ज्ञान और विपरीताचरण ही दु.ख के हेतु और सम्यक् तत्त्व की श्रद्धा तथा उसका ज्ञान एवं

तदनुकूल अपना सदाचार वर्तन ही दु.ख निवृत्ति के उपाय है। यही अर्थ सूत्रकार के सूत्र का है।

आचारमूलक चतुःसंघ व्यवस्था

जैनाचार्यों ने जैन धर्मानुयायियों को चार भागों में विभक्त किया है। मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका। इस विभाजन का भी मूलाधार 'सदाचार' है। जो परिपूर्ण अहिंसा, पूर्णसत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और सम्पूर्ण परावलम्ब के त्याग स्वरूप अपरिग्रह इन पांचों ही महाव्रतों को अपने जीवन में ढाल लेते है, वे साधु या 'मुनि' के नाम से कहे जाते है। मुनि की तरह ही जो सम्पूर्ण व्रतों के परिपालन में कटिबद्ध हैं, पर स्त्री पर्याय गत सहज कमजोरी या कमी के कारण वस्त्र परिग्रह एक मात्र धोती का त्याग नही कर पाते, वे 'आर्यिका' सज्ञा को प्राप्त होते है।

पांच व्रतों का गृहाश्रम में संभावनीय अंश का त्याग करने वाले गृहस्थ 'श्रावक' और इसी प्रकार का आचार पालने वाली गृहिणी "श्राविका" कही जाती है। इस प्रकार यह चतुः संघ व्यवस्था सदाचार को आधार मानकर ही की गई है।

सदाचार के मापदण्ड

सदाचार के मापदण्ड जैन संस्कृति में तीन है। अहिंसा—वीतरागता-समता। जिस व्यक्ति में इन तीन गुणों की जितनी अधिकता पाई जाती है, वह व्यक्ति उतना ही आदरणीय और पूज्य माना जाता है। इन गुणों की विशेषता से ही साधु 'साधु' संज्ञा पा सकता है, अन्यथा नहीं। इन गुणों के अस्तित्व का प्रमाण यह है कि उस व्यक्ति का साधारण रहन सहन, खान पान, उठना-बैठना, वार्तालाप-व्यवहार और आसन-शयन इत्यादि सम्पूर्ण कार्यकलाप इस प्रकार के हो जाते है कि उनसे किसी भी प्राणी को कष्ट न हो। प्रत्येक कार्य वह इस रीति पर देख शोध कर करता है, जो किसी मनुष्य की बात तो दूर रही, पशु पक्षी कीट पतग, यहां तक कि साधारण वृक्ष गुलमलता घास-पात आदि एकेन्द्रिय प्राणी का भी घात न हो जाय। अपनी इस अहिंसात्मक प्रवृत्ति के लिए वह यह आवश्यक समझता है कि ऐन्द्रियिक सुख की लालसा का परित्याग करे। मानव शरीर के लिए कुछ तो ऐसी अनिवार्य चीजें हैं, जिनका त्याग शक्य नही है। जैसे उठना, बैठना, सोना, चलना, भोजन करना, मलत्याग करना, बातचीत करना, अपने पास जिन वस्तुओं की नितान्त आवश्यकता दैनिक कार्यों के लिए है; उनका उठाना रखना इत्यादि। इन कार्यों को तो साधु बहुत देख शोध कर प्राणिपीडा परिहार करते हुए करता है। कुछ कार्य मनुष्य के ऐसे है जो औपाधिक है, जो अनिवार्य शरीर धर्म के होते हुए भी अपनी लालसा के कारण उसने अपने साथ लगा लिये है। वे कार्य हैं स्वादिष्ट भोजन, बढिया कपडे, बहुमूल्य आभूषण, चन्दन इत्र सुगंधित पुष्प आदि, गीत नृत्य वादित्र आदि, नाटक सिनेमा कामभोग आदि अनेक भोग विलास संबंधी कार्य इस प्रकार के है। इन उपाधियों को लगा लेने पर इनके साधक समस्त वैभव के साथ अनुराग होना स्वाभाविक है। इस दुनिया मे इन उपाधियों से बचे हुए मानव 'न' के बराबर है। इन उपाधियों के शिकार प्रायः सब है। सब को ही तत्साधक वैभव चाहिए है। उसकी प्राप्ति मे ही उनका अहर्निश प्रयत्न है। पारस्परिक छीना-झपटी, संघर्ष, युद्ध, कलह, विसंवाद, मारपीट, मुकदमेबाजी आदि सम्पूर्ण दु ख परम्परा उसके ही प्रतिफल है। इन सब दुखों से बचने के लिए व्यक्ति को इन औपाधिक व्याधियों से अपने को बचाना चाहिये। जैन साधु अनेक हिंसा के साधन भूत इन उपाधियों से बचने के लिए "वीतरागता" को स्वीकार करता है। वह इन्द्रिय सुखों से विरक्त रहता है। उनकी लालसा नही करता। इन्द्रियों का दमन करता है। इन्द्रिय सुख

की लालसा आत्मा का एक विकारी भाव है। उस विकारी भाव के कारण ही प्राणी 'आत्म-स्वतन्त्रता" के सिद्धान्त को भूला हुआ है। अपने सत्प्रयत्नो द्वारा जिनमें "वीतरागता" अर्थात् सांसारिक वैभवो मे राग द्वेष का अभाव ही मुख्य प्रयत्न है। जब अपने विकारी भावों पर आत्मा विजय प्राप्त करता है, तब वह आत्म-साधना का साधक 'साधु' कहलाता है। उसके सारे ही प्रयत्न इसके लिए हैं कि वह अनादि की भूल से जो अबतक परावलम्बी था, वह परावलम्ब उसका छूट जाय और वह अपने को अपने मे ही सीमित कर आत्मस्वतन्त्रता का पूर्ण उपभोक्ता बन सके। जब तक वह आत्मभोग का भोगी, आत्मराज्य का शासक, मुक्तात्मा नही बन जाता, तब तक उसके वे सम्पूर्ण प्रयत्न "सदाचार" या "सम्यग्चारित्र" कहलाते है। यह सदाचारी व्यक्ति सम्पूर्ण "अहिसा" के पालन के लिए आवश्यक "वीतरागता" का अवलम्बन करता है और 'वीतरागता' की पूर्णता के लिए 'समता' का आश्रय लेता है। सुख-दुःख मे, सम्पत्ति-विपत्ति मे, वैरी और बन्धु मे, संयोग और वियोग मे तथा जीवन और मरण मे भी समभाव को प्राप्त हो जाता है। वैषम्य उसके जीवन मे नही रह जाता। प्रत्येक अवस्था मे अपने को सुखी ही अनुभव करता है। जब वह ऐसे साम्यभाव को प्राप्त होता है, तभी जीवन की उलझी हुई गुत्थियो को सुलझा पाता है। इसी समता के अवलम्बन से 'वीतरागता' की पूर्ति होती है। समदृष्टि वीतराग ही पूर्ण अहिंसक हो सकता है। इस प्रकार समता, वीतरागता और अहिसा सदाचारी साधु पुरुष के सदाचार के मापदण्ड हैं। जैन संघ मे सर्वोत्कृष्ट पद "साधुपद" है और साधपद का अधिकारी व्यक्ति वही है जो तत्पद विहित 'सदाचार' का पूर्ण अनुयायी हो।

गृहाश्रम की व्यवस्था

जैनधर्म मे गृहस्थ के ग्यारह दर्जे (प्रतिमा) बतलाये गए हैं। (१) अष्ठ मूल व्रतो को पालने वाला "जिन" का सच्चा विशुद्ध श्रद्धानी, (२) पञ्चाणुव्रत तथा शेषसप्तगुणधारी, (३) सामायिक व्रतधारी, (४) प्रोषधोपवासव्रत का आचारी, (५) भोगोपभोगो का विशेष संयमन की इच्छा से सचित्र वस्तु का त्यागी, (६) दिवस ब्रह्मचारी, (७) रात्रिदिवा पूर्ण ब्रह्मचर्य का अनुयायी, (८) आरम्भ जनित पापो से अपने को बचाने वाला आरम्भत्यागी, (९) परिग्रह-धन, धान्य, वस्त्र, आभूषण, सुवर्ण, रजत, रत्न, जमीन-गृह आदि का त्याग कर नाममात्र चार-छ. आवश्यक वस्त्र मात्र रखने वाला, (१०) गृहारम्भ के साधारण से साधारण कार्यो मे भी अनुमति प्रदान न करने वाला, (११) अनिश्चित गृहस्थो के यहा भिक्षा भोजन मात्र ग्रहण कर, ध्यान और परोपकार मे जीवन व्यतीत करने वाले एक या दो वस्त्र मात्र के धारण करने वाला। ऐसे ग्यारह प्रकार के गृहस्थ माने गए हैं। प्रत्येक प्रतिमा मे कुछ न कुछ सदाचार की मात्रा बढती आई है और प्रतिमारोहण की एक मात्र शर्त सदाचार की वृद्धि ही है। अष्टमूल व्रत से प्रारम्भ कर अन्त तक गृहस्थ के बारह व्रतो को पूर्ण कर गृहस्थ को यह ग्यारह प्रतिमाए इस दर्जे तक पहुंचा देती हैं कि वह खड़े हो कर एक बार गृहस्थ के घर भिक्षा से प्राप्त अन्न को अपने हाथ रूपी बर्तन मे ही भोजन करता है, मुख से मागता नही। केवल लगोटी मात्र वस्त्र रखता है। एक कानी कौडी भी सम्पत्ति के नाम पर नही रखता। साधु सघ मे ही निवास करता है। अपने इस उत्तम सदाचार से वह अपने को इस योग्य बना लेता है कि लगोटीमात्र का त्याग कर देने पर उस मे व साधु मे कोई अन्तर नही रह जाता।

सच्चा जैन कौन है?

यह बात पहिले ही बता दी गई है कि सदाचार के उपासको तथा उसके बल पर "आत्मपद" की

विशिष्ट लेख

सर्वोत्तम कोटि को प्राप्त कर लेने वाले 'जिन' तथा उनकी 'वाणी' पर जिसकी अगाध श्रद्धा हो, वह जैन है। उसकी यह अवस्था "अविरत" अवस्था मानी गई है। अतः वह अभी प्रतिमाओं की दृष्टि से किसी भी प्रतिमा पर अभी प्रतिष्ठित नहीं है। उस मार्ग में प्रतिष्ठित होने के लिये यह आवश्यक है कि जिस प्रकार उस की जिन जैनधर्म और जैन गुरु पर अटल श्रद्धा है, वैसे ही उसकी श्रद्धा उसके विश्वास के अनुसार असारता और दुःख संतप्तता के कारण संसार से अशुचि विनश्वर रोग का घर होने से शारीरिक मोह से, तथा ऐन्द्रिय काम भोग में उसे वैराग्य पैदा करा देती है, तो वह प्रथम प्रतिमा का अनुयायी गृहस्थ हो जाता है।

सारांश यह है कि संसार, देह और भोग की विरक्ति जिन्हें नहीं हुई, बल्कि जिन्हें अभी संसार के ऐहलौकिक सुख और पारलौकिक सुख स्वर्गादि विभूति की अभिलाषा है, जिन्हें भी देह की काल्पनिक सुंदरता को देखकर अनुचित रूप से भी कामवासना जागृत हो जाती है, जो अभी इन्द्रिय सुख के लालच में अनैतिक आचरण भी करने की हिम्मत कर लेता है, वह जैन गृहस्थ की पहिली सीढ़ी पर भी पैर रखने का पात्र नहीं है। आगे बढ़ने की बात तो बहुत दूर की है।

आचार्य समन्तभद्र ने स्पष्ट लिख दिया है कि—

"सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः।
पञ्चगुरुचरणशरणो दार्शनिकः तत्त्वपथगृह्य ॥"

यह प्रथम दर्जे के श्रावक (प्रथम प्रतिमा) का स्वरूप है। अनीति का वर्तन करने वाला, निरपराध दूसरों को सताने वाला, मायाचार, विश्वासघात तथा असत्य भाषण से पर को हानि पहुचाकर अपना स्वार्थ-साधन करने वाला, दूसरों के अधिकार छीनने वाला, व्यभिचार करने वाला, विषय लपटी व्यक्ति जैनगृहस्थ के धर्म की प्रथम सीढ़ी पर भी आरोहण करने योग्य नहीं है। वह सदा नीति से वर्तता है और नैतिक आचरण का समर्थन करता है। "तत्त्वपथगृह्य." इस पथ से आचार्य समंतभद्र ने यह बात दर्पण की तरह स्पष्ट कर दी है।

"वत्थुसहावो धम्मो"

धर्म के स्वरूप का प्रतिपादक यह वाक्य भी उक्त अर्थ को ही पुष्ट करता है। आत्मा का स्वभाव ही आत्मा का धर्म है। स्वभाव की प्राप्ति के लिये एक मात्र "सदाचार" जिसकी पृष्ठभूमि सदाचार तदाराधक और तन्निष्ठों की श्रद्धा से परिपूर्ण हो, आवश्यक है।

आचारमूलक व्यवहार

यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न हो सकता है कि क्या जैन समाज को केवल धर्म ही इष्ट है? सांसारिक व्यवहार से क्या जैन का जीवन शून्य है? उत्तर है कि नहीं। जैन सम्पूर्ण लोक प्रवृत्तियों में भाग लेता है। जीवन का आनन्द उठाता है। वह संसार में केवल विषण्ण और मनहूस रहता है या रहना चाहिये, ऐसी बात नहीं है। तथापि वह सदा इस बात का ध्यान रखते हुए कि अमुक व्यवहार के पालन करने में मेरी श्रद्धा और सदाचार को धक्का तो नहीं लगता, लोकव्यवहार का पालन करता है। श्रीमदाशाधर जी ने इस सम्बंध में स्पष्ट आज्ञा दी है कि:—

"स्वाचाराप्रतिलोम्येन लोकाचारं प्रमाणयेत्।"

अर्थात् "अपने सदाचार की रक्षा का ध्यान रखकर ही लोकाचार का वर्तन करे।"

"सदाचार" शब्द में अहिंसा, सत्यवचन, सरलता, निष्कपट व्यवहार, उचितता, नैतिकता, इन्द्रियसंयमन, निर्लोभ, हार्दिक पवित्रता, क्षमा, परोपकार, फलनिरपेक्ष कर्त्तव्य करने की भावना इत्यादि मानव जीवन के लिये उपयोगी सहस्रों गुणों का समावेश होता है।

जैनागम के अनुसार जो अपने को प्रथम दर्जे का अर्थात् सब से छोटे दर्जे का भी "जैन" बना ले, वह 'विश्व' के लिये सब से अच्छा व्यक्ति सिद्ध होगा। क्योंकि सदाचार ही जैन धर्म का मूलाधार है। इसी में जीवन की सफलता है और इसके बिना मानवजीवन पशुजीवन बन जाता है। यही विश्व की अशांति का मूल हेतु है।

मंत्र और प्रतिष्ठायें

लेखक—श्री नाथूलाल जैन साहित्यरत्न, सहितासूरि, न्यायतीर्थ, शास्त्री

वर्तमान में जिस विषय के सम्बन्ध में अश्रद्धा और उपेक्षा बढ़ती हुई दृष्टिगोचर होरही है, उसी विषय की चर्चा मे यहां उठा रहा हूं। मंत्र और प्रतिष्ठा का परस्पर सम्बन्ध होने से दोनों पर यहां विवेचन करना आवश्यक है।

"मन्त्रयन्ते गुप्तं भाष्यन्ते इति मन्त्राः" जो गुप्त रूप से बोले जाते हैं, उन्हें मन्त्र कहते है। व्यवहार में मंत्रणा और मंत्री आदि प्रयोग इसी अर्थ को प्रकट करते है। मंत्रणायें एकांत में या प्रच्छन्न रूप में ही की जाती है। एकांत और शांत वातावरण में मन की एकाग्रतापूर्वक ही कोई कर्त्तव्य का भान हो सकता है। उसी प्रकार नियमानुसार शब्दों की योजना से बने हुए मन्त्रों से विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न होने में कोई आश्चर्य नहीं। सुन्दर और आकर्षक शब्दों की योजना सभी को मुग्ध कर लेती है।

सामान्य रूप से मंत्र तीन प्रकार के होते है :—१ बीज मंत्र—जो एक अक्षर से नव अक्षर तक के होते हैं। २. मंत्र—दश अक्षर से बीस अक्षर तक के। ३ माला—जो बीस अक्षर से अधिक के होते है।

अकार से लेकर हकार तक के सभी अक्षरों का मंत्रशास्त्र में माहात्म्य बताया गया है। स्वरों में भी सभी के वर्ण, देवता, उपयोग आदि का वर्णन मिलता है, जिनका कथन यहां करने में बहुत विस्तार हो जायगा। इन स्वरों और व्यजनों में कोई शुभ रूप है; कोई अशुभ रूप है। किन वर्णों का किन वर्णों के साथ सबंध करने से क्या फल होता है, यह भी मंत्र के अतिरिक्त व्यवहार मे हम बोलचाल से अनुभव कर सकते है।

मंत्रों का जाप तीन प्रकार से किया जाता है—१ मानस (मन में शब्दार्थ का चिंतन), २. वाचिक (शब्दोच्चारण) और ३. उपांशु (मंद ओष्ठ स्पंदन करते हुए) और उच्चारण शांति, पुष्टि, वश्य, आकर्षण, स्तंभन, मारण, विद्वेषण और उच्चाटन केलिए हाथ, अंगुली, आसन, माला, समय, हवनकुंड, समिधा आदि का पृथक् २ कथन है। मुद्रा, स्वाहा, स्वधा आदि पल्लवो का भी यथायोग्य प्रयोग होता है। महाकवि धनंजय ने मणि, मत्र, रसायन आदि को जिनेन्द्र का ही पर्यायवाची कह कर उन्हें सर्वसिद्धिदायक सिद्ध किया है। परन्तु यह सब अन्तरग भावों की प्रधानता पर निर्भर है। कोई भी भावशून्य मंत्रजाप या क्रियाकांड फलदाता नहीं होता। बताया गया है कि एक करोड द्रव्य चढाने के बराबर एक स्तोत्रपाठ फल देता है, एक करोड स्तोत्र के समान एक बार किया हुआ जप फलदायक है और एक करोड जप एक बार ध्वनि के बराबर है, किन्तु वह एक करोड बार का ध्यान भी एक बार आत्मा के समारूप परिणति के बराबर है। इसका अभिप्राय यही है कि

आत्मा की ओर जितनी उन्मुखता एकाग्रता बढ़ती जायगी, उतनी ही अन्य शक्ति भी सस्थित होती जायगी। बाहरी प्रभाव भी सब उसी आत्मशक्ति के आधीन है। इसलिए आत्मा में जब अनादिकालीन कर्मों को नष्ट कर मुक्ति प्राप्ति की सामर्थ्य है फिर वह अपनी एकाग्रता, मत्रों की सिद्धि और उनके प्रभाव को प्रकट क्यों नहीं कर सकता है? यही कारण है कि अंजनचोर आदि ने श्रद्धा और दृढ़ता से आकाशगामिनी विद्या आदि की सिद्धि कर ली थी। पर श्रद्धा कोई साधारण बात नहीं है। इस प्रकार मुक्ति के समान मन्त्रसिद्धि में भी सम्यक् श्रद्धा, तत्सबधी सम्यक् ज्ञान और यथाविधि सम्यक् चारित्र आवश्यक है। इनमे किसी की भी कमी होने पर पूरा फल नही होता। आहारादि का पाचन भी परिणामों के अनुसार ही होता है और रोगादि का भी चित्तवृत्ति के अनुसार हो असर होता देखा गया है। तत्त्वानुशासन मे लिखा है कि जब कोई मंत्र जपने वाला पार्श्वनाथ (या जिसका) ध्यान करता है, उस समय उसकी आत्मा वैसी हो जाती है और वह आत्मीय शक्ति द्वारा ही अपना अभीष्ट फल पाता है, विघ्नसमूह नष्ट करता है। निश्चय और व्यवहार की अनेकांत दृष्टि से विचार करने पर जैसे बाह्य परिग्रह अंतरग ममता का भी कारण माना गया है, उसी प्रकार बाह्य विषादि के भोजन का और शाब्दिक मत्रो का भी मन पर असर मानना पडता है। ऐसा न माने तो अमूर्तिक आत्मा के कर्मादि का बंधन और मद्यादि से होने वाला विकार कैसे सिद्ध होगा?

मन्त्र सबधी चर्चा के पश्चात् यहां प्रतिष्ठा की चर्चा भी करना आवश्यक है।

यद्यपि समस्त धार्मिक क्रियाकांड का यहां उल्लेख करना चाहिए था, पर प्रतिष्ठा शब्द से मेरा अभिप्राय प्रतिमा (बिंब) प्रतिष्ठा आदि पर, जिनमे प्रतिष्ठा शब्द व्यवहृत होता है, प्रकाश डालने का है। पच कल्याण सम्बन्धी मन्त्रो द्वारा किसी सर्वधातु, पाषाण आदि की शास्त्रोक्त निर्मापित प्रतिमा में पंचपरमेष्ठी के सर्वज्ञत्व आदि गुणों का स्थापन करना प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा के स्थापना, न्यासक्रिया आदि नाम है, जिनका भाव यह है कि उन्ही के समान अपनी वृद्धि हो जाय। इससे 'यह वे ही है' यह भाव झलकता है। इसकी पूजन, स्तवन आदि के लिये आवश्यकता है क्योकि साक्षात् ऋषभदेव महावीर आदि जिनेन्द्र तो सिद्ध लोक मे विराजमान हैं अत: उनके आदर्श गुणों का स्मरण और उनके सदृश बनने के लिये उनका मूर्तिमान् तदाकार रूप स्थापित करना पडता है। इस के बिना भाव स्थिर नही हो सक्ते। इन परमपद मे स्थित शुद्धात्माओ की प्रतिमा के सिवा उनकी प्रतिमा के स्थान मन्दिर, शास्त्र आदि की भी उक्त आदर्श के उद्देश्य से प्रतिष्ठा की जाती है जो मंदिरप्रतिष्ठा, वेदीप्रतिष्ठा, शास्त्रप्रतिष्ठा और कलशध्वजाप्रतिष्ठा आदि के नाम से कही जाती है।

यह सब बाह्य जल, सरसो, सुपारी, अक्षत आदि आदि द्रव्यों और अन्य मागलिक वस्तुओ से मन्त्रो और यन्त्रो द्वारा की जाती है। शब्दो और अचेतन पदार्थों मे कुछ ऐसी स्वाभाविक शक्ति है कि उन्हें ठीक मिलाने और प्रयोग करने पर उनका प्रभाव अवश्य होता है। 'मणिमाला' ग्रन्थ मे किस रत्न को कब कहां धारण करने मे क्या लाभ व हानि होती है, यह बताया गया है। हवन मे जिन वस्तुओ का क्षेपण होता है उन से शरीर के व बाहर के बडे २ रोग व कीटाणु दूर हो जाते हैं। दशांगधूप और घी आदि मे क्षय आदि रोगो को दूर करने की शक्ति है। प्रतिष्ठेय प्रतिमा, वेदी, ध्वजा और कलश के निर्माण और प्रमाण की विधि अलग २ है। प्रतिमा पाषाण आदि की ग्राह्य मानी गई है, काष्ठ की प्रतिमा नही। वह भी सांगोपांग, शांत और ध्यानारूढ होनी चाहिए। तिरछी, ऊंची, नीची और गडी हुई दृष्टि तथा रौद्ररूप, छोटा बडा पेट, ऊंचा नीचा आसन,ये प्रतिमा संबन्धी दोष क्रमश धनके, पुत्र के,स्त्री के नाश, संताप, प्रतिष्ठापक मृत्यु, रोग

इत्यादि के कारण हो जाते है । अतः अपने नगर के और राज्य के कल्याण का इच्छुक कभी वास्तुशास्त्र का उल्लंघन न करे। कहते हैं कि आजकल प्रतिष्ठापकों व प्रतिष्ठाचार्यों को लाभ के स्थान मे प्रतिष्ठा से प्राय: हानि ही उठाते हुए देखा जाता है। इसमें शास्त्रोक्त विधि विधान की न्यूनता तो सम्भव है ही, पर प्रतिष्ठापक और प्रतिष्ठाचार्य की श्रद्धा और आचरण का अभाव भी एक खास कारण है। आचरण में केवल शुद्ध खानपान ही शामिल नहीं है वरन् ब्रह्मचर्य और नैतिकता उसमें मुख्य है। दोनों के लक्षणों का प्रतिष्ठापाठों में उल्लेख है। न्यायोपार्जित धन से आज कल प्रतिष्ठा कहां हो पाती है?

इन प्रतिष्ठाओं और संस्कार विधियो मे जो क्रियाकांड है उस में कुछ भाग दूसरों का भी हो सकता है क्योंकि परस्पर जैन व इतर संस्कृति में आदान-प्रदान होता रहा है। इसी क्रियाकांड की विभिन्नता के आधार पर जैनों में कई आम्नाय या पंथभेद हो गए है।

जो प्रतिष्ठाएं पहले अधिक समय में सम्पन्न होती थीं और जिनमें अर्थ व्यय भी बहुत होता था अब उनमें सुधार होता जा रहा है। प्रतिष्ठाचार्यों को इन में बहुत लाभ हुआ करता था जिसके कारण यह वर्ग बदनाम है। पंचकल्याणक में झूला, भगवान के वस्त्राभूषण, गठजोडा, कलश आदि में होने वाली आमदनी अब तो मंदिर की आमदनी में रख ली जाती है। मैं तो पंचकल्याणक समान सब से बडी प्रतिष्ठा को कई बार आठ दिन में सम्पन्न करा चुका हूं। जो लोग बिंब प्रतिष्ठा में पचकल्याणक विधि को नाटक बनाकर उपहास करते है वे संस्कारों और मन्त्रविधियों के महत्त्व को नहीं जानते। बिंब प्रतिष्ठा मे यागमंडल, अंकन्यास और सूरीमन्त्र प्रभृति मुख्य है। मेरा अनुभव है कि ये तीनों ही प्रतिष्ठाओं में विधिपूर्वक नहीं हो पाते। विशिष्ट मन्त्रकृत प्राणप्रतिष्ठा से ही प्रतिमा का चमत्कार और पूज्यता प्रकट होती है। यह प्रतिमा प्रतिष्ठित है या नहीं इसका ज्ञान प्रतिमा के दर्शन से ज्ञानी जन जान लेते हैं। अन्तरग मन्त्र सस्कार के बिना बाह्य क्रियाकांड निष्फल है। जिन सेन स्वामी ने कहा है कि "मन्त्रविहीन क्रिया से प्रयोक्ताओं को सिद्धि नहीं होती। जैसे अस्त्र व नायक बिना केवल पोशाक से सजी सेना से विजय नहीं मिलती।" जबतक सामने की वस्तु में वैशिष्ट्य नहीं होगा तब तक हृदय में पूज्य बुद्धि और आकर्षण पैदा नहीं हो सकता। प्रतिमा की सातिशयता उसकी विधिवत् प्रतिष्ठा पर निर्भर है।

इन्हीं प्रतिष्ठाओं और मन्त्रसंस्कारों से हृदय पर प्रभाव तो होता ही है पर इन से व्यक्ति और देश का शुभाशुभ भी होना व न होना जाना जाता है। प्रतिष्ठापाठमें बताया है कि "जिनप्रतिष्ठा का प्रथम हेतु राज्य की सम्पत्ति, सुभिक्ष, मिथ्यात्व का नाश है।' मैंने यह देखा है कि प्रतिष्ठा के बाद प्रतिष्ठापकों की पूव दशा में सुधार होकर संपन्न दशा और गांव में भी सुखकी वृद्धि हो गई और इसके विपरीत भी देखा है। इसका कारण प्रतिष्ठा विधि के ठीक होने न होने से उत्पन्न पुण्य और अपुण्य कहा जा सकता है।

आज आवश्यकता और समय को देख कर ही प्रतिष्ठा आदि कार्य किए जाने चाहियें; बिना आवश्यकता के मंदिरों और प्रतिमाओं की संख्या बढाने से उनकी रक्षा और पूजा का प्रबन्ध नहीं हो पाता है। प्रतिष्ठा पाठ में नवीन प्रतिष्ठा के बजाय जीर्णोद्धार में विशेष पुण्य माना है। श्रावकों के पूजा और दान ये दो मुख्य

कर्त्तव्य माने गये हैं उनमे जहां जिसकी आवश्यकता हो करना चाहिये। दान में भी सामयिक आवश्यकताओं का ख्याल रखना चाहिए।

इस लेख मे वीतरागविज्ञानता के आदर्श को प्राप्त करने के लिये और जिनपूजा के लिये प्रतिष्ठा और मन्त्र पर सक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है। मन्त्रपूर्वक ही प्रतिष्ठा होती है। अतएव दोनों मे कार्य-कारण सबध है।

अनिश्चिततावाद और स्याद्वाद

लेखकः—श्री न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल जैन कोठिया, दिल्ली

भगवान् महावीर के समय में अनेक मत प्रवर्त्तक थे। उनमें निम्न छः मत प्रवर्त्तक बहुत प्रसिद्ध थे और उनका लोगों पर बहुत प्रभाव था—

१ अजित केश कम्बल, २ मक्खलि गोशाल, ३ पूरण काश्यप, ४ प्रक्रुध कात्यायन, ५ संजय वेलट्ठिपुत्त, और ६ गौतम बुद्ध।

इनमें अजितकेश कम्बल और मक्खलि गोशाल भौतिकवादी, पूरण काश्यप और प्रक्रुध कात्यायन नित्यतावादी, संजय वेलट्ठिपुत्त अनिश्चिततावादी और गौतम बुद्ध क्षणिकवादी थे।

प्रस्तुत में हमें संजय के मत को जानना है। अतः उन के मत को नीचे दिया जाता है। 'दीघ निकाय' में उनका सिद्धान्त इस प्रकार दिया है:—

"यदि आप पूछें,—'क्या परलोक है' तो यदि मैं समझता होऊँ कि परलोक है तो आपको बतलाऊं कि 'परलोक है'। मै ऐसा भी नहीं कहता, वैसा भी नहो कहता, दूसरी तरह से भी नहीं कहता। मैं यह भी नहों कहता कि 'वह नहो है।' मैं यह भी नही कहता कि वह नहीं नहीं है। 'परलोक नहीं है, परलोक नही नही है'। देवता (=औपपादिक प्राणी) हैं.. ...। देवता नही है, है भी और नहीं भी, न है, और न नहीं है।......अच्छे-बुरे कर्म के फल हैं, नहीं हैं, हैं भी, और नही हैं, न है और न नही है। तथागत (=मुक्त पुरुष) मरने के बाद होते है, नहीं होते हैं....?—यदि मुझसे ऐसा पूछे, तो मैं यदि मैं ऐसा समझता होऊं...तो ऐसा आपको कहू। मै ऐसा भी नहीं कहता, वैसा भी नहीं कहता ..।"

इसी से कुछ मिलता-जुलता आचार्य विद्यानन्द ने भी अष्टसहस्री में संजय का मत बतलाया है और उसकी आलोचना की है।

"तथास्तीति न भणामि, नास्तीति च न भणामि, यदपि च भणामि तदपि न भणामि,इति दर्शन मस्त्विति कश्चित्, सोऽपि पापीयान्। तथा हि सद्भावेतराभ्यामनभिलापे वस्तुनः, केवलं मूकत्वं जगतः स्यात्, विधिप्रतिषेधव्यवहारायोगात्। न हि सर्वात्मनानभिलाप्य स्वभाव बुद्धिरध्यवस्यति। नचानध्यवसेयं प्रमितं नाम, गृहीतस्यापि तादृशस्यागृहीतकल्पत्वात्। मूर्च्छाचैतन्यवदिति।"—अष्ट स० पृ० १२६।

संजय का जो मत उल्लिखित किया गया है उसमें पाठक देखेंगे कि संजय परलोक, देवता, कर्म-फल और मुक्त पुरुष इन अतीन्द्रिय पदार्थों के जानने में असमर्थ था और इसलिये उनके बारे में वह कोई

निश्चय नहीं कर सका था। जब भी कोई इन पदार्थों के बारे में उससे प्रश्न करता था तो वह चतुष्कोटि विकल्प द्वारा यही कहता था कि 'मैं जानता होऊं तो बतलाऊं' और इसलिये निश्चय से कुछ भी नहीं कह सकता।' अत: यह तो स्पष्ट है कि संजय अनिश्चिततावादी अथवा संशयवादी था और उसका मत अनिश्चिततावाद या संशय वाद था।

जैनदर्शन का स्याद्वाद

परन्तु जैनदर्शन का स्याद्वाद संजय के उक्त अनिश्चिततावाद अथवा संशयवाद से एकदम भिन्न और निश्चयात्मक है। दोनों में पूर्व पश्चिम अथवा ३६ के अंकों जैसा अन्तर है। जहां संजय का उक्त वाद अनिश्चयात्मक है वहां जैन दर्शन का स्याद्वाद निर्णय कोटि को लिये हुए है। वह मानव की सहज बुद्धि को भ्रम में नहीं डालता। बल्कि उसमें आभासित अथवा उपस्थित विरोधों व सन्देहों को दूर कर वस्तुतत्त्व का निर्णय कराने में सक्षम होता है। प्रकट है कि समस्त पदार्थ अनेकधर्मात्मक है—उनमें प्रत्येक में नाना धर्म पाये जाते है और इसलिये उन्हें अनेकान्तस्वरूप माना गया है। पदार्थों की यह अनेकान्तस्वरूपता स्वाभाविक है, काल्पनिक नहीं। यही वस्तु में अनेक धर्मों का स्वीकार व प्रतिपादन जैनों का अनेकान्तवाद है। संजय के वाद को जो विद्वान् अनेकान्तवाद बतलाते हैं वह युक्त नहीं है, क्योंकि संजय के वाद में तो एक भी धर्म अथवा सिद्धान्त का स्वीकार या स्थापना नहीं है, किन्तु अनेकान्तवाद में अस्तित्वादि सभी धर्मों की स्थापना और निश्चय है। जिस जिस अपेक्षा से वे धर्म उसमें व्यवस्थित एवं निश्चित है उन सबका व्यवस्थापक स्याद्वाद है। स्याद्वाद और अनेकान्तवाद में यही भेद है कि अनेकान्तवाद तो वस्तुपरक होने से व्यवस्थाप्य है और स्याद्वाद उसका व्यवस्थापक है। दूसरे शब्दों में अनेकान्तवाद वाच्य प्रमेय रूप है और स्याद्वाद निर्णायक-वाचक रूप है। वास्तव में अनेकान्तस्वरूप वस्तु को ठीक ठीक समझने-समझाने, प्रतिपादन करने-कराने के लिये ही स्याद्वाद का आविष्कार किया गया है, जिसके प्ररूपक जैनों के सभी (२४) तीर्थङ्कर है। अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर को उसका प्ररूपण उत्तराधिकार के रूप में २३ वें तीर्थङ्कर भगवान पार्श्वनाथ से, तथा पार्श्वनाथ को कृष्ण के समकालीन २२ वें तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि से मिला था। और इस तरह पूर्व तीर्थङ्कर से अग्रिम तीर्थकर को स्याद्वाद का प्ररूपण प्राप्त हुआ था। इस युग के प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव है जो आद्य स्याद्वादप्ररूपक है। महान् जैन तार्किक स्वामी समन्तभद्र [1] और अकलङ्क देव [2] जैसे प्रख्यात जैनाचार्यों ने सभी तीर्थकरों को स्याद्वादी—स्याद्वादप्रतिपादक बतलाया है और उस रूप से उनका गुणकीर्तन किया है। प्रत्येक तीर्थङ्कर का उपदेश 'स्याद्वादामृतगर्भ' होता है और वे स्याद्वादपुण्योदधि होते है। अत: जो विद्वान् यह समझते है कि भगवान् महावीर स्याद्वादके प्रतिष्ठाता हैं वह उनका भ्रम है, क्योंकि स्याद्वाद जैनदर्शन का मौलिक सिद्धान्त है और वह भगवान् महावीर के पूर्ववर्ती ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक काल से समागत है।

---

१. 'बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्ते।
स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता'॥
स्वयम्भूस्तोत्र श्लोक १४।

२. 'धर्मतीर्थङ्करेभ्योऽस्तु स्याद्वादिभ्यो नमो नमः।
वृषभादिमहावीरान्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये'॥ १॥ लघीयस्त्रय।

स्याद्वाद का अर्थ और प्रयोग

'स्याद्वाद' पद 'स्यात्' और 'वाद' इन दो शब्दों से बना है। 'स्यात्' अव्यय निपात शब्द है, धातु अथवा अन्य शब्द नहीं है। उसका अर्थ है कथंचित्, किंचित्, किसी अपेक्षा, कोई एक दृष्टि, कोई एक धर्म की विवक्षा व कोई एक ओर। और 'वाद' शब्द का अर्थ है मान्यता अथवा कथन। जो स्यात् (कथचित्) का कथन करने वाला अथवा 'स्यात्' को लेकर प्रतिपादन करने वाला है वह स्याद्वाद है। अर्थात् जो सर्वथा एकान्त का त्याग कर अपेक्षा से वस्तुस्वरूपका विधान करता है वह स्याद्वाद है। कथंचित्वाद, अपेक्षावाद आदि इसी के दूसरे नाम हैं—इन नामो से भी उसी का बोध होता है। जैनतार्किकशिरोमणि स्वामी समन्तभद्र (२-३ री शती) ने आप्तमीमांसा और स्वयम्भूस्तोत्र में यही कहा है:—

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभङ्गनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः ॥ १०४ ॥ आप्तमीमांसा।

सदेक नित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीहिते ॥
सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥ स्वयम्भूस्तोत्र।

अतः 'स्यात्' शब्द न तो संशय का पर्यायवाची है, न भ्रमार्थक है और न अनिश्चयात्मक। वह तो अविवक्षित धर्मों की गौणता और विवक्षित धर्म की प्रधानता को सूचित करता हुआ विवक्षित हो रहे धर्मका विधान एव निश्चय कराने वाला है। सजय के अनिश्चिततावाद को तरह वह अनिर्णीत अथवा वस्तुतत्त्व की सर्वथा अवाच्यता की घोषणा नही करता। उसके द्वारा जैसा प्रतिपादन होता है वह समन्तभद्र के शब्दो में निम्न प्रकार है :—

कथञ्चित्ते सदेवेष्टं कथञ्चिदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ॥१४॥
सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥१५॥
क्रमार्पितद्वयाद् द्वैत सहावाच्यमशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भङ्गाः स्वहेतुतः ॥१६॥ आप्तमीमांसा।

अर्थात् जैनदर्शन में समग्र वस्तुतत्त्व कथञ्चित् सत् ही है, कथञ्चित् असत् ही है, तथा कथञ्चित् उभय ही है और कथञ्चित् अवाच्य ही है, यह सब नयविवक्षा से है, सर्वथा नही।

स्वरूपादि (स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव इन) चार से उसे कौन सत् ही नहीं मानेगा और पररूपादि (परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव इन) चार से कौन उसे असत् ही नहीं मानेगा? यदि इस तरह उसे स्वीकार न किया जाय तो उस की व्यवस्था नहीं हो सकती।

क्रम से अर्पित दोनों (सत् और असत्) की अपेक्षा से वह कथंचित् उभय ही है, एक साथ दोनों (सत् और असत्) की अपेक्षा से वस्तु को कह न सकने से अवाच्य ही है। इसी प्रकार अवक्तव्य के बाद के अन्य तीन भङ्ग (सदवाच्य, असदवाच्य, और सदसदवाच्य भी) अपनी विवक्षाओ से समझ लेना चाहिए।

यही जैन दर्शन का सप्तभगी न्याय है, जो विरोधी अविरोधी धर्म युगल को लेकर प्रयुक्त किया जाता है और तत्तत् अपेक्षाओं से वस्तुधर्मो का निरूपण करता है। स्याद्वाद एक विजयी योद्धा है और

सप्तभंगी न्याय उसका अस्त्र शस्त्रादिरूप विजय साधन है । सप्तभंगीन्याय के द्वारा ही स्याद्वाद वस्तु के धर्मों का कथन करता है ।

सप्तभंगी न्याय

जैन दर्शन के इस सप्तभगी न्याय का यहां कुछ स्पष्टीकरण कर देना अनुचित न होगा ।

सात भंगों के समूह का नाम सप्तभंगी है । सप्तभगी में वे सात भंग (उत्तर वाक्य) इस प्रकार हैं.—

(१) वस्तु है ?—कथंचित् (अपनी द्रव्यादि चार अपेक्षाओं से)वस्तु है ही–स्यादस्त्येव घटादि वस्तु ।

(२) वस्तु नहीं है ?—कथंचित् (परद्रव्यादि चार अपेक्षाओ से) वस्तु नही ही है–स्यान्नास्त्येव घटादि वस्तु ।

(३) वस्तु है, नहीं (उभय) है ?—कथंचित् (क्रम से विवक्षित दोनों स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि चार अपेक्षाओं से) वस्तु है, नहीं (उभय) ही है—स्यादस्ति नास्त्येव घटादि वस्तु ।

(४) वस्तु अवक्तव्य है ?—कथंचित् (एक साथ विवक्षित स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि दोनों अपेक्षाओं से कही न जा सकने से) वस्तु अवक्तव्य ही है—स्यादवक्तव्यमेव घटादि वस्तु ।

(५) वस्तु 'है—अवक्तव्य' है ? कथञ्चित् (स्वद्रव्यादि से और और एकसाथ विवक्षित दोनो स्वपरद्रव्यादि की अपेक्षाओ से कहीं न जासकने से वस्तु 'है—अवक्तव्य ही है'–स्यादस्त्यवक्तव्यमेव घटादि वस्तु ।

(६) वस्तु 'नही—अवक्तव्य' है?—कथंचित् (परद्रव्यादि से और एक साथ विवक्षित दोनों स्व परद्रव्यादि की अपेक्षा से कही न जा सकने से) 'वस्तु नही–अवक्तव्य ही है'— स्यान्नास्त्यवक्तव्यमेव घटादि वस्तु ।

(७) वस्तु 'है' नही- अवक्तव्य' (है ?–कथंचित् (क्रम से अर्पित स्वपरद्रव्यादि से और एक साथ अर्पित स्वपरद्रव्यादि की अपेक्षा से कही न जा सकने से) वस्तु 'है-नहीं और अवक्तव्य ही है'—स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्यमेव घटादि वस्तु ।

इन सात भंगो मे पहला, दूसरा और चौथा ये तीन भंग तो मौलिक है और तीसरा पाचवां और छठा द्विसंयोगी तथा सातवां त्रिसंयोगी भङ्ग हैं और इस तरह अन्य चार भङ्ग मूलभूत तीन भङ्गो के संयोगज भङ्ग हैं। जैसे नमक, मिर्च और खटाई इन तीन के संयोगज स्वाद चार ही बन सकते है—नमक मिर्च, नमक-खटाई, मिर्च खटाई और नमक-मिर्च खटाई । इन से ज्यादा या कम नही । इन संयोगी चार स्वादो मे मूल तीन स्वादों—नमक, मिर्च और खटाई, को और मिला देने से कुल स्वाद सात ही बनते है । यही सात भंगो की बात है । वस्तु मे यो तो अनन्त धर्म है, परन्तु प्रत्येक धर्म को लेकर विधि-प्रतिषेध की अपेक्षा से सात ही धर्म व्यवस्थित हैं—सत्व, असत्व, सत्वासत्व, अवक्तव्यत्व, सत्वावक्तव्यत्व, असत्वावक्तव्यत्व और सत्वासत्वावक्तव्यत्व । इन सात से न कम हैं और न ज्यादा । अतएव शङ्काकारोको सात ही प्रकार के सन्देह,सात ही प्रकार की जिज्ञासाएं और तन्दुत्पन्न सात ही प्रकार के प्रश्न होते हैं और इस लिये उनके उत्तर वाक्य सात ही होते है जिन्हे सप्तभंग या सप्तभङ्गी के नाम से कहा जाता है । इसी तरह एक अनेक, नित्य-अनित्य आदि विरोधी युगलों को लेकर भी सात भंग होते हैं और इस तरह अनन्त सप्तभङ्गिया जैन दर्शन मे कही गई हैं ।

अत: 'स्याद्वाद' के 'स्यात्' शब्द का अर्थ 'हो सकता है' ऐसा सन्देह अथवा भ्रमरूप नही है । उस का तो कथंचित् (किसी एक अपेक्षा से) अर्थ है, जो निर्णय रूप है। उदाहरणार्थ एक देवदत्त व्यक्ति को

लीजिये। वह पिता-पुत्रादि अनेक सम्बन्धों से पितृत्व पुत्रत्वादि अनेक धर्मरूप है। यदि जैनदर्शन से यह प्रश्न किया जाय कि क्या देवदत्त पिता है ? तो इसका जैनदर्शन स्याद्वाद द्वारा निम्न प्रकार उत्तर देगा—

१. देवदत्त पिता है— अपने पुत्र की अपेक्षा से—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्ति।'

२. देवदत्त पिता नहीं है—अपने पिता, मामा आदि की अपेक्षा से क्योंकि उनकी अपेक्षा से तो वह पुत्र, भानजा आदि है—'स्यात् देवदत्तः पिता नास्ति।'

३ देवदत्त पिता है और नहीं है—अपने पुत्र की अपेक्षा और पिता, मामा आदि की अपेक्षा से—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्ति नास्ति च।'

४. देवदत्त अवक्तव्य है—एक साथ पिता पुत्रादि दोनों अपेक्षाओं से कहा न जा सकने से—'स्यात् देवदत्तः अवक्तव्यः।'

५. देवदत्त पिता है—अवक्तव्य है'—अपने पुत्र की अपेक्षा तथा एक साथ पिता, पुत्रादि दोनों अपेक्षाओं से कहा न जा सकने से—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्त्यवक्तव्यः।'

६. देवदत्त पिता नहीं है—अवक्तव्य है—अपने पिता, मामा आदि की अपेक्षा और एक साथ पिता-पुत्रादि दोनों अपेक्षाओं से कहा न जाने से—स्यात् देवदत्त पिता नास्त्यवक्तव्य।

७. देवदत्त पिता है और नहीं है तथा अवक्तव्य—क्रम से विवक्षित पिता पुत्रादि दोनों अपेक्षाओं से और एक साथ विवक्षित पिता पुत्रादि दोनों अपेक्षाओं से कहा न जा सकने से—'स्यात देवदत्तः पिता अस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च।'

जैन दर्शन में प्रत्येक वाक्य में उस के द्वारा प्रतिपाद्य धर्म का निश्चय कराने के लिये एवं' कार का विधान अभिहित है जिसका प्रयोग नय विशारदों के लिये यथेच्छ है—वे करें चाहे न करें। न करने पर भी उसका अध्यवसाय वे कर लेते हैं।

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि संजय वेलट्ठिपुत्त के अनिश्चिततावाद से जैन दर्शन का स्याद्वाद एक भिन्न और निर्णयात्मक सिद्धांत है और वह यथाप्रतीतिवस्तुतत्व का व्यवस्थापक है—वस्तु में अनेक धर्म हैं पर कौन धर्म किस अपेक्षा से व्यवस्थित है, इसी बात की स्याद्वाद व्यवस्था करता है। इसके बिना हम एक कदम भी आगे नहीं चल सकते और न अपने तमाम व्यवहार कर सकते हैं।

हमें आशा है कि स्याद्वाद के सम्बन्ध से जैनेतर विद्वान् ठीक तरह से ही समझने और उसक उल्लेख करने का प्रयत्न करेंगे।

———

जैन धर्म की सार्वभौमिकता

लेखक—श्रीयुत सुमेरचन्द जी दिवाकर न्यायतीर्थ, शास्त्री, धर्मदिवाकर बी० ए०, एल० एल० बी०, सिवनी

मुझसे यह आग्रह किया गया कि मैं जैन धर्म की सार्वभौमिकता पर प्रकाश डालूँ। स्थूल विचार ने तो यह बताया कि जैनधर्म को बिना सोचे समझे सार्वभौम बताना विवेक की परिधि के परे की बात है। आचार्य शिरोमणि समतभद्र ने लिखा है "न धर्मो धार्मिकैर्विना" अतः जैन धर्म को सार्वभौम (Universal) कहने के पूर्व यह देखना आवश्यक है कि क्या आज की तीन अरब से अधिक कही जाने वाली मानव जाति जैन धर्म को मानती है। जनगणना के आकडो के आधार पर जब जैनों की संख्या कोटि प्रमाण भी नहीं, तब जैन धम की विश्वव्यापकता की बात सोचना सत्य से असबधित धार्मिक ममता का आवेश ही मानना होगा। बहुसख्या द्वारा मान्य धर्मों के समक्ष अल्पसख्या द्वारा आराधित धर्म को असार्वभौम मानना होगा। किंतु सूक्ष्म और गंभीर चिंतन से यह यथार्थ बात ध्यान मे आई कि कुछ दूसरे आधार भी तो हैं, जिनके कारण जैन धर्म को सार्वभौम कहना सत्य और समीचीन है।

हमारा आद्य कर्तव्य यह है कि हम सर्व प्रथम यह जान ले कि यथार्थ में जैन धर्म क्या है? कर्म शत्रुओ को जीतने वाले जिन भगवान द्वारा बताया गया धर्म जैनधर्म है। आत्मा की स्वाभाविक अवस्था को ही जिन भगवान ने आत्मा का धर्म कहा है। अत: अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि सद्वृत्तियो को आत्मा का धर्म मानना चाहिये। निवृत्ति या विभाव को अधर्म मानना चाहिए। क्रोध, मान, माया, लोभ, या द्वेष, मोह आदि जघन्य वृत्तियो के विकास मे आत्मा की स्वाभाविक निर्मलता और पवित्रता का विनाश होता है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि की अभिवृद्धि तथा अभिव्यक्ति से आत्मा अपनी स्वाभाविकता की ओर प्रगति करता हुआ स्वयं धर्ममय बन जाता है। जैनधर्म वस्तु स्वभाव को धर्म मानता है, स्वभाव स्वभाववान् से पृथक नहीं पाया जाता, जैसे उष्ण स्वभाव उष्ण स्वभाव वाले अग्नि से विरहित नहीं देखा जाता। अतएव प्रत्येक जीव के साथ पाए जाने वाले स्वभाव को धर्म मानने वाला जैन धर्म क्यो न सार्वभौमिक कहा जायगा? इस धर्म की सीमा मे मानव समाज मात्र सीमित नहीं, बल्कि प्राणीमात्र को अपनाने वाला यह आत्मधर्म है।

इस धर्म का द्वार सर्व जीवों के लिए खुला है और इसकी अहिंसामयी छाया में छोटे बडे सभी जीव बैठकर अपना सताप दूर कर सकते हैं। यह स्वार्थ या पक्षपात की तुला पर स्वधर्मी मानव समुदाय का विशेष रूप से वर्गीकरण नहीं करता है। जब यह प्रत्येक जीवधारी को अपना अभिन्न अङ्ग अनुभव कर उसके रक्षण को सतत उद्यत रहता है, प्रेरणा देता है, और उनके जीवन मे अपना जीवन और उनके सहार में अपनी मृत्यु मानता है, अनुभव करता है तब यह उन सभी जीवो का धर्म साधिकार कहा जा सकता है। दूसरे

स्वर्गीय रायबहादुर सेठ मूलचन्द जी साहब सोनी ने नसियाँजी का निर्माण कराकर जेठ सुदी २ संवत् १९२२ मे प्रतिष्ठा कराई थी। चतुर्थ पीढ़ी मे भी अब तक निरंतर ८६ बर्षो से उसके निर्माण का काम स्वर्गीय सेठ साहब की भावनानुसार बराबर चालू है। अजमेर के दर्शनीय ऐतिहासिक स्थानों मे प्रमुख स्थान है। अजमेर मे यात्री बड़ी श्रद्धा और उत्सुकता से इसके भी दर्शन करते हैं।

वम्वई मे तीर्थक्षेत्र कमेटी के सदस्यों के बीच सेठ साहव। वर्षो से आप ही इसके प्रधान है।
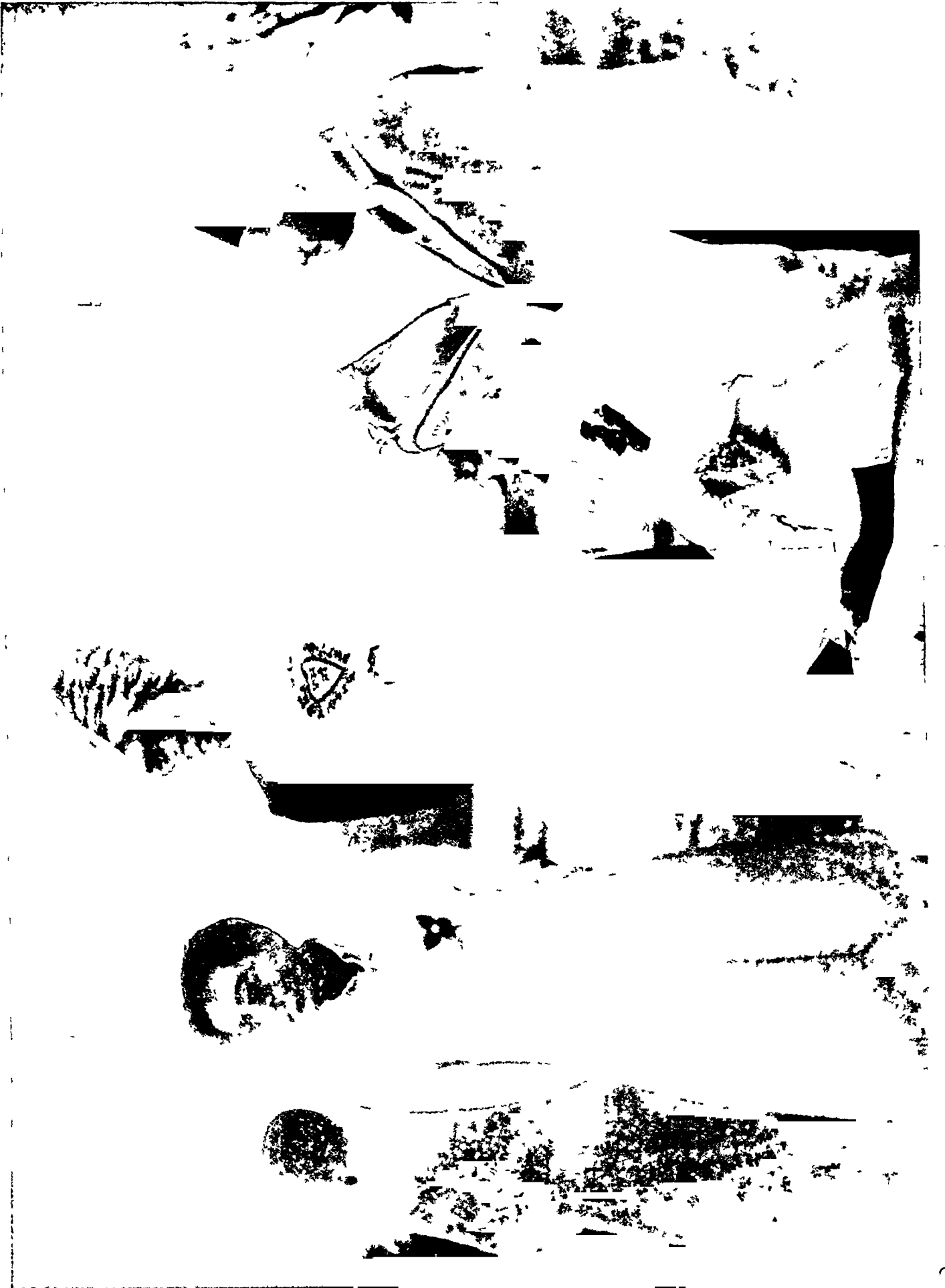
मध्यभारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन पर सेठ सोहब कार्यकर्ताओं के साथ।
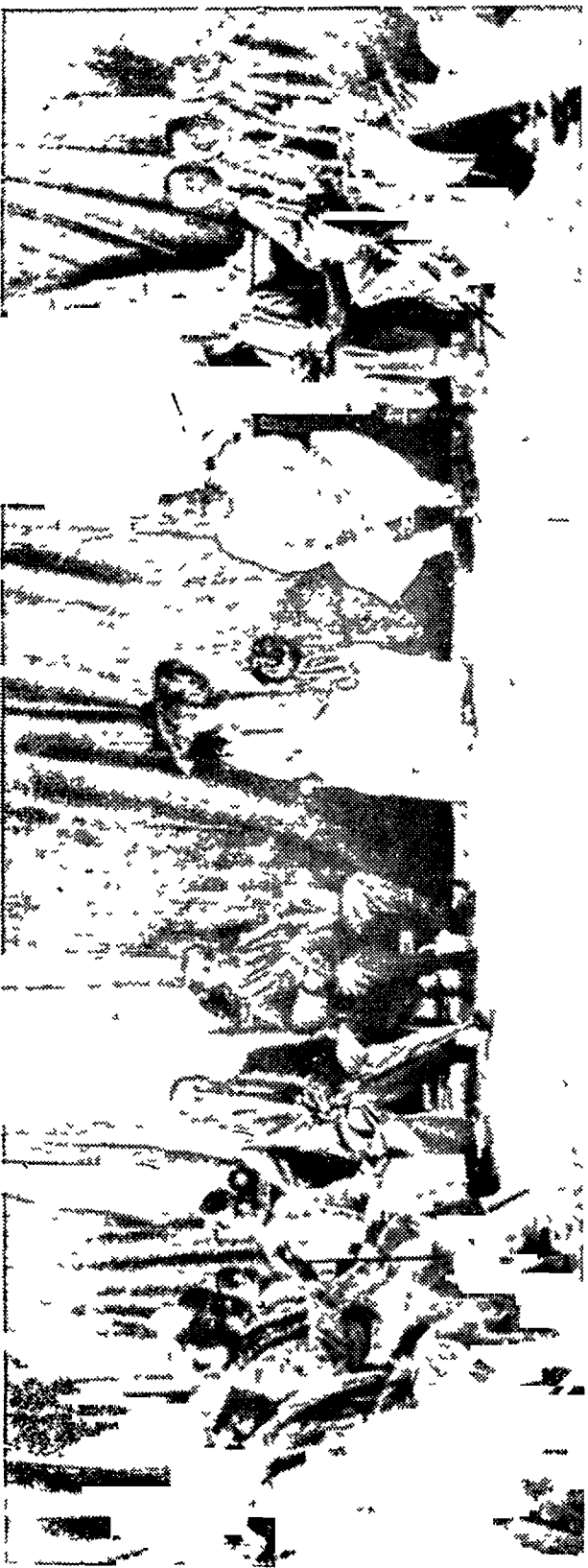
हिज ऐक्सी लेसी लार्ड रीडिंग और लेडी रीडिंग इन्दौर पधारे थे। सेठ साहब के कांच के मन्दिर के दर्शनार्थ आने पर उनका स्वागत किया था।

इसमेसेठ हुकमचन्दजी, सेठ कल्याणमलजी, एजेन्ट टू दी गवर्नर जनरल और इन्दौररेजी डेसी का स्टाफ है।
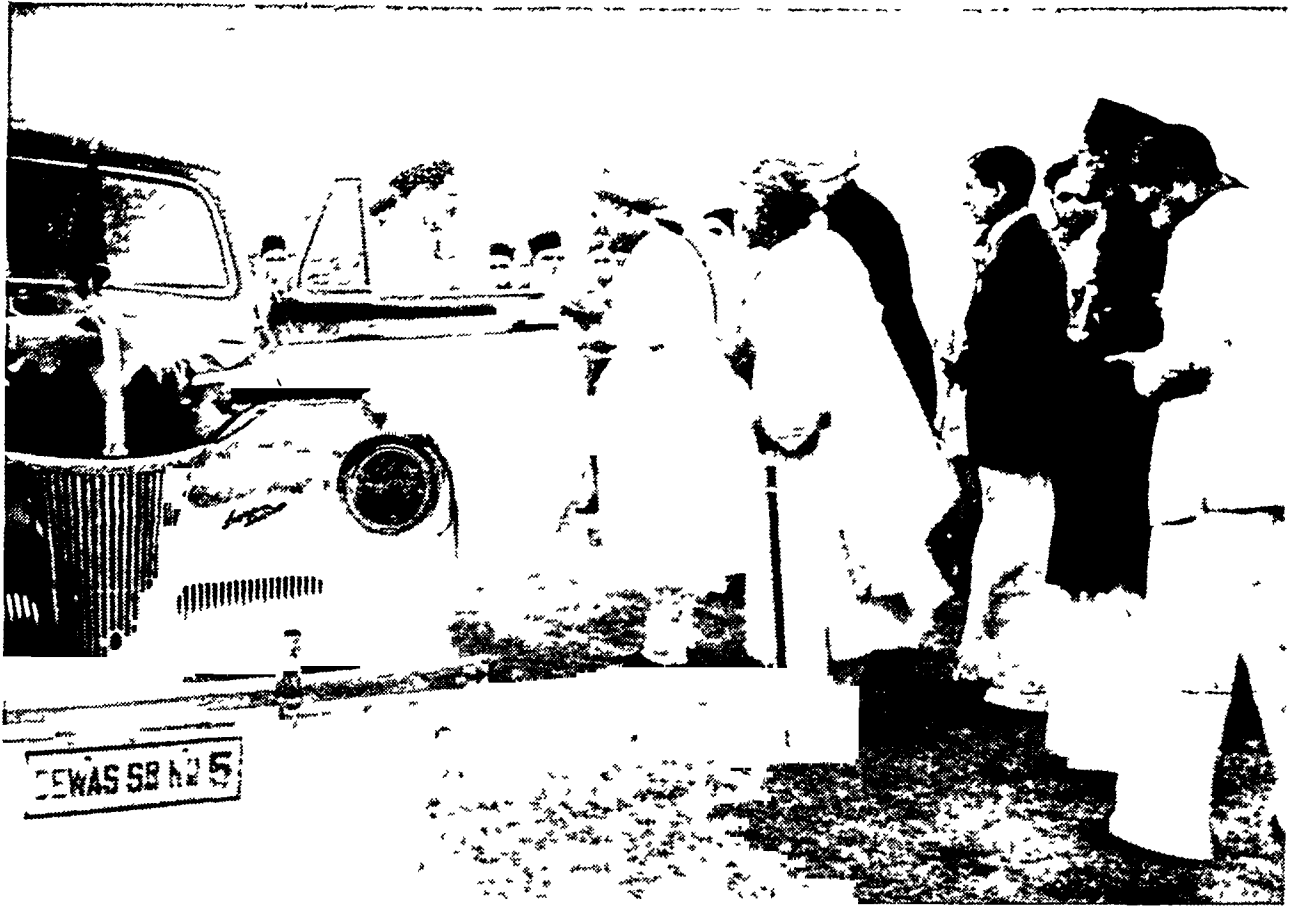
सन् १९३३ मे स्वदेशी प्रदर्शनी के अवसर पर महाराज देवास श्री विक्रमसिंहजी का स्वागत करते हुए सेठ साहब वैद्य ख्यालीराम जी डा० सरजूप्रसाद तथा अन्य कार्यकर्त्ता

सन् १९४८ में सीकर में बिम्ब प्रतिष्ठा के वाद सीकर के रावराजा की ओर से सर सेठ हुकमचन्द जी और सर सेठ भागचंद जी साहब को दिये गये प्रीतिभोज के अवसर पर।
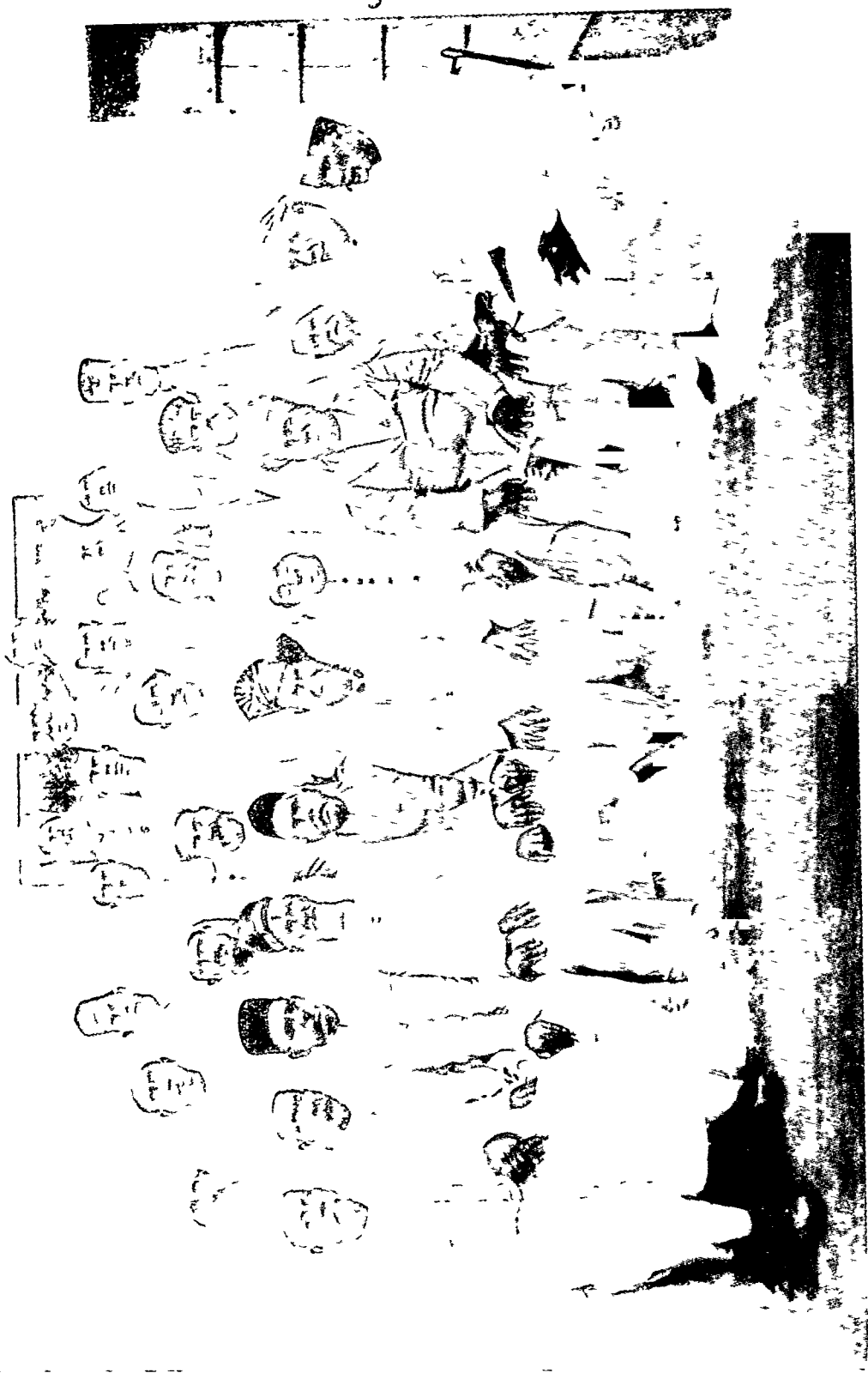
सन् १६४० में महासभा की आगरा में हुई प्रबन्धकारिणी की बैठक।
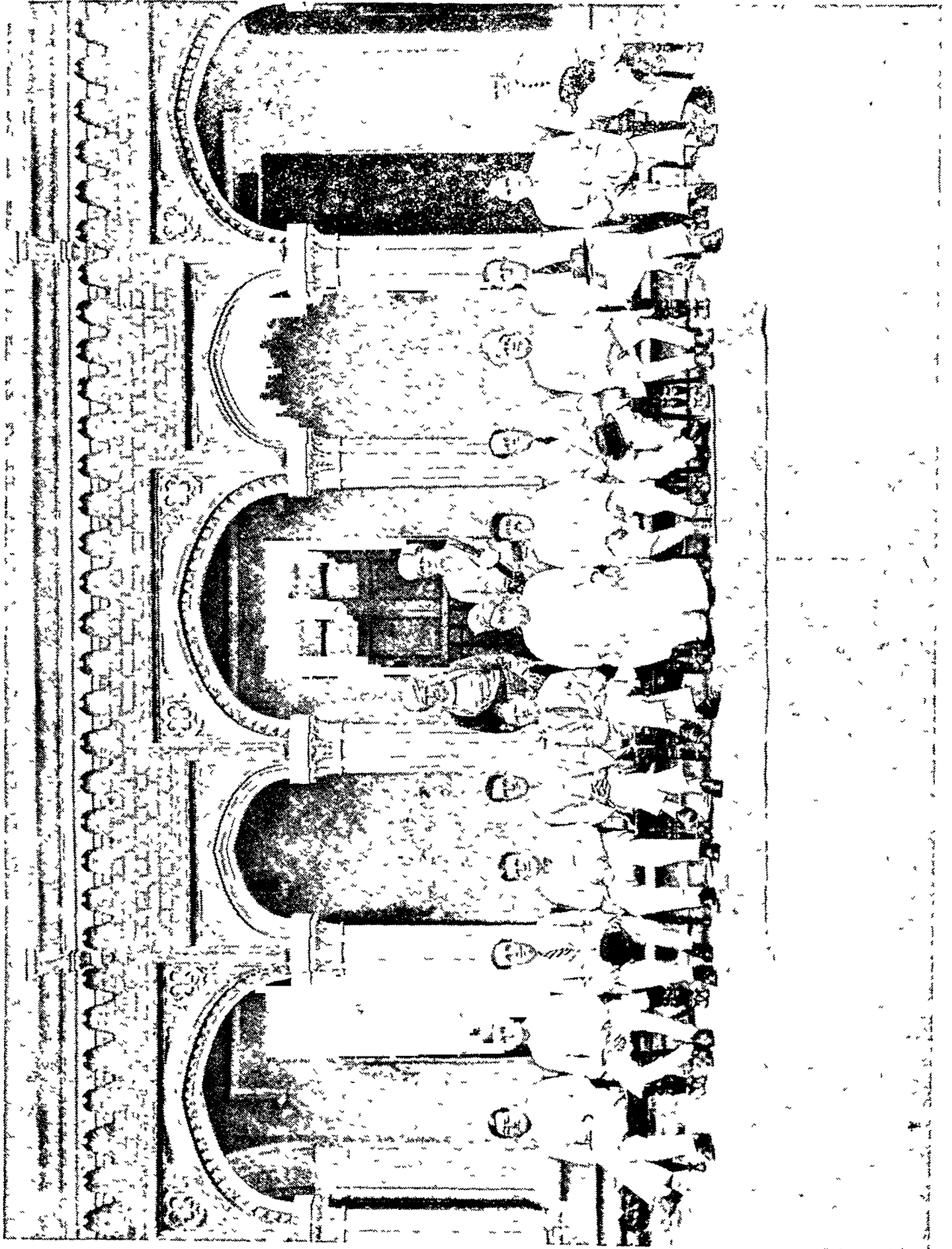
मथुरादास पद्मचंद आइज हास्पिटल आगरा के उद्घाटन के समय सर सेठ साहब भी पधारे थे उस समय जिले के प्रमुख

सन् १६४६ में युद्ध वदियों को भोज। चित्र में गवर्नर जनरल के एजेट कर्नल केमकेल, कोल्हापुर नरेश विक्रमसिंहजी पवार और भैया साहब राजकुमारसिंहजी।

युद्धवन्दियों के बीच सर सेठ साहब और इन्दौर के तत्कालीन प्रधान मंत्री राजा ज्ञाननाथजी
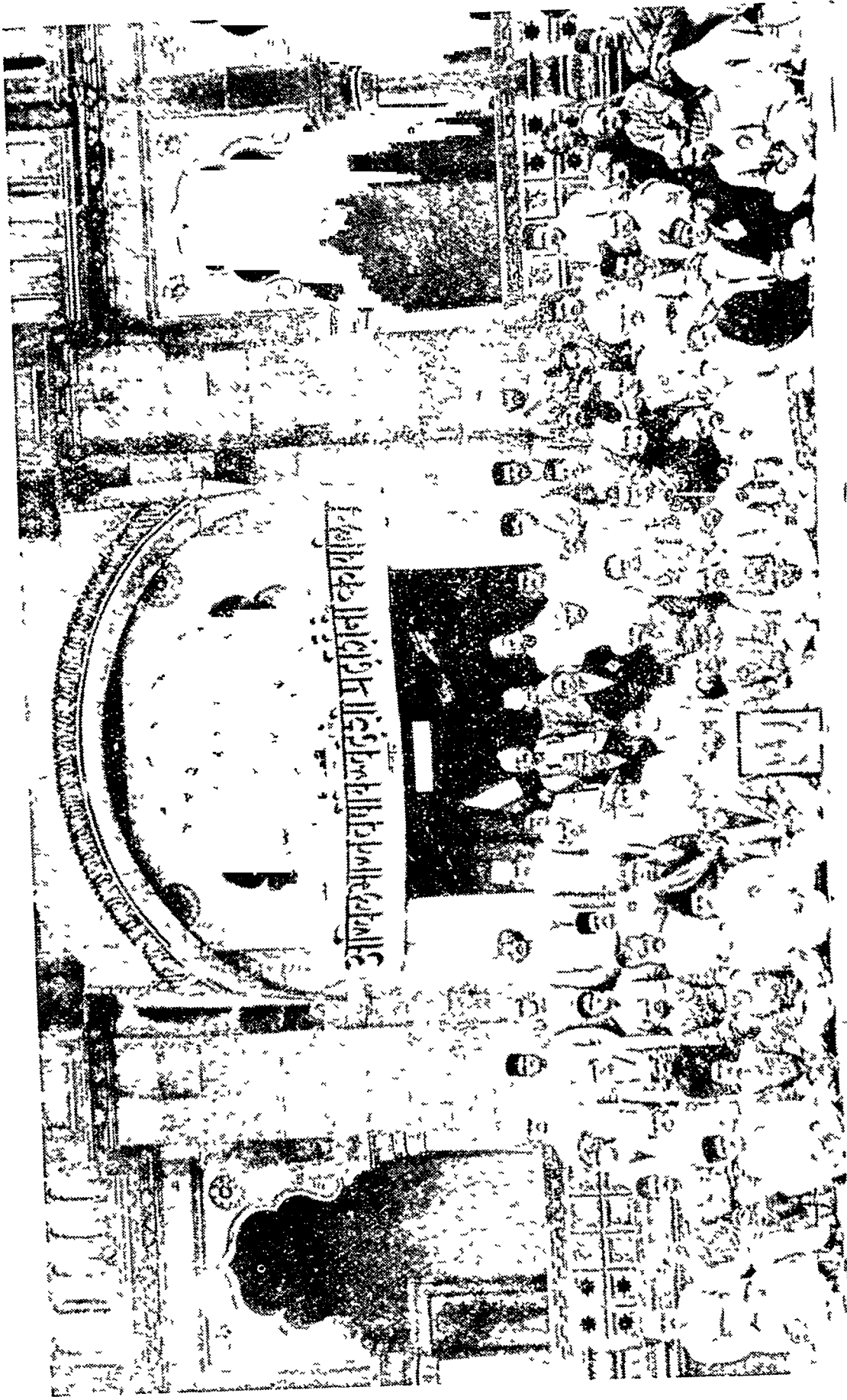
इन्दार में जनवरी १९३५ में हुइ विराट स्वदेशी प्रदशनी की प्रबन्ध समिति। आचाय प्रफुल्लचन्द राय के साथ स्वागताध्यक्ष सेठ साहब और समिति के सदस्य।

देहली मे भैया साहब राजकुमारसिंहजी के सुपुत्र श्री राजाबहादुरसिंह के शुभ विवाह पर अमेरिकन राजदूत अपनी पत्नी के साथ।

श्रीराजा बहादुरसिंह जी के विवाह के समय श्री सर सेठ साहब श्रीमन्त महाराजा साहब ग्वालियर, श्रीमन्त धार महाराजा साहब श्रीमन्त डॉ० रघुवीरसिंह जी [सीतामऊ] राजाबहादुरसिंह जी—सेठ हीरालालजी साहब और सर सेठ भागचंद जी साहब ।

मध्यभारत के एजेन्ट जनरल सर रेजिनाल्ड ग्लांसी तत्कालीन प्रधानमंत्री सर सिरेमल वापना और सर सेठ साहब
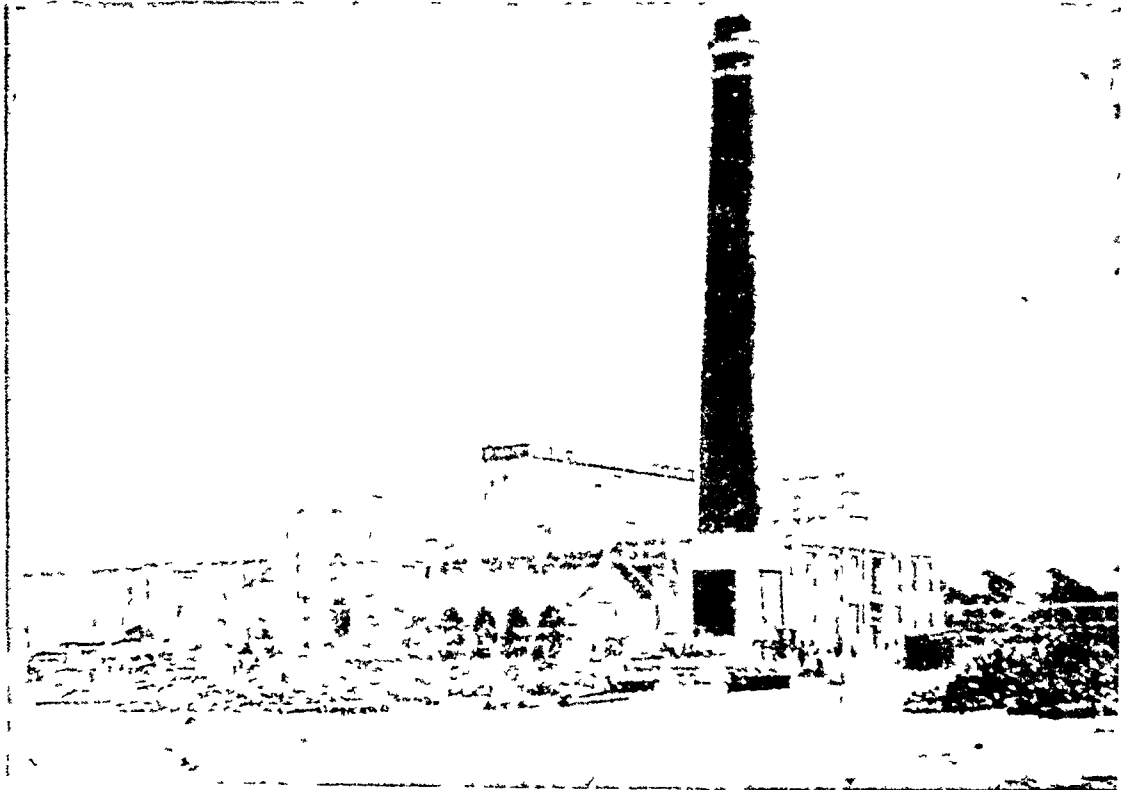
हुकमचन्द मिल इन्दौर

इन्द्र भवन

मथरादास पदमचंद आइज हास्पिटल आगरा का भव्य भवन ।

जीवों का संहारक उनका धर्म माना जाय, और उनका रक्षक उनसे असंबंधित सोचा जाय, यह विचार असंगत सा दीखता है।

जैन पुराण में एक कथा है। एक बालक के प्रति दो स्त्रियों में मातृत्व सम्बन्धी विवाद हुआ। झगडा तय करने का समस्त प्रयत्न जब बेकार हुआ, तब चतुर निर्णायक ने कहा, इस बालक के दो विभाग करके प्रत्येक माता बनने वाली स्त्री को एक २ भाग दे दिया जाय। यह वाणी सुनते ही वास्तविक माता बोल उठी, इस बच्चे को मारो मत, मेरी दूसरी बहिन को ही दे दो। जहाँ यह पीडित अन्तःकरण से कहती थी, वहां दूसरी स्त्री चुपचाप थी। इस चतुर प्रक्रिया से निर्णायक ने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि यथार्थ माता वही है, जिसके हृदय में बालक के प्रति ममता है। जो उसकी पीडा से व्यथित होती है। इस कथा के प्रकाश में यह कहना सगत होगा कि प्राणीमात्र का धर्म वही कहा जायगा, जो प्रत्येक जीवधारी की व्यथा से व्यथित हो। उसके निवारण के लिए यथार्थ में अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहे। इस प्रकार विश्व के रक्षण की और सर्वत्र अभय के अखण्ड साम्राज्य की स्थापना करने की जैन तीर्थङ्कर की ही शिक्षा रही है। जिस संस्कृति के उन्नायक तीर्थङ्कर नेमिनाथ की आत्मा विवाहोत्सव के प्रसंग पर पशुओं के करुण क्रन्दन से व्यथित हो उठी और उसने राजकन्या राजीमती के पाणिग्रहण का विचार छोड दिया। सर्वत्र करुणा की पुण्य धारा प्रवाहित करने का निश्चय कर राजवैभव को छोडा और आत्म-सामर्थ्य संवर्धन निमित्त विख्यात गिरनार पर्वत पर तपश्चर्या की, जिस धर्म के अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर ने गृहस्थाश्रम में बिना प्रवेश किए तारुण्य काल से ही भोग-वैभव का त्याग कर आत्म-साधना की और पश्चात् अहिंसा का समर्थ प्रचार किया, जिससे आज सारा ससार सुपरिचित है, उस धर्म को ही सबका धर्म कहा जा सकता है। अहिंसा धर्म के सभी प्राणी आत्मा है, तब इसको अपना प्राण बनाने वाला जैनधर्म क्यों न सार्वभौम कहा जायगा? यहां शीर्षगणना करने की शैली के स्थान में हृदयो की गणना करने की शैली स्वीकार करना सगत होगा। गांधी जी के द्वारा पूज्य माने गए जैन महात्मा श्री राजचन्द्र कहते है, "राग, द्वेष और अज्ञान का नष्ट होना ही जैनमार्ग है।" कवि बनारसी दासजी के शब्दों में वे कहते थे कि

घट घट अतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।
मत-मदिरा के पान सौं, मतवारा समुझै न॥

अर्थात् घट-घट में जिन बसते है और घटघट में जैन बसते है। परन्तु मतरूपी मदिरा के पान से मत्त हुआ जीव यह बात नही समझता।" (श्रीमद्राजचन्द्र पृ० ०३)

जैन ग्रन्थो के परिशीलन से ज्ञात होता है कि मानव समाज के सिवाय अन्य योनियों के जीवधारियो ने भी इसकी समाराधना की है। भगवान पार्श्वनाथ ने कुछ भवपूर्व गजराज की पर्याय में अहिंसात्मक धर्म को धारण किया था। इसी प्रकार तीर्थंकर महावीर ने भी पूर्वभव मे सिंह की पर्याय में करुणा वृत्ति का व्रत स्वीकार कर निर्दोष रूप से पालन किया था। ऐसी करुणा की साधना के कारण क्रमिक विकास करती हुई आत्मा तीर्थंकर बन दया की मंदाकिनी द्वारा विश्व को पुनीत किया करती है। तत्वज्ञान की ज्योति नर, पशु, सुर एव नारको जीवो में उत्पन्न हो सकती है, अतः जैन विचार की सार्वभौमिकता स्वीकार करना सम्यक् है।

तार्किक अकलंक का यह कथन बडा मार्मिक है कि जगत् मे पाए जाने वाले विविध उपासकों के उपास्य देव अनेक हैं और उनकी वेष-भूषा पृथक् पृथक् प्रख्यात है। एक दिगम्बर मुद्रा का ही समस्त जगत् में

प्रसार पाया जाता है। जब जिनेन्द्र के शासन की मुद्रा जड-चेतन समस्त विश्व मे सर्वत्र सर्वदा नयनगोचर होती है, तब उस धर्म की विश्व व्यापकता के विरुद्ध कौन तर्क की तर्जनी उठाने का परिहास एव परिताप-प्रद प्रयत्न करेगा। अकलक स्तोत्र का यह पद्य कितना सुन्दर तथा सत्य विचार समन्वित है:—

नो ब्रह्माङ्कितभूतल न च हरे शम्भोर्न मुद्रांकितम्,
नो चन्द्रार्ककराकित सुरपतेर्वज्राङ्कित नैव च।
षड्वक्त्रकबुद्ध- बौद्धदेव· हुतभुक् यक्षोरगैर्नांकित,
नग्न पश्यत वादिनो जगदिय जैनेन्द्रमुद्रांकितम्॥ अकलंकस्तोत्र ११.

जिस प्रकार जैनत्व की प्रतीक दिगम्बर मुद्रा की सार्वभौमिकता प्रत्येक के अनुभव गोचर है, उसी प्रकार जैन धर्म के प्राण स्याद्वाद की मुद्रा भी विश्वव्यापिनी है? छोटे से दीपक से लेकर आकाश सदृश विशाल वस्तु भी नित्यता के साथ कथंचित् अनित्यता रूप अनेकान्त भाव से भूषित है। ऐसा कोई भी पदार्थ अनुभव मे नही आता है, जो सर्वथा क्षणिक हो अथवा सर्वथा नित्य ही हो। यदि एकान्त क्षणिक विचारवाद का साम्राज्य होता तो प्रत्यभिज्ञान, स्मरण आदि का असद्भाव पाया जाता और यदि एकान्त नित्यता की मुद्रा समस्त विश्व पर होती, तो परिवर्तन के पुंज विश्व की विविधता का लोप हो जाता। इसी तत्त्व को सुन्दरतापूर्वक आचार्य हेमचन्द्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है :—

आदीपमाव्योम समस्वभाव स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु।
तन्नित्यमेवैक मनित्य मन्यदिति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः॥ अन्ययोगव्यवच्छेदिका

स्याद्वाद विद्या के प्रकाश मे जैनदृष्टि पक्षान्धता से पूर्णतया उन्मुक्त है। वह अविनाशी उस सत्य तत्त्व को प्रकाशित करती है, जो विश्व-वंदनीय है। तत्त्वदृष्टि होने के कारण जैन धर्म मे सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशिता गुण समन्वित को परमात्मा या भगवान् माना है, उसे बुद्ध, शकर, विधाता, पुरुषोत्तम आदि नामो से गुणो की दृष्टि से पूजते हैं, "आंखो के अंधे नाम नयनसुख" सदृश बात यहां सन्मान नही पाती है। आचार्य श्री मानतुंग ने अपने भक्तामरस्तोत्र मे कहा है :—

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्,
त्व शकरोसि भुवनत्रयशकरत्वात्।
धातासि धीर शिव मार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोसि॥

सार्वभौम, सर्वमान्य, सर्वकल्याणकारी धर्म वही होगा, जो गुणो का आदर करे, नाम का पक्ष या मोह त्यागे, सर्व जीवो का रक्षक हो और जो अपवित्रता और विकृति को दूर करके स्वभाव की ओर ले जावे। ये सब बातें जैन धर्म मे विद्यमान हैं। जहां यह कहा जाता है,'कमजोर को जीने का अधिकार नही, 'Survival of the fittest' की बात का समर्थन किया जाता है, वहा विश्व मे सामजस्य कैसे उत्पन्न होगा? समर्थ का कर्तव्य असमर्थ को कुचलना नहीं, उसकी सहायता कर उसे आगे बढा कर उसे समर्थ बनाना है। जैन दृष्टि कहती है तुम स्वय जीवित रहो तथा अन्य असमर्थों के प्राण रक्षण निमित्त अपनी सेवा-सहयोग दो। ऐसे सद्विचारो के आधार पर ही विश्व मैत्री और विश्वशान्ति का महान प्रासाद खडा किया जा सकता है। अतएव अहिंसा, स्याद्वाद आदि सिद्धान्तो की व्यापकता को देखते हुए जैनधर्म ही सार्वभौमिक धर्म है। तत्त्वज्ञान के प्रकाश मे जब एकान्त विचार की कोई भूमि ही नहीं, कोई आधार ही नहो, तब वह सार्वभौम

कैसे होगा ? संस्कृत अंग्रेजी कोष मे सार्वभौम शब्द का अर्थ किया गया है Relating to the whole earth, universal. 'समस्त पृथ्वी सम्बन्धी'—जैन धर्म समस्त जीवों से अहिंसा के द्वारा सम्बन्धित है। यह ऐसे स्वार्थपूर्ण संकीर्ण पथ को नहीं अपनाता है; जैसे कोई-कोई गाय को खाने की दृष्टि से कहते है कि गाय में आत्मा ही नहीं हैं–A cow has no soul। अपने पक्षविशेष के ममत्ववश दूसरों का धन-वैभव नष्ट करना, उनको कष्ट पहुंचाना आज का स्वार्थप्रचुर राजनीति का खास अङ्ग बन गया है। ऐसी ही बातें रागी, द्वेषी, मोही अथवा अज्ञों द्वारा प्रचारित किए गए पथों मे पाई जाते हैं, जो अपने पक्षपाती चश्मे द्वारा दूसरों का अस्तित्व ही नही मानते हैं और यदि मानते है तो उनको भी अपने स्वार्थ का शिकार बनाते हैं। ऐसी ही दृष्टि मद्य, मांस, शिकार आदि पापो की ओर प्रेरित करती है। जैन दृष्टि व्यापक रूप से समस्त विश्व का विचार करती हुई सब के कल्याण का कार्य करती है और विपत्ति का निवारण करती हैं। कभी २ जैन धर्म की उज्ज्वल शिक्षा मोह ज्वर वाले जीव को अप्रिय लगती है, किन्तु उसका पर्यवसान जीव के शाश्वतिक कल्याण मे होता है। अतएव शांति और अमर जीवन की कामना करने वाले मनुष्यों को सार्वभौम जैन तत्वज्ञान का परिशीलन एवं परिपालन कर अपने दुर्लभ मनुष्यजन्म को कृतार्थ करना चाहिए।

अहिंसक परम्परा

लेखक—श्री विश्वम्भरनाथ पांडे, सम्पादक 'विश्ववाणी' इलाहाबाद

छान्दोग्य उपनिषद् मे इस बात का उल्लेख मिलता है कि देवकीनन्दन कृष्ण को घोर आंगिरस ऋषि ने आत्म-यज्ञ की शिक्षा दी। उस यज्ञ की दक्षिणा तपश्चर्या, दान, ऋजुभाव, अहिसा तथा सत्य-वचन थी।

जैन ग्रन्थकारो का कहना है कि कृष्ण के गुरु तीर्थङ्कर नेमिनाथ थे। प्रश्न उठता है कि क्या यह नेमिनाथ तथा घोर आंगिरस दोनो एक ही व्यक्ति के नाम थे ? कुछ भी हो इससे एक बात निर्विवाद है कि भारत के मध्य-भाग पर वेदो का प्रभाव पडने से पूर्व एक प्रकार का अहिसा धर्म प्रचलित था।

स्तानाङ्ग सूत्र मे यह बात आती है कि भरत तथा एरवत प्रदेशो मे प्रथम और अन्तिम को छोडकर शेष २२ तीर्थङ्कर चातुर्याम धर्म का उपदेश इस प्रकार करते थे—"समस्त प्राणघातो का त्याग, सब असत्य का त्याग, सब अदत्तादान का त्याग, सब बहिर्धा आदानों का त्याग।" इस धर्म रीति मे हमे उस काल मे अहिसा की स्पष्ट छाप दिखाई देती है।

मज्झिम निकाय में चार प्रकार के तपो का आचरण करने का वर्णन मिलता है—तपस्विता, रूक्षता जुगुप्सा और प्रविविक्तता। नगे रहना, अंजलि मे ही भिक्षान्न मांग कर खाना, बाल तोड कर निकालना, कांटो की शय्या पर लेटना इत्यादि देह-दण्ड के प्रकारो को तपस्विता कहते थे। कई वर्ष की धूल वैसी ही शरीर पर पडी रहे, इसे रूक्षता कहते थे। पानी की बूद तक पर दया करना, इसको जुगुप्सा कहते थे। जुगुप्सा अर्थात् हिसा का तिरस्कार। जङ्गल मे अकेले रहने को प्रविविक्तता कहते थे।

तपश्चरण की उपरोक्त विधि से स्पष्ट है कि लोग अहिसा तथा दया को तपस्या का केन्द्र-बिन्दु मानते थे।

अधिकतर पाश्चात्य पण्डितो का यह मत है कि जैनो के तेईसवे तीर्थङ्कर पार्श्व ऐतिहासिक व्यक्ति थे। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि चौबीसवे तीर्थङ्कर वर्धमान के १७८ वर्ष पूर्व पार्श्व तीर्थङ्कर का परिनिर्वाण हुआ।

यह बात भी इतिहास सिद्ध है कि वर्धमान तीर्थङ्कर और गौतम बुद्ध समकालीन थे। बुद्ध का जन्म वर्धमान के जन्म से कम से कम १५ वर्ष बाद हुआ होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि बुद्ध के जन्म तथा पार्श्व के परिनिर्वाण मे १९३ वर्ष का अन्तर था। निर्वाण के पूर्व लगभग ५० वर्ष तो पार्श्व तीर्थङ्कर उपदेश देते रहे होगे। इस प्रकार बुद्ध के जन्म के लगभग २४३ वर्ष पूर्व पार्श्व मुनि ने उपदेश देने का कार्य प्रारम्भ किया होगा। निग्रन्थ श्रमणो का संघ भी उन्हीं ने स्थापित किया होगा।

परीक्षित राजा के राज्यकाल से कुरु देश मे वैदिक संस्कृति का आगमन हुआ। उसके बाद जनमेजय

गद्दी पर आया। उसने कुरुदेश में महायज्ञ करके वैदिक धर्म का झण्डा फहराया। इसी समय काशी देश में पार्श्व तीर्थङ्कर एक नई संस्कृति की नींव डाल रहे थे। पार्श्व का जन्म वाराणसी नगर में अश्वसेन नामक राजा की वामा नामक रानी से हुआ। पार्श्व का धर्म अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह इन चार यम का था। इतने प्राचीन काल में अहिंसा को इतना सुसम्बद्ध रूप देने का यह पहिला ही उदाहरण है।

पार्श्व मुनि ने एक बात और भी की। उन्होंने अहिंसा को सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन तीन नियम के साथ जकड दिया। इस कारण पहले जो अहिंसा ऋषि-मुनियों के व्यक्तिगत आचरण तक ही सीमित थी और जनता के व्यवहार में जिसका कोई स्थान न था, वह अब इन नियमों के कारण सामाजिक एवं व्यावहारिक हो गई।

पार्श्व तीर्थङ्कर ने तीसरी बात यह की कि अपने नवीन धर्म के प्रचार के लिये संघ बनाया। बौद्ध साहित्य से हमें इस बात का पता लगता है कि बुद्ध के समय जो संघ विद्यमान थे, उन सबों में जैन साधु और साध्वियों का संघ सबसे बडा था। उपर्युक्त वर्णन से मालूम होगा कि ऋषि-मुनियों की तपश्चर्या रूपी अहिंसा से पार्श्व मुनि की लोकोपकारी अहिंसा का उद्गम हुआ।

लोकोपकारी अहिंसा का सब से प्रमुख प्रभाव हमें सर्वभूत दया के रूप में दिखाई देता है। यों तो सिद्धांततः सर्वभूत दया को सभी मानते हैं किन्तु प्राणिरक्षा के ऊपर जितना बल जैन परम्परा ने दिया, जितनी लगन से उसने इस विषय में काम किया उसका परिणाम समस्त ऐतिहासिक युग में यह रहा है कि जहां-जहां और जब-जब जैनों का प्रभाव रहा वहां सर्वत्र आम जनता पर प्राणिरक्षा का प्रबल संस्कार पड़ा है। यहां तक कि भारत के अनेक भागों में अपने को अजैन कहने वाले तथा जैन विरोधी समझने वाले साधारण लोग भी जीवमात्र की हिंसा से नफरत करने लगे है। अहिंसा के इस सामान्य संस्कार के ही कारण अनेक वैष्णव आदि जैनेतर परम्पराओं के आचार-विचार पुरातन वैदिक परम्परा से सर्वथा भिन्न हो गए हैं। तपस्या के बारे में भी ऐसा ही हुआ है। त्यागी हो या गृहस्थ सभी जैन तपस्या के ऊपर अधिकाधिक झुकते रहे हैं। सामान्यरूप से साधारण जनता जैनों की तपस्या की ओर आदरशील रही है। लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा था कि गुजरात आदि प्रांतों में जो प्राणि-रक्षा और निर्मांस भोजन का आग्रह है, वह जैन-परम्परा का ही प्रभाव है।

जैनधर्म का आदि और पवित्र स्थान मगध और पश्चिम बङ्गाल है। सम्भव है कि बङ्गाल में एक समय बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैन धर्म का विशेष प्रचार था। परन्तु क्रमश जैन धर्म के लुप्त होजाने पर बौद्धधर्म ने उसका स्थान ग्रहण किया। बङ्गाल के पश्चिमी हिस्से में स्थित 'सराक' जाति 'श्रावकों' की पूर्व स्मृति कराती है। अब भी बहुत से जैन मन्दिरों के ध्वंसावशेष, जैन मूर्तियां, शिलालेख आदि जैन स्मृति-चिह्न बङ्गाल के भिन्न-भिन्न भागों में पाये जाते हैं।

प्रोफेसर सिल्वन लेवी लिखते हैं कि 'बौद्ध धर्म जिस तरह अकुण्ठित भाव से भारत के बाहर और अन्दर प्रसारित हो सका, उस तरह जैन धर्म नहीं। दोनों धर्मों का उत्पत्ति स्थान एक होते हुए भी यह परिणाम निकला कि बौद्ध धर्म प्रतिष्ठित हुआ पूर्व भारत में और जैन धर्म पश्चिम तथा दक्षिण भारत में। बौद्ध धर्म भारत के अतिरिक्त पूर्व दिशा में बरमा, श्याम, चीन आदि देशों में फैला और उसने इन सब दिशाओं से भारत को सम्भावित राजनैतिक विपत्तियों से उन्मुक्त किया। यदि जैन धर्म भी इसी तरह भारत से बाहर पश्चिमी देशों की ओर

फैला होता तो शायद भारत अनेक राजनैतिक दुर्गतियों से बच गया होता।"

इस समय जो ऐतिहासिक उल्लेख उपलब्ध हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि ईसवी सन की पहली शताब्दी में और उसके बाद के १००० वर्षों तक जैन धर्म मध्य पूर्व के देशों में किसी न किसी रूप में यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इसलाम को प्रभावित करता रहा है। प्रसिद्ध जर्मन इतिहास लेखक वान क्रेमर के अनुसार मध्य पूर्व में प्रचलित 'समानिया' सम्प्रदाय 'श्रमण' शब्द का अपभ्रंश है। इतिहास लेखक जी० एफ० मूर लिखता है कि "हजरत ईसा की जन्म की शताब्दी से पूर्व इराक, शाम और फिलिस्तीन में जैन मुनि और बौद्ध भिक्खु सैकड़ों की संख्या में चारों ओर फैले हुए थे। पश्चिमी एशिया, मिस्र, यूनान और इथियोपिया के पहाड़ों और जङ्गलों में उन दिनों अगणित भारतीय साधु रहते थे जो अपने त्याग और अपनी विद्या के लिये मशहूर थे। ये साधु वस्त्रों तक का परित्याग किये हुए थे।"

इन साधुओं के त्याग का प्रभाव यहूदी धर्मावलम्बियों पर विशेष रूप से पड़ा। इन आदर्शों का पालन करने वालों की, यहूदियों में, एक खास जमात बन गई जो 'एस्सिनी' कहलाती थी। इन लोगों ने यहूदी धर्म के कर्मकाण्डों का पालन त्याग दिया। ये बस्ती से दूर जङ्गलों में या पहाड़ों पर कुटी बनाकर रहते थे। जैन मुनियों की तरह अहिंसा को अपना खास धर्म मानते थे। मांस खाने से उन्हें बेहद परहेज था। वे कठोर और संयमी जीवन व्यतीत करते थे। पैसा या धन को छूने तक से इनकार करते थे। रोगियों और दुर्बलों की सहायता को दिनचर्या का आवश्यक अङ्ग मानते थे। प्रेम और सेवा को पूजा पाठ से बढ़कर मानते थे। पशु-बलि का तीव्र विरोध करते थे। शारीरिक परिश्रम से ही जीवन यापन करते थे। अपरिग्रह के सिद्धान्त पर विश्वास करते थे। समस्त सम्पत्ति को समाज की सम्पत्ति समझते थे। मिस्र में इन्हीं तपस्वियों को 'थेरापूते' कहा जाता था। थेरापूते का अर्थ है 'मौनी अपरिग्रही'।

'सियाहत नामए नासिर' का लेखक लिखता है कि इसलाम धर्म के कलन्दरी तबके पर जैन धर्म का काफी प्रभाव पड़ा था। कलन्दरों की जमात परिव्राजकों की जमात थी। कोई कलन्दर दो रात से अधिक एक घर में न रहता था। कलन्दर चार नियमों का पालन करते थे—साधुता, शुद्धता, सत्यता और दरिद्रता। वे अहिंसा पर अखण्ड विश्वास रखते थे।

एक बार का किस्सा है कि दो कलन्दर मुनि बगदाद में आकर ठहरे। उनके सामने एक शुतुरमुर्ग गृह-स्वामिनी का हीरों का एक बहुमूल्य हार निगल गया। सिवाय कलन्दरों के किसी ने यह बात देखी नहीं। हार की खोज शुरू हुई। शहर कोतवाल को सूचना दी गई। उन्हें कलन्दर मुनियों पर सन्देह हुआ। मुनियों ने उस मूक पक्षी के साथ विश्वासघात करना उचित न समझा। क्योंकि हार के लिये उस पक्षी को मारकर उसका पेट फाड़ा जाता। सन्देह में मुनियों को बेरहमी के साथ पीटा गया। वे लहूलोहान हो गए किन्तु उन्होंने शुतुरमुर्ग के प्राणों की रक्षा की।

सालेह बिन अब्दुल कुद्दूस भी एक अहिंसावादी अपरिग्रही परिव्राजक मुनि था जिसे उसके क्रान्तिकारी विचारों के कारण सन् ७८३ ईसवी में सूली पर चढ़ा दिया गया। अबुल अलाहिया, जरीर इब्न हज्म, हम्माद अजरद, यूनान बिन हारून, अली बिन खलील और बश्शार अपने समय के प्रसिद्ध अहिंसावादी निग्रन्थी फकीर थे।

नवमी और दशमी शताब्दियों में अब्बासी खलीफाओं के दरबार में भारतीय पंडितों और साधुओं

को आदर के साथ निमन्त्रित किया जाता था। इनमें बौद्ध और जैन साधु भी रहते थे। इब्न-अन नजीम लिखता है कि—"अरबों के शासन काल में यह्निया इब्न खालिद बरमकी ने खलीफ़ा के दरबार और भारत के साथ अत्यन्त गहरा सम्बन्ध स्थापित किया। उसने बडे अध्यवसाय और आदर के साथ भारत से हिन्दू, बौद्ध और जैन विद्वानों को निमन्त्रित किया।"

सन् ६६८ ईसवी के लगभग भारत के बीस साधु-सन्यासियों ने मिलकर पश्चिमी एशिया के देशों की यात्रा की। इस दल के साथ चिकित्सक के रूप में एक जैन सन्यासी भी गए थे। एक बार स्वदेश लौटकर यह दल फिर पर्यटन के लिये चला गया। २६ वर्ष के बाद जब सन् १०२४ ईसवी में ये लोग अन्तिम बार स्वदेश लौटे तब उस समुदाय के साथ सीरिया के सुविख्यात अन्ध कवि अबुल अला अल मआरी का परिचय हुआ। अबुल अला का जन्म सन् ६७३ ईसवी में हुआ था और मृत्यु सन् १०५८ ईसवी में। जर्मन विद्वान् वान क्रेमर ने लिखा है कि अबुल अला सभी देशों और सभी युगों के सर्वश्रेष्ठ सदाचार शास्त्रियों में से एक था।

अबुल अला जब केवल चार वर्ष के थे तभी चेचक के भयंकर प्रकोप से अन्धे हो गए थे। किन्तु उनकी ज्ञानतृष्णा इतनी अदम्य थी कि वे स्पेन से मिस्र और मिस्र से ईरान तक अनेकों स्थानों में गुरु की तलाश में ज्ञानार्थी बनकर घूमते रहे। अन्त में बगदाद में जैन दार्शनिकों के साथ उनका परिपूर्ण ज्ञान-समागम हुआ। साधना द्वारा उन्होंने परम योगी पद को प्राप्त किया। उनकी ईश्वर की कल्पना इसलाम की कल्पना से नितान्त भिन्न थी। बहिश्त के लिये उनकी जरा भी ख्वाहिश नहीं थी। वे दुःखमय सत्ता को ही समस्त दुःखों का मूल मानते थे। बगदाद से सीरिया लौट कर एक पर्वत की कन्दरा में रहकर उन्होंने अति कृच्छ्र तपश्चरण किया। उसके बाद उनका जीवन ही बदल गया। मद्, मत्स्य, मांस, अण्डे एवं दूध तक का उन्होंने परित्याग कर दिया। उनका जीवन अहिंसामय एवं मैत्रीपूर्ण बन गया।

अबुल अला का इस बात में विश्वास नहीं था कि मुर्दे किसी दिन कब्रों में से निकल कर खड़े हो जायेंगे। बच्चा पैदा करने के कार्य को वह पाप मानता था। अपने पृथक् अस्तित्व को मिटा देने को वह मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्ष्य मानता था। वह आजीवन मनसा, वाचा, कर्मणा ब्रह्मचारी रहा। उसने अपने एक भजन में लिखा है—

"हनीफ ठोकरें खा रहे हैं, ईसाई सब भटके हुए हैं, यहूदी चक्कर में हैं, भागी कुराह पर बढ़े जा रहे हैं। हम नाशमान मनुष्यों में दो ही खास तरह के व्यक्त हैं—एक बुद्धिमान शठ और दूसरे धार्मिक मूढ़।"

अबुल अला का एक दूसरा भजन है—

"कोई वस्तु अनित्य नहीं है। प्रत्येक वस्तु नाशमान है। इसलाम भी नष्ट होने वाला है। हजरत मूसा आए, उन्होंने अपने धर्म का उपदेश दिया और चल बसे। उनके बाद हजरत ईसा आए। फिर हजरत मोहम्मद आए और उन्होंने अपनी पांच वक्त की नमाज चलाई। कुछ दिनों बाद कोई दूसरा मजहब आकर इसकी जगह ले लेगा। इस तरह मानव जाति वर्तमान और भविष्य के बीच में भौंत की तरह हंकाई जा रही है। यह धरती नाशमान है। जिस तरह इसका आरम्भ हुआ था उसी तरह इसका अन्त होगा। जन्म और मृत्यु हर चीज के साथ लगी हुई हैं। काल का प्रवाह नदी की धार के सदृश बहता चला जा

रहा है। यह प्रवाह हर समय किसी न किसी नई वस्तु को मापने लगा रहता है।"

सभी जीव जन्तुओं यहाँ तक कि कीड़े-मकोड़ों के प्रति भी वे अपरिसीम करुणापरायण थे। इस सम्बन्ध का उनका एक भजन है—

"वृथा पशु हिंसा से क्यों जीवन कलंकित करते हो। बेचारे वनवासी पशुओं का क्यों निष्ठुर भाव से संहार करते हो। हिंसा करना बड़ा कुकर्म है। शरीर को पशुओं का कब्रिस्तान न बनाओ। अण्डे और मछलियाँ भी न खाओ। इन सब कुकर्मों से मन अपने दाग भी डाले है। वास्तव में आगे जाकर न वधिक रहेगा और न वध्य। काश कि जाल फेंकने से पहले मैंने इन बातों को समझ लिया होता।"

इसी प्रकार जैन दर्शन ने तत्कालीन सूफी तथा अन्य अनेक ईरानी सूफियों के विचारों को प्रभावित किया। अहिंसा का सिद्धान्त मानव जीवन का सर्वोच्च सिद्धान्त है। प्रत्येक प्रगतिशील आत्मा उससे आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकती। अनेक कारणों से, जिनके विस्तार में जाने की यहाँ आवश्यकता नहीं है, जैन जीवन धारा व्यापक रूप से मानव समाज को अधिक समय तक परिप्लावित नहीं कर सकी। उसके अनुयायी स्वयं अनाचार और मिथ्याचार में फंस गए। आज हमें फिर अहिंसा की उस परम्परा में नई प्राण शक्ति का संचार करना होगा। गान्धी जी ने अपने जीवन का अर्घ्य देकर एक बार उसे देदीप्यमान कर दिया। किन्तु हमें निरन्तर साधनामय जीवन से उस अग्नि को प्रज्वलित कर अपनी प्राणशक्ति का प्रमाण देना होगा। सत्य और अहिंसा के आदर्श को व्यवहार में प्रतिष्ठित करने के सहज मार्ग को न स्वीकार कर यदि शास्त्र वाक्य, तर्क और प्रमाण चातुर्य का मार्ग ग्रहण किया जायगा, तो विश्व धर्म के महाकाल के विधान में जैन धर्म के लिये कोई आशा नहीं।

यदि जिन-मन्दिर तथा अनेक मिथ्या आडम्बरों, अर्थहीन आचारों आदि को त्याग कर दया, मैत्री, उदारता, शुद्ध जीवन, आन्तरिक और बाह्य प्रकाश और प्रेम की उदार तपस्या द्वारा अपने में अन्तर्निहित मृत्युहीन जीवन का परिचय दे सकें तो सब अभियोग और आक्षेप स्वयं शान्त हो जायेंगे और इससे जैन स्वयं धन्य होंगे तथा समग्र मानव सभ्यता को भी वे धन्य करेंगे।"

———

दक्षिण में जैनधर्म

विद्याभूषण पं० के० भुजबली शास्त्री, स० 'जैन सिद्धान्त-भास्कर'

हम दक्षिण को बम्बई, मद्रास और मैसूर इस प्रकार मुख्यतया तीन भागो मे विभक्त कर सकते हैं। इन तीन भागो मे से सबसे पहले बम्बई को लीजिये। जैन धर्म का सम्बन्ध इस प्रान्त से अत्यन्त प्राचीन काल से है। बिहार प्रान्त को छोड कर अन्य और किसी प्रान्त मे बम्बई के बराबर जैनो के निर्वाण क्षेत्र नहीं है। जैन पुराणों से सिद्ध होता है कि पूर्व काल मे यह प्रान्त असंख्यात जैन मुनियो का विहारस्थल रहा। बाईसवें तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ के पाँचों कल्याणक इसी प्रान्त में हुए हैं। गजपन्था माँगीतुंगी और कुन्थलगिरि आदि क्षेत्रो को अगणित मुनियो ने अपनी पवित्र तपस्या और केवल ज्ञान के द्वारा विशेष पवित्र किया है।

यद्यपि इस प्रकार इतिहासातीत काल से इस प्रान्त से जैनधर्म का सम्बन्ध चला आ रहा है फिर भी इतिहासकाल मे भारत के प्राचीन इतिहास मे मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त का काल बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस देश का वैज्ञानिक इतिहास उन्हीं के समय से प्रारम्भ होता है। चन्द्रगुप्त के राज्य काल मे हम जैनाचार्य भद्रबाहु को एक विशाल मुनिसंघ के साथ उत्तर से दक्षिण की ओर यात्रा करते हुए पाते हैं। उन्होंने मालवा प्रान्त से मैसूर प्रान्त की यात्रा की एवं श्रवण बेलगुल को अपना केन्द्र बनाया। यहाँ पर उनके शिष्य-प्रशिष्य चारों ओर धर्म प्रचार करने लगे। थोडी ही शताब्दियों में उन्होने दक्षिण मे जैनधर्म का अच्छा प्रचार किया। बम्बई प्रान्त के प्रायः सभी भागों मे श्री भद्रबाहु के शिष्यो ने विहार किया और जैनधर्म की ज्योति उद्योतित की। ईसा की पाँचवी-छठीं शताब्दी मे भी यहाँ पर अनेक प्रसिद्ध जैन मन्दिर बने थे। ऐहोले का प्रसिद्ध मेघुती मंदिर इनमे से एक है। इस मन्दिर मे जो लेख मिला है वह शक सं० ५५६ का है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह लेख महत्वपूर्ण है।

इसमे सन्देह नही है कि दशवीं शताब्दी तक बम्बई प्रान्त मे जैनधर्म ही प्रधान धर्म रहा। इस प्रान्त में मुख्यतया कदम्ब, चालुक्य और राष्ट्रकूट राजाओं का शासन था। यद्यपि प्रारम्भ के कदम्ब शासक ब्राह्मण धर्मानुयायी थे, परन्तु पिछले शासक जैनधर्म से प्रभावित हो इसके श्रद्धालु हो गये थे। मृगेश से हरिवर्मा तक के कदम्ब राजाओं ने जैनधर्म को अच्छा आश्रय दिया था। मृगेश वर्मा काफी उदार था। उसके दो रानियाँ थीं। उनमे प्रधान रानी जैनधर्मानुयायी रही। स्वयं मृगेश भी जैनधर्मावलम्बी था। मृगेशवर्मा का पुत्र हरिवर्मा भी अपने पूज्य पिता के समान जैनधर्म का भक्त था। इसने भी पिता के समान जैन मन्दिरों के लिए अच्छा दान दिया था। ह०सी मे प्राप्त इसके दानपत्र से जैनधर्म मे इसका दृढ श्रद्धान व्यक्त होता है। रविवर्मा का भाई भानुवर्मा भी जैनधर्म का परम भक्त रहा। इसने भी जैनेन्द्र के अभिषेक के लिए भूमिदान किया था, जिससे प्रत्येक पूर्णिमा को अभिषेक हुआ करता था।

इस प्रकार कदम्बों के शासन काल मे जैनधर्म अभ्युदय को प्राप्त था। बल्कि प्रो० बी० एस० राव

का कहना है कि कदम्बो के आस्थान कवि जैन थे, उनके अमात्य जैन थे, उनके दानपत्रो के लेखक जैन थे और उनके व्यक्तिगत नाम भी जैन थे। इतना ही नहीं, कदम्बों के साहित्य की रूप-रेखा भी जैन काव्यशैली की थी। कदम्बो की राजधानी पलासिका (वेलगॉव) मे जैनो के भिन्न-भिन्न संप्रदायो अर्थात् यापनीय, निर्ग्रन्थ, कूर्चक, अहराष्टि और श्वेतपट संघों के आचार्य शांतिपूर्वक रह कर धर्मप्रचार करते रहे। कदम्बो के शैव धर्म स्वीकार करने के उपरान्त भी कृष्णवर्मा द्वितीय के पुत्र युवराज देववर्मा ने त्रिपर्वत के ऊपर का कुछ क्षेत्र अर्हन्त भगवान के चैत्यालय की मरम्मत, पूजा और प्रभावना के लिये यापनीय संघ को दान दिया था। बल्कि कदम्बो की पूर्व राजधानी वनवास अर्थात् भनवासि मे भी निष्कण्टक जैनाचार्य शांतिपूर्वक साहित्यसेवा आदि करते रहे। यही कारण है कि दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के सर्व-प्राचीन पवित्र ग्रन्थ षट्खण्डागम की रचना यहीं पर हुई थी।

बम्बई प्रान्त मे शासन करने वाले राजवंशो मे अब चालुक्यो का नाम आता है। चालुक्यों ने पॉचवी शताब्दी से आठवी तक, फिर दसवी के अन्त से लेकर बारहवीं तक राज्यशासन किया है। लगभग समूचा बम्बई प्रान्त, हैदराबाद और मैसूर का वायव्य प्रान्त इनके शासन मे शामिल था। श्रीमान् बी० ए० सालेतोर की राय से चालुक्य कर्नाटक के ही मूल निवासी थे। यद्यपि चालुक्य वंश के राजाओं मे अधिकाँश राजा वैदिक धर्मानुयायी थे फिर भी इन मे कई राजाओं ने जैनधर्म को आश्रय दिया था। दिगम्बर संप्रदाय के ख्याति-प्राप्त तार्किक विद्वान्, अनेक अमर कृतियो के रचयिता, उच्चकोटि के एक सरस कवि, महान् वादो तथा विजेता श्री वादिराजसूरि का चालुक्य नरेश जयसिंह प्रथम की राजसभा में बडा आदर था। यह वहॉ के प्रख्यात वादी गिने जाते थे। चालुक्य नरेश जयसिंह को जैनधर्म पर प्रगाढ़ अनुराग था।

जयसिंह का पौत्र पुलकेशी, इसका उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मा, कीर्तिवर्मा का पुत्र द्वितीय पुलकेशी जिनके अध्यात्म-गुरु आचार्य पूज्यपाद का शिष्य श्रावक उदयदेव था, इन सबों को भी जैनधर्म पर अनुराग था। पुलकेशी, कीर्तिवर्मा आदि शासको ने भिन्न-भिन्न समय पर जैन देवालय तथा जैन गुरुओं को दान दिया है। बल्कि ऐहोले मे एक सुन्दर जिन मन्दिर निर्माण कराने वाले पण्डित रविकीर्ति, द्वितीय पुलकेशी के विशेष कृपा-पात्र थे। यह बात उसी मन्दिर के रविकीर्ति के ही द्वारा लिखे गये प्रख्यात ऐहोले के लेख से स्पष्ट विदित होती है। श्रेष्ठी बाहुबली के प्रार्थनानुसार चालुक्य-नरेश विजयादित्य के पुत्र विक्रमादित्य ने भी पुलिगेरे के दो जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार करा के दान दिया था। चालुक्य राजा अरिकेसरी (द्वितीय) ने महाकवि पंप को अपना मन्त्री तथा सेनापति बना लिया था। चालुक्य वंश की इस पूर्वीय शाखा मे विमलादित्य, विष्णुवर्धन और अम्म द्वितीय आदि शासको ने भी मन्दिरों को दान दिया है।

पश्चिम चालुक्य-वश के महाराजा तैलपदेव (द्वितीय) की महारानी जब कब्बे ने महाकवि रन्न को कविचक्रवर्ती की उपाधि से अलंकृत किया था। तैलप का उत्तराधिकारी सत्याश्रम आचार्य विमलचन्द्र का भक्त था और उसने एक जैनगुरु की निषधिका बनवाई थी।

विक्रमादित्य त्रिभुवनमल्ल का छोटा भाई जगदेकमल्ल जयसिंह ने भी आचार्य वादिराज, वादिसिंह आदि जैन विद्वानों का बडा आदर किया था। सोमेश्वर आहवमल्ल, इसका अन्यतम पुत्र राजकुमार कीतिवर्मा और उसकी मॉ केतलदेवी भी जिनभक्ता रही। केतलदेवी के गुरु मुनि देवचन्द्र थे। इसने अनेक जिनमन्दिर निर्माण कराये थे और प्रभावना के और भी कई कार्य किये थे। भुवनैकमल्ल सोमेश्वर द्वितीय को भी जैनधर्म पर अनुराग था। सोमेश्वर का मझला भाई छठा विक्रमादित्य भुवनैकमल्ल तो जैनधर्म का विशिष्ट भक्त ही था। जैनधर्म मे इसका सम्बन्ध शुरू से स्थापित था। बी० ए० सालेतोर के मत से इसने बेलवोल प्रान्त मे कई जिन-मन्दिर बनवाये थे। चालुक्य राज में कई प्रान्तीय शासक एवं उच्च राजकर्मचारी भी जैन धर्मानुयायी रहे।

जैसे सोमेश्वर द्वितीय का समकालीन बनवासि का शासक लक्ष्म, उसका सेनापति शान्तिनाथ, तैलप का सेनानायक मल्लप, उसकी पुत्री दानवीरा अतिमब्बे, जगदेकमल्ल के सेनानी दासियरस, उसका श्वसुर सेनापति काडियरस, त्रिभुवनमल्ल का सामन्त गंगपेरमाडि, उसका सॉधिवैग्रहिक मंत्री दामराज आदि ।

अब राष्ट्रकूट शासको को लीजिये । राष्ट्रकूट में सम्राट् दंतिदुर्ग, कंब और गोविन्द तृतीय को जैनधर्म पर अनुराग था । इनमें से कंब और गोविन्द ने भिन्न-भिन्न अवसर पर जैनो को दान भी दिया है । दंतिदुर्ग के राजदरबार मे आचार्य अकलंक देव ने जैनधर्म का महत्त्व प्रकट किया था । अमोघवर्ष प्रथम तो जैनधर्म का भक्त ही रहा । वह आचार्य वीरसेन, जिनसेन, मुखभद्र और महावीर आदि दिगम्बर विद्वानो के संपर्क में बराबर रहा । इसी का परिणाम है कि उसने अपने अन्तिम जीवन मे राज्य का भार अपने पुत्र कृष्ण (द्वितीय) पर छोड़ कर आत्मकल्याण के लिये एकान्तवास किया था । बल्कि कृष्णराज द्वितीय भी अपने पिता के समय से ही जैनधर्म के संसर्ग मे आ गया था । उसने मुलगुन्द के जैन मन्दिर के लिए दान भी दिया था । इन्द्र तृतीय और कृष्ण तृतीय को भी जैनधर्म पर श्रद्धा थी । इन्द्र चतुर्थ तो जैनधर्म का उपासक ही रहा । उसने अपने जीवन के अन्त मे श्रवणबेलगोल आ कर भक्तिपूर्वक सल्लेखना-व्रत धारण किया था । इस प्रकार राष्ट्रकूट वंश के कई राजा जैनधर्म के श्रद्धालु और उपासक रहे । यों दशवीं शताब्दी तक बम्बई प्रान्त में जैनधर्म ही मुख्य धर्म रहा । पर उसके बाद जैनधर्म का ह्रास प्रारम्भ हो गया और शैव, वैष्णव धर्मों का प्रचार बढा । खासकर कलचुरि राजा बिज्जल से जैनधर्म को बडी क्षति पहुँची । शैवधर्म स्वीकार कर उसने जैनों पर बडा अत्याचार किया था ।

अब देखना है कि ऐतिहासिक दृष्टि से मद्रास प्रान्त में जैनधर्म का प्रचार कब से हुआ । प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ देवचन्द्र कृत 'राजावलि कथा' में लिखा है कि भद्रबाहु के शिष्य विशाखाचार्य ने चोल और पांड्य प्रदेशों में पर्यटन करते हुए वहाँ के जिनालयो की वन्दना की और जैन श्रावकों को उपदेश दिया । इससे स्पष्ट विदित होता है कि देवचन्द्र के मतानुसार भद्रबाहु के आगमन के पूर्व भी मद्रास प्रान्त मे जैनधर्म का प्रचार रहा । बल्कि इस सम्बन्ध मे प्रो० ए० चक्रवर्ती का अनुमान है कि अगर भद्रबाहु से पूर्व दक्षिण मे जैनधर्म का प्रचार न होता तो भद्रबाहु को बारह हज़ार शिष्यों को लेकर दक्षिण में आने का साहस कदापि नहीं होता । उन्हें अपने धर्मानुयायियों द्वारा स्वागत करने का पूरा विश्वास था, इसीसे वे सहसा ऐसा साहस कर सके ।

इस विषय में एक और सुदृढ प्रमाण उपलब्ध हुआ है । सिंहलद्वीप के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाला धंतुसेन विरचित 'महावंश' नाम का एक पाली भाषा का बौद्ध ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ अनुमानतः ईसा की पाँचवी शताब्दी में रचा गया है । इस ग्रन्थ में ई० पूर्व ५४३ से लगाकर ई० सन् ३०१ तक का वर्णन है । इसमे वर्णित घटनाएँ सिंहलद्वीप के नरेश पनुयाभय के वर्णन में लिखा गया है कि उन्होंने लगभग ४३७ ई० पूर्व अपनी राजधानी अनुराधपुर मे स्थापित की और वहाँ पर निर्ग्रन्थ मुनि कुम्बन्ध के लिए एक गिरि नामक स्थान तथा एक मन्दिर भी निर्माण कराया जो उक्त मुनि के ही नाम से विख्यात हुआ । इससे सिद्ध होता है कि ई० सन् से पूर्व पाँचवीं शताब्दी मे अर्थात् भद्रबाहु की दक्षिणयात्रा के काल से भी करीब दो सौ वर्ष पूर्व सिंहलद्वीप मे जैनधर्म का प्रचार हो चुका था । ऐसी परिस्थिति मे मद्रास प्रान्त के चोल और पाँड्य प्रदेशो में उस समय जैनधर्म का प्रचलित होना संभव प्रतीत होता है ।

इस सम्बन्ध मे एक और प्रमाण लीजिये । तामिल साहित्य बहुत प्राचीन है । इस साहित्य मे संगमकाल के बने हुए ग्रन्थ प्राचीनतम कहे जाते हैं । इस काल मे समस्त कवियों ने मिलकर अपना एक संघ बना लिया था और प्रत्येक कवि अपने ग्रन्थ का प्रचार करने से पूर्व उस ग्रन्थ को इस संघ द्वारा स्वीकार

करा लेता था। इस व्यवस्था से उस काल मे सिर्फ उत्कृष्ट साहित्य ही जनता के सन्मुख उपस्थित किया जा सकता था। संगम का काल अभी तक निर्विवाद रूप से निर्णीत नहीं हो सका है। फिर भी अधिकांश विद्वानों की राय है कि लगभग ई० सन् के प्रारम्भ मे ही संगम का प्राबल्य रहा होगा। इस काल का कुरल नामक एक उत्कृष्ट काव्य है जो तिरुवल्लुवर नामक साधु का बनाया हुआ कहा जाता है। यह ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येक धर्म वाले इसे अपना धर्मग्रन्थ सिद्ध करने मे गौरव मानते हैं। अनेक साहित्यिक प्रमाण इस बात के मिले हैं कि यह ग्रन्थ एलाचार्य नाम के जैनाचार्य का बनाया हुआ है। उन्होंने अपने शिष्य तिरुवल्लुवर के द्वारा इसे संगम की स्वीकृति के लिए भेजा था। नीलकेशी की टीका मे इसे स्पष्ट रूप से जैनशास्त्र कहा गया है। पूर्वोक्त एलाचार्य और कोई नहीं, दिगम्बर संप्रदाय के स्तभस्वरूप कुंदकुंदाचार्य ही है। कुरल ग्रन्थ के अस्तित्व से सिद्ध होता है कि ई० सन् के प्रारम्भ मे ही जैनधर्म के उदार सिद्धान्तों का तामिल देश में अच्छा आदर होता था। बल्कि फ्रेजर साहब की यह उक्ति बिल्कुल ठीक है कि जैनो के ही प्रयत्न का फल था कि दक्षिण मे नया आदर्श, नया साहित्य, नवीन आचारविचार और नूतन भाषाशैली प्रकट हुई। प्रो० ए० चक्रवर्ती के मत से 'प्राभृतत्रय' कांची के नरेश, पल्लव शिवस्कन्द वर्मा के सम्बोधनार्थ ही कुंदकुंदाचार्य के द्वारा रचे गये थे।

तामिल भाषा के प्रसिद्ध पौराणिक काव्य 'सिलपदिकारम्' और 'मणिमेक्लै' मे जैनधर्म के अनेक उल्लेख मिलते हैं। इन उल्लेखो से सिद्ध होता है कि उस देश मे उस समय जैनधर्म ही सर्वत्र और सर्वमान्य था। इतना ही नही, इनसे यह भी सिद्ध होता है कि जैनधर्म को चोल और पांड्य नरेशो का अच्छा आश्रय मिला था और राजवंश के अनेक पुरुष एवं महिलाओ ने जैनधर्म को स्वीकार किया था। सपूर्ण तामिल प्रान्त जैन मुनियों और अर्जिकाओं के आश्रमो से भरा हुआ था। यह अवस्था लगभग दूसरी शताब्दी की है। आगे की शताब्दियो मे भी जैनधर्म की उन्नति जारी रही। बल्कि पांचवी शताब्दी मे साहित्योन्नति के लिए जैनों ने द्राविड नामक अपना एक स्वतन्त्र सघ ही स्थापित किया जिसका केन्द्र मदुरा ही रक्खा गया। इस सघ के स्थापक आचार्य वज्रनंदी थे।

जैनियो की यह असाधारण उन्नति समीपवर्ती जैनेतर धर्मियो को सह्य नही हुई। खासकर शैव और वैष्णवों ने जैनो के विरुद्ध अनेक जाल रचना प्रारम्भ किया। शुरू मे कलभ्रो की सहायता से जैन अपने विरोधियो पर विजय प्राप्त करने में सफल हुए, क्योंकि कलभ्रवंशियो को जैनधर्म पर बड़ा अनुराग था। श्री रामस्वामि अय्यंगर के मत से उस समय जैनधर्म के पालन मे कुछ ऐसी कमजोरियाँ आ गई थीं जिनके कारण शैव आदि विपक्षी धर्मों को बढ़ने का अच्छा अवसर मिला। मुख्यतया पांड्यदेश मे जैनों को असीम क्षति पहुंचाने वालों मे ज्ञानसम्बन्दर नामक शैव साधु और पल्लव देश में जैनो को हानि पहुंचाने वालों मे दूसरा एक अप्पर नामक शैव साधु प्रमुख हैं। ज्ञानसम्बन्दर ने सुन्दर पांड्य को और अप्पर ने महेन्द्र वर्मा को शैव बनाकर हजारों जैन मुनि एवं श्रावकों का वध करा डाला। इसी समय वैष्णव अल्वरो ने अपना धर्म-प्रचार प्रारम्भ किया और जैनधर्म को हानि पहुँचाई। मदुरा के मीनाक्षी मंदिर के मंडप की दीवाल की चित्रकारी मे जैनो पर शैवों और वैष्णवो द्वारा किये गये अत्याचारो की कथा अंकित है। 'पेरिय पुराणम्' नामक शैव पुराण मे भी रोमांचकारी यह वर्णन पाया जाता है। बस, पांड्य और पल्लव देशों में राजाश्रय से वंचित जैनो को मैसूर मे आकर गग नरेशो का आश्रय लेना पडा।

गगराज्य जैनाचार्य सिहनन्दी के द्वारा स्थापित हुआ था और इसके आदिम ऐतिहासिक व्यक्ति माधव और ददिग के बोध-गुरु भी यही आचार्य थे। प्रारम्भ के गंग शासक सभी जैनधर्मानुयायी रहे।

हाँ, रविवर्मा के पुत्र विष्णुगोप के समय में वे वैष्णव हुए। श्रीमान् एम० वी० कृष्ण के शब्दों में दक्षिण के राजवंशों में गंग प्रमुख जैनधर्मानुयायी राजवंश था। शासन लेखों से प्रकट है कि गंग राजा अविनीत के गुरु जैन विद्वान् विजयकीर्ति थे और उसकी शिक्षा एक जैन की भाँति ही हुई थी। अविनीत ने अपने राज्य के प्रारम्भ और अन्त में जैनों को खूब दान दिया था। इसका पुत्र दुर्विनीत यद्यपि वैष्णव कहा गया है पर इसका हृदय बड़ा उदार था। एक लेख के आधार से राइस सा० कहते हैं कि 'शब्दावतार' के सफल रचयिता प्रसिद्ध जैन वैयाकरण आचार्य पूज्यपाद दुर्विनीत के शिक्षागुरु थे। इससे यह अनुमान किया जाता है कि राजा दुर्विनीत को साहित्य में अभिरुचि पैदा करने वाले यही आचार्य थे। बाद दुर्विनीत का ज्येष्ठ पुत्र मुष्कर गंग राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। यह भी जैन धर्म का प्रेमी था। इसने बेल्लारि के निकट एक जैन मन्दिर निर्माण कराया था। बल्कि एम० वी० कृष्ण तथा राइस सा० की राय से मुष्कर के समय में जैन धर्म को फिर गंग राजा का राजधर्म होने का गौरव प्राप्त हुआ था। श्रीपुरुष तथा इसका ज्येष्ठ पुत्र शिवमार भी जैन धर्म के श्रद्धालु थे। इन दोनों ने प्रत्येक-प्रत्येक जैन मन्दिर बनवाये हैं। बल्कि शिवमार ने श्रवणबेलगोल के चन्द्रगिरि पर्वत पर भी एक जैन मन्दिर निर्माण कराया था। शिवमार एक सुयोग्य शिक्षित शासक ही नहीं था, किन्तु अनेक शास्त्रों का ज्ञाता प्रतिभाशाली और अध्ययनशील कवि भी था।

मारसिंह का उत्तराधिकारी इसका भाई दिडिग या पृथिवीपति हुआ था। यह जैनधर्म का महान् संरक्षक रहा। इसने अपनी रानी कंपिला के साथ श्रवणबेलगोल के कटवप्र पर्वत पर जैनाचार्य अरिष्टनेमि का निर्वाण [?] देखा था। गंग राजा नीतिमार्ग भी जैनधर्मानुयायी था और यह प्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेन का समकालीन था। नीतिमार्ग महान् शासक, राज्यप्रबन्धक, दानशील तथा साहित्योद्धारक था। यह ई० सन् ८७० में सल्लेखनाव्रत धारणपूर्वक स्वर्गवासी हुआ था। इस से जैनधर्म में इसका अचल प्रेम स्वयं व्यक्त होता है। गंग राजा राजमल्ल एवं नीतिमार्ग द्वितीय ने भी जैन देवालयों को दान दिया था। बूतुग भी जैन धर्म का परम भक्त था। यह बड़ा धर्मात्मा तथा विचारशील शासक था। कुडलूर के दानपत्र से प्रकट है कि एक बौद्धवादी से वाद करके इसने उसके एकान्त मत का खण्डन किया था। तीस वर्ष की दीर्घ तपस्या के उपरान्त ई० सन् ९७१ में जब इसकी विदुषी बहन पंबब्बे का समाधिमरणपूर्वक स्वर्गारोहण हुआ था तब बूतुग के मन को इस असह्य वियोग से गहरी चोट पहुंची थी। इसने गंगराज्य का विस्तार और गौरव विशेष रूप से बढ़ाया था।

अब मारसिंह द्वितीय को लीजिए। यह महान् व्यक्ति था। कुडलूर के दानपत्रों में इसके बारे में बहुत कुछ लिखा गया है। दानपत्रों का मुख्य सार यही है कि मारसिंह भगवान् का परम भक्त था। प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव के अभिषेक के जल से अपने पापमल को धो डालता था और निरन्तर गुरुओं की विनय किया करता था। शखबस्ति लक्ष्मेश्वर (धारवाड़) के लेख में मारसिंह की उपमा एक रत्नकलश से दी गई है जिससे सदैव जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक किया जाता है। इन उल्लेखों से गंगचूडामणि मारसिंह का जैनधर्म में अचल श्रद्धान स्पष्ट व्यक्त होता है। मारसिंह के राजमल्ल तथा रक्कसगंग दो पुत्र थे। ये दोनों क्रमशः राजगद्दी पर बैठे। इन दोनों ने भी जैनधर्म को विशेष रूप से उद्योतित किया।

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में चोल नरेशों द्वारा गंग वंश की इतिश्री होने पर मैसूर प्रान्त में होयसल वंश का प्राबल्य बढ़ा। होयसल राज्य की नींव एक जैन मुनि के द्वारा ही डाली गई थी। इस वंश के राज्यकाल में जैनों की खूब उन्नति हुई। विनयादित्य द्वितीय जैनाचार्य शांतिदेव का शिष्य था। एक लेख में कहा गया है कि उसने राज्यलक्ष्मी इन्हीं आचार्य की कृपा से प्राप्त की थी। विनयादित्य ने जैनधर्म की बड़ी

सेवा की थी। बिट्टिगदेव इसी का पौत्र था। वह प्रारम्भ में जैनधर्मानुयायी रहा। पर पीछे रामानुजाचार्य के प्रयत्न से वैष्णव बन गया। धर्म-परिवर्तन के प्रारम्भ मे उसने जैनों पर बडा अत्याचार किया था। हाँ, बाद मे उसका विचार बदला और जैनधर्म की ओर उसको सहानुभूति बनी रही। बिट्टिगदेव की रानी शातल देवी आजन्म पक्की जैन श्राविका रही। उसका मन्त्री गंगराज तो उस समय जैनधर्म का एक सुदृढ स्तंभ ही था। उसने अपनी सारी सम्पत्ति जैनधर्म की उन्नति मे व्यय की थी। नरसिंह प्रथम के मन्त्री हुल्लप ने भी जैनधर्म की बडी प्रभावना की है। मैसूर प्रान्त में चाउंडराय, गंगराज और हुल्लप ये तीनो जैन धर्म के चमकते हुए रत्न कहे जाते है। बस, आगे इस लेख को नही बढाना है। अन्यथा रट्ट, कलचुरि, सांतर आदि अन्य जैन-धर्मानुयायी राजवशों का परिचय भी दिया जाता।

मानव तेरा यह जीवन है

प्रो० श्रीचन्द जैन, एम० ए०, रीवा

मानव तेरा यह जीवन है।

कितनी धूमिल घोर निराशा,
फिर भी नित नव-नव अभिलाषा।
आकुल अन्तर निर्मम क्रन्दन,
कलुषित भौतिक कटुतम बधन।
परवशता का बस चिन्तन है।
मानव तेरा यह जीवन है॥

चाहों से तू परिपोषित है,
आहों से केवल शोषित है।
तरल तरंगों सा चंचल है,
अश्रुसिक्त गीला अंचल है।
पदमर्दित मिट्टी का कण है।
मानव तेरा यह जीवन है॥

हार-जीत का तू विलास है,
विह्वलता का अट्टहास है।
गिरते पल्लव का विनाश है,
बुझते दीपक का प्रकाश है।
तू पीडा का उत्पीडन है।
मानव तेरा यह जीवन है॥

जैन-पूजा की सार्थकता

पं० हीरालालजी कौशल, साहित्यरत्न, शास्त्री, न्यायतीर्थ

जैनधर्म अपनी लोकोत्तर विशेषताओं के कारण आज भी अपना मस्तक ऊँचा किये हुए है। भारत की संस्कृति पर उसका पर्याप्त प्रभाव है परन्तु विरोधी प्रचार का प्रभाव अब तक यत्र-तत्र किसी न किसी रूप में दृष्टि-गोचर हो ही जाता है।

श्री हेमचन्द्राचार्य ने अपने सिद्ध 'हेमशब्दानुशासन' नामक प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ में भी लिखा है कि जैनधर्म नरक स्वर्गादि गतियां (७ नरक, १६ स्वर्ग) तथा पाप पुण्यरूप कर्मानुसार उनमे उत्पत्ति मानता है, यह सर्वविदित है। अतः व्याकरण के अनुसार जैनधर्म एक आस्तिक धर्म है।

कोष (Dictionary) से शब्दो का अर्थ ज्ञात होता है। 'शब्दस्तोममहानिधि' (प्र० १८५ पृष्ठ ६३४) तथा अभिधानचिन्तामणि (काण्ड ३ श्लोक ५२६) आदि सब सुप्रसिद्ध कोष उपर्युक्त अर्थ को ही बताते हैं।

किसी भी दार्शनिक विद्वान् ने जैनधर्म को नास्तिक नहीं बताया है। नास्तिक के सिद्धान्त भी जैनधर्म को मान्य नहीं। जैन शास्त्रकारों ने 'प्रमेय कमल मार्तण्ड' 'अष्ट सहस्री' आदि ग्रन्थो मे नास्तिक मत का सयुक्तिक और ज़ोरदार खण्डन किया है।

कुछ लोग कहते हैं कि जैनधर्म परमात्मा को सृष्टिकर्ता नही मानता, इसलिये वह नास्तिक है। पर जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, व्याकरण कोष आदि के द्वारा, परलोक को न माननेवाला नास्तिक कहलाता है, ईश्वर को सृष्टिकर्ता न मानने वाला नही। नास्तिक शब्द रूढि व यौगिक शक्ति से भी उसका वाचक नही है।

इतिहास पर दृष्टि डालने से भी यही विदित होता है कि किसी भी निष्पक्ष इतिहासकार ने जैनधर्म को नास्तिक नहीं लिखा, बल्कि राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द आदि अनेक विद्वानों ने इसका खण्डन किया है।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि व्याकरण, कोष, दर्शन, इतिहास किसी भी दृष्टि से विचार करने पर जैनधर्म नास्तिक सिद्ध न होकर परम आस्तिक सिद्ध होता है। उसके सिद्धान्त अत्यन्त व्यवस्थित और अपने हैं। उसकी मान्यता है कि जीव अपने हो भावो से शुभाशुभ कर्म बांधता है तथा स्वयं उसका फल भोगता है।

जैनधर्म और ईश्वर

जैनधर्म ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हुए भी उसे किसी व्यक्ति विशेष मे केन्द्रित नही मानता, बल्कि प्रत्येक आत्मा मे ईश्वरत्व शक्ति स्वीकार करता है। वह किसी एक अनादि सिद्ध परमात्मा को तो नही मानता परन्तु अब तक कर्मरूपी मैल को अलग करके जितने आत्मा मुक्त (परम आत्मा) हो चुके हैं और आगे भी होते रहेगे, जैन सिद्धान्त के अनुसार वे सभी मुक्तात्मा, सिद्धात्मा, परमात्मा, भगवान या ईश्वर हैं। वे राग

द्वेषादि १८ दोषों से छूट जाते हैं तथा उनके अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्यादि आत्मिक गुण प्रकट हो जाते हैं। वे लोक के अग्रभाग में स्थित सिद्धालय नामक स्थान मे जा विराजते हैं। संसार के किसी भी कार्य से उनका कोई सम्बन्ध नही रहता तथा जिस प्रकार धान से छिलका अलग हो जाने पर चावलों मे उगने की शक्ति नही रहती, उसी प्रकार ससार मे उत्पन्न होने का कारण कर्मरूपी बीज नष्ट हो जाने पर सिद्धात्माओं को फिर कभी जन्म नही लेना पडता और वे सदा अपने निराकुल आत्मिक सुख मे लीन रहते हैं। कर्म शत्रुओ को जीतने के कारण उनको जिन या जिनेन्द्र भी कहते हैं।

उनमे से कुछ मुक्तात्माओं को जिन्होने मुक्त होने से पूर्व प्राणियों को ससार के दुःखों से छूटने तथा मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग बतलाया था, जैनधर्म मे तीर्थङ्कर माना गया है। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल मे ऐसे तीर्थङ्करो की सख्या २४ होती है।

उन्ही की अरहन्त (मोक्ष जाने से पूर्व) अवस्था की मूर्तिया जैनमन्दिरो मे विशेषरूप से विराजमान होती है।

वृषभदेव इस युग के प्रथम तथा महावीर अन्तिम तीर्थङ्कर हुए हैं।

जैन-पूजा

जब जैनधर्म किसी अनादि ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नही करता, सृष्टि की उत्पत्ति से ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं माना जाता और माने हुए ईश्वर—सिद्धात्मा—रागद्वेषादि रहित होने के कारण किसी को कोई लाभ नही पहुँचा सकते तो उनकी स्तुति या पूजादि करने से लाभ ही क्या है, ये प्रश्न अनायास ही प्रत्येक पाठक के हृदय मे उठने लगते हैं और इनके समाधान को मन व्यग्र हो उठता है।

ससारी प्राणी प्रत्येक क्षण अपनी मन, वचन, काय की प्रवृत्ति के अनुसार शुभ या अशुभ कर्मों का बन्ध करते रहते है। ऐसी दशा में जितनी देर पूजा करते हैं, संसार के अन्य कार्यों के त्याग तथा मन, वचन, काय की पवित्रता के कारण शुभ कर्म का बन्ध होता है जिसका फल सुख के रूप में प्राप्त होता है।

पूजन के समय भगवान् के गुण-स्मरण और गुणगान से सासारिक अहंकारभाव क्षीण होकर विनय-गुण का संचार होता है तथा यह भाव जाग्रत होता है कि :—

तुममे हममे भेद यह, और भेद कछु नाहिं।
तुम तन तज परब्रह्म भये, हम दुखिया जग माहिं॥

इस भांति भगवान् यद्यपि साक्षात् कुछ भी नहीं देते परन्तु पूजन के द्वारा पुण्य कर्म की प्राप्ति होने से सांसारिक सुख प्राप्त हो जाता है, आत्मा मे पवित्रता आती है तथा आत्मा के वास्तविक स्वरूप का भान होकर संसार से छूटने तथा शुद्धावस्था को प्राप्त करने का भाव जागृत हो जाता है। इस प्रकार हमारा वास्तविक उद्देश्य सब पूर्ण हो जाता है, और उसमे निमित्त कारण परमात्मा या ईश्वर हैं। वैसे परमात्मा ने स्वयं कुछ भी नहीं दिया है। परमात्म-दशा की प्राप्ति ससारी जीव का प्रधान लक्ष्य है और वह अपने पुरुषार्थ से स्वय प्राप्त की जाती है पर भगवान की पूजा उसमे एक व्यावहारिक निमित्त अवश्य है।

इस बात को भली भाति समझकर तथा उच्च उद्देश्य रखकर ही पूजा करनी चाहिये। सांसारिक सुख तो साधारण वस्तु हैं और पुण्य कर्म से अनायास ही उनकी प्राप्ति भी हो जाती है। अतः मात्र उनकी प्राप्ति की भावना रखकर वीतराग भगवान् की पूजा करना अपने धर्म व संस्कृति की अनभिज्ञता का द्योतक है।

●

इन्दौर—प्राचीन और अर्वाचीन

लेखक—श्री हुकुमचन्दजी पाटणी बी० ए०, ऐल०-ऐल० बी०

मध्यभारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी इन्दौर विलीनीकरण के पूर्व के होल्कर राज्य की राजधानी है। मालवा की उर्वराभूमि मे, विक्रम की उज्जैनी और भोज की धारानगरी के मध्य मे, स्थित इन्दौर अपना एक ऐतिहासिक एवं व्यावसायिक महत्त्व रखती है। मराठों के आदर्श नायक शिवाजी के स्वप्न को पूरा करने का भार द्वितीय पेशवा बाजीराव बालाजीराव पर आया था। हिन्दु-पद-पादशाही के स्थापक बाजीराव ने जब उत्तर भारत की ओर अभियान किया तो उनके विश्वासपात्र सरदार मल्हारराव होल्कर भी सिन्धिया और पवार के साथ थे। चौथ और सरदेशमुखी एकत्रित करने का कार्य लौटते समय बाजीराव अपने इन विश्वस्त सेनानायकों पर सौंप गये थे। दूसरी बार जब पेशवा उत्तर मे आया तो मालवा विजय करने के बाद उसने यह प्रदेश अपने सरदारो को व्यवस्था एवं सैनिक खर्च (सरंजामी प्रथा) के लिए सौंप दिया।

मल्हारराव ने राजपूतो, जाटों आदि से युद्ध कर अपने प्रभाव क्षेत्र को बढा लिया था। पानीपत के तृतीय युद्ध मे भी यह सरदार उपस्थित था। जब पेशवा की शक्ति कम होने लगी तो ये सभी सरदार स्वतन्त्र शासक हो गये। वैसे पेशवा को ये काफी समय तक अपना नेता मानते रहे। दुर्भाग्यवश सिंधिया और होल्कर के आपसी वैमनस्य ने मराठा शक्ति को काफी नुकसान पहुँचाया और इसीके कारण खंडेराव जाटों से युद्ध करते हुए मारे गये।

मल्हारराव के बाद उनकी पुत्रवधु अहिल्याबाई होल्कर (१७६७-६५) गद्दी पर बैठी। देश ने एक बार फिर रामराज्य को साकार होते हुए देखा। जनता ने सुख, शान्ति एवं समृद्धि के वातावरण में सांस ली। अहिल्याबाई ने अपने उदार शासन एवं धार्मिक वातावरण से इन्दौर राज्य का नाम देश के कोने-कोने में पहुँचा दिया। हिन्दुओं के किसी भी तीर्थ स्थान पर यात्री आज भी उनके बनवाये मन्दिरों, घाटों एवं धर्मशालाओं की सराहना किये बिना नहीं रहेगा।

इस राज्य वंश का दूसरा प्रतापी राजा जसवन्तराव होल्कर था (१७६८-१८११)। उसने राज्य की सीमाओं को बढाया, पर साथ ही मराठों की आपसी फूट ने उसे अपने साथियों से ही लडने पर विवश कर दिया। जहाँ पेशवा और सिंधिया की सम्मिलित शक्ति को हरा कर उसने अपनी एवं होल्कर राज्य की शक्ति का परिचय दिया वहां साथ ही मराठा संघ की प्रतिष्ठा को समाप्त कर दिया। शीघ्र ही पेशवा, सिंधिया और होल्कर स्वयं अंग्रेज़ों से सन्धि करने पर विवश हो गये। मराठों की आपसी फूट एवं अदूरदर्शिता ने उन्हें पश्चिमी शक्ति के आधीन कर दिया। फिर भी होल्कर द्वारा की गई सन्धि सब से अधिक सन्मानपूर्ण थी।

मल्हारराव द्वितीय (१८११-३३) अपने राज्यकाल मे होल्कर राज्य की राजधानी को महेश्वर (माहिष्मती) से इन्दौर ले आये। राज्य की प्रतिष्ठा के अनुकूल राजधानी बनाने के प्रयत्न लगातार जारी रहे और आज इन्दौर मध्य भारत का सर्वश्रेष्ठ स्थान है और भारतवर्ष में उसका अपना एक विशेष स्थान है।

तुकोजीराव द्वितीय (१८४४-८६) के समय मे इस राज्य ने अपनी उदारता का परिचय दिया और पहिला समाचारपत्र मालवा मे 'मालवा अखबार' के नाम से इन्दौर मे निकाला गया। उस समय की स्थिति को देखते हुए यह काफी प्रगतिशील कार्य था। राज्य मे और भी जनहित के कई कार्य इस समय किये गये।

महाराजा शिवाजीराव ने सन् १८८६ मे राज्य की बागडोर अपने हाथ मे ली और गद्दी पर बैठते ही राहदारी महसूल, जो जगह-जगह वसूल किया जाता था और जिससे व्यापार की उन्नति में बाधा पडती थी, उठा दिया और इससे व्यापार की उन्नति होने लगी। राज्य मे मोधिया नामक जाति के लोग चोर-चकारी तथा डाकेजनी से जनता को पीडित करते थे। सन् १८८८ मे इन लोगों को बसने और खेती करने के लिए जमीन तथा तकावी एवं अन्य प्रकार की सुविधाए देकर उन्हे राज्य का सफल नागरिक बनाया। तातिया भील नामक मशहूर डाकू को भी पकडवाया तथा उसे उचित दण्ड दिया गया।

सामाजिक सुधारो के अतिरिक्त आपका ध्यान शैक्षणिक सुधारों की तरफ भी आकर्षित हुआ तथा उसके फलस्वरूप आपने सन् १८९१ मे मध्य भारत में पहिला महाविद्यालय (होल्कर कॉलिज) खोला जिसमें बी० ए० तक की शिक्षा दी जाती थी।

गरीब जनता की सहायता करना आपके जीवन का एक मुख्य अंग था। जहां कहीं भी इन्हें सेवा करने का अवसर मिला आपने अपना खजाना जनता के लिए खोल दिया। १९०१ में जनता की चिकित्सा के लिए महाराजा तुकोजीराव हास्पिटल नाम का एक अस्पताल शहर के मध्य भाग में खोला।

सवाई श्री तुकोजीराव तृतीय (१९११-१९२६) तो वर्तमान युग के योग्य एवं न्यायप्रिय शासक रहे हैं। इन्होने अपने उदार गुणों से प्रजा के हृदयमन्दिर में प्रतिष्ठा पाई थी। अपनी समस्त जनता के हृदय को शिक्षा के आलोक से आलोकित करने के लिये प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क कर दी। हिन्दु विश्व-विद्यालय को पाच लाख रुपये की सहायता देकर आपने अपने शिक्षाप्रेम का उत्कृष्ट परिचय दिया।

महाराजा यशवंतराव अत्यन्त प्रगतिशील नरेश रहे हैं। प्रारम्भ से ही जनता के विचारों से इनकी सहानुभूति रही है। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के एक उदार समर्थक के रूप मे आप देश विदेश मे प्रख्यात हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जिस निस्पृह भावना के साथ आपने उदारतापूर्वक सम्पूर्ण सत्ता प्रजा को सौंप दी थी, वह एक ऐतिहासिक त्याग है। गंदी राजनीति से दूर आज यह उदार व्यक्ति विदेश में अपना स्वास्थ्य सुधार रहा है।

राजाओ की उदारता एवं प्रगतिशीलता से ही इतिहास बनता और बिगडता नहीं है। इन्दौर की जनता ने सदा प्रगतिशीलता का साथ दिया है। मुगलो के शासन के विरुद्ध रावनन्दराल मंडलोई और उनके साथियो ने बाजीराव का पक्ष ग्रहण किया था। भारतीय स्वाधीनता के सशस्त्र संग्राम के समय चाहे तत्का-लीन राजाओं ने अंग्रेजो का साथ दिया हो, जनता और सेना ने स्वतन्त्रता के सैनिकों का साथ दिया और इस स्वतन्त्रताप्रेम का यथासम्भव मूल्य चुकाया। राष्ट्रीय कांग्रेस के आन्दोलनो मे भी इस रियासत की जनता ब्रिटिश प्रांतो की जनता के कन्धो से कन्धा अडा कर लडती रही। राजा महाराजा किसी की गुट्टबाजी मे पडे हो, जनता ने सदा उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया। मध्यभारत मे विलीनीकरण इन्दौर की जनता तथा नरेश के त्याग और नेताओ की अदूरदर्शिता की एक कहानी है।

इन्दौर रियासतों मे अपना एक विशेष स्थान रखती है। उद्योग, व्यवसाय, शिक्षा एवं शैक्षणिक संस्थाएं, जनहितकारी कार्य एव प्रथम श्रेणी की शासनव्यवस्था की प्रशंसा करना तो व्यर्थ सा ही होगा।

आज मध्यभारत के निर्माण के बाद इस विषय की अधिक चर्चा करना विशेष शोभा नहीं देता, किन्तु यहाँ हमारा अभिप्राय व्यर्थ टीका करना या आपसी कटुता को बढाने का नहीं, किन्तु वस्तुस्थिति को ठीक तरह से देखने मात्र का है। जब कई स्तर की चीजें आपस मे मिलती हैं तो एक नया स्तर तैयार होता है, पर प्रयत्न यह होना चाहिए कि यदि अन्य स्तर ऊपर न उठ सके तो उठे हुए शासकीय स्तर नीचे न गिरें।

इन्दौर नगर का अपना व्यावसायिक महत्व है। कपास उत्पन्न करने वाली, काली मिट्टी वाली भूमि के होने के कारण यहाँ वस्त्रनिर्माण का कार्य अधिक स्थानीय हो गया है। टेक्सटाइल (वस्त्र-निर्माण) उद्योग के क्षेत्र मे इन्दौर का भारत मे अपना विशेष स्थान है। श्रम और पूंजी के इस सघर्षात्मक युग मे इन्दौर की पूंजी ने अपने आपको काफी उदार सिद्ध किया है। यहाँ के श्रम-संगठन भी भारत मे अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। कोई भी मज़दूरो मे काम करने वाला राजनैतिक दल इन्दौर की एवं यहाँ के संगठन-प्रिय लड़ाकू मज़दूरों की उपेक्षा नही कर सका है। साथ ही अन्य व्यवसाय भी नगर मे काफी पनपे हैं। समस्त भारत में बम्बई के बाद इसी स्थान पर चहल-पहल एवं जीवन रहता है।

शिक्षा के क्षेत्र मे दो प्रथम श्रेणी के महाविद्यालय, कई टेकनीकल शिक्षा-केन्द्र, विद्यालय, प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाएं हैं। यदि राजनैतिक उलझने नहीं होती, तो इस स्थान मे विश्वविद्यालय का निर्माण काफी समय पूर्व ही हो चुका होता। यह देश का दुर्भाग्य है कि ऐसे जन-कल्याण के प्रश्न भी राजनैतिक नेताओं की प्रतिस्पर्धा के चक्कर मे पडकर अपना महत्व खो सा बैठते है।

इन्दौर की नगरसेविका का इतिहास बडा पुराना किन्तु गौरवपूर्ण है। जनसंख्या के अचानक बढने आदि के बाद भी व्यवस्था की सराहना करनी ही पड़ती है।

इन्दौर का दुर्भाग्य है कि उसे किसी अच्छी नदी का किनारा प्राप्त न हो सका, फिर भी इन्दौर प्राकृतिक एवं अन्य दर्शनीय स्थानों से रहित नहीं रहा है। पीपल्या पाला, पातलपानी, काला कुंड, ओंकारेश्वर, धरमटेकरी, यशवंत सागर, लाल बाग, माणिक बाग तथा इन्द्र भवन दर्शनीय स्थान हैं।

इन्दौर अपनी परम्परा को संभाले हुए प्रगति करता जा रहा है। जलवायु एवं प्रान्त मे स्थान इसे विरोधी वातावरण मे भी ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाये हुए हैं। जब निष्पक्ष जाँच समिति निरीक्षण करेगी, तो इस स्थान का मध्यभारत की राजधानी बनना अवश्यम्भावी है। पर राजधानी का प्रश्न इस नगर के महत्व को नष्ट नहीं कर सकता। वह चाहे जहाँ रहे, इन्दौर की आवश्यकताएं यदि पूरी हो गईं और एक विश्व-विद्यालय, एक उच्च न्यायालय एवं एक कारपोरेशन बन गए तो यह नगर लगातार उन्नति करता रहेगा।

तुम धरा के पुण्य थे साकार!

श्री हुकुमचन्द जी बुखारिया "तन्मय"

सिन्धु-सा व्यक्तित्व ले गम्भीर अपने साथ,
जब कि तुम जग पर उठाते थे वरद निज हाथ,
लोग कहते हैं, झुकाता था क्षितिज तव माथ,
मुक्त होते थे सभी को मुक्ति के सौ द्वार।
तुम धरा के पुण्य थे साकार॥

मार्ग में चलते बनाते शूल को तुम फूल,
चन्द्रमा सिर पर चढ़ा लेता चरण की धूल,
मेनका-सी पाँव पर आ लोट जाती भूल,
भार उसको भी समझते किन्तु तुम, सुकुमार।
तुम धरा के पुण्य थे साकार॥

काँपते थे पाप, माया, मोह मद के धाम,
अश्रु भर लाता पलक में दूर कचन-काम,
तुम विनाशों की निशा मे प्रात—पूर्ण विराम,
मिल गया था अधर मानव को सबल आधार।
तुम धरा के पुण्य थे साकार॥

पर अपना अधिकार न भूलो

प्रो० श्रीचन्द जैन एम० ए०, रीवा

तन न भी भूलो, मन भी भूलो, पर अपना अधिकार न भूलो॥
सागर का सन्तप्त हृदय है।
सम्मुख आज विराट् प्रलय है।
पर भावुक नाविक तुम अपनी नौका का पतवार न भूलो॥
वैभव के महलों के वासी।
जीवन-संचित-सुख अभिलाषी।
पर मानव हो, मानवता का कलुषित हाहाकार न भूलो॥
जन-गण के हे भाग्य विधाता!
शक्ति प्राप्त नर के निर्माता!
विश्व-व्याप्त उस व्यग्र काल का तुम भी कठिन कुठार न भूलो॥

ADVENT OF JAINISM TO KARNATAKA

Syt. M. Gorind Pai Manjeshwar

In the Brihat-Katha-Kosa of Harishena composed in 931 A. C., which with the exception of the Kannada prose-work Vaddaradhane, is the earliest available work dealing with the advent of Jainism into Southern India, that story is given as follows —(Epigraphia Carnatica (E C) II · Sravanabelgola Transcriptions, Introductions, p 37)

Sometime after the Nirvana of the final Tirthanakara, Sri Mahavira, Govardhanacharya, the fourth Siruta Kevali ordained Bhadrabahu of Kotipura in Paundra-Vardhana country (*i e* , Northern Bengal) as his disciple, and he became the fifth Sruta-kavali after the decease of his preceptor He then led the community of Jaina monks from place to place till at last they came to Ujjayini where Chandragupta, a Jaina layman was ruling as king, and they settled for a while Bhadrabahu, who could read omens foresaw that a severe famine of 12 years was impending over the land, and seeing that his own end was fast approaching, he told them that he would remain where he was, and directed the community to proceed to the South of India, where the famine had not penetrated. Then Chandragupta king of Ujjayini laid aside his crown and sceptre, took monastic orders from Bhadrabahu and assuming the name of Visakhacharya led the community at the bidding of Bharabahu as far South as Prennata in the Karnataka region Subsequently Bhaddrabahu fasted unto death as religious observance, and absorbed in meditation he laid down his life in that part of Ujjayini known as Bhadrapada When the famine in that part was over, Visakhacharya, *i e* , the former king Chandragupta, returned from the south and settled with the community in Madhya-desa, *i e* , middle country Thus narrating the story of Bhadrabahu the story also of the advent of Jainism to Karnataka and South India has been related incidentally.

The versions of the same story as is recounted in three other much later works, *viz* , (1) The Sanskrit poem Bhadrabahu Charita of Ratnanandi (17th Century), (2) the Kannada poem Munivanis' abhyudaya of Chidananda (17th Century) and (3) the Kannada prose work Rajavatika the 1838 No doubt, tally fairly well with the above version of Harishena, but there are some marked differences, of which, for our purpose however, these two are of vital importance, *viz* , (1) in these versions Bhadrabahu dies in Karnataka or on the way to it, while in Harishena he dies in Ujjayini itself, and according to Harishena king Chandragupta and Visakhacharya are one and the same person whereas according to these versions they are entirely two different persons, of whom Visakhacharya parts from Bhadrabahu and in obedience to his behest leads to the community of monks from Karnataka farther South to Chola and Pandya countries, and returns thence when the famine was over, while Chandragupta, however, never parted from Bhadrabahu who foreseeing that his own death would occur soon, remained just where he was, and tending him sedutiously till his death, worshipped his foot-marks in stone thereafter until he himself passed away in the same place.

In inscription No 31 of Sravanabelgola of about 650 A C. Bhadrabahu and the great sage Chandragupta as well as Belgola have been mentioned, and in Nos 147 and 148 of Seringapatam, both of about 900 A C, Bhadrabahu and the 'Great Sage' Chandragupta are mentioned as well as the holy place Belgola by also its ancient name Kalbappu 'which became so conspicuous in the world (जगल्लामायिन) by imprinted by their feet (भद्रबाहुचन्द्रगुप्तमुनियति चरणमुद्रांकित)and (चरणलाञ्छलानाञ्चित) Thus from these three inscriptions, however, which are evidently anterior to Harishsna's Brihat-Katha-Kosa, it appears that both Bhadrabahu and Chandragupta did actually visit Karnataka and resided at Kalbappu, which lateron came to be known as Belgola (which is a Kannada word mearing "white tank") and yet later as Sravanabelagola (meaning "white tank of Jaina ascetics")

Several eminent scholars have so far identified the Chandragupta of the Bhadrabahu story who ruled at Ujjain, with his namesake the emperor Chandragupta, founder of the Maurya dynasty, who is known beyond doubt to have ruled at Pathpura But the validity of this identification however cannot be admitted For (1) while in the aforecited three inscriptions (which are anterior to Harishena), Bhadrabahu and Chandragupta are said to have come together to Sravanabelgola and stayed there, the latter has not been spoken of as a king before he became 'a great sage' Besides in yet three other and later inscriptions in the same locality, which also make mention of Bhadrabahu and Chandragupta, *viz* (a) No 67 of 1129 A C, (b) No 64 of 1163 A C and (c) No 25 of 1432 A C Nothing more is said of Chandragupta than simply that he was a disciple of Bhadrabahu (2) Chandragupta, who overthrew the last of the Nandas and ascended throne as the first emperor of the Maurya dyrasty, is never known to have ruled anywhere before then, and never at any rate in Ujjayini (3) In the Mahayana Budhistic work entitled Arya-Maujusra Mulakalpa which is known to have been translated into the Tibetan language in about 1060 A C and therefore would seem to have been composed in about 800 A C are mentioned in its 53rd chapter successive empires that had their being from before the time of Buddha till about 750-A C In the same chapter the last moments of the Maurya emperor Chandragupta have been described so graphically as follows —

नन्दोऽपि नृपतिः श्रीमां (न्) पूर्वकर्मापराधतः ।
विरागयामास मन्त्रीणां (नरान्) नगरे पाटलाह्वये ॥ ४२४ ॥
तस्य राज्ञोऽपर ख्यात. च (श्च) न्द्रगुप्तो भविष्यति ॥ ४३६ ॥
महायो (भो) गी सत्यसन्धश्च (न्धो) धर्मात्मा स महीपति ॥ ४४० ॥
अकल्याणमित्रमागम्य कृतं प्राणिवधं बहु ।
तेन कर्मविपाकेन विपस्फोटैः स मूर्छितः ॥ ४४१ ॥
अर्धरात्रे रुदित्वासौ पुत्रं स्थापयेद् (पुत्रमस्थापयद्) भुवि ।
बिन्दुसारसमाख्यातं बाल (च ?) दुष्ट मन्त्रिणम् ॥ ४४२ ॥
ततोऽसौ चन्द्रगुप्तस्य (श्च) च्युतः कालगतो भुवि ।
प्रेतलोकं तदा लेभे गतिं मानुषवर्जिताम् ॥ ४४२ ॥

From this it appears that Chandragupta became king of Patala-nagara, *i e*, Patalipura after Nanda At the time of his death Chandragupta was afflicted with small pox carbuncle, small pox and fainting on account of it (and losing all hopes of recovery), he placed his son Bindusara on the throne with tears at midnight Con-

sequently this Chandragupta must have died in harness, so say, at Patlipura while he was yet a king there And since he has been spoken of here as the immediate successor of king Nanda on the throne of Patalipura, and the father as well of Bindusara who succeeded him, he could be none other than the emperor Chandragupta, the founder of Maurya dynasty. It is thus quite evident that this Chandragupta who died at Patalipura when he was yet on its throne, is quite another individual than the Chandragupta, the king of Ujjayini, who was ordained by Bhadrabahu, whereafter at his instance he went to Karnataka with the community whence he returned to the Middle Country (according to Harishena's version of the Bhadrabahu story) or whereafter he travelled to Karnataka in his master's company where he died after his master (according to the aforesaid versions of the same story)

There is yet another work, a collection of 19 Jaina stories in Kannada prose, which was recently unearthed and has been published a couple of years ago by the Kannada Sahitya Parishat, Bangalore , It is called Vaddaradhane, which name on the face of it is the Prakrit form of Sanskrit, Brihadaradhana For various reasons I have elsewhere (In the last of the three Kannada lectures which I delivered in Dharwar, (1940) · Three Lectures (Kannada pp 111-115 , Kannada Sahitya Parishat Patrike (Kannada), XXXVI, pp 1-21 and 108-144) shown that this Kannada work is a translation of some yet older Prakrit work of the same name, and the Kannada translation cannot be of a later date than the 6th century A C. The 6th of its 19 stories with the story of Bhadrabahu Bhattara which would thus seem to contain the earliest and therefore a more authentic version of that historical account than any of the aforesaid four narratives, and it is as follows —

The fourth Sruta Kevali (one who possesses complete knowledge of the Jaina scriptures). Govardhanacharya ordained Bhadrabahu of Kanndininagara in the Purvavardhana country as his successor, and the latter became the fifth Srutkevali after the death of his preceptor. Now a Brahmana named Chanakya, whom king Nanda of Patalipura had openly insulted, overthrew him, and placed Chandragupta upon his throne Chandragupta was succeeded by his son Bindusara, and the latter by his son Ashoka. After the death of Ashoka, when his grandson Samprati Chandragupta was ruling as king and living happily at Ujjayini, Bhadrabahu, who was going from place to place with large community of Jaina monks, arrived in Ujjayini. Samprati Chandragupta used to visit him and learn the right Dharam from him and performed acts of religious character under his guidance Once he told the sage of the 16 evil dreams he had dreamt, when forthwith Bhadrabahu read them and warned the king that a severe famine of 12 years duration was imminent Samprati Chandragupta at once abdicated his throne and placed his son upon it , and getting himself ordained by Bhadrabahu, he became a Jaina ascetic as Chandragupta muni Then Bhadrabahu advised his followers to leave the place at once when all of them in his company and that of Chandragupta muni took their way to Southern India When in course of their journey they had reached a place called Kalbappu, which is now known as Sravanabelgola situated in Karnataka country Bhadrabahu foresaw that he had almost reached the limit of his life and sent the community to the Tamil country in the custody of Visakhacharya, who was his seniormost disciple, and a Dasapurvadhari (one who knows the ten Purva of the twelfth Anga) as well Though at the same time the master repeatedly urged Samprati Chandragupta too to go with them, he would not comply but chose to remain with his master and zealously tended him until he died soon thereafter, whereupon he devoutly worshipped the tomb in which his master lay When Chandragupta *muni* was thus engaged in religious austerities, the famine passed away, and the community which had gone to the Tamil country in charge of Visakhacharya returned

to Kalbappu where they met Chandragupta *muni* and adoring the tomb of Bhadrabahu, they proceeded northwards to the Middle Country (Madhydesa) Chandragupta muni however engaged himself in severer and more severe forms of penance, and entered into samadhi, *i e*, extinction of life, by means of asceticism

Thus from this version of the story of Bhadrabahu, undoubtedly the earliest of all its versions, it is once for all certain that the Chandragupta who accompanied Bhadrabahu to Karnataka and the Chandragupta who was the founder of the Maurya dynasty are entirely two different persons, of whom the former who was known by his full name as Samprati Chandragupta, king of Ujjain, was the grandson of Asoka, who was the grandgrandson of the first Maurya emperor Chandragupta, or in other words the former was the greatgrandson of his latter namesake They are thus never one and the same, and the mistaken identity is due to the fact that both of them bore the same name Chandragupta, they both sprang from the same Maurya dynasty, and they lived in the same country within not many years of each other

Now from the history of that period it is known that after the death of Asoka in 239-238 B C his empire was divided between his two grandsons, of whom Dasaratha who succeded him on his throne of Patlipura became king of the eastern half while another grandson who is known to history as Samprati and seems perhaps to have been already ruling under his grandfather as his deputy or viceroy in Ujjayini, became king of the western half with its seat of government at Ujjayini itself It is further known (Cambridge History of India, Vol 1, P 166, Early History of India, pp 202-203, Oxford History of India, p 117, Vincent Smith Asoka p 226) that Samprati was as zealous a propagator of Jainism as his grandfather Asoka was zealous in the propagation of Budhism Needless therefore to say that this historical Samprati and the Samprati Chandragupta of the Bhadrabahu story in the Vaddardhane are quite identical In conformity to the custom of naming one's children and grandsons after one's ancestors, Asoka in naming his grandson after his grandfather Chandragupta, the founder of the Maurya dynasty, would seem to have called him Samprati Chandragupta, meaning *present* Chandragupta (for the Sanskrit word सम्प्रति means present) and that compound name would naturally be shortended in common parlance into its first component Samprati by which name he might well be believed to have been known to the people at large and therefore it is in that form that history would hand his name down to posterity

It goes without saying that Sampati, or Sampati, Chandragupta to call him by his full name, who is said to have been ruling at Ujjayini as the Viceroy of Asoka, became independent king of Ujjayini at the death of his grandfather in 239 238 B C It is thus some years after 238 B C that he met Bhadrabahu when he soon laid aside his crown and sceptre, and being initiated into the ascetic order by him he proceeded into the community in his master's company to Karnataka, which they would reach in about 2 or 3 years' time This event therefore may well be assigned to about 230 B C or yet a few years later, so that there cannot be any doubt that Jainism entered Karnataka as well as South India in the last quarter of the 3rd Century B C.

-

[We regret that we do not share the views of Shri G Pai that Samprati Chandra Gupta was the disciple of the great Jain Saint Srutkevalin Bhadrabahu Of course, Emperor Chandra Gupta I must have been Bhadrabahu's direct disciple According to Jain tradition, Bhadrabahu flourished near about 365 years before

महावीर दिगम्बर जैन इन्टर कॉलेज आगरा की ओर से चित्रित भावचित्र।

Christ, therefore first Emperor Chandra Gupta must have embraced asceticism before the demise of Bhadrabahu in 365 B. C This Chandra Gupta was the last Emperor, who had adopted the life of a nude Jain Monk This fact comes to light by the following verse of one the most ancient Jain Prakrit literary composition Tiloyapannatti by Yadivasaha —

मउडधरेसु चरिमो जिण दिक्खं धरदि चंदगुत्तो य।
तत्तो मउडधरा दु पव्वज्जं णेव गिण्हंति॥ ४-१४८१

It appears that Chandra Gupta Maurya's great grand-son Samprati Chandra Gupta, who was the reputed propagator of Jainism must have brought into people's mind the remarkable memory of the great emperor Chandra Gupta, therefore he was dubbed as Samprati Chandra Gupta indicating thereby that he was as good and great devotee of Jainism as the late ancestor Chandra Gupta

We are of opinion that the devotees of Jain faith must have existed in the South long before, hence on the eve of the impending terrible famine Bhadrabahu admonished the disciples of his Samgha to proceed towards South, where they will be hospitably received by their coreligionists in accordance with their sacred religious injunctions.

Naturally, therefore, Jainism must have been a living religion of the masses in the South at the time of the Jain Acharya Bhadrabahu. —Editor]

MAHAVIRA AND AHIMSA

Prof. Tan Yun Shan, Director Vishva Bharati Cheena Bhavan

Ahimsa is the royal road to peace and Lord Mahavira was the first and foremost pioneer of this road in this world I say 'Royal Road' because it is now the one and only road opened to man kind for ensuring peace and contentment in the present world torn with growing hostility and uncontrollable violence

Ahimsa is the message not of Jainism alone, but also of other great Indian and Chinese religions such as Buddhism, Hinduism, Taoism, and Confucianism In other words, I should say It is the element and essence of our Sino-Indian culture, it is also the kernel and nucleous of our Sino Indian life

It is my firm conviction and also my humble mission, that we Chinese and Indians professing the most ancient cultures and the greatest civilizations should culturally unite and promote the common cause of world peace entirely based on Ahimsa By promoting Ahimsa, we shall lead the world to real and permanent peace, love, harmony and happiness despite the encircling gloom of war clouds that surround our existence I reiterate that Ahimsa is the Royal Road to Peace and let humanity march through it towards the ultimate goal of inter-national peace and brotherhood

JAINISM AND MODERN THOUGHT

Prof. A. Chakravarty M.A. I.E.S. (Rtd.) Madras

The more one studies Jainism and Jaina Philosophy one is struck with extraordinarily modern ideas contemplated and preached thousands of years ago The most striking aspect of Modern Thought is its scientific approach. No modern thinker will ever accept any statement on mere authority. Everything must be subjected to vigorous examination according to cannons of truth before being accepted as valid. It is this intellectual attitude that is the fundamental basis of Jaina Thought Jaina thinkers from the very beginning insist on this aspect The basis of Tatwa Jnana or knowledge of reality must be this Any thing which cannot produce acceptable credentials must not be accepted as philosophically and religiously valid and binding It was this attitude that led them to reject even the authorities of Vedas which served as a paramount criterion of truth for the other Indian Systems of Thought Accepting this fundamental rational principle the Jaina Rishis emphasise the importance of getting rid of popular superstitions which are accepted by ordinary people though they are not based upon rational foundation These superstitions are generally of three kinds.—Loka Muda, Deva Muda, and Pashandi Muda The first refers to the popular superstition that bathing in river, going round a tree or a hill will ultimately benefit the worshipper. The second Deva Muda refers to the practice of offering animal sacrifices to Gods and Goddesses who are supposed to be controlling epidemic diseases like cholera, small pox, etc. Instead of discovering the true cause of these epidemic diseases and eradicating them in the proper way, indulging in offering sacrifice to Goddesses is considered to be meaningless superstition which ought to be got rid off before true religious and spiritual development is ensured The third Pashandi Muda refers to the practice of accepting the advice of false ascetics who pose as great religious teachers and deceive the ignorant and illiterate masses and trade on their credulity for their own benefit It is not necessary to emphasise the importance of this freedom from superstition in order to adopt a correct religious and philosophical attitude To have an accurate study of the nature of man the mind of the student must first be cleared of such superstitions idola as Backon points out as the necessary precondition of scientific approach

Jainism and Human Personality : Another important factor which ought to be emphasised in connection with this is the sanctity of human personality. Jaina thinkers placed man in the highest pedestal among the several samsaric jivas Even the Devas and Devendras are not considered to be on a par with man. To obtain spiritual liberation or Moksha even the Deva must be born as a man because as a Deva or Devendra he cannot enter into the sanctum sanctorum of spiritual perfection This aspect deserves to be emphasised at present because the ideal of modern thought recognises the importance of human personality It was Immanual Kant of Germany who proclaimed the undeniable truth that a man is an end in himself and should not be used as a means to some ulterior purposes. Though this principle is

not accepted by the Fascist, Dictators and the Communist thinkers in modern Europe, still it cannot be denied that it forms the core of Modern Thought which recognises the value of individual freedom and sanctity of human personality, an ideal which was recognised some thousands of years ago by the Jaina thinkers in our land Any social reorganisation if it is to be satisfactory must be based upon this fundamental principle of individual freedom and sanctity and inviolability of human personality

Jainism and Ahimsa The principle of Ahimsa is made popular both in India and outside by the activities of Mahatma Gandhi Jainism emphasises and in fact is based upon the principle of Ahimsa as the highest spiritual idea All living creatures are considered to be one in this aspect Universal Love must be the basis of spiritual life and development No one can afford to witness the suffering of another being man or animal without trying to remove the cause of suffering Hence any one on the path of spiritual development cannot think of injuring other living being The very thought of inflicting suffering on the others is considered to be unworthy of human being It is far better to suffer than to inflict suffering on others. It is this intrinsic principle of Ahimsa that is illustrated by many a Jaina Rishis who when molested by ignorant masses merely smiled at their ignorance and pitied them, instead of resenting their evil conduct. Any one who is acquainted with Jaina literature will come across instances like this This attitude of Universal Love and mercy towards all being is best illustrated in the career of the Tirthankaras who through unbounded mercy and love towards all living beings even after obtaining spiritual perfection remained here as mendicants preaching to the masses this message of mercy and universal love to all beings This ideal of Dharmaprabhavana is associated with the great Lord of Jainism who revealed the religious path, must be considered as an attempt to establish an earthly paradise where peace and harmony prevail among men and where suffering and misery will be eliminated If properly understood and interpreted correctly this would emphasise the importance of social democracy as the best form of political machinery. In this respect it must be remembered that the last of the Tirthankaras Lord Mahavira though born of a royal family was associated with the republic of Vaisali No wonder therefore that this democratic ideal as basis of social organisation has been emphasised by all later writers and Thinkers belonging to Jaina Thought. The ideal of otherworldliness with the necessary corrolary of running away from the concrete world is not recognised as a useful ideal of life The Jaina ideal of true swarajya, the freedom of sovereignty of human personality must be won not by running away from the troubles of environment but by conquering the environment and asserting the spiritual sovereignty.

Jainism and Economic Ideal The world at present is divided into two hostile camps from the point of view of economic ideal—Capitalism and Communism one championed by America and the other championed by Russia In spite of rivalry between the two groups a careful student will be able to recognise the underlying identity of economic ideal Both the groups overemphasise the importance of economic ideal to such an extent that they lost all contact with spiritual values The economic value is the only dominating ideal presented to the modern man in Western civilisation Thus obscuring the eternal spiritual values by the overemphasis of economic ideals led to two disastrous world wars and is probably leading to a third world armageddon Expecting such evil consequences by concentration of wealth, individual and national, Jainism prescribed an important remedy as a means of avoiding evil One of the five Vratas prescribed to the householder and ascetic, refers to this principle. In the case of an ascetic it is enjoined that he should

not possess anything as his own because he is expected to disown his own body which is to be used only as a means of obtaining spiritual freedom. No wonder that the great religious leaders of Jainism who were of royal births set aside all their crown and sceptre and cast away all their robes and ornaments and went into the forests as mendicants to perform tapas because they fully recognise that slavery to the Mammon cannot co exist with the ideal of freedom. But we are concerned with the householder which is the main stay of Society Even in his case it is enjoined that he should limit his possession. This is the fifth of the five vratas—Parimita Parigraha. Every householder according to his status in society is expected to observe this vow and take as his share a fraction of what accrues to him from his profession either as an agriculturist or as a merchant. What accrues to him beyond this limit must be considered not as his own but as belonging to the society as a whole. The portion must be set aside for the welfare of the society If this principle is strictly observed in a particular society that society will avoid the dangerous accumulation of wealth in a few hands leading to the undesirable spread of poverty, want and misery in another part of the society. There will be voluntary adjustment of wealth, in society as a whole guaranteeing the welfare and happiness of all There will be no chance of conflict between one economic ideal and another economic ideal To be an ideal society so organised to guarantee the welfare and happiness of all, where there will be no misery or poverty, where peace will reign by creating goodwill among all men, such social society is emphasised by the Jaina teachers who prescribed this vow as to limit the personal property of one's own as a means of avoiding the necessary conflict and misery in society. This ideal deserves to be spread all over the world because it appears to be the only means of liquidating the conflict between the two ideologies of Capitalism and Communism and promote universal peace among the nations of the World.

payment to them of crores of rupees each year as allowances is compatible with principles of social justice. Yet, we are in a transition period, and as such we must stomach this proposition, though it militates against all canons of the Welfare State.

The attempted abolition of *zamindari* all over the country is an equally impressive step towords the realisation of the Welfare State The recent judgment of the Supreme Court declaring *ultra vires* of the Constitution the attempted abolition of *zamindari* in certain parts of the country does certainly create a constitutional crisis, which is now sought to be met by an amendment of the Constitution itself. Whatever the details of this controversy, it is clear that the abolition of middlemen between the State and the cultivating *kisan*, and the conferment of titledeeds to the *kisan* for the land he tills, eliminate the structure of economy which we are accustomed to for thousands of years, thus aboiishing the principle of the "unearned increment." In other words, hereditary rights to income not earned is being sought to be abolished in accordance with principles of social justice Yet, there are numerous people in this country who would claim that the payment of compensation to the *zamindars* is reprehensible, and that outright expropriation is what is wanted

Barring these two achievements, it is difficult to state whether the Government of the Indian Republic, either at the Centre or in the States, has done anything more towards the creation of the principle of the Welfare State Prohibition is a mighty though futile experiment, seeking to create a social atmosphere in the land, at the cost of nearly Rs. 100 crores a year. But prohibition is not unaccompanied by increases of taxation, which cut into the real incomes of the people. To take an example. Madras State is in the forefront of this experiment of total Prohibition. Yet, what are the economic consequences of this experiment ? An excise revenue of Rs. 18 crores has been surrendered, and in order to make it up a sales tax, covering almost every conceivable type of transaction, has been imposed to bring in Rs 22 crores into the coffers of the State concerned Actually, the taxation of Madras State has been increased five-fold during the course of the past five years.

Thus, what has been given away to the people with one hand is being withdrawn with another. It is alright for the people to remember the high-sounding principles of the Preamble of the Constitution, but empty words cannot be expected to do the trick Everywhere in the world there is an attempt to enlarge the sectors of Government intervention, in order that the Welfare State is ushered into existence. In our case, the position is specifically different. Thus, last year (1950-51), the Government gave relief to Industries and Commerce, through the reduction of taxation to the extent of Rs 20 crores in a year This year, in contrast, Government took from the commonalty of the people some Rs. 50 crores in a year (Rs 30 crores from increase of railway fares and Rs. 20 crores in additional taxation). And yet, what is the position ? The "Crisis in confidence" which led to a strike of capital has not been resolved, the Government is unable to borrow from the public according to traditional means, and there is all-round a sense of economic unbalance, insecurity and lack of faith in the objectives laid down by the Government in the field of high policy. This is to be deplored, for our infant Republic must be nurse with care and justice.

According to my way of thinking, the following are the most urgent tasks to be taken in hand by the Government of India if we are to have a Welfare State in our midst :—

(i) The imposition of death duties. A Bill has been drafted, but it does not seem to come for disposal by Parliament. Death duties have been there in England, even before the present Labour Government has assumed office.

(ii) The imposition of a capital levy, including house properties and other fixed assets of the community Without this it is impossible for the Government to hope to obtain the gigantic funds needed for reconstruction and development in terms of the principle of social justice

(iii) The implementation of the principle of labour-capital co-partnership, without which the existing industrial and social unrest in the land cannot be tackled. I was impressed by hearing Shri Sri Ram of New Delhi pleading the other day, in the annual session of the Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry, for the recognition of this principle in a definite manner.

(iv) Without going into the theoretical justification of the principle "production for use and not for profit", it must forthwith be recognised that talking of a Welfare State becomes meaningless, in terms of the Government's principle of "mixed economy", under which there is tremendous confusion of the targets of nationalisation and of the private sector of our national economy.

Provisions of conditions of full employment, through the energetic use of the fiscal and tariff instruments by the Government. At the moment, there is not only chronic unemployment and under-employment among various sections of the community, but also of dangerous unbalance in our economic system, which, if not tackled without loss of time, would lead us to chaos.

(v) Like what is done in the Scandinavian countries, Government should publish what is called an annual "Social Audit", giving a clear-cut statement of national income and expenditure in the sphere of the common man.

The concept of the Welfare State still requires time and effort for getting popularised in our midst A country which is notoriously victim to the theory of *karma* and the caste system cannot develop, without official imposition, the principles of social justice and welfare Indeed, the greatest enemy of the Welfare State in India is the social and economic system which has been in existence for thousands of years. Revolutions have brought about the Welfare State, but with enormous destruction and bloodshed like in the case of the U S S R. There is also the possibility for the creation of a Welfare State through evolution, like in the case of England, where the biggest possible beginnings have been made and pursued steadily without any destruction and bloodshed at all It is for India to choose her path from out of these two paths, and it does not require much analysis to show which particular path she will choose.

धर्म और संस्कृति

लेखकः—श्री जैनेन्द्रकुमार जी

इधर धर्म शब्द का महत्व कम हो रहा है और संस्कृति शब्द की लोकप्रियता बढ़ रही है। धर्म अनेक हैं और उनमें आपस में अनबन देखी जाती है। उनके पंडित आपस मे विवाद करते हैं और उनके अनुयायी अपने अलग अलग पात्रों को लेकर आपस में उलझते और झगड़ते देखे जाते हैं। यह दृश्य उन लोगों के लिये रुचिकर नहीं है। हमारे पास साधनों की जो प्रचुरता होती जा रही है कि दूरी को टिकने के लिये अवकाश नही है और सब कोई आस पास आते जा रहे हैं, अपने को अलग अलग मानने की सुविधा नही रह गई। देश की, जाति की, भाषा की और इस तरह की अनेक भिन्नतायें भी जैसे अब सहारा नही देती और उनके बावजूद हम निकट से निकटतर बनते जा रहे हैं। विज्ञान ने ऐसे अचरज पैदा कर दिये हैं कि इस कोने में बैठे हम दुनिया के हर कोने से संबंध रख सकते हैं और एक छोर से दूसरे छोर के किसी भी लोगों से भी बात चीत कर सकते है। ऐसी हालत में वो शब्द जो कि अपने में सीमित होकर रह जाता है, जैसे आज के काम के योग्य नहीं रहता। धर्म आज कुछ ऐसा ही शब्द बन गया है। धर्म सत्र मानेंगे। भीतर से बहुत अच्छी चीज है। लेकिन, जबकि वो अपने अनुयायियों को मिलाती है तब दूसरे धर्म के मानने वालों को परे रखने में वही वस्तु सहायक भी हो जाती है। धर्म अनेक हैं और उनकी अनेकता के कारण संघर्ष होते आये हैं। कभी तो ये संघर्ष बड़े अमानुषिक और वीभत्स तक होगये हैं। प्रत्येक धर्म की कोशिष रही है कि वो धर्मो की अनेकता को मिटादे और कि वो अपने को सार्वभौम एकच्छत्र बना डाले। इस एकता के स्वप्न को लेकर एक धर्म ने अन्य अनेक धर्मो पर प्रहार किया है और उन पर विजय साध लेनी चाही है। धर्म के साथ इसीलिये विचार और बाद की एक कट्टरता का बोध होता रहा है। निश्चय ही कट्टरता से कट्टरता ही उपजी है वो कटी नहीं है। इसी तरह अनेकता को नष्ट करने की स्पर्धा करके एक विशिष्ट रूपाकार की एकता को प्रतिष्ठित करने के आग्रह में से अनेकता बढ़ी ही है, घटी नही।

समय था, जब इस प्रकार का आग्रह उपयोगी समझा जा सकता था। लेकिन, इतिहास में से जीवन विकास पाता गया है और हिंसा से स्वयं अहिंसा की ओर बढ़ते आये हैं। पहले जो शौर्य था अब मजाक बना देखा जा सकता है। मत और बाद का लाठी के जोर से प्रचार अब कुछ उपहास्य बन गया है। अच्छी से अच्छी चीज को अब मानो ये सुभीता नहीं है कि वह हठात् अपना आरोपण करे। स्वतन्त्रता सबका अधिकार बन गया है। जिसका अर्थ है कि दूसरे पर हावी होने का किसी को अधिकार नहीं रह गया है। प्रहार की स्वतन्त्रता तो पशु की होती है, सेवा की स्वतन्त्रता मनुष्य

की विशेषता. यानि यह मनुष्य का ही हक है कि कोई उस पर प्रहार करे तो बदले मे वो प्रहार न करे बल्कि प्रेम करे। स्वतन्त्रता का यह रूप मनुष्य को अब उत्तरोत्तर उपलब्ध होता जा रहा है।

हिंसा से अनिवार्यरूप से काल अहिंसा की ओर बढ़ता आया है—यह तथ्य कदाचित् सहसा लोगों को मान्य न होगा। एक से एक भीषण युद्ध की फसल हम बोते और काटते चले जा रहे हैं। युद्ध वे अधिकाधिक इतने विराट् और व्यापक होते जा रहे हैं कि पहले उनकी कल्पना ही न की जा सकती थी। आधुनिक शस्त्रास्त्र के मुकाबले प्राचीनता के पास क्या था? एटमबम और हाइड्रोजिन बम की संहार शक्ति की तुलना भला किससे की जा सकती है। इस सब को देखते हुये यह दावा कि मानवता अहिंसा की ओर बढ़ी है झूठा लग सकता है, पर झूठ वो है नही। युद्ध को विराटता ज्ञान-विज्ञान मे से मिली है। उसमे कारण यह नहीं है कि आदमी का हिंस्र भाव पहले से बढ़ गया है। हिंसा मे गौरव और गर्व अनुभव करने का भाव निश्चय ही है। मनुष्य मे पहले से क्षीण ही पन रहा है। हिंसा तो है, पर हिंसा का खुला समर्थन कहीं नहीं है। हिंसा को उत्तेजन है तो सीधे नहीं आड़े टेढे तरीके से—यानि सामने तो आदर्श के रूप मे अहिंसा को ही रखा जाता है, फिर उसकी ओट मे बुद्धि की प्रवचना द्वारा हिंसा को ढक दिया जाता है। इस प्रकार विश्व युद्धों की परंपरा को सामने देखते हुये भी यह श्रद्धा कि मानवता हठात् और अनिवार्य अहिंसा की ओर बढ़ रही है असत नहीं ठहरेगी। बल्कि वही विज्ञान सिद्ध और तर्क संगत जान पड़ेगी।

हम आज ऐसी जगह पर आगये हैं जहां प्रहार का हक एकदम असिद्ध बनगया है। ठीक को भी गलत पर 'प्रहार' करने का हक नहीं है, वह ठीक ही नहीं है जो अमुक को गलत मानकर उसपर प्रहार करना अपना कर्तव्य बनाता है। ठीक और बे ठीक को धारणाये निरपेक्ष से सापेक्ष बनती जा रही है। किसी को अपने को इस रूप मे ठीक मानने का हक नहीं रहता जा रहा है कि वो दूसरे को गलत कह कर उसपर हावी होने की सोच सके। प्रत्येक के लिये स्वगत ही नहीं समाजगत और सर्वगत एक मान आवश्यक होता जा रहा है। इधर जो समाजवाद और साम्यवाद नाम की विचार धाराएं चली है उन्होंने अवसर नहीं छोड़ा है कि एक अपने को अन्य अनेक से सर्वथा भिन्न और प्रथक् मानकर रह सकें। एक सबके साथ अपने मे वह समाप्त नहीं हैं, शेष मे ही उसको होना है।

धर्म आत्मकेन्द्रित इस अर्थ मे वह आध्यात्मिक है। कोई आध्यात्मिकता निरी आत्मरत होकर जी नहीं सकती, पनप नहीं सकती। ऐसे वह आसामाजिक होती है। समाज के अभाव मे व्यक्ति की स्थिति नहीं है। इसी तरह असामाजिक होकर धर्म की स्थिति नहीं रहती। किन्तु, अनेकबार ऐसा होता था कि धर्म को लेकर व्यक्ति अपने समूचे दायित्व को अपने ही प्रति इस तरहमान उठता था कि समाज के प्रति वह दायित्व हीन बन जाता था। ऐसे धर्म ग्रंथियों की सृष्टि करने में कारण बन जाता था और परिणाम मे सामाजिक विषमता उत्पन्न होती थी।

इस विषमता को लेकर तो मानव चेतना का विकास सध नहीं सकता था। इसलिये देखा गया कि धर्म के नाम पर जब मानव चैतन्य की हानि होती है, दूसरे शब्दों मे धर्म के नाम पर अधर्म की ही प्रतिष्ठा होती है, तब उस धर्म शब्द का महत्व घटने लगा। चहुंओर फैलती हुई मानव सहानुभूति ने धर्म शब्द का सहारा छोडा और उसके लिये दूसरे शब्द की आवश्यकता हुई। 'संस्कृति' वही शब्द है।

संस्कृति में स्पष्ट ही ध्वनि है कि किसी अवस्था मे भी विग्रह के समर्थन के लिये वहां अवकाश नहीं है। बढ़ता जाना हुआ आपसी भाव-ऐक्य भाव उसका सार इष्ट है कहीं वृत्त वहां बंध नही होता। आत्मा आत्मा के लिये आत्मोपमता के भाव को बढ़ाते जाने का सदा ही अवकाश है। मै आत्मा हूं जहां से आरंभ करके सब कुछ मुझे आत्मीय है इस सिद्धि तक साधना में व्यक्ति को बढ़ते ही जाना है। आत्ममे बंध होकर आत्म हत्या तो हो सकती है, आत्ममुक्ति नहीं हो सकती। मानों संस्कृति में यह चेतावनी है। संस्कृति का मुख किसी आभ्यतरिक आत्मा की ओर नही है वह तो बाहर की ओर खुलकर फैली हुई निखिलता के प्रति हैं। संस्कृति यदि कुछ है तो सामाजिक है। किसी भी बहाने असामाजिक, समाज विरुद्ध या समाज विमुख होने की अनुमति उसमें नहीं है।

निश्चय ही संस्कृति की मांगसे किसी धर्म अथवा मतवाद को छुट्टी नहीं होसकती। अपना कह कर किसी धर्म मे आदमी को यह छुट्टी नही हो सकती कि वह दायित्व हीन और उच्छ्रंखल व्यवहार करे। स्वधर्म पालन पर संस्कृति की मर्यादा आये बिना नहीं रुकसकती। मेरा धर्म मुझे दूसरों के प्रति नम्र न बना कर उद्धत बनाये तो वह सहा नही जा सकता। इस प्रकार मानव धर्म की ओर से मनमाना धर्म अधिक काल सहा नहीं जा सकता है। जब धर्म का संबंध चरित्र और व्यवहार से छूट कर मत मान्यता से अधिक हो जाता है तब स्पष्ट ही मानव धर्म को आकर उस मत माने धर्म का परिमाण करना होता है। हम देखेंगे कि यह संघर्ष सदा ही विद्यमान रहा है जो धर्म को मत मान्यता के द्वारा पकडते हैं और इस तरह से धर्म को जकडते और अपने को भी जकडते हैं और दूसरे वे जो स्वानुभूति में उसको स्वीकार और अंगीकार करते हैं ऐसे दो प्रकार के लोगों में संघर्ष रहता आया है। संतों महात्माओं को सदा पंडितम्मन्यो के हाथों यातनाएं भुगतनी पडी हैं। धर्म जिन के लिये संपति के अर्थ में स्वत्व बनाया है, उनको युग धर्म के साथ चलने में कठिनाई हुई हैं। ऐसे संप्रदायधर्म और मानवधर्म के बीच मे तनाव और विग्रह होना रहा है।

धर्म का ऐसा अपलाप देखने में आता है, इसलिये संस्कृति शब्द का सहारा यदि लिया जाय और अपनी अंतस्थ सहानुभुति का उत्तरोत्तर विस्तार साधा जाय तो यह युक्त ही है, फिर भी उस धर्म शब्द का बहिष्कार उचित न होगा। कारण नितांत सामाजिक होकर व्यक्ति समाज के प्रति अपना दायित्व पूर्ण नही कर पाता। समाज का अनुगत होकर चलने में समाज का ही सच्चा हित नहीं है। अनुगति में आत्मदान की पूर्णता नहीं है। जो समाज के हित में आत्म भावसे समर्पित है उसे समाज का बंदी होने की आवश्यकता नहीं है। वह समाज का सहयोगी है और आवश्यक होने पर उसका नेता भी हो सकता है। नेता का मतलब साथ होकर भी एक कदम आगे चलने वाला यह जो एक कदम आगे होकर चलने की बात है, वह केवल मात्र सामाजिक आदर्श से पूर्ण नहीं हो सकता। इसके लिये सामाजिक से कुछ उच्चत्तर आदर्श की आवश्यकता होगी।

आधुनिक दर्शन के लिये जैसे समाज परिधि बन गया है। जो दर्शन समाज से घिर जायगा वह समाज को फिर उठा कैसे पायेगा। इसलिये आदर्श को या लक्ष्य को समाज की सीमा में नहीं बाँधना होगा, उसे कुछ ऐसे व्यापक भाव में ग्रहण करना होगा जिसका सत्य समाज में समाप्त न होजाय बल्कि, वह उससे बाहर भी प्रतिष्ठित रहे। यानि एक सर्वव्यापी सत्ता।

संस्कृति शब्द इसी अपेक्षा मे कुछ अपर्याप्त रह जाता है मानों, मानव संबधो तक उसकी व्याप्ति है। मानवेत्तर सत्ता के प्रति जैसे उसकी पहुंच नहीं है। सूरज, चॉद और रात को चमक आने वाला नक्षत्र मंडल इस सब के प्रति मनुष्य का जो भविष्य मे आल्हादकारी संवध है उसका समावेश संस्कृति मे नहीं होता। इस निखिल ब्रह्माण्ड मे व्याप्त उस परम सत्ता से संस्कृति को कुछ पहचान नहीं है. जो अलग निरजन है, जिसके विना दूसरा नहीं है, जो स्वय है और शाश्वत है, जो शुद्ध अन्तिम परम और अखंड सन् है।

और यह स्पर्धा धर्म की ही है। जीवात्म धर्म द्वारा परमात्म होता है खड अखंडता प्राप्त करता है और अश सपूर्ण की ज्योति से ज्योतिष्क हो जाता है।

नि.सन्देह धर्म आत्मीक ही हो सकता है। आत्मिक होने मे खतरा है। आत्मीक सामाजिक नहीं भी है लेकिन यह खतरा ही उसकी कीमत है। आत्मीक निश्चय ही सामाजिक से सत्यतर है-पूर्णतर है। उस आदर्श मे व्यक्ति सर्वथा निस्व और मुक्त हो सकता है। सामाजिकता मे उसकी निजता सदा ही अनेकता मे उस एक की गिनती पढ़ाने वाली रहती है। आत्मीकता ही है जिसमे अतत. उसकी गिनती भी नहीं रह जाती। वह सर्वथा शून्य बनता और इस तरह अनेकता को सच्ची एकता देता है। व्यक्ति की सपूर्ण मुक्ति जहां उसकी कृतार्थता किसी प्रकार भी उसकी ओर सिमटती नहीं है वल्कि चहुँ ओर खुलती और फैलती ही जाती है। यदि है तो उस धर्म मे है जो आत्मीक है उस संस्कृति मे नहीं, जो निरी सामाजिक है।

इसलिए प्रचलित धर्मो की अनेकता को स्वीकार करते हुये भी विग्रह आदि की सभावना को स्वीकार करते हुये भी उस शब्द की मूलभूत आवश्यकता से छुट्टी नही ली जा सकती। संस्कृति शब्द उसकी जगह नही रहता। सस्कृति मे से हम मानवेतर जगत के साथ स्वरसाम्य नही प्राप्त करते। चराचर जगत् को जो एक नियम धारण कर रहा है उसके साथ तादात्म्य का वोध उस शब्द में नहीं समा पाता। जगत् गति मे एक लय-ताल है सब कही एक छंदवद्ध आनंद व्याप रहा है। धर्म मूल मे जैसे इसी की खोज है उसी मे तद्गत होने का प्रयास है, निजता को निखिलता से मिला देने की साधना है। संस्कृति इस परम पुरुपार्थ से विलग या विच्छिन्न होकर नहीं, आधार मे उसको स्वीकार करके ही सार्थकता प्राप्त कर सकती है।

श्री राजाबहादुरसिंह जी इन्दौर

श्रीमान् बाबू देवकुमार जी एम० ए० इन्दौर

महासभा के पुराने कार्यकर्त्ता

स्वर्गीय श्रेष्ठिवर्य राजालक्ष्मणदासजी साहब बहादुर सी० आई. ई. मथुरा

स्वर्गीय दानवीर जैन कुलभूषण सेठ माणिकचन्दजी जे० पी० बम्बइ

स्वर्गीय रायबहादुर सेठ मूलचन्दजी सोनी अजमेर।

अनेकोपाधि विभूषित रावराजा सर सेठ हुकमचन्द जी साहब इन्दौर

सर सेठ हुकमचन्द जी साहब का मन्त्री मंडल
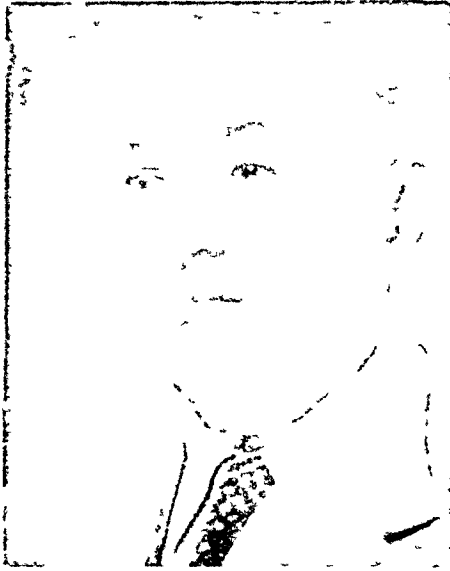
श्री आर० सी० जाल
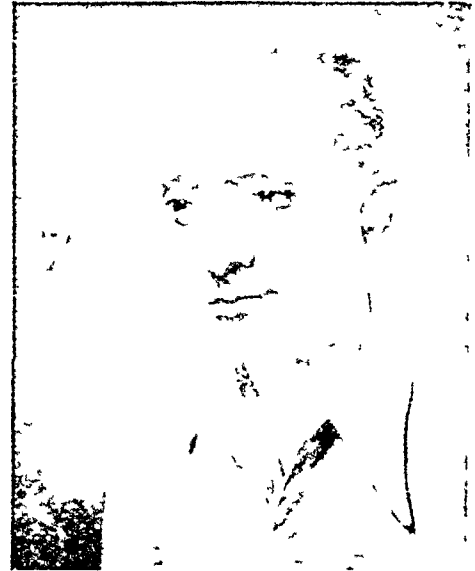
श्री रमनलाल जी रावल

लाला हजारीलाल जी मित्तल

बाबू वसन्तलालजी कोरिया

अर्थसमिति के सदस्य

सर सेठ भागचन्दजी सोनी अजमेर

रायबहादुर राजकुमारसिंहजी इन्दौर
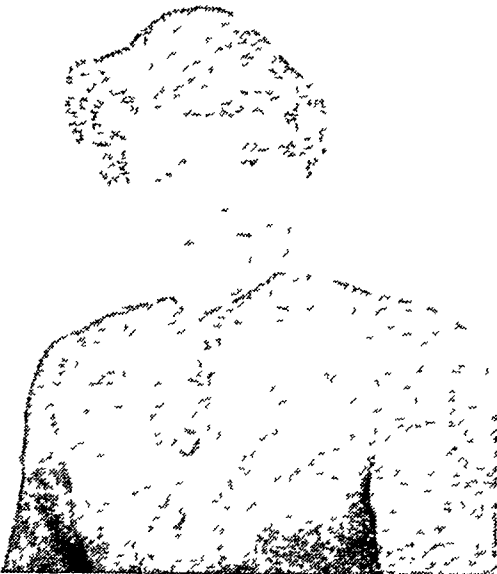
रा० ब० सेठ हीरालालजी इन्दौर

रा०ब० सेठ लालचन्दजी सेठी उज्जैन
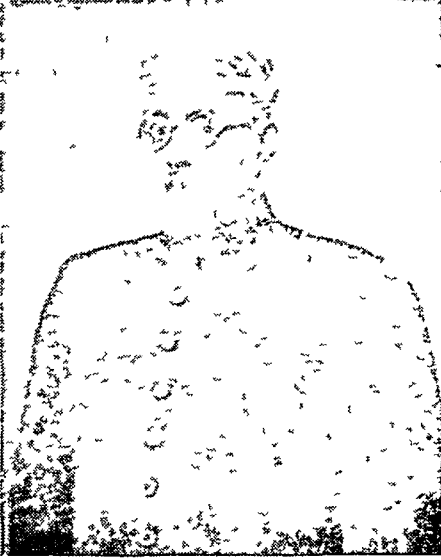
सेठ गोपीचन्दजी जौहरी जयपुर

रायसाहब सेठ मोतीलालजी ब्यावर
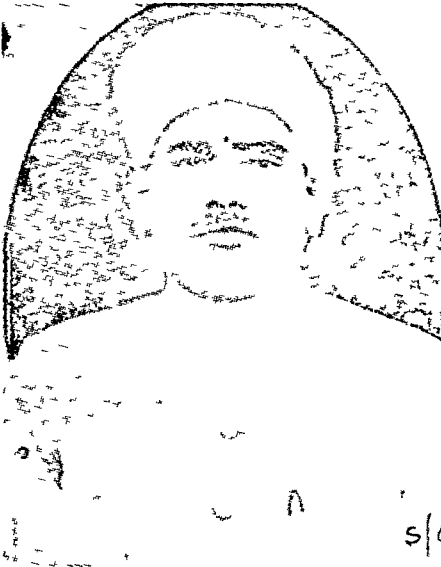
सेठ हीरालालजी पाटनी किशनगढ़
(मगनलाल हीरालालजी)

सेठ कल्याणमलजी गोधा उज्जैन

श्री हुकमचन्द जी पाटनी इन्दौर

सेठ वैजनाथजी सरावगी कलकत्ता

सेठ गोविन्दराव दोषी रावलगांव

लाला हजारीलालजी मित्तल इन्दौर

सेठ गुलाबचन्दजी टोंग्या इन्दौर
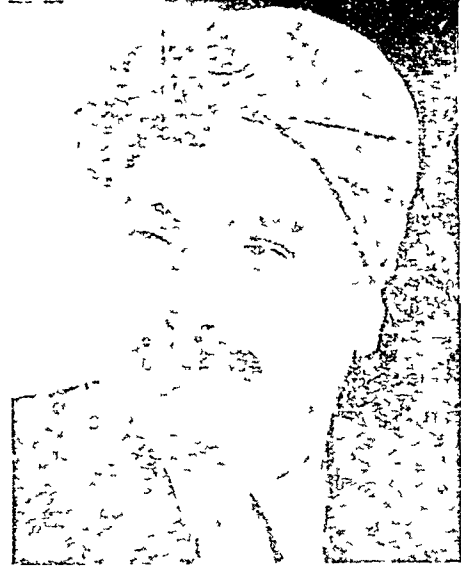
सेठ गजराज जी गंगवाल कलकत्ता

साहू शान्तिप्रसाद जी कलकत्ता
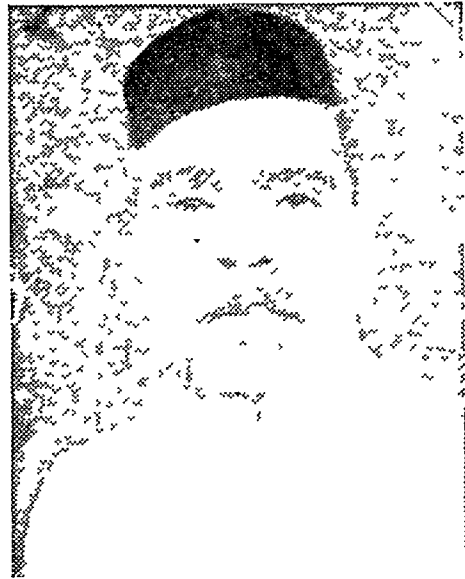
लाला भगवानदास जी पाटनी
[परसादीलाल भगवानदास पाटनी]

देश स्वतन्त्र होने के पश्चात केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारो ने इस आन्दोलन के महत्व को समझते हुये देश मे सहकारी आन्दोलन को अत्यधिक सफल बनाने के लिये एक विशेष प्रयास जारी किया । जिसके फल-स्वरूप गत दो तीन वर्षों मे इसकी काफी प्रगति हुई, जैसा शासकीय आकडो से स्पष्ट है ।

सहकारी समितियो मे यद्यपि उत्तर प्रदेश को नेतृत्व प्राप्त है परन्तु सदस्यता और चालू पूंजी के ख्याल से मद्रास नेतृत्व करता है और बम्बई का दूसरा स्थान है । सहकारी संस्थाओ की कुल संख्या १६३८७५ है, जो पूर्व के अंको मे ६ प्रतिशत अधिक है । सदस्यता १ करोड २७ लाख है यानी इसमे भी २५ प्रतिशत की वृद्धि हुई और पूंजी २८ प्रतिशत बढ कर २१८४८ करोड है । इन सहकारी समितियो में सबसे अधिक प्रगति गैर कृषि समितियो ने की है, जिनकी सख्या लगभग २२६२० से बढकर २७ हजार से भी अधिक हो गई है । इनकी सदस्यता मे २० लाख की वृद्धि हुई और चालू पूंजी ६८ करोड से ८७ करोड है । इन संस्थाओ ने अपने सदस्यो को कार्य चलाने के लिये जो ऋण दिया है, वह लगभग ३० करोड से ३८ करोड तक बढ गया है । इसी प्रकार सहकारी समितियो के साथ-साथ सहयोगी बैंको ने भी इन दिनो काफी प्रगति की है । उनकी चालू पूंजी मे २४ करोड से ३१ करोड और इनकी सख्या मे ४६६ से ४८४ की वृद्धि हुई है ।

उत्तर प्रदेश, मद्रास तथा बम्बई प्रान्तो ने सहकारी आन्दोलन के विकास मे जहा इतनी प्रगति की है । वहा इसकी सफलता के लिये मध्यभारत विशेषत. ग्वालियर तथा इन्दौर के राज्यो ने जो प्रयास किये है वे भी विशेष उल्लेखनीय हैं ।

मध्यभारत के ग्वालियर राज्य मे सहकारी आन्दोलन के जन्मदाता स्वर्गीय महाराज माधवराव सिंधिया थे । उन्होने १९१६ मे इस आन्दोलन के प्रसार के हेतु एक पृथक् विभाग स्थापित किया और उनके अथक परिश्रम तथा सत्प्रयास से १९२४ तक राज्य मे लगभग ३,३५५ सहकारी समितिया बन गई ; जिनके सदस्यो की सख्या लगभग ५६३५८ थी । इसमे अतिरिक्त राज्य के प्रत्येक जिले मे एक एक सहकारी बैंक था जिससे सह-कारी समितियो को ऋण दिया जाता था । इन्दौर मे भी यह कार्य १९१४ से शुरू हुआ, परन्तु इसकी प्रगति ग्वालियर की अपेक्षा धीमी थी । मध्यभारत के अन्य स्थानो मे तो यह शुरू ही न हुआ था । इन्दौर मे १५ अक्टूबर १९१५ को प्रथम सहकारी समिति बनी । तत्पश्चात २२ काश्तकारी सहकारी समितियां व इन्दौर कोऑपरेटिव बैंक की स्थापना १९१६ मे की गई । इस बोर्ड मे १३ सदस्य थे जिनमे दानवीर सेठ सर हुकमचन्द जी मुख्य सदस्य थे । इस बैंक के हिस्से की पूंजी ५१७४७, हिस्सो की रकम१३२०, अमानते रुपये ५१०० और कार्य चालू करने की पूजी ५१८०६ रुपये थी । सम्मिलित सहकारी सभाये २२ व उनके सदस्यों की सख्या ४४६ थी ।

सहकारी आन्दोलन को अत्यधिक सफल बनाने के हेतु सेठ साहब निरन्तर प्रयत्नशील रहे । २ नवम्बर १९३५ को इन्दौर मे मनाये गये सहकारी दिवस पर सेठ साहब का जो भाषण हुआ, वह बडा ही महत्वपूर्ण तथा सहकारी कार्यकर्ताओ के लिये बडे ही काम का था । एसोसियेशन के नियमानुसार उस दिन सेठ साहब को इन्दौर बैंक का आश्रयदाता चुना गया । शासकीय एवं सेठ साहब के सत्प्रयास से इन्दौर मे सहकारी आन्दोलन का विकास दिनोदिन बढने लगा । राज्य मे प्रीमियर कोपरेटिव्ह बैंक, चार मध्यवर्ती बैंक, युनियन्स, प्राथमिक किसानो की सभायें व कई नागरिक सस्थायें स्थापित हुई । इन संस्थाओ मे एक विशेषता यह थी कि पुरुष समाज के साथ-साथ स्त्रियों ने भी एक बड़ा भाग लिया । स्त्रियो ने भी अपनी सहकारी सस्थायें स्थापित की थी, जिनमे "आपकी सहकारी संस्था" विशेष उल्लेखनीय है । इस सस्था के कार्य से स्पष्ट है कि स्त्रियां भी सहकारी आन्दो-लन में एक बड़ा भाग ले सकती हैं ।

संघ निर्माण के पश्चात मध्यभारत शासन ने ग्वालियर इन्दौर के समान सभी स्थानों मे इस आन्दोलन के विकास के लिये राष्ट्रोत्थान की अन्य योजनाओ के साथ-साथ इस ओर भी काफी ध्यान दिया। इसके लिये एक पन्चवर्षीय योजना विकास विभाग द्वारा बनाई गई, जिसके अनुसार गत दो तीन वर्षों मे काफी कार्य पूरा हो गया है। मध्यभारत मे इस समय लगभग ६,१३१ सहकारी समितियां हैं, जिनके सदस्यो की संख्या ,६२,०१४ है और पूंजी ३,४३,६३,६८६ रुपये है। प्रत्येक जिले मे एक सहकारी बैंक है, जिसमे राजगढ, बडवानी रतलाम, धार व झाबुआ आदि स्थानो मे नये बैंक स्थापित हुये है।

सहकारी आन्दोलन की सफलता के लिये यद्यपि शासन द्वारा यथासंभव प्रयास जारी है, परन्तु इसकी सफलता की बहुत सी जिम्मेदारी तो हम सब पर है। आन्दोलन शासन का नही, अपितु जनता का है। विदेशो के छोटे-छोटे भागो जैसे डेनमार्क हालेंड, वेलजियम, जापान आदि ने सहकारी आन्दोलन से जो सफलता प्राप्त की है, वह शासन के बल पर नहीं; बल्कि वहां की जनता के सत्प्रयास से है। प्रोफेसर बुल्क के शब्दो में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि यदि हम अपने देश का अभ्युत्थान चाहते है, यदि हम चाहते है कि हमारे देश के सभी लोग सुखी हो, उनके जीवन का स्तर अत्यधिक ऊंचा उठे, हमारे यहां के बड़े-बडे सैकडो जंगली भूभाग हरे भरे खेत बने और देश मे छोटे-बडे उद्योगधन्धो का विकास हो, तो हमे सहकारी आन्दोलन को सफल बनाने तथा इसके समुचित विकास के लिये भरसक प्रयत्न करना चाहिये। भारत जैसे देश के लिये अन्य कोई आन्दोलन इससे अधिक लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सकता।
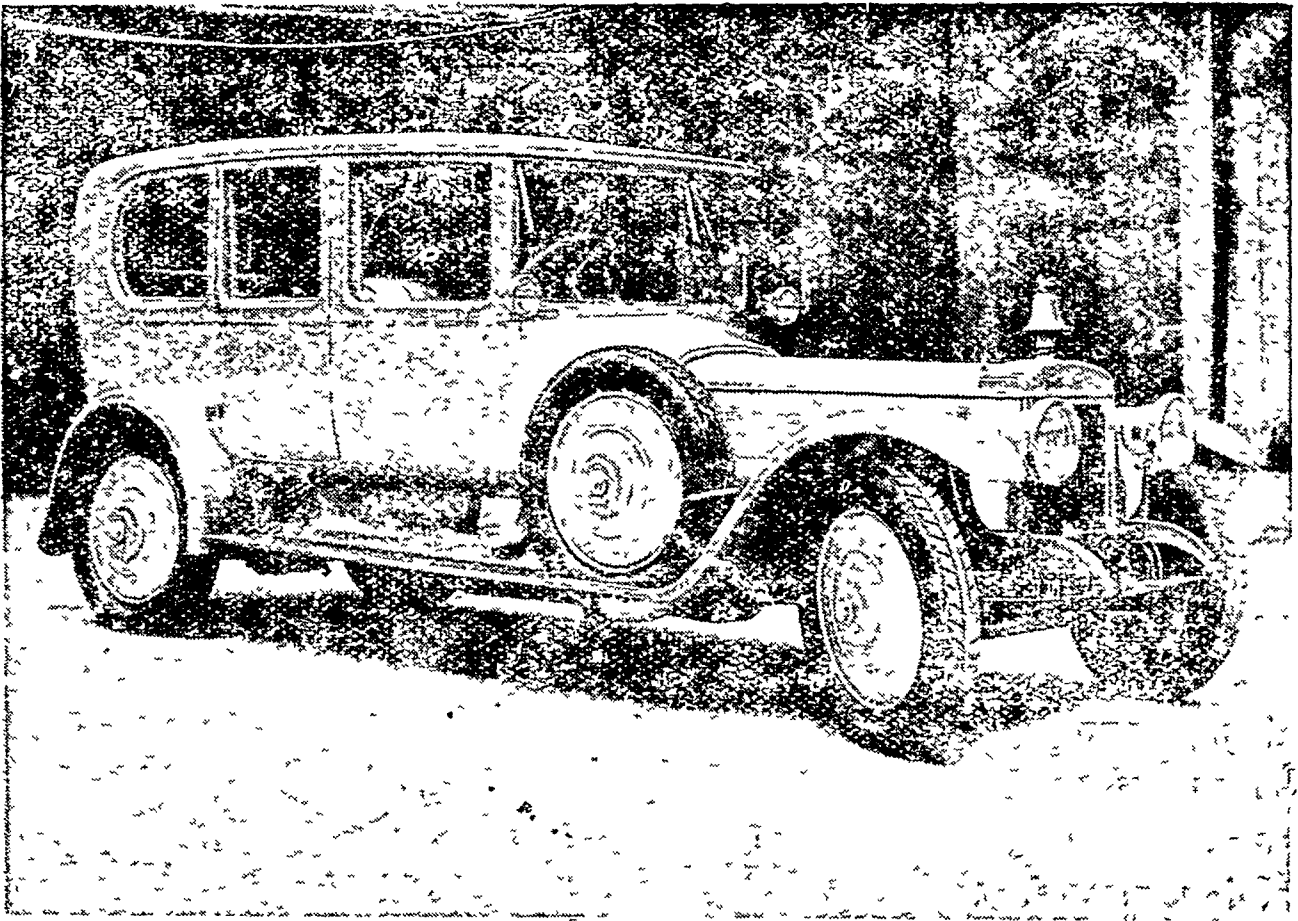
सुवर्णमयी वह मोटर, जो सेठ साहब की लम्बी यात्राओ मे दर्शक के लिये बहुत बडा आकर्षण होती थी। सम्बत् १६८० मे दिल्ली मे भी उसकी धूम थी।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

लेखक—पण्डित अजितकुमार जैन शास्त्री, देहली)

यह तो ठीक है कि न सदा अन्धकार रहता है और न सदा सूर्य का प्रकाश। प्रखर-प्रताप का पुन्ज सूर्य जिस समय अस्ताचल पर जा पहुंचता है, तब फिर अन्धकार अपना अखण्ड शासन जमाना चाहता है, किन्तु प्रकाश का प्रेमी मानवप्राणी भी अपनी अनेक चेष्टाओं से सूर्य के बराबर न सही, उससे कम प्रकाश करके अपना काम निकाल ही लेता है। श्री १००८ भगवान महावीर के निर्वाण हो जाने पर केकलज्ञान भानु अस्त हो गया, किन्तु उनके भक्त अनुयायियो ने उनके प्रकाश को अपने अदम्य उत्साह और अथक प्रयत्न से थोडे बहुत रूपमे अब तक स्थिर रक्खा ही है।

मुसलमानी शासन भारतवर्ष मे लगभग ८०० वर्ष तक बना रहा। उस विशाल समय मे अज्ञान अन्धकार फैलता रहा। इस्लामी धार्मिक कट्टरताने भारतीय धार्मिक चेतना को निष्प्रभ बना दिया। उसकी स्वतन्त्रताका अपहरण करके उसको सिर न उठाने दिया। सर्वत्र धर्मालयो को धराशायी बनाकर उनकी छाती पर मसजिदो की मीनारें खडी कर दीं। अत्याचार सदा खडा नही रह सकता। देखने वालो ने देखा कि किस बुरी तरह उस अत्याचारी मुसलमानी शासन का अन्त हुआ और उसकी कब्र पर अंग्रेजी शासन का अंकुर उगा।

राजनीतिपटु अग्रेज ने भांप लिया कि भारतवासियो की नाडी मे किस प्रकार से रक्त बहा करता है। उसने अपने शासन की नींव को दृढ बनाने के लिये साम्राज्ञी विक्टोरिया से यह घोषणा करवा दी कि "प्रत्येक सम्प्रदाय स्वतंत्रता से अपना धर्म-आचरण कर सकेगा। अंग्रेजी शासन उसमे कोई भी बाधा न डालेगा और न डालने देगा।"

इस घोषणा ने भारतीय जनता मे नवीन उत्साह का सचार किया। उसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दूजाति की निद्राभग करने के लिये लिखना और बोलना आरभ किया। उन्होने अपनी नुकीली वाणी व लेखनी से बेखबर सोती हुई हिन्दूजाति को जगा दिया। स्वामीजी ने अपने भाषणो मे और सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ द्वारा तत्काल जैन समाज को भी अपना प्रचार करने का संकेत किया।

आज से ७४ वर्ष पहले वि० स० १९७४ मे स्वर्गीय पं० छेदालालजी तथा पं० प्यारेलालजी ने जैन संस्कृतिके रक्षणार्थ अलीगढ मे एक छोटी सी पाठशाला खोली, जिसमे पढकर १०-११ विद्वान् तयार हुए। जैन समाज को समय की प्रगति के साथ चलाने के लिये यह एक प्रथम प्रशसनीय प्रयास था। तत्कालीन जैन विद्वान पं० चुन्नीलालजी, पं० मुकन्दरामजी मुरादाबाद, प० छेदालालजी, प० प्यारेलालजी अलीगढ, पं० धन्नालालजी काशलीवाल ने *'कलौं सघे शक्तिः'* नीति का अनुसरण करने के लिये अखिल भारतीय दिगम्बर जैनो को संगठित करने के लिये एक बडी सस्था स्थापित करने का विचार किया।

श्री अन्तिम केवली जम्बूस्वामी की निर्वाण भूमि चौरासी (मथुरा) पर कार्तिक मास मे जो प्रतिवर्ष मेला हुआ करता था, १९४९ के उस मेले पर इन विद्वानों ने अपने विचार को कार्य रूप मे परिणत किया और उस

मेलेमे अखिल भारतीय दिगम्बर जैन संस्था का उद्घाटन किया, जिसका नाम *श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा"* रक्खा गया। उसके अध्यक्ष श्रीमान राजा लक्ष्मणदास जी सी० आई० ई० मथुरा निर्वाचित हुए, उपसभापति लाला उग्रसेनजी रईस सहारनपुर और महामंत्री पं० छेदालालजी अलीगढ नियुक्त हुए।

महासभा का स्थापित होना मूर्छित जैन समाज मे नवचेतना का संचार करना था। महासभा की स्थापना ने जैन समाज के संगठन के लिये प्रकाशस्तम्भ का कार्य किया।

महासभा का दूसरा अधिवेशन सन १६५० मे अलीगढ में हुआ। दुर्भाग्य से तीसरे वर्ष (सं० १६५१) में महामंत्री पं० छेदालालजी का स्वर्गवास हो गया। पं० छेदालालजी कार्यकुशल, उत्साही, समाजहितैषी, प्रभाव-शाली विद्वान थे। महासभा के प्रमुख संचालक थे। उनके वियोग से शैशवकालीन महासभा को भारी धक्का लगा। उनके समान व्यक्ति का मिलना कठिन होगया। कुछ समय महामंत्री पदके उपयुक्त व्यक्तिके ढूंढने में लगा। अन्त मे नहरगंगा के डिप्टी कलक्टर मुंशी चम्पतरायजी को इस पद के लिये चुना गया। मुंशीजी जहां प्रभावशाली उच्च सरकारी पदाधिकारी थे, वहां धर्मप्रेमी, लोकप्रिय व सरल व्यक्ति थे। आपने पांचवे वर्ष से बारहवे वर्ष तक महासभा की महामंत्री पद द्वारा सेवा की। मुंशी चम्पतरायजी के महामन्त्री बन जाने के पश्चात् महासभा की ओर से 'जैनगजट' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। उसके सम्पादक बा० सूरज-भानजी वकील सहारनपुर नियत किये गये। पं० प्यारेलालजी अलीगढ का स्वाध्यायप्रचारविभाग का मंत्री बनाया गया तथा बा० उग्रसेनजी सरसावा को जैनजनगणना का मंत्री नियुक्त किया गया। इस मन्त्रिमण्डल की सत्ता मे सन् १६५२ मे महासभा का जो अधिवेशन हुआ, वह महासभा की प्रगति का सूत्रधार था। इस अधिवेशन के पश्चात् महासभा कर्मक्षेत्र मे तेजी के साथ पग बढाने लगी।

वि० सं० १६५३ मे जो महासभा का अधिवेशन हुआ, उसमे भा० दि० जैन महाविद्यालय का उद्घाटन हुआ। महासभा का यह कार्य भी विद्याप्रचार की दिशा मे अनुपम था। महाविद्यालय के मन्त्री न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजी तथा उपमन्त्री न्यायवाचस्पति, स्याद्वादवारिधि श्रीमान पं० गोपालदासजी वरैया नियत हुए। समस्त पाठशालाओ के दिगम्बर जैन विद्यार्थियो की संस्कृत तथा धर्मशास्त्र की परीक्षा लेने के लिये भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा परीक्षालय स्थापित हुआ, इसके मन्त्री उपमन्त्री भी उपयुक्त सज्जन ही नियत हुए।

महाविद्यालय मे श्री० १०५ क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णी, पं० माणिकचन्दजी न्यायाचार्य, पं० लालारामजी शास्त्री स्व० पं० मनोहरलालजी शास्त्री, प० रामप्रसादजी शास्त्री, प० मक्खनलालजी प्रचारक देहली, पं० अमोलकचन्द्रजी आदि ने प्रारम्भ मे अध्ययन किया था और इसी परीक्षालय मे परीक्षा भी दी थी।

धर्माध्यापक स्व० पं० नरसिंहदासजी थे। जैन समाज मे पहले पढने के लिये उपयुक्त संस्कृत विद्यालय न होने के कारण प० नरसिंहदासजी, पं० गौरीलालजी, न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजी ब्राह्मणवेश मे रहकर बनारस, नवद्वीप आदि आदि मे संस्कृत पढते रहे। महाविद्यालय की स्थापना से जैन विद्यार्थियो की यह अडचन दूर हुई।

कुछ दिनो पीछे महाविद्यालय को अंग्रेजी स्कूल के रूप मे परिवर्तन करने का प्रयत्न कुछ व्यक्तियो ने किया, किन्तु उसमें सफलता न मिली। सं० १६६२ मे महाविद्यालय का स्थान चौरासी मथुरा से हटाकर सहारन-पुर कर दिया गया। उसके बाद इस विद्यालय को स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस मे मिला दिया गया। कुछ दिन बाद महासभा के संचालको ने फिर महाविद्यालय का सामान वापिस मंगाकर सन् १६१३ मे महाविद्यालय को उसकी जन्मभूमि चौरासी (मथुरा) पर चालू किया। चौरासी पर लगभग सात वर्ष तक महाविद्यालय चलता रहा।

उसके बाद स्व० ब्र० ज्ञानचन्दजी महाविद्यालय को ब्यावर ले गये। ब्यावर मे रा० ब० सेठ चम्पालालजी रानीवालों ने महाविद्यालय को अच्छे ढग से चलाया। उनके स्वर्गवास हो जाने पर महाविद्यालय बन्द हो गया, जो कि अभी तक बन्द है।

"जैनगजट"

महासभा का मुखपत्र "जैनगजट" यद्यपि अनेक सकटो मे से होकर निकला है, अनेक विद्वान क्रमश उसका सम्पादन कर चुके हैं, किन्तु वह बराबर प्रकाशित होता रहा तथा उसकी नीति प्राय एकसी बनी रही। उसमें अन्तर नहीं आने पाया। पण्डित इन्द्रलालजी शास्त्री जयपुर इसका इस समय योग्यतापूर्वक सम्पादन कर रहे हैं।

परीक्षालय

परीक्षालय भी विभिन्न विद्यालयो के छात्रो की वार्षिक परीक्षा लेता हुआ अब तक अपने कार्यक्रम पर चल रहा है? इस समय रा० ब० सेठ हीरालालजी काशलीवाल इन्दौर मन्त्री है।

उपदेशक विभाग

महासभा का उपदेशक विभाग भी अनेक परिस्थितियो को पार करता हुआ अब तक चला आ रहा है। स्वर्गीय रायसाहब हकीम कल्याणरायजी, पण्डित सुमतिचन्दजी शास्त्री, पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ आदि अनेक विद्वान उपदेशक विभाग मे प्रचारक का कार्य कर चुके हैं। इस समय पं० सुन्दरलालजी प्राचीन न्यायतीर्थ काव्यतीर्थ उपदेशक हैं।

सरस्वती भण्डार

इस विभाग मे अनेक सुयोग्य शास्त्र लेखक रक्खे जाते थे और जहाँ कहीं से किसी शास्त्र की मांग आती थी, उन लेखको से वह शास्त्र लिखाकर वहां भेज दिया जाता था। आजकल छपे हुए ग्रथो का प्रचार बढ जाने से इस विभाग का कार्य बन्द रहा है, किन्तु इस भण्डार मे ११८ ग्रन्थ लिखे हुए विद्यमान हैं।

स्वाध्याय प्रचार

जैन सिद्धान्त का ज्ञान जैन जनता मे बढाने के लिये यह विभाग महासभा ने खोला था और महासभा के उपदेशको द्वारा स्थान-स्थान पर स्वाध्याय करने के प्रतिज्ञा फार्म भरवाकर स्वाध्याय का प्रचार बढाया जाता था। स्व० पं० प्यारेलालजी पाटनी अलीगढ ने इस विभाग का मंत्रित्व उल्लेखनीय किया है।

जैन ला

इस विभाग का कार्य श्रीमान प० नन्नूमलजी देहली के मन्त्रित्व मे हुआ था। इस विभाग ने 'जैन ला' नामक एक पुस्तक तैयार की है, जिसमे यह बतलाया गया है कि जैन ग्रथानुसार जैन ला (कानून) का क्या रूप है। वर्तमान मे यह विभाग 'जैन स्वत्व सरक्षण' विभाग नाम से कार्य कर रहा है।

भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्रकमेटी

स० १९५९ मे दि० जैन तीर्थ क्षेत्रो की रक्षा तथा सुव्यवस्था के लिये 'भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी' अपने एक विभाग के रूप मे स्थापित की थी, जो कि अभी तक कार्य कर रही है, किन्तु इस समय वह महासभा का विभाग रूप न होकर स्वतन्त्र रूप मे है। इस कमेटी ने पावापुरी, सम्मेदशिखर, गिरनार ऋषभदेव, तारंगाजी आदि तीर्थक्षेत्रों के लिये अनेक उल्लेखनीय कार्य किये हैं। इसके प्रधान रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी साहब बहुत वर्षों से हैं और बा० रतनचन्दजी चुन्नीलालजी जरीवाले बम्बई इसके महामन्त्री हैं।

कुछ उल्लेखनीय अधिवेशन

महासभा का १२ वां अधिवेशन सन् १६०७ मे कुण्डलपुर मे हुआ था, उसके सभापति स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी आरा थे। इस अधिवेशन मे रात भर इस विषय पर वाद-विवाद होता रहा कि जैन संस्थाओ मे शिक्षण किस तरह का हो ? स्व० पण्डित गोपालदासजी बरैया तथा स्व० पं० धन्नालालजी काशलीवाल का पक्ष था कि— *'जैनधर्म और तद् अविरुद्ध लौकिक शिक्षा'* ही जैन विद्यालयो मे पढायी जानी चाहिये। स्वर्गीय बा० शीतलप्रसादजी (पीछे ब्रह्मचर्य प्रतिमा ली थी) तथा स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजी ने 'तद् अविरुद्ध' शब्द का विरोध रूप पक्ष लिया था। अन्त मे रात भर गहरा विचार हो जाने पर उपस्थित सदस्यो ने पण्डितजी का प्रस्ताव स्वीकार किया था। केवल ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी विरुद्ध रहे थे।

२६ वां अधिवेशन

२६ वां वार्षिक अधिवेशन लखनऊ मे सन् १६२२ मे हुआ था। उसके अध्यक्ष स्वर्गीय बैरिस्टर चम्पतरायजी थे। आपने महासभा के ध्रौव्य फण्ड की रकम का उद्धार किया था। डिप्टी चम्पतरायजी ने जैसे स्व० राजा लक्ष्मणदासजी सी०आई० ई० की सम्पति कोर्ट आफ वार्ड्स होने पर महाविद्यालय के २५ हजार रुपये उसमे से निकलवाकर सुरक्षित किये थे, लगभग वैसा ही कार्य बैरिस्टर चम्पतरायजी ने किया था। इसका निर्देश ला० भगवानदासजी बडनगर महामन्त्री महासभा ने किया था।

देहली अधिवेशन

सन् १६२३ मे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के समय देहली मे महासभा का २७ वां अधिवेशन हुआ। स्व० सेठ रायजी सखाराम दोशी सोलापुर सभापति थे। इस अधिवेशन में जैन गजट की सम्पादकी के प्रश्न पर सुधारक तथा स्थितिपालक दल मे बहुत तनाव उत्पन्न हो गया। अन्त मे सुधारक दल ने इसी मेले मे महासभा के मुकाबिले मे 'भा० दि० जैन परिषद' की स्थापना की, जो कि अभी तक अपना कार्य चला रही है।

शेडवाल अधिवेशन

महासभा का २८ वां अधिवेशन शेडवाल मे ब्र० नमिसागरजी वर्णी की अध्यक्षता मे हुआ, किन्तु आपसी विवाद बढ जाने के कारण अधिवेशन स्थगित करना पडा। सुधारकदल ने कहीं एकत्र होकर मीटिंग की और उसमे महासभा पर अधिकार करने के लिये एक अलग प्रबन्धकारिणी समिति का चुनाव किया, जिसमें महामन्त्री श्री रामचन्द्रजी कोठारी को चुना गया।

इसके बाद महासभा का समस्त कार्यभार हस्तगत करने के लिये श्री रामचन्द कोठारी आदि सुधारक नेताओ ने स्वर्गीय सेठ चैनसुखजी छावडा सिवनी महामन्त्री महासभा पर कोर्ट मे दावा दायर कर दिया।

ब्यावर अधिवेशन

महासभा का २६ वां अधिवेशन (नैमित्तिक) ब्यावर के मेले मे सन् १६२५ को हुआ। इस अधिवेशन के अध्यक्ष स्वर्गीय लाला देवीसहायजी फीरोजपुर थे। इस अधिवेशन की उल्लेखनीय घटना यह रही कि महासभा को हस्तगत करने के लिये सुधारकदल की ओर से जो केस चलाया गया था, उसके विरुद्ध पैरवी करने के लिये एक फंड एकत्र किया गया।

यह अभियोग (मुकदमा) कुछ दिन चलते रहने के बाद खारिज हो गया और महासभा के महामन्त्री स्व० सेठ चैनसुखजी छावडा ही बने रहे।

र्गीय जातिनेता सेठ चैनसुखदासजी छावडा ने १७ वर्ष तक महामन्त्री पद पर रहकर महती सेवा

ही । अपनी मितव्ययिता तथा कार्यकुशलता से महासभा की गाडी आप शानदार रूप से चलाते रहे । आ
महामन्त्री काल में महासभा एक नही, किन्तु अनेक महान तूफानो मे फसी । आपने अपने कौशल से उनको छि
भिन्न करके महासभा की सुरक्षा की । अनेक गणनीय महानुभावो ने तथा महासभा के वर्तमान संचालको ने महास
के सचालन में प्रशसनीय भाग लिया है । लेखक ने भी जैनगजट सम्पादन तथा परीक्षालय की मन्त्रित्व द्व
कुछ सेवा की है ।
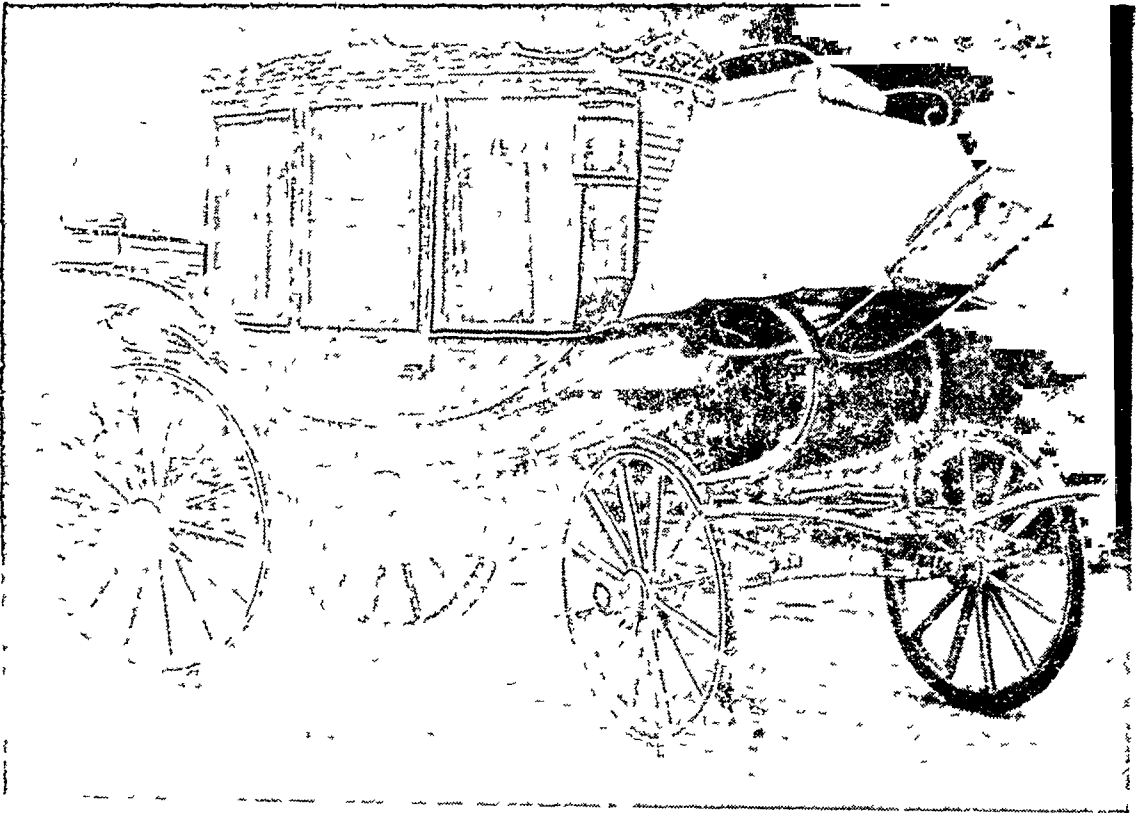
सेठ साहब की यह बग्घी भी अपनी शान की एक ही है । इन्दौर मे अनेक शानदार जलूसो की इसने शोभा बढाई है ।

चतुर्थ काल के मुनि

(लेखक—न्यायालंकार पं० मक्खनलालजी शास्त्री, आचार्य—मोरेना महाविद्यालय)

श्रीमन्तः कुन्दकुन्दाद्याः आचार्याः मुनिपुंगवाः
शान्तिसागरपर्यन्तः तान् वन्दे भावतोऽधुना ॥

वर्तमान आचार्य एवं मुनिराजों में सातिशय महत्त्व और चतुर्थ काल की समता पाई जाती है इसका अनुभव उनकी चर्या जानने वाले विद्वान भलीभांति जानते हैं। आज से तीस वर्ष पूर्व सांगली से श्री मुनिराज अनन्तकीर्ति मोरेना आये थे। अधिकशीत पड़ने से किसी भाई ने रात्रि में विना किसी को बताए चुपचाप उनकी गुफा के द्वार पर जलती हुई अगीठी (सिगडी) रख दी थी। दैवयोग से महाराज का पैर उस पर पड़ गया। उन्होंने उस पैर का जलना उपसर्ग समझा और उसे नहीं उठाया, साथ ही अरहन्त शब्द का उच्चारण किया। समीप की कोठरी से क्षुल्लक जी ने आकर देखा। तुरन्त पैर हटाया। पैर घुटनों पर्यन्त जल चुका था। मांस निकल आया था। महाराज ने उसकी थोड़ी भी चिन्ता एवं दुःख की वेदना नहीं मानी और ५—६ दिन में पूरी समता एवं समाधिमरण पूर्वक देह त्याग कर दिया। उनकी इस निर्मम घोर तपश्चर्या, समता और शान्ति पूर्ण चित्तवृत्ति का भारी प्रभाव मोरेना, आगरा, लश्कर के जैन एवं अजैनों पर भी पड़ा।

आज से ५—६ वर्ष पूर्व आरा में कुछ मुनिराजों का विहार हुआ था। जब वे रात्रि में एक कोठरी में ध्यानावस्थित थे, तब न मालूम किसी अज्ञात कारण से उनके नीचे बिछी हुई घास में आग लग गई। मुनिराजों ने उसे उपसर्ग समझा और वे ध्यान में ही बैठे रहे। परिणाम स्वरूप दो मुनि और क्षुल्लक स्वर्गधाम में पहुंच गये। मुनिराज कुन्थुसागर का शरीर बहुत पुष्ट था। उन्हें ज्वर से सन्निपात होगया। फिर भी कोई औषधि और उपचार नहीं करने दिया। उन्होंने तीन दिन की बीमारी में शरीर त्याग बड़ी समता से किया। आचार्य सुधर्मसागर जी महाराज तो जब १०५ डिग्री बुखार चढ़ा रहता था और शीत ज्वर का तीव्र प्रकोप था तब उस रोग की तीव्रता में रात्रि को बैठकर १००-१०० श्लोकों की नई रचना यत्याचार ग्रन्थ की वे प्रतिदिन करते थे। जब खास २ पुरुषों ने उनसे कहा कि महाराज थोड़ा विश्राम करिये थोड़ीसी शरीर की साधना भी करना चाहिये। उत्तर में महाराज ने कहा कि मेरा शरीर तो अब बहुत दिनो नही चलेगा यह निश्चित है तब इससे मैं अपना परमार्थ लाभ जितना ले सकूं उतना ही अच्छा है। यह कितने महत्व और वीतराग पद के आदर्श की बात है।

दक्षिण के १०४ वर्ष के वयोवृद्ध मुनिराज आदिसागर जी की दृष्टि जब कम हो गई और उन्हे आहार विहार में बहुत कम दीखने लगा तब उन्होने मुनि चर्या के पालने में बाधा समझ कर विना किसी रोग के समाधिमरण का नियम ले लिया। चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। उस समय उसकी वैयावृत्य करने के लिये चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महाराज आचार्य महावीरकीर्ति जी, मुनिराज नेमीसागरजी अन्य साधु ऐलक क्षुल्लक और दो हजार श्रावक भी पहुंच गये थे समाधिस्थ मुनिराज आदिसागर महाराज ने विना अन्न जल ग्रहण किये बड़ी शान्ति और सावधानी से १४ दिन व्यतीत कर उदगांव की टेकरी पर शरीर त्याग किया। क्या यह आदर्श चतुर्थ काल के मुनियो से कम है।

वर्तमान मुनिराज नेमिसागर जी, मुनिराज नमिसागर जी, मुनिराज वीरसागर जी, मुनिराज आदिसागर जी आदि भी कितनी तपश्चर्या और परीषह सहन करते हैं यह बात उनके चरण सान्निध्य मे रहने वाले ही जान सकते हैं।

वर्तमान तपस्वियो मे सर्व प्रथम, सर्व प्रधान एवं सर्व शिरोमणि वीतराग तपोमूर्ति, चारित्र चक्रवर्ति योगीन्द्र चूडामणी श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर महाराज हैं।

आचार्य महाराज ने तीन ऐसे असाधारण कार्य किए हैं जो दूसरे से साध्य नही हो सकते थे। एक तो यह कि उन्होने उत्तर हिन्दुस्तान में विहार कर धर्मदेशना, दूसरे धवलादि शास्त्रों का ताम्रपत्र पर खुदाकर सुरक्षित करना और तीसरे धर्म धर्मायतनो की रक्षा के लिए उपवासादि द्वारा जनता मे जागृति उत्पन्न करना। उक्त तीनों ही असाधारण कार्य हैं जो सर्वविदित है।

शास्त्रकारो ने मुनियों के दो भेद बताए हैं। १—जिनकल्पी २—स्थविर कल्पी। जिनकल्प मुनि उन्हे कहा गया है जो उत्तम संहनन के धारक हों उसी भव से मोक्ष जाने की जिनकी पात्रता हो, और जो निराहार छहमास तक एक आसन से ध्यान लगाकर बैठे रह सके ऐसे साधु नगर में न रहकरजगल मे उन सिंहादिक क्रूर जानवरो के मध्य मे रहते है। उनके शरीर सहनन की सामर्थ्य बहुत प्रबल होती है। जितनी उनकी सामर्थ्य होती उतना ही उनका कठिन तपश्चरण और प्रभाव होता है जिससे हिंसक जीव भी देखकर शान्तिलाभ करते हैं। परन्तु स्थविरकल्पी ऐसा करने मे असमर्थ हैं उनका हीन सहनन होता है। अतः संहनन से २८ मूलगुण तो पालते हैं परंतु उनकी इतनी सामर्थ्य नहीं हो सकती है जो निर्जन बन में रह सकें और निर्विघ्न अपना आत्म साधन कर सकें। ऐसे मुनियो के लिए नगर मे रहने का विधान है।

यह अनुभव और निश्चय शास्त्राधार से प्रत्येक जैन को करना चाहिये कि जबतक जगत मे मुनियो का प्रादुर्भाव और अस्तित्व रहता है तभीतक जैन धर्म का अस्तित्व अथवा मोक्ष मार्ग का पूर्ण रूप—सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र रहता है। मोक्षमार्ग का एक देश तो चारों गतियों मे रहता है परन्तु रत्नत्रयात्मक मोक्ष मार्ग मुनियो के प्रगट होने पर और उनके सद्भाव रहने तक ही रहता है। भोग भूमि समाप्त होने पर कर्म भूमि के प्रारभ में मोक्ष मार्ग तभी प्रचिलित हुआ जब कि आदि तीर्थंकर आदिनाथ भगवान ने मुनिव्रत धारण किया। इसीप्रकार जैन धर्म और मोक्ष मार्ग का सद्भाव पंचम काल में तभी तक रहेगा जब तक कि मुनी आर्जिका का सद्भाव रहेगा, उनके समाधिमरण करने पर ही धर्म का लोप हो जायेगा। इसी प्रकार यह बात भी निश्चित है कि जब तक मुनियों का अस्तित्व है तभी तक श्रावक धर्मठहर सकता है उनके अभाव में श्रावक धर्म भी नहीं ठहर सकता है। आदिनाथ भगवान के मुनि होने पर ही श्रावक धर्म प्रारभ हुआ और पंचम काल मे अंत में मुनियो की समाप्ति में श्रावक धर्म भी समाप्त हो जाता है। श्रावको का उद्धार एवं उनका सच्चा हित मुनिधर्म से ही हो सकता है। वही उनका परम आदर्श है। पुलाक बकुश आदि जो शास्त्रो मे मुनियो के पॉच भेद बताए है वे चौथे काल मे भी पाए जाते हैं। उन भेदो पर दृष्टि डालने से वर्तमान मुनियो का स्वरूप और उनकी चर्या चतुर्थ काल के पुलाकादि मुनियो से किसी प्रकार कम नही है किन्तु समता एव विशेषता भी रखती है। अत में यही निवेदन है कि योगीन्द्र चूड़ामणि चरित्र चक्रवर्ती परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर महाराज के दर्शन, स्तवन पूजन करने का सुअवसर एव सौभाग्य प्रत्येक जैन बंधु को प्राप्त करना चाहिए।

परिशिष्ट

इन्दौर मे अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव के अवसर पर १२ ई शनिवार को मध्यभारत के राजप्रमुख ग्वालियर-नरेश श्रीमन्त जीवाजीराव शिंदे महाराज के कर कमलों द्वारा नेकपदविभूषित सर सेठ हुकमचन्दजी साहब के स्टेच्यू का अनावरण हुआ और रविवार १३ मई को रात्रि के आठ जे महासभा के स्वर्ण-जयन्ति महोत्सव का श्रीमन्त राजप्रमुख द्वारा उद्‌घाटन किये जाने के बाद आपके ही द्वारा र सेठ साहब को अभिनन्दन ग्रन्थ भेट किया गया। दोनो ही समारोह इन्दौर के इतिहास मे अभूतपूर्व हुये। हिले मे तीस हजार और दूसरे मे पचास हजार नरनारी उपस्थित थे। इन अवसरो पर हुये महत्त्वपूर्ण भाषण स परिशिष्ट मे दिये जा रहे हैं। —सम्पादक।

स्टेच्यू का अनावरण

स्टेच्यू कमेटी के अध्यक्ष सेठ भॅवरलालजी सेठी ने अपने भाषण म कहा कि —

'बहुत ही हर्ष का विषय है कि आज हमको सर सेठ हुकमचन्दजी साहब के पूर्णाकार स्टेच्यू का अनावरण करने के शुभ अवसर पर लोकप्रिय श्रीमन्त राजप्रमुख के स्वागत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सर सेठ साहब के समान व्यक्ति का आदर श्रीमन्त राजप्रमुख के समान योग्य शासक एव उदार महापुरुष के हाथ से होना उचित ही है। कुछ महीनो पूर्व मै सर सेठ साहब से मिलने के लिये गया, तब सेठ साहब की तबीयत अलील थी। मैने उनसे कहा "आपको अपनी तबीयत का खयाल रखना चाहिये।" इस पर जो जवाब मुझे मिला, वह सेठ साहब के जीवन के दृष्टिकोण पर प्रकाश डालता है। वे बोले "भैया, मुझे काई चिन्ता है ? मैने करोडो से धन कमायो और लाखो से दान कियो। मैने पूरो भोग भोग्यो और मन भर धर्म चिन्तन कियो। भैयो बडो हो ही गयो है और काम-काज सभालने लग गयो। अब मौत काल आवे या आज आवे, ईकी काई चिन्ता।" जिस निर्लिप्त भाव से यह बात कही गई, वह उनके व्यक्तित्व का निर्देश करती है। अगर आज इन्दौर मे घूमा जाय, तो अनेक इन्दौर-निवासी सेठ साहब के विषय मे छोटी-मोटी घटना अवश्य सुनावेगे, जो उनकी कार्यकुशलता या सहज बुद्धि या समय की सूझ बतायेगी। आज सर सेठ साहब इन्दौर मे एक पौराणिक महापुरुष की तरह है और उनके व्यक्तित्व की छाया इस तरह इन्दौर नगर पर पडी है कि शायद ही कोई उनके प्रभाव से अछूता बचा हो। बचपन से ही सेठ साहब की सहज बुद्धि, विशाल प्रतिभा, कार्यकुशलता आदि के मत चलने लगे।

जब सेठ स्वरूपचन्दजी साहिब और उनके भाइयो मे पातीदारी होने लगी, तब सर सेठ साहिब ने अपने पिता से कहा कि 'अगर मै कपूत निकला तो आप कितना भी धन छोड जायेगे, मै उसे बरबाद कर दू गा और यदि मै सपूत निकला, तो आप कम छोड जावेगे, तो भी मै उसे बढा लूगा।" यह है सेठ साहिब का आत्म विश्वास।

हम सबको ऐसे कर्मठ व्यक्ति के समकालीन होने का सौभाग्य प्राप्त है। इन्दौर नगर अपने औद्योगिक और व्यवसायिक विकास के कारण मध्य भारत तथा राजस्थान का प्रमुखतम नगर है और इस विकास मे सर सेठ साहब का कितना हाथ रहा है, यह सर्वविदित है। यह सब उनके औद्योगिक साहस और आने वाले समय की परख की शक्ति के कारण है।

सेठ साहब को सार्वजनिक सेवाओ को ध्यान मे रखकर ही जैनसमाज ने यह निश्चय किया कि ऐसे कर्मठ और परोपकारी व्यक्ति की स्टेच्यु किसी मुख्य स्थान पर स्थापित की जावे। हर्ष का विषय है कि जैन समाज के इस

स्ताव को इतर समाजो ने भी उत्साहपूर्वक अपनाया, जिसके फलस्वरूप आज हम इन्दौर की जनता की ओर से स्थापित यह पूर्णाकार आज स्टेच्यू देख रहे है। इस कार्य मे हमारे को बोहरा समाज, पारसी समाज और सम्पूर्ण व्यापारिक एसोशिएसनो का साथ रहा है, जिसके लिये हम उनके प्रति कृतज्ञ है।

श्रीमन्त राजप्रमुख का भाषण

श्रीमन्त राजप्रमुख ने अपने भाषण मे कहा कि —

इस स्मारक के पीछे एक ऐसे मेधावी महापुरुष के जीवन का इतिहास है, जिन्होने अपने जीवन मे निर्धनता को अत्यन्त निकट से देखा है और भौतिक ऐश्वर्य की एक ऊँची मजिल पर आदर और श्रद्धा के पात्र बनकर विहार किया है। जिन लोगो का सेठ साहब से निकट का परिचय रहा है, वे जानते है कि उन्हे अपने जीवन मे कितना सघर्ष करना पडा है, स्वय के निर्माण मे कितने कठिन परिश्रम के फलस्वरूप वे अपने जीवन मे आगे बढ सके है। सेठ साहब केवल इसलिये मध्यभारत मे या समस्त देश मे आदरणीय व्यक्ति नही है कि उन्होने करोडो रुपया कमाया है, बल्कि उनके प्रति आदर का सबसे पहिला कारण यह है कि धनिक होते हुए भी उन्होने दान के मार्ग को, दया की भावना को और मानव के हित के सिद्धान्तो को अपनाया है। उद्योगपति सर हुकमचन्द जी के नाम की अपेक्षा दानवीर सर हुकमचन्दजी का नाम अधिक गौरव से लिया जाता है। जिस व्यवसायिक सूझ-बूझ, वस्तुस्थिति के ज्ञान-और औद्योगिक चमत्कार का प्रदर्शन आपने अपने जीवन मे किया है, उस अदम्य साहस, विवेक और अनवरत परिश्रम तथा अपने मे विश्वास की भावना से वर्तमान पीढी और आगे आने वाली पीढिया प्रेरणा प्राप्त करती रहेगी। उत्साही नवयुवको के लिये उनका जीवन इस बात की साक्षी देता रहेगा कि साहस, परिश्रम और लगन के आगे इस भौतिक ससार की कोई भी वस्तु असम्भव नही है। उसे प्राप्त करने के लिये और अपने उद्देश्य की चरम सीमा तक पहुँचने के लिये अपने मे विश्वास चाहिये और विपरीत परिस्थितियो से सघर्ष करने के लिय साहस चाहिये। विवेक की तीव्रता, विश्वास की स्थिरता और साहसिक कार्य ही मानव को सफलता के माइलस्टोन की ओर ले जाते है।

सज्जनो, यह इदौर के नागरिको का सौभाग्य है कि उन्हे सेठ साहब जैसे नररत्न प्राप्त हुए। आधुनिक इन्दोर के निर्माण मे उनका बहुत बडा हाथ रहा है। एक ओर जहा इस नगर के उद्योग के विकास मे उनका भरपूर हाथ रहा है, तो दूसरी ओर शहर को सुन्दर बनाने और उसे आधुनिक ढंग पर निर्माण करने मे भी उन्होने पर्याप्त सहयोग विपुल धनराशि द्वारा दिया है। इन्दौर की जनता के लिये उन्होने जो कार्य किये व जनहितकारी सस्थाओ और इमारतो का निर्माण करवाया, वे उनके कीर्तिस्तम्भ के रूप मे मोजूद रहेगी। आधुनिक इदौर के नाम से उनका नाम अलग नही किया जा सकता।

निस्सन्देह, आज तो हमारा देश औद्योगिक प्रगति मे बहुत आगे बढ गया है और नित्य नये-नये प्रयास इस दिशा मे किये जा रहे है। लेकिन, जब मै आज से लगभग अर्ध शताब्दी पूर्व की परिस्थितियो, सीमित ज्ञान और सीमित साधनो के सम्बन्ध मे सोचता हूं, तो यह कहने मे किंचित भी सकोच नही होता कि सर सेठ साहब ने उद्योग की दिशा मे उस समय 'हुकमचन्द 'मिल' की नीव डालकर जो प्रगतिशील कदम उठाया था, वह वास्तव मे प्रशसनीय था। वर्तमान तेज प्रगति मे भी वह उदाहरण नही भुलाया जा सकता। अन्य धनिको को भी इस ओर प्रेरित किया तथा अपने अनुभव और विवेक का भरपूर सहयोग दिया। उनकी इस उदार नीति तथा पारस्परिक सहयोग की भावना का ही यह परिणाम है कि आपके इस नगर मे अनेक मिलो का निर्माण अल्प समय मे हो सका और इन्दौर नगर देश के प्रमुख औद्योगिक नगरो मे गिना जाने लगा।

इन्दौर के सार्वजनिक जीवन से हुकमचन्दजी का सम्बन्ध रहा है। वे इस नगर के ग्यारह पचो, चेम्बर आफ कामर्स आदि सार्वजनिक सस्थाओ के अध्यक्ष रहे है। अध्यक्षपद से जो कार्य उन्होने आम जनता की भलाई के

लिये किये है, वे भुलाये नही जा सकते। आम जनता के हित को उन्होने अपने जीवन मे प्रधानता दी और ऐसे सत्कार्य किये कि इन्दौर और इन्दौर के बाहर भी वे आज स्मरण किये जाते है। देश के विद्यार्थियो के लिये, निर्धनो के लिये, नारी समाज के लिये तथा धर्म के लिये उन्होने ऐसी योजनाओ को रचनात्मक रूप दिया कि वे आज भी उससे लाभ उठा रहे है।

मै जीवन मे निस्पृहता को मानव का बहुत बडा गुण मानता हूँ। यह निस्पृहता की भावना ही इन्सान को लोक-कल्याण की ओर ले जाती है, जहाँ वह अपने से अधिक दूसरो के प्रति सोचता है और उनको सहायता के लिये तन, मन, धन से अपना हाथ बढा देता है। ऐसा केवल उन्ही परिस्थितियो मे सम्भव है, जबकि वह निर्लिप्त हो या कि वह केवल अपने हित और अपनी उन्नति की सकीर्ण विचारधारा मे ही न फसा हो। सेठ साहब मे यही गुण है। आज उन्होने वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर लिया है, यानी उन्होने सासारिक मायामोह के जजाल से निवृत्ति ग्रहण कर ली है। लेकिन, इस अवस्था मे आने के पूर्व भी उन्होने धन और ऐश्वर्य के भवर से अलग रहकर निस्पृहता के जो उदाहरण प्रस्तुत किये है, उनके कारण वे दानशील और लोककल्याण की भावनाओ को प्रतिमूर्त करने मे सफल हो सके है। आज तो हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है, लेकिन उन्होने अनेक वर्षो पूर्व 'मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति' सस्था की स्थापना मे सहयोग देकर राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रसार के कार्य को आगे बढाया था। उनके यह सब गुण इस बात की ओर सकेत करते है कि वे अपने जीवन मे कितने प्रगतिशील रहे है, उन्होने परिस्थितियो का कितने निकट से अध्ययन किया है और किस प्रकार अपने विचारो तथा कार्य प्रणाली को समय के अनुसार निर्मित किया है।

मुझे इस बात का हार्दिक हर्ष है कि आपने अपने नगरमे सेठसाहब के सम्मान मे अपना पूरा सहयोग देकर उनका यह स्मारक तैयार करवाया है। स्मारक मेरी समझ मे इतिहास के प्रतिरूप होते है, जो विगत मे महा-पुरुषो द्वारा किये गये महान् कार्यो और उनकी जीवनसम्बन्धी महानताओ का स्मरण कराते रहते है। मुझे विश्वास है, सेठ साहब का यह स्मारक भी. उनके सद्गुणो का स्मरण हम लोगो को कराता रहेगा।

सेठ साहब का होलकर राज्य घराने से तो निकट का सम्बन्ध रहा ही है, लेकिन, मेरे पूज्य पिताजी से भी आपका घनिष्ट सम्बन्ध था। पूज्य पिताजी को आपकी व्यवसायिक बुद्धि तथा कार्य-प्रणाली पर बडा विश्वास था और वे सेठ साहब को एक अत्यन्त गुणी व्यक्ति मानते थे। मेरे साथ भी सेठ साहब का स्नेहपूर्ण व्यवहार रहा है। उनके सुपुत्र सेठ राजकुमारसिह जी ने भी अपने आदरणीय पिता के पदचिन्हो पर चलने का प्रयत्न किया है। यह स्मारक सदैव आप लोगो को इस बात की प्रेरणा देता रहे कि आप अपने जीवन मे विपरीत परिस्थितियो का साहस से सामना करते हुए आगे बढे और अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करे।

अभिनन्दन ग्रन्थ भेट

महासभा के प्रधान सर सेठ भागचन्दजी सोनी ने श्रीमन्त राजप्रमुखसे सर सेठ साहब को अभिनन्दन ग्रन्थ भेट करने के लिए निवेदन किया। ग्रन्थ भेट किये जाने पर सर सेठ साहब ने कहा कि—

"इस शुभ अवसर पर समस्त साधर्मी भाइयो के प्रयास से, उनके वात्सल्य भाव, प्रेम व सम्मान का द्योतक रूप जो अभिनन्दन ग्रन्थ मुझे भेट किया गया है, इसके लिए मै आपका अत्यन्त आभारी हूँ। इससे भी अधिक मान मुझे इन्दौर के नागरिको ने मेरे सम्मान रूप एक "ब्राँच स्टेच्यू" तोपखाने के म्युनिसिपल उद्यान मे लगा कर किया है। इस अत्यधिक सम्मान के लिए मै विशेषत भवरलालजी साहब सेठी अध्यक्ष स्टेच्यू कमेटी व उसके सदस्य रा० ब० कन्हैयालालजी साहब भडारी, समस्त एसोसिएशन, सस्थाए, इतर समाज के सब भाइयो, मन्त्रि-गण, नगर सेविका के अधिकारी आदि का भी इस अवसर पर आभार मानता हू।

इन्दौर निवासियो का और मेरा हमेशा से घनिष्ठ सबन्ध रहा है। अपने जीवन के ७७ वर्ष मैने उनके

साथ स्नेह मे बिताए है। जब कभी भी मै इन्दौर छोडकर अधिक दिनो के लिए बाहर रहा, तो मुझे आप लोगो की याद ने बेचैन किया और शीघ्र लौट आने के बाद ही सान्त्वना मिली। यहाँ अनेक उतार-चढाव म, बनती-बिगडती हुई परिस्थितियो मे, हम लोग साथ ही दुखी हुए और साथ ही हँसे है। मानापमान को भी एक ही साथ बाँटे है। एक दूसरे के लिए जिए है। जो कुछ मैने इन्दौर नगर की व देश की व्यापारिक, सामाजिक व धार्मिक सेवा की है, वह सब मैने कर्तव्य समझकर किया है। भारत की तो यह प्रथा रही है कि यहाँ पाषाण की भी प्रतिष्ठा कर उसको भगवान बना दिया जाता है। तब मेरी अयोग्यता को देखते हुए भी आपने मुझ सचेतन को इतना बडा सम्मान का पात्र बना दिया है, तो यह भारतीय परपरा के अनुरूप ही है। हमारे आदरणीय प्रजाप्रिय श्रीमन्त महाराजाधिराज ग्वालियर नरेश ने उक्त कार्य मे सहयोग देकर स्टेच्यू के अनावरण करने के समय मेरे प्रति सम्मान-सूचक स्नेह व वात्सल्य के जो भाव प्रगट किए है, उनके लिए कृतज्ञता प्रगट करने को मुझे उपयुक्त शब्द ही नही मिल रहे है।

बन्धुओ! आप देख रहे है कि मै वृद्धावस्था से गुजर रहा हूँ। हमारी भारतीय परपरा के अनुसार ये दिन आत्म-चितन के लिये उपयुक्त माने गए है। आज इसी अवस्था को प्राप्त कर मै अध्यात्म आनन्द की ओर पहले की अपेक्षा अधिक वेग से आकर्षित हुआ हूँ। मैने अपने जीवन मे यथोचित प्रत्येक वस्तु का उपभोग किया है। परन्तु उस अवस्था मे भी मैने आध्यात्मिक चेतना को जागृत रखने का पूर्ण प्रयास किया है। अब धर्म-साधना की अवस्था को प्राप्त कर मै अत्यन्त प्रसन्न हूँ। धर्म के प्रति मुझे सदैव श्रद्धा रही है। मेरा विश्वास है सच्चे मानव धर्म मे एव उसके लोक कल्याणकारी स्वरूप मे। आज विश्व की समस्याएँ इतनी उलझ चुकी है कि उन्हे सुलझाने के लिए हमे मानव धर्म को सच्चे अर्थो मे ही अपनाना होगा। मानव धर्म उन सिद्धाँतो का समूह है, जो जीवन की सर्वतोमुखी प्रगति मे सहायक होते है। इस का उद्देश्य है आत्मा को परमात्मा और मानव को परम मानव मे परिवर्तित कर देना। यह "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धाँत पर आधारित है और अहिसा, प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता, सत्यता, अपरिग्रह आदि मानव कल्याणकारी भावनाओ का प्रतीक है। समन्वयवाद ही इस की आत्मा है, जिससे विश्व की समस्त विषमताओ को सुलझाने मे यह सहायक होगा। आज के युग मे हमे इसी धर्म से आत्मा का साक्षात्कार करना होगा। अन्यथा, मानवता व विश्व शाति की रक्षा असम्भव है।

मै अपनी वृद्धावस्था के कारण महासभा को अधिक सहयोग देने मे असमर्थ हूँ, परन्तु मेरी सद्भावनाएँ सदैव आपके साथ है। सक्षेप मे इतना ही निवेदन है कि आप महासभा को मेरी धरोहर समझकर हर सम्भव प्रयत्न से उन्नत बनाये रखने का प्रयत्न करते रहे। समाज के प्रिय नेता धर्मप्राण सर सेठ भागचन्दजी साहब आपकी सभा के प्रमुख है। मै उन्हे उत्तराधिकारी के रूप मे उसको सौपता हूँ और महासभा के सेवाकाल मे होने वाली अपनी अबतक की त्रुटियो के लिये क्षमा माँगता हूँ

—लाला निर्भयरामजी दिल्ली लिखते है कि रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी साहब की सफलता का प्रधान कारण यही है कि उन्होने सार्वजनिक उत्थान के कार्यो मे विशेष सहयोग दिया है। आपका सुयश और कीर्ति चिरकाल तक बनी रहेगी।

—पण्डित अमोलकचन्दजी उडेसरीय इन्दौर मे लिखते है कि वैभव, परोपकार, धर्मप्रभावना, कृपालुता, गणगौरव सभी मिलकर सेठ साहब की प्रतिभा का सम्पादन कर रहे है। मै श्रद्धा तथा सम्मान से अपनी विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

———